ISSN 2277 - 7083

आधुनिक साहित्य

Aadhunik Sahitya

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

UGC Approved Care Listed Journal

वर्ष/Year-11 अंक/Vol.-42 द्विभाषी/Bilingual

अप्रैल – जून / Apr. - Jun. 2022

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

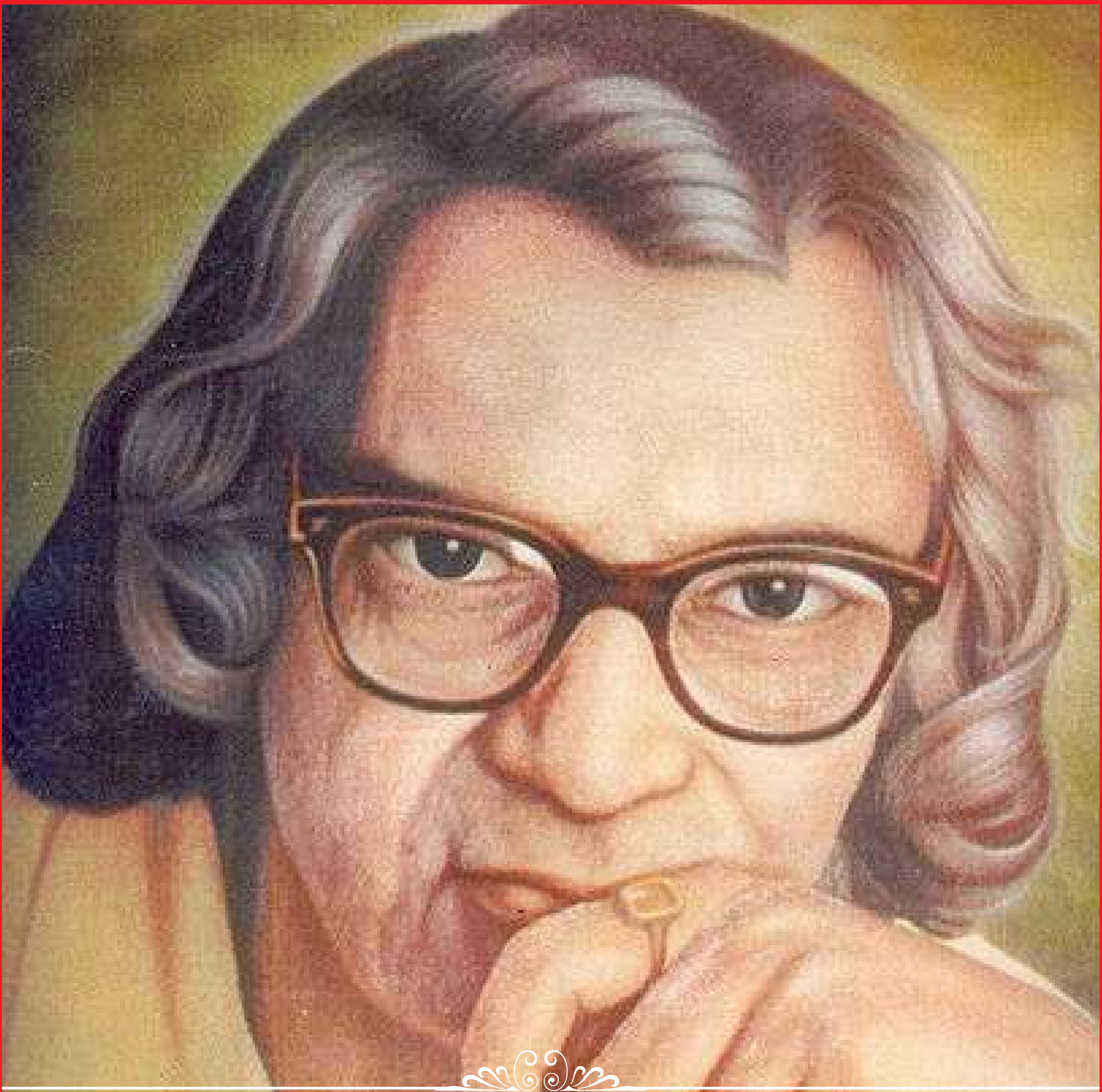

सुमित्रानन्दन पन्त

20 मई 1900

तेरा कैसा गान,
विहंगम! तेरा कैसा गान?
न गुरु से सीखे वेद-पुराण,
न षड्दर्शन, न नीति-विज्ञानय

तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छन्दों की पहचान?
न पिक-प्रतिभा का कर अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान!

आधुनिक साहित्य

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

विश्व हिंदी साहित्य परिषद

प्रकाशन | वितरण | राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन

प्रमुख उद्देश्य

- ★ हिंदी का प्रचार-प्रसार
- ★ उत्तम साहित्य का प्रकाशन
- ★ साहित्यकार साहित्य योजना
- ★ पुरस्कार प्रतियोगिता का संचालन
- ★ रोजगारोन्मुख हिंदी के लिए प्रयास
- ★ हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का समग्र विकास
- ★ साहित्य एवं संस्कृति के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयत्न
- ★ संग्रहालय, पुस्तकालय एवं संगोष्ठी कक्ष की स्थापना में प्रयासरत

मुख्यालय

एडी-94-डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088

संपर्क सूत्र : 09811184393, 011-47481521

ई-मेल : vhspindia@gmail.com, aadhuniksahitya@gmail.com

Website : www.vhsp.in

UGC Approved Care Listed Journal

आधुनिक साहित्य

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

वर्ष/Year-11 अंक/Vol.-42 | अप्रैल-जून 2022/April-June 2022 | द्विभाषी/Bilingual

Aadhunik Sahitya

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे*

Editor

Dr. Ashish Kandhway

संरक्षक	Patron
प्रो. उमापति दीक्षित	Prof. Umapati Dixit
कुमार अविकल मनु	Kumar Avikal Manu
उप संपादक	Sub Editor
रजनी सेठ	Rajni Seth
प्रबंध संपादक	Managing Editor
ममता गोयनका	Mamta Goenka
विशेष संवाददाता (अमेरिका)	Special Correspondent (USA)
रश्मि शर्मा	Rashmi Sharma
संवाददाता (अंग्रेजी)	Correspondent (English)
निलांजन बैनर्जी	Nilanjan Banerjee

*आशीष कंधवे (मूल नाम आशीष कुमार)

आधुनिक साहित्य में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबन्धित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा दिल्ली क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में सम्पादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक हैं।

आधुनिक साहित्य

साहित्य, संस्कृति एवं आधुनिक सोच की त्रैमासिकी

UGC Approved Care Listed Journal

केंद्रीय हिंदी संस्थान के सहयोग द्वारा प्रकाशित

RNI No. DELBIL/2012/42547
ISSN 2277 - 7083

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुन: उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक अथवा आधुनिक साहित्य की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
एडी-94-डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
फोन : 011-47481521, +91-9811184393
ई-मेल : aadhuniksahitya@gmail.com
adhuniksahitya@gmail.com

आलेख/रचना/कहानी में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं इससे प्रकाशक या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मूल्य : **₹ 150 प्रति अंक**

शुल्क :	तीन वर्ष (12 अंक)	₹ 3100
	पांच वर्ष (20 अंक)	₹ 5100
	(डाक/कोरियर खर्च सहित)	
	आजीवन सदस्यता	₹ 21,000
	विदेश के लिए (3 वर्ष)	100 डॉलर

शुल्क **'AADHUNIK SAHITYA'** के नाम पर भेजें।

Account Name	: Aadhunik Sahitya
Account No.	: 16800200001233
Bank	: Federal Bank Ltd.
Branch	: Shalimar Bagh New Delhi-110088
IFSC Code	: FDRL0001680

'आधुनिक साहित्य' द्विभाषी त्रैमासिकी आशीष कुमार के स्वामित्व में और उनके द्वारा एडी-94डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित तथा आभा पब्लिसिटी, 163, देशबंधु गुप्ता मार्केट, करोलबाग, नई दिल्ली से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ. आशीष कुमार।

'AADHUNIK SAHITYA' A quarterly bilingual (Hindi & English) Journal of Literature, Culture & Modern Thinking owned/published/printed/edited by Ashish Kumar from AD-94-D, Shalimar Bagh, Delhi-110088 and printed at Abha Publicity, 163, Deshbandhu Gupta Market, Karolbagh, New Delhi.

अनुक्रम

संपादकीय

- डॉ॰ आशीष कंधवे / *इतिहास बोध : नैसर्गिक निर्दोष मनःस्थिति का यथार्थ* / 8

शोध-संसार

- डॉ. नवकान्त दास एवं प्रांजल कुमार नाथ / *भारतीय संस्कृति में शंकरदेव....*/ 16
- डॉ. ब्रह्मलता / *मनमोहन सहगल के उपन्यासों में संघर्षशील नारी* / 23
- डॉ. प्रेमप्रकाश मीणा / *प्रश्न मीडिया की भाषा* / 29
- श्रीमती निकिता रामटेके एवं डॉ. शंकर मुनि राय / *गिरीश पंकज के कथा साहित्य...*/ 32
- अजय कुमार यादव एवं डॉ. कविता पड़ेगाँवकर / *महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन* / 37
- बसन्त कुमार / *भाषा और व्यक्तित्व* / 41
- मनीष कुमार कुर्रे / *छत्तीसगढ़ का इतिहास (नामकरण के संदर्भ में)* / 44
- चैतराम यादव एवं डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत / *डॉ. गणेश खरे का हिन्दी साहित्य....*/ 53
- एस कुमार गौर एवं डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत / *कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की प्रासंगिकता (वर्तमान संदर्भ में)* / 57
- डॉ. प्रियंका सिंह / *समकालीन आदिवासी कविता : समस्यायें और चुनौतियाँ* / 62
- रूबी शर्मा एवं डॉ. विनोद कुमार जैन / *समाकेतिक शिक्षा में डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन* / 66
- डॉ. सुनीता शर्मा / *समकालीन हिन्दी कविता में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण (राजेश जोशी और ज्ञानेन्द्रपति के विशेष संदर्भ में)* / 74
- सोनिया / *रामचरितमानस की वर्तमान में प्रासंगिकता* / 82
- माहेश्वरी एवं डॉ. चन्द्रकुमार जैन / *स्त्री-विमर्श : समकालीन परिप्रेक्ष्य में* / 86
- डॉ. भास्कर लाल कर्ण / *भारतीय आधुनिकता* / 89
- डॉ. वेदप्रकाश / *भारतेंदु का बलिया व्याख्यान और वर्तमान परिदृश्य* / 96
- डॉ. जैनेन्द्र कुमार पाण्डेय / *सूचना क्रांति के दौर में भाषिक चुनौतियाँ* / 101
- दीपमाला एवं डॉ. कविता पड़ेगाँवकर / *ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन* / 106
- सत्येन्द्र पाण्डेय / *आदमी का ज़हर बनाम मोछू नेटुआ* / 109
- डॉ. अंजू बसंल / *भारतीय संस्कृति के दर्पण में 'विदुर नीति'* / 115
- प्रो. (डॉ.) अनुसुइया अग्रवाल एवं दीप्ति ठाकुर / *साहित्य में व्यंग्य* / 122
- गिरजेश कुमार / *मानव समाज को सामाजिक समरसता का पाठ....*/ 125
- रेणु देवी / *स्त्री चेतना का सारगर्भित स्वरूप : ममता कालिया का नरक....*/ 130
- संदीप सो. लोटलीकर / *लेखक-पत्नी की त्रासदी की गाथा 'एक कहानी यह भी'* / 135
- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव / *हिन्दी यात्रा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन* / 141
- डॉ. मधु कौशिक / *भारतीय रंगमंच में मंच की शास्त्रीय परिकल्पना* / 145

ENGLISH SECTION

Research Article

- Amandeep Kumar / **A case study: Anti-India Activities of ISI** / 153
- Dr. Vibha Srivastava / **Drug Patent Issues In IPR vis-a-vis Public....**/ 160
- Dr. M.N.V. Preya / **Impinging and Enslavement in Kamala Markandaya's novels *Nectar in a Sieve* and *The Coffer Dams*** / 169
- Aiswarya B and Dr. T.S. Ramesh / **Estrangement of Psyche in Anita Desai's *Cry, the Peacock* and *Fire on the Mountain*** / 175
- Ms. Swati Hooda and Dr. Mayur Chhikara / **Intersecting Identities in....**/ 180
- Dhivya Bharathi R and Dr. T.S. Ramesh / P**eeking Ambivalent Sexism viz., Nisha and Aasha Rani of Shobha De's *Sultry Days* and....**/ 188
- Deepak Kumar Kashyap and Dr. Anupama Saxena / **Political Participation of Women in Chhattisgarh Panchayati Raj Institutions** / 192
- Kamaljot Kour / **Postcolonial Ecofeminism in India: Divergent Trajectories and Emergent Voices** / 196
- Dr. Ramyabrata Chakraborty / **Untouchability as an Impediment to Indian Nationalism: A Re-Reading of Mulk Raj Anand's *Untouchable*** / 205
- Tania Shri and Dr. Vandana Sharma / **Paradigms of Gender and Environment Debate in Mahasweta Devi's 'The Hunt' and....**/ 211
- Dr. Mary Sandra Quintal / **Revealing the Complexity of Connectedness in Robertson Davies' *Fifth Business*** / 219
- Sahil Bhagat / T**owards Climate Consciousness: Unveiling the Issues of Climate Change in Barbara Kingsolver's *Flight Behavior*** / 226
- Amita and Dr. Tamishra Swain / **Exploration of Female Consciousness in Urmila Pawar's *The Weave of My Life:* A Deconstructionist Study** / 233
- B. Ramya / **A Study on Sin of Despair: With Reference to Vikram Chandra's Select Works** / 239
- Indusoodan I and Dr. S. Geetha / **Representation of African Culture and African Consciousness in the Fiction of Ben Okri** / 244
- K. Jefferson and Dr. V. Radhakrishnan / **A Study on Enhancing Writing Skills Using Descriptive Tasks at the Tertiary Level** / 248
- S. Priyadharsini and Dr. C.G. Sangeetha / **Inevitable Modifications and Natural Calamities in Paolo Bacigalupi's *The Windup Girl*** / 254
- R. Gomathy and Dr. V. Radhakrishnan / **Enhancing the Reading Competency of the L2 Learners by using CLIL with Metacognitive Strategies** / 259

- Mrs Sasikala AD and Dr. K. Radhai / **The Potential Power and Values of Education Builds a Character : A Study of GithaHariharan's*The Ghosts of Vasu Master*** / 263
- R. Ramya Sri and Dr. V. Radhakrishnan / **A Study on Developing Writing Skills through Vocabulary Activities** / 269
- S. Govarthini and Dr. K. Prabha / **Liminal and Portal-Quest: Neil Gaiman a Hybrid Fantasy Writer** / 274
- R. Janani and R. Padmavathi / **Relentless Suffering of Women in Shashi Deshpande's *A Matter of Time*** / 280
- Ms. K. Niranjana and Dr. T. Gangadharan / **Tracing the Phylogeny of New-fangledwomen in Manju Kapurs Select Novels** / 285
- N. K. Saranya and Dr. B. Visalakshi / **The Unrevealed Meloncholia and the Survival of Life in Sharon M. Draper's *Out of My Mind*** / 290
- Dr. A.J. Manju and Ms. Roja Sankaranarayan / **The concepts of Destiny and Memory in Deep Trivedi's *I am Krishna*** / 296
- Ms. T. Thenmozhi / **Myth and Climate Change in Amitav Ghosh's *The Gun Island*** / 301
- Y. Raja and Dr. T. Gangadharan / ***Artfulness of Lunancy* in Elie Wiesel's Select Novels** / 306
- Dr. Neena T.S. / **'Mirroring the contradictory Images of Women within the Socio- Cultural Scenario of Ancient Times': A Philosophical....**/ 311
- Ms. Deepmala Srivastava and Dr. Annu Bahl Mehra / **Live in Relationship and Domestic Violence in India** / 315
- Eza Deshwal / **Understanding the 'hushed': A Foucauldian Perspective of Selected Literature** / 322
- Vaishali / **A Journey Towards Post Modernism: Study Of Italo Calvino's "The Castle Of Crossed Destinies."** / 327
- Himanshu and Dr. Rama Sharma / **Rights and Conditions of Undertrial Women and their children in India** / 332
- Swati Gandhi and Dr. Rama Sharma / **'Vocal for Local' - Special Treatment to MSMEs under Insolvency and Bankruptcy Code, 2016** / 339
- Vardan Dikshit and Dr. Abhishek Upadhyay / **Internet of Things (IOT) and market research: ethical and data privacy issues** / 347
- Dr. Rituraj Pant, Dr. Himani and Pragya Joshi / **Tourism Planning and Development in Uttarakhand-Prospects and Challenges** / 354
- Kamshad Mohsin and Harshit Kiran / **Right to Privacy in Cyberspace: Is it Real or Fake?** / 361

संपादकीय

इतिहास बोध : नैसर्गिक निर्दोष मनःस्थिति का यथार्थ

इतिहास सृष्टि का एक अभिन्न अंग है। सृष्टि को समझने के लिए जिन साक्ष्यों की आवश्यकता होती है वह हमें इतिहास से ही प्राप्त होता है। अब सृष्टि के किस पक्ष को समझना है यह विषय बहुत विस्तृत है परंतु चाहे पक्ष कोई भी हो इतिहास की उपलब्धता के बिना मानवी संचेतना मानवीय विकास और मानव समाज को संपूर्णता में समझा नहीं जा सकता। मैं इतिहास को मनुष्य जाति की उपलब्धि के रूप में देखता हूं। इतिहास कैसे लिखा गया है, कितना निष्पक्ष है यह एक अलग विषय है ।

प्रत्येक मनुष्य का इतिहास होता है, इसलिये उसे इतिहास-बोध की आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने तथा अपने पूर्वजों के इतिहास बोध से ही स्वयं को संबल प्रदान करता है एवं भविष्य के लिए मार्ग का निर्माण करता है। प्रत्येक मनुष्य की एक सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि होती है। व्यक्ति चाहे जिस देश में रहता हो, पृथ्वी के किसी भी कोने में जीवन यापन के लिए बस गया हो, वह अपने इतिहास से अलग होकर अपनी कल्पना नहीं कर सकता। मेरी दृष्टि में इतिहास मनुष्य के साथ-साथ कदमताल करते हुए चलता है। यह अलग बात है कि हम अपने इतिहास बोध पर बहुत ज्यादा ध्यान केंद्रित नहीं करते हैं। आज मैं विशेष रूप से उस इतिहास की बात करूंगा जिससे सामाजिक समरसता, सामाजिक संस्कृति, सामाजिक मूल्यबोध और सामाजिक चेतना का विकास होता है, अर्थात साहित्य। इनसे जो इतिहास का समायोजन होता है वह पूर्ण रूप से सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, राजनीतिक चेतना और व्यावसायिक चेतना पर केंद्रित होता है। इसलिए साहित्य का इतिहास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को भी साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाने का काम रचनाकार करते रहते हैं।

संक्षेप में कहें तो मनुष्य की तरह ही साहित्य का भी इतिहास होता है। साहित्य के इतिहास-लेखन की संभावना साहित्य की अवधारणा पर निर्भर करती है। वास्तव में, इतिहास-दर्शन की तरह साहित्य के इतिहास का भी एक दर्शन होता है। साहित्य के ऐतिहासिक दर्शन को किसी एक परिधि में बांधकर या फिर किसी एक विचारधारा के अंतर्गत उसे निर्धारित करके देखना साहित्य के विराट स्वरूप को नष्ट करने जैसा है। यहीं से साहित्यिक विद्रूपता का जन्म होता है और इतिहास अपने सौंदर्य के स्थान पर, अपनी उपलब्धियों के स्थान पर समाज के काले पक्ष को निरूपित करने लगता है। साहित्य के इतिहास लेखन के लिए यह आवश्यक है कि साहित्य-परंपरा को एक विकासशील

और गतिशील प्रक्रिया माना जाए और साहित्यिक कृतियों को उस प्रक्रिया का अनिवार्य अंग। सामाजिक जीवन के विकास के साथ ही कला और साहित्य का भी विकास होता है।

समाज के लिए उसके कला एवं साहित्य का विकास ही उसकी सांस्कृतिक अवधारणा को नई पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करती है। समय के साथ होने वाले बदलाव और समय सापेक्ष विचारधारा के बदलाव से साहित्य बहुत गंभीरता से प्रभावित होता है। इसलिए साहित्य के इतिहास की अवधारणा की जब भी बात की जाएगी हमें उसके निष्पक्ष होने की प्रमाणिकता की जांच की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। निष्पक्ष रुप से लिखा गया इतिहास और किसी एक विचारधारा अथवा मनुष्य को केंद्र में रखकर लिखा गया इतिहास दोनों में जमीन-आसमान का फर्क होता है। निष्पक्षता से नैसर्गिक निर्दोष आवरण का निर्माण होता है और प्रथम दृष्टि में ही पाठकों के मन में स्थान बनाने में सफल हो जाता है। वहीं पक्षपाती होकर इतिहास लेखन कहीं न कहीं समाज के मन में संशय का बीज उत्पन्न कर देता है।

इसलिए स्वतंत्र भारत में इतिहास लेखन चाहे वह इतिहास के दृष्टिकोण से हो या फिर साहित्य के दृष्टिकोण से निरंतर विवादास्पद बना हुआ है।

इतिहास से नाराज अनेक आलोचकों ने आलोचना में ऐतिहासिक संचेतना को अनावश्यक मानकर उसे समालोचना के क्षेत्र तक से बहिष्कृत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने साहित्य-सिद्धांत तथा व्यावहारिक आलोचना तक ही आलोचना को सीमित कर दिया है। इस परिधि के निर्माण से एक ओर जहाँ इतिहास की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। वहीं साहित्य की अंतर्दृष्टि भी सीमित और संकुचित हो जाती है। इस संकुचन से हमारा वैश्विक सांस्कृतिक तथा साहित्यिक व्यवहार कमजोर पड़ता है और हमारी सृजनात्मक अभिव्यक्ति अपनी मूल अवधारणा से हटकर एक पक्षकार के रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर देती है।

इस बात पर निरंतर विश्वास बनाए रखना चाहिए कि किसी भी रचनाकार की ऐतिहासिक चेतना उसकी रचना की अंतर्वस्तु के कलात्मक रूप और मूल्यवत्ता को निर्धारित करती है। इसी मूल्य बोध का निर्धारण सांस्कृतिक संचेतना और साहित्यिक अवधारणा को मूलाधार प्रदान करती है जो किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष अथवा सांस्कृतिक पतन का कारण बनती है।

जी. हार्टमैन नामक पाश्चात्य चिंतक ने लिखा है-"साहित्य का इतिहास एक बौद्धिक अनुशासन के रूप में ही नहीं, बल्कि साहित्य की रक्षा के लिए भी आवश्यक है।" न्यू लिटरेरी हिस्ट्री, मा.स. सं.-1, 1970 पृ. 183, इसीलिए साहित्य का इतिहास न तो वर्तमान से पलायन का साधन है और न अतीत की आराधना का मार्ग। हाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि पलायन और नए मार्ग की खोज के अंतर्गत कुछ विषय वस्तु अंतर्निहित होते हैं जिनकी पड़ताल करना आवश्यक है। इतिहास लेखन इस आधार पर नहीं हो सकता कि वर्तमान के कटु यथार्थ के दंश से बचाने वाले कल्पना लोक का निर्माण कर दिया जाए। इतिहास न अतीत की अंध-पूजा है और न वर्तमान का तिरस्कार। इतिहास वर्तमान की समस्याओं से बचने का बहाना भी नहीं है और न ही अतीत के गौरव का रोना। किसी भी राष्ट्र की प्रगति, उसके विकास, उसके चिंतन को इतिहास ऐसे मार्ग पर ले जाए जहाँ से नई पीढ़ी के लिए नए मार्ग का निर्माण होता हो और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व का बोध होता हो।

देखने में आता है कि कई साहित्यकार इतिहास की विलुप्त रचनाओं और रचनाकारों के उद्धार का साधन बना देते हैं, इसे सिर्फ साधन नहीं बल्कि अवधारणात्मक को सरोकार के रूप

में देखना चाहिए। रचनाकार किसी रचना को अपने काल का केवल ऐतिहासिक कीर्ति-स्तम्भ ही नहीं मानता, रचना को अपने युग के यथार्थ के प्रतिबिंबन का केवल साधन नहीं समझता है बल्कि रचना के परंपरा, परिवेश और प्रभाव का विश्लेषण भी करता है, जो इतिहास और सृजन के संरक्षण और संवर्धन की प्रक्रिया है।

विचारों के इतिहास को साहित्य का इतिहास नहीं कहा जा सकता। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के धरातल पर किसी शोध ग्रंथ का परिशिष्ट पृष्ठ नहीं है। किसी महान व्यक्ति का स्तुति गान नहीं है और न ही इतिहास का अर्थ महिमामंडित करना है। इतिहास साहित्य में अंतर्निहित उसके अंतर्वस्तु का निरूपण है, उसकी भूमिका है।

इतिहास विज्ञान का भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना साहित्य का परंतु दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि विज्ञान के अधिकांश इतिहासकारों ने तथ्य और सत्य को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया है जबकि साधारण इतिहासकारों ने साहित्य और संस्कृति के इतिहास को अपनी विचारधारा के अनुरूप और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अंकित किया है।

हम विशुद्ध रूप से साहित्यिक रचनाकारों से संबंधित आलोचकीय प्रतिक्रियाओं के सारांश को भी इतिहास नहीं कह सकते और न मुक्त चिंतन के नाम पर वैचारिक दृष्टिहीनता को स्वीकार कर सकते हैं।

किसी एक विचारधारा को संतुष्ट करने के लिए लिखे गए साहित्य के इतिहास की धारणा को हमें ऐतिहासिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, भाषावैज्ञानिक और सौंदर्यशास्त्रीय साहित्यानुशीलन का सार-संग्रह भी पूर्ण रूप से इतिहास की सत्यता की कसौटी नहीं माना जा सकता। मैं यह मानता हूँ कि साहित्य के विकास स्वरूप की अवधारणा को समझे बिना और साहित्य की निरंतरता में आस्था के बिना साहित्य का इतिहास लेखन असंभव है।

इसलिए साहित्येतिहास स्वतंत्र और पृथक् रचनाओं की शृंखला मात्र नहीं है। पश्चिम के एक और महत्त्वपूर्ण चिंतक रेने वेलेक के अनुसार-"साहित्य के इतिहास का प्रयोजन है साहित्य की प्रगति, परंपरा निरंतरता और विकास की पहचान करना"-डिस्क्रिमिनेशन्स 1970 पृ. 143।

इतिहास की बात जब हम करते हैं तो विकास की बात होती है और जब भी विकास की बात होती है तो एक और शब्द हम सबके मस्तिष्क में स्थान ग्रहण करने लगता है जिसे हम प्रतिभा कहते हैं। किसी व्यक्ति की प्रतिभा का आकलन उसकी शारीरिक संरचना व संगठन के आधार पर नहीं किया जा सकता, प्रतिभा का आकलन हमेशा उसकी वैचारिक क्षमता के आधार पर किया जाता है। प्रकृति को देख पाना इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति के वैचारिक दृष्टि का केंद्र किस जगह पर है। हम अपने सामने उपस्थित किसी भी वस्तु का सही तरीके से निरीक्षण तभी कर पाते हैं जब हमारी वैचारिक चेतना का केंद्र उस वस्तु या विचार पर केंद्रित होता है। अन्यथा वस्तु हमारे सामने ही होती है और उसे हम देख नहीं पाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि उस समय आपका मस्तिष्क कुछ और सोच रहा होता है और आपकी वैचारिक दृष्टि किसी दूसरी जगह पर केंद्रित होती है। ये बात सत्य है कि हमारे मस्तिष्क में वैचारिक भावनाओं का केंद्रीकरण नहीं होता अर्थात हमारा मस्तिष्क कभी एक वस्तु पर अथवा एक जगह पर ज्यादा समय तक केंद्रित नहीं रह पाता है यही कारण है कि हमारे लेखन में अनेक प्रकार की व्यवस्थाएं देखने को मिलती हैं। मनुष्य की वास्तविक दृष्टि उस जगह होती है जहां पर उसके विचारों की दृष्टि होती है। अर्थात मनुष्य अपने

भीतर जिस वस्तु की कल्पना में खोया होता है उसकी दृष्टि उस जगह पर केंद्रित होकर उसी कल्पना लोक का निर्माण करती है और यही कल्पना लोक एक दिन शब्दों में अभिव्यक्त होती है। अर्थात् हम वैचारिक दृष्टि को ठीक से समझना चाहें तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य की वैचारिक दृष्टि वास्तविक दृष्टि और कल्पनात्मक दृष्टि में अंतर्निहित होती है। वास्तविक दृष्टि तथा कल्पनात्मक दृष्टि के एकाकार होने पर उसकी प्रज्ञा दृष्टि का उदय होता है। प्रज्ञा दृष्टि ही एक मनुष्य को उसके इतिहास लेखन के लिए प्रेरित करती है और बिना प्रज्ञा दृष्टि के सत्य निष्ठा पर आधारित काल सापेक्ष इतिहास का लेखन असंभव है।

चेतना के आकाश में इच्छाओं का समंदर व्याप्त होता है और मनुष्य की इच्छाएं एक अंतहीन पथ पर उसके प्रत्येक कर्म, कदम-कदम पर एक नवीन मार्ग प्रशस्त करने को उत्सुक रहती हैं इसलिए प्रज्ञा दृष्टि का होना अत्यंत आवश्यक है। इतिहास लेखन के समय इच्छाएं महाप्रवाह के रूप में हमारे भीतर प्रवाहित होती हैं जिसके कारण नवीन लहरें तरंगित और विलीन होती रहती हैं। इच्छाओं की जितनी अधिकता में पोषण और पूर्ति होती है उसकी अभिलाषा व आकांक्षा उतनी ही तेजी से बढ़ती जाती है, यह इच्छा का स्वभाव है। यही इच्छा का स्वभाव इतिहास लेखन में सबसे ज्यादा हमें प्रभावित करता है। जब साहित्य के इतिहास की बात हो तो महाप्रवाह हमें किस दिशा में ले जाएगा यह लेखक की मनोवृति में भी ठीक से स्पष्ट नहीं होता। यही मनुष्य के विकास का क्रम है और विकास की अवधारणा को यहीं से धैर्य की प्राप्ति होती है।

वस्तुतः इस विकास की धारणा के भी अनेक रूप हैं। ये धारणाएँ मुख्यतः दो हैं (क) चक्रीय प्रगति की धारणा और (ख) रेखीय प्रगति की धारणा। पहले के अनुसार साहित्य का विकास विश्लेषित करने वाले इतिहासकार किसी साहित्य-परंपरा या एक विधा के विकास को उदय, उन्नति और ह्रास के पुनरावृत्ति क्रम के रूप में समझते हैं। कोयेस्लर का कहना है कि साहित्य रचना की अंतर्वस्तु और रूप में क्रांतिकारी उत्थान-पतन प्रासंगिकता के बदलाव के कारण होता है। इसकी विभिन्न अवस्थाओं के रूप में विकास की प्रक्रिया चलती रहती है।

साहित्य और कला के विकास की व्याख्या करने वाला एक आवयविक सिद्धान्त भी है जिसके अनुसार साहित्य या कला को संस्कृति या सामाजिक विकास के अंग के रूप में विवेचित किया जाता है। इसके अनुसार साहित्य और समाज, युग और राष्ट्र की चेतना का अभिव्यंजक और विधायक है। भाषा के विकास-सिद्धांत का भी साहित्य के इतिहास की विकासवादी धारणा पर प्रभाव पड़ा। यहाँ मैं और स्पष्ट करते हुए यह बताना चाहता हूँ कि चेतना के स्तर पर हम बहुत कुछ गहराई से चाहते हैं परंतु अचेतन आपको उससे दूर रखने का प्रयास करता है। जब तक आप अचेतन स्तर पर इच्छा पैदा नहीं कर पाते हैं आपकी अंतरात्मा किसी नकारात्मक प्रभाव के प्रति जागृत होती है तब तक आप चक्रीय प्रगति की धारणा को ठीक से नहीं समझ पाएंगे।

लेखकीय प्रवृत्ति की धारणा को समझने के लिए विचारों के नकारात्मक प्रभाव से निपटने और अचेतन नकारात्मक प्रभाव को स्वीकार न करके नैसर्गिक प्रवाह की दिशा में कदम बढ़ाने को कह सकते हैं। कठिनाइयाँ उस जगह खड़ी होती हैं जहाँ लोग अपनी नकारात्मक प्रवृत्तियों को सकारात्मक और मुक्तिदाई समझने लगते हैं। अधिकतर दुखों और दुविधाओं के साथ अपनी सृजनात्मक शक्ति से बिल्कुल अनजान रहते हैं और हर समय अपने अनुभव की रचना को श्रेष्ठ मानते हुए विचारात्मक प्रवाह के माध्यम से चेतन और अचेतन दोनों प्रकार की इच्छा शक्तियों का सृजन करते

रहते हैं। आप एक ही समय में दो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की अच्छा रखते हैं जिसके कारण आपके भीतर एक विरोध उत्पन्न हो जाता है। यही आंतरिक संघर्ष, आंतरिक कष्ट हमारी अवचेतन इच्छा को वास्तविक अनुभव के सृजन से दूर करती है और तर्क की कसौटी पर कस कर संतुष्ट करने का प्रयत्न करती है। यथार्थ में जिसका तार्किक स्पष्टीकरण हमारा चेतन मस्तिष्क नहीं दे पाता है हम अपनी उन्हीं शंकाओं का शमन करते हुए अपनी सोच को शब्द देते हैं जीवन की जो परिस्थितियां हमारे मन के अनुरूप संघर्ष करने के लिए रोक रही होती हैं उसे हम अपने ही तर्क से संतुष्ट करते हैं। हमारा मस्तिष्क परिवेश के अनुसार अपने विचारों को प्रकट करता है परंतु हम जोड़, घटाव, गुणा, भाग करके मूल चेतना के स्वर को स्थान, काल, परिस्थिति और व्यावसायिक, व्यापारिक विचारधारा की निष्ठा के अनुरूप अभिव्यक्त करते हैं। यही विरोधाभास इतिहास लेखन में विष का काम करता है और समाज में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है।

साहित्य और कला के विकास की निरंतरता के अंतर्गत ही विभिन्न प्रवृत्तियों का उत्थान-पतन चला करता है; इसीलिए कला या साहित्य की मृत्यु की कल्पना से इतिहास के अंत की कल्पना से भी जुड़ जाती है। स्पष्ट है, साहित्य के विकास का लक्ष्य मानव-समाज के विकास के लक्ष्य से सम्बद्ध है और कोई भी विकास लक्ष्यहीन नहीं होता। इन सब के पीछे कोई न कोई प्रयोजन होता है, कोई न कोई तथ्य होता है।

मानव-समाज का इतिहास मनुष्य की प्रयोजनयुक्त क्रियाशीलता का ही परिणाम है। होता क्या है कि अचानक हमारे भीतर मानसिकता व आचरण में बड़ा बदलाव नजर आने लगता है। भीतर ही भीतर धारा कब, कहाँ और कैसे बदल जाती है किस मोड़ की ओर मुड़ जाती है, यह हम ठीक से समझ नहीं पाते हैं। हमारे अंतर्मन और आसपास के वातावरण निरंतर बदलते रहते हैं। कुछ परिवर्तन प्रत्यक्ष होते हैं कुछ परिवर्तन अप्रत्यक्ष होते हुए भी हमारी वातावर्णिक सिद्धांतों के अनुरूप नहीं होती। प्रकृति ने मानवीय सभ्यता को उत्पन्न किया। प्रकृति ने मानव को चेतना दी लेकिन बदलाव की प्रक्रिया इतनी तीव्र होती है कि हम अपनी कृति से प्रकृति को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। यहीं से हम उस मार्ग पर चले जाते हैं जहाँ से विखंडन शुरू होता है इसलिए साहित्य का इतिहास-लेखन साहित्य में होने वाले परिवर्तन और निरंतरता के द्वंद्वात्मक विकासशील संबंध की व्याख्या से संभव होता है।

किंतु साहित्य के इतिहास में यदि विकास को स्वत: संचालित प्रक्रिया मानने वाले विचारक हैं तो उस विकास को सामाजिक-ऐतिहासिक यथार्थ की विकास प्रक्रिया से अनुशासित प्रक्रिया मानने वाले विचारक भी हैं। साहित्य का प्रवाह सतत बना रहता है और इतिहास की गुणवत्ता उसके प्रभाव को सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती रहती है। यही कारण है कि साहित्य की विकासशील प्रक्रिया में नई प्रवृत्तियों के उदय, पुरानी प्रवृत्तियों से नयी प्रवृत्तियों के संघर्ष, नए प्रयोग और परिवर्तन के साथ-साथ निरंतरता का क्रम चलता रहता है। यही वह प्रस्थान बिंदु होता है जहाँ से इतिहास की संरचना यथार्थ के ढांचे में स्वयं को रखती है और सामाजिक विश्वसनीयता को उत्पन्न करती है। सृष्टि में घटने वाले सभी जैविक घटनाओं, सांस्कृतिक घटनाओं, मानवीय घटनाओं के बदलते परिणामों और परिवर्तनों के संबंध में ऊर्जा व समय का उतना ही योगदान होता है जितना विचारों का होता है, मंथन का होता है। विचार से ही वह ऊर्जा उत्पन्न होती है जो मनुष्य के जीवन में मिलने वाली सफलता-असफलता, लाभ-हानि, स्वास्थ्य-समृद्धि,

ज्ञान-अज्ञानता के पीछे मनुष्य की वैचारिक भावनाओं का ही महत्त्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि विचारों के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावी सिद्धांत यह है कि जो जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है तथा तदनुसार सफलता-असफलता, लाभ-हानि, स्वास्थ्य-समृद्धि, ज्ञान और स्वभाव को अर्जित करता है। विषय का संक्षेपण करें तो यह सिद्ध होता है कि विचारों के द्वारा आत्मबल प्राप्त होता है और आत्मा की शक्तियां उसी से निरूपित होती हैं। क्योंकि निरूपण को ही हम इतिहास के नाम से जानते हैं। यह निरूपण समय सापेक्ष होता है और सकारात्मक ऊर्जा के संचार से विस्तार प्राप्त करता है। साहित्य की विकास-प्रक्रिया के अंतर्गत क्रियाशील आंदोलनों, परिवर्तनों और नवीन प्रयोगों के सम्बन्ध का विवेचन साहित्य के इतिहास में होता है। साहित्य में परिवर्तन और आंदोलनों से नवीन प्रयोगों की सम्भावना ही उत्पन्न होती है और नवीन प्रयोगों से परिवर्तनों के लिए भूमिका तैयार होती है। अवधारणा को स्थाई स्वरूप प्रदान करना होता है और इसे जब तक स्थाई रूप न दिया जाए तब तक पीढ़ियों में संस्कारों के रूप में विचारों की अवधारणा स्थाई आस्था में परिवर्तित नहीं होती है।

आस्था वैचारिक अवधारणाओं के स्थाई स्वरूप का नाम है अर्थात् वे विचार इतने प्रबल और प्रतिष्ठित हो जाते हैं कि सामान्य मस्तिष्क के उनके प्रवाह को संतुलित नहीं कर पाता और वे विचार अंत:करण को गहराई से प्रभावित करने लग जाते हैं। जो विचार अवधारणा अंत:करण की गहराई तक पहुँच जाते हैं वह आस्था के श्रेणी में पहुँच जाते हैं तथा वैचारिक परिवर्तन से मनुष्य को परिचित कराते हैं। यही कारण है कि कई बार इतिहास धर्म का रूप धारण कर लेता है। धर्म धारण का अर्थ है सामान्य मस्तिष्क की शक्ति से अधिक शक्तिशाली विचारधारा का सामाजिक अवधारणा में एक बड़े जन समुदाय को अपने विचारों के संवेग से परिवर्तित और परिवर्द्धित करने की क्षमता रखना। परिवर्तनशीलता के साथ-साथ निरंतरता मानव-चेतना और मानव-समाज की एक विशेषता है। मानव-चेतना और साहित्य में पूर्ण परिवर्तनशीलता की संभावना को स्वीकार करने पर इतिहास-लेखन असंभव होगा और परिवर्तनों के अभाव में इतिहास-लेखन भी निरर्थक।

आज भी दर्शन अथवा मनोविज्ञान के स्तर पर यह शोध का विषय है कि साहित्य में कोई ऐसा परिवर्तन होता है जो अतीत और भविष्य से पूर्णता अलग हो? रचनात्मक प्रवृत्तियों, चिंतनधाराओं, सौंदर्यबोधीय मूल्यों और साहित्य-मूल्यों की विकासशील परंपरा में परिवर्तन और निरंतरता का द्वंद्वात्मक गतिशील सम्बध होता है। हर नया आंदोलन अतीत से मुक्ति की बात करता हुआ भी नया होने के बावजूद इतना नया नहीं होता कि अतीत से उसका कोई संबंध ही न हो। नवीन विचारों को जन्म देने के लिए विषय अथवा समस्या से संबंधित सभी आंकड़ों को पहले अच्छी तरह चिंतन के स्तर पर खोजा जाना चाहिए और फिर समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए उन आंकड़ों को वैचारिक व्यवस्था के अंतर्गत व्यवस्थित किया जाना चाहिए। नवीन विचारों से ही उत्साह अभिरुचि और मनोभावों की आग से समाज को प्रज्ज्वलित किया जाता है। उत्साह और अभिरुचि कार्य करने की आकांक्षा को तीव्र बनाए रखते हैं जिससे परिवर्तन की चाहत अग्नि के ताप को और तीव्र कर देती है।

साहित्य और कला के इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद निरंतरता के कारण होते हैं-मानव-चेतना और मानव-स्वभाव की निरंतरता; मानव-समाज की निरंतरता ही साहित्य की परंपरा का सम्बन्ध सामाजिक परंपराओं स्थापित करती है और भाषा की परंपरा से सामाजिक

जीवन, जीवनानुभव और भाषा का गतिशील संबंध को साहित्य में परिवर्तन और निरंतरता की संबद्धता का कारक बनाती है।

साहित्य के इतिहास में अभिनव प्रयोगों की विशिष्टता का महत्त्व और समस्या के बावजूद निरंतर गतिशील परंपरा के अंतर्गत घटित होने वाले परिवर्तनों का स्वरूप है। केवल रूप संबंधी-प्रयोग ही विचारणीय नहीं होता, वस्तु संबंधी प्रयोगों का स्वरूप भी विचारणीय होता है। समाज और साहित्य के इतिहास में वर्तमान का विचारधारात्मक संघर्ष वर्तमान और भविष्य के लिए ही नहीं होता, वह अतीत की रक्षा के लिए भी होता है। साहित्य के इतिहास में अतीत की प्रगतिशील परंपरा के लिए संघर्ष एक ओर वर्तमान संघर्ष का अंग होता है तो दूसरी ओर अतीत की रक्षा के लिए संघर्ष होता है। यह तो प्राय: सभी मानते हैं कि साहित्य का इतिहास और साहित्य के अनुशीलन की ऐतिहासिक पद्धति दोनों एक ही नहीं हैं। किसी रचना की ऐतिहासिकता रचना से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों का कुल योग मात्र नहीं हैं बल्कि ऐतिहासिकता ऐतिहासिक कल्पना-शक्ति से निर्मित एक मूल्य है जिससे रचना का मूल्यांकन होता है।

अतीत की रचनाओं के वर्तमान अनुभव की व्याख्या समायोजन ही साहित्य का इतिहास है। अतीत की रचनाओं को वे इतिहास-प्रक्रिया के अंग के रूप में देखने-परखने का आग्रह करते हैं। साहित्येतिहास को ऐतिहासिक आलोचना से स्वतंत्र एक बौद्धिक अनुशासन के रूप में विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि रचना रचनात्मक प्रवृत्तियों और कलात्मक बोध के उदय तथा द्वंद्वात्मक विकास को एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में विवेचित किया जाए तथा इस विकास-प्रक्रिया को प्रभावित करनेवाले ऐतिहासिक यथार्थ से विकास प्रक्रिया के संबंध की व्याख्या भी की जाए। इस विकास प्रक्रिया से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण और प्रभाव की व्याख्या करना भी इतिहासकार का काम है। इसके लिए निश्चय ही रचना और रचनाकार से संबंधित तिथियों और तथ्यों का अनुसंधान करना होगा लेकिन, रचना का मूल्यांकन करनेवाली आलोचना-दृष्टि के पीछे वर्तमान की कला-चेतना की सक्रियता आवश्यक है। अतीत की रचनाओं की वर्तमान में प्रासंगिकता, वर्तमान की कला-चेतना और सामाजिक-चेतना से निर्धारित होती है। इसके सत्यापन के लिए विचारों की पूरी प्रक्रिया का संशोधन आवश्यक है, यही विचारों की प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है अब वह विचार चाहे साहित्य हो, संस्कृति हो अथवा भौगोलिक। वांछित विचार अथवा समाधान प्राप्त कर लेना ही लक्ष्य नहीं होता बल्कि विचारों को उपयुक्त तरीके से प्रस्तुत करना और सत्यापित करना भी उतना ही आवश्यक होता है। समस्या जितनी बड़ी और जटिल होती है उसके हल के लिए उतना ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है। महान सफलताओं की प्राप्ति के लिए प्रतिभा के साथ-साथ एक चौथाई प्रेरणा और तीन चौथाई परिश्रम का अमूल्य योगदान होता है।

साहित्य का इतिहास मनोवैज्ञानिक तथा वैचारिक अवधारणा है जो ब्रह्मांड के दिशा और दशा दोनों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में पूर्णत: सक्षम है और मानव जीवन से संबंधित प्रत्येक प्रश्नों के उत्तर ढूंढने में भी पूर्णत: सक्षम एवं पारंगत है। ऐतिहासिक कल्पना की सर्जनात्मक क्रियाशीलता से निर्मित ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि और मूल्य दृष्टि के अभाव में रचना के आलोचनात्मक विश्लेषण-मूल्यांकन के बिना इतिहास अगर पुरातात्विक चिंतन बन जायेगा तो रचना और रचनाकार से संबंधित तथ्यों के विवेकपूर्ण अनुसंधान के बिना इतिहास ऐतिहासिक आलोचना का पर्याय हो जायेगा।

यही ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मक चेतना के संयोग के कारण रामचंद्र शुक्ल का इतिहास एक 'क्लासिक' कृति है; जबकि ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मकता के सामंजस्य के अभाव के कारण हिन्दी साहित्य के अनेक दूसरे इतिहासों में इतिहास और आलोचना का पार्थक्य स्पष्ट देखा जा सकता है। पृथक्करण की इसी सीमा रेखा के अंतर्गत समाहित होने वाले विचारों और विषयों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। चूँकि, इतिहास मूलतः मूल्यांकनपरक होता है। विचारणीय है कि अतीत की रचनाओं का मूल्यांकन अतीत के अनुभव के आधार पर किया जाए या वर्तमान के अनुभव के आधार पर ?

सोच लो समझ ही समस्या है और समाधान भी जहां से समस्याओं का जन्म होता है ठीक उसी आरंभ बिंदु से समाधान का भी अस्तित्व प्रकट होता है क्योंकि समस्याएं वैचारिक होती हैं इसलिए समस्याओं का समाधान भी वैचारिक ही होना चाहिए। समाधान विचारों के द्वारा ही संभव हो सकता है यदि जीवन एक समस्या है तो समाधान भी जीवन में ही संभव है। यही कारण है कि प्रत्येक रचना का मूल्यांकन रचनाकालीन संदर्भ को ध्यान में रखकर तो करना ही चाहिए परंतु समकालीन संदर्भों से भी उसे अलग नहीं रखा जा सकता। इतिहास का उद्देश्य तभी सिद्ध होता है जब इन दोनों बिंदुओं पर विचार समय सापेक्ष किया जाए। साहित्य का इतिहास वर्तमान की चेतना के परिप्रेक्ष्य में अतीत की सार्थकता की व्याख्या है वहीं वर्तमान के लिए सबसे उपयोगी विकल्प।

निश्चय ही साहित्य के इतिहास-लेखन में अतीत को ठीक से समझने के लिए वर्तमान की सही समझ अत्यंत जरूरी है, क्योंकि वर्तमान समाज से समकालीन समाज के आवश्यक और अंतर्निहित प्रश्नों से प्रश्नों के उत्तर दिए जा सकते हैं। साहित्य के इतिहास को भी दोनों दृष्टियों से समझना जरूरी है; दूरवर्ती अतीत की दृष्टि से और निकटवर्ती वर्तमान की दृष्टि से।

साहित्य के इतिहास-लेखन के लिए वर्तमान समाज और साहित्य के वास्तविक स्वरूप का बोध आवश्यक है अन्यथा इतिहास-लेखन के नाम पर अतीत के लिए अतीत की साधना मात्र होगी।

इन्हीं मौलिक प्रश्नों से इतिहास बोध अतीत के इतिहास बोध और वर्तमान दोनों को समझने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है ताकि समकालीन चेतना से शून्यता खत्म हो जाए और इतिहास केवल पुरातात्त्विक लेखन न हो। इन्हीं दो प्रमुख कारकों के मध्य सेतु निर्माण सार्थक दृष्टिकोण उत्पन्न करेगी जिससे समस्त युवा पीढ़ी को परिचित होना चाहिए।

पत्रिका को प्राप्त होने वाली समस्त रचनाओं का समावेश सम्भव नहीं है। यथायोग्य, यथास्थान हम रचनाओं को समाहित करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु कुछ न कुछ छूट ही जाता है। पृष्ठों की भी सीमा होती है और समायोजन की भी। आपका सकारात्मक एवं रचनात्मक सहयोग ही हमारे लिए प्राणवायु है और हमें आशा है कि यह हमें निरन्तर प्राप्त होती रहेगी। इति।

-डॉ. आशीष कंधवे
+91-9811184393

नई दिल्ली

भारतीय संस्कृति में शंकरदेव का भक्ति आंदोलन

—डॉ. नवकान्त दास
—प्रांजल कुमार नाथ

शंकरदेव ने असम तथा उत्तरपूर्व में एक ऐसे संप्रदाय की कल्पना की जिसमें समाज के सभी वर्गों को एक साथ आगे ले जाया सके और असम तथा भारत में एकता की शक्ति से सभी शक्तिमान हो उठे। जिसके लिए शंकरदेव ने हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सबको उस परम सत्य भगवान का ही अंश माना है। मनुष्य की बात तो अलग है शंकरदेव ने पेड़-पौधे, पतंग, पक्षी तथा सभी जड़-जीव आदि में भी भगवान के उस असीम रूपों की ही कल्पना किया।

असमीया संस्कृति तथा साहित्य शंकरदेव के बिना अपूर्ण है। शंकरदेव के समय में असम तथा उत्तर-पूर्व अंधकार के दल-दल में फँसे हुए थे। उन्होंने 'एक शरण नाम धर्म' के द्वारा लोगों को अपनी धर्म की ओर आकर्षित कर सभी को उस दल-दल से निकालने का प्रयास किया। उन्होंने बारह वर्ष सम्पूर्ण भारत भ्रमण करके भारतीय संस्कृति के साथ असम तथा उत्तर पूर्व को जोड़ा। शंकरदेव ने धर्म और कला के एकत्रीकरण द्वारा सही अर्थों में मानव जीवन को स्वच्छ और शृंखल बनाने की कोशिश की। जिसके तहत एक उन्नयनशील और संस्कृति सम्पन्न समाज गढ़ने में उन्हें सफलता की प्राप्ति हुई, जो भारतीय एकता के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

महापुरुष शंकरदेव ने अपने प्रतिभा और साहित्य द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को असम तथा उत्तर-पूर्व तक स्थापित किया। उन्होंने भक्ति आंदोलन की जिस धारा को उत्तर-पूर्व में प्रवाहित किया, वह मूलतः शंकरचार्य से प्रभावित था। जो अद्वैतवादी धर्म से संबन्धित होने के बावजूद भी संस्कृति दर्शन मूल्यों की बाहुल्यता को दर्शाने वाला था । साथ ही साथ असम में सबसे पहले हिन्दी से लोगों को परिचय कराने का काम भी शंकरदेव के द्वारा ही हुआ, ऐसा बहुत सारे शोध कर्ताओं का मानना हैं। इसके अलावा भारतीय गणतन्त्र और असम के लोगों को वैष्णव मठों की संकल्पना से भी परिचय कराने की जिम्मा शंकरदेव ने अपने हाथ में लिया था । शंकरदेव द्वारा स्थापित सत्रीया नृत्य और बरगीतों ने आज विश्व भर में प्रसिद्धि लाभ की है। जो भारत के लिए गौरव की बात है। उनके भक्ति-दर्शन असम के लोगों को आध्यात्मिक उत्कर्ष साधने के साथ-साथ कला के साधन में भी लोगों को आकृष्ट कराते है। स्वाधीन सोच को अपने मन में लेकर चलनेवाले असमीया समाज को "धन्य धन्य भारत बरिष" कहकर तत्कालीन समय में ही राष्ट्रीयतावाद की शिक्षा देनेवाले शंकरदेव के अवदान भारतीय संस्कृति में बहुत ही प्रभावपूर्ण हैं।

बीज शब्द : संस्कृति, धर्म, आंदोलन, भक्ति, समाज, वैष्णव, राष्ट्रीयतावाद

भूमिका :

असम में नव-वैष्णव धर्म के प्रचारक महापुरुष श्री मंत शंकरदेव का जन्म अक्टूबर 1449 ई. में असम के नगाँव जिला, बरदोवा के आलिपुखुरी में हुआ था। उनका आविर्भाव ऐसे संकटकालीन समय में हुआ था, जिस समय असम सभी दृष्टियों से अंधकार में ग्रासित थे।

राजनैतिक क्षेत्र में न ही उस समय शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता थी और न ही उस समय के तत्कालीन राजाओं अथवा सामंतों में आंतरिक सहानुभूति थी। उस समय केवल आहोम और कोच ही ऐसे दो समुदाय थे जिनके राजनैतिक बुनियाद स्थिर थे। पर दोनों संप्रदायों में प्राय: संघर्ष हुआ करते थे।

धर्म के नाम पर तत्कालीन समाज में केवल विशृंखलताएँ थीं। देवी-देवताओं की पूजा, बलि-विधान, देवदासियों का नृत्य तथा दूसरी ओर वामाचारी, तांत्रिकों की तंत्र-मंत्र का बोलबाला था। सभी जाति-जनजातियों में पूजा की अलग-अलग पद्धतियाँ थीं। सबके अलग-अलग रीति-रिवाज भी। शैव और शाक्तों में तंत्र-मंत्र का प्रभाव था। कुसंस्कार, अंधविश्वास तथा व्यभिचार आदि ने समाज में अधिकार जमा लिया था तथा लोगों में आध्यात्मिक मूल्यों और नैतिक आदर्शों का दिया बुझ गया था। ऐसे समय में शंकरदेव ने अपनी भक्ति आंदोलन के द्वारा पूरे असम को एक साथ आगे ले जाने की कसम खाई । उनके आगमन से समाज में एक क्रांति की बाढ़ सी आ गयी और लोग नये तरीके से सोचने-विचारने पर मजबूर होने लगे थे।

सामाजिक दृष्टि से भी उस समय के भिन्न जाति-जनजातियों के सभी संप्रदायों में परस्पर विरोधी मान्यताएँ अधिक प्रचलित होने लगे थे। अर्थ-सामाजिक दृष्टि से दास, किसान, मजदूर, बंधुवा का स्थिति भी बड़ी ही दयनीय थी। ब्राह्मण, कायस्थ आदि हिन्दू के साथ कोच, राभा, कछारी, मिरी, मिचिंग जैसे निम्न जाति के लोगों में मेल-मिलाप का अभाव था। हिन्दू, मुस्लिम की बात तो अलग ही थी। ऊँच-नीच, जात-पात, शिक्षा, जीवन जीने की तरीका आदि कारणों से सभी जातियों में सहयोगिताओं का अभाव था।

शंकरदेव ने 15 वीं शताब्दी में असम में वैष्णव धर्म का प्रचार किया और जिसके लिए उन्होंने शंकरचार्य द्वारा आठवीं शताब्दी में स्थापित अद्वैतवाद दर्शन को अपनाया। शंकरदेव ने अद्वैत वेदान्त दर्शन को आधार मानकर भगवत-महापुराण के इस दर्शन के द्वारा अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। जिस दर्शन के अनुसार आत्मा और परमात्मा द्वैत अलग-अलग नहीं है। यथा -

'एक ब्रह्म आछे सर्वदेहत प्रकटे। जेन एक आकाश प्रत्येक घटे घटे॥
जलत सूर्यक जे देखि भीन भीन। एहि मते जनिबा ब्रह्मतो भेदहीन॥'[1]

(भावार्थ : प्रत्येक जीवों में उस परम ब्रह्म निवास करते हैं। अर्थात आत्मा और परमात्मा एक ही है। जिसका रूप तो अलग-अलग हैं, पर मूल सिर्फ उस परमब्रहम से ही जुड़ा हुआ है।)

धर्म प्रचार को मूल में रखकर उन्होंने संगीत कला, चित्रकला, ललित कला, स्थापत्य कला आदि का भी उत्कर्ष किया। कला की साधना द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को नए जीवन-शैली और उन्नत सामाजिक दर्शन मिले इसी कारण शंकरदेव ने धर्म और कला दोनों को मिश्रित कर दिया था। इस बात ने लोगों के मन को आह्लादित करते हुए एक नई दृष्टि के लिए उम्मीद की दिया जलाया।

शंकरदेव का भक्ति आंदोलन और भारतीय संस्कृति :

भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन का एक विशेष महत्व रहा है। इस आंदोलन ने न केवल हिन्दी क्षेत्रों को प्रभावित किया बल्कि पूरे भारतवर्ष के दूसरे अहिंदी प्रान्तों को भी प्रभावित किया था। इसके संचालन का दायित्व असम तथा उत्तरपूर्व में शंकरदेव ने अपने हाथों में लिया।

सर्व-भारतीय भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि के आधार पर ही शंकरदेव ने असम में 'नव-वैष्णव' धर्म का स्थापन किया। सम्पूर्ण बारह वर्षों तक पूरे भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थ स्थानों का दर्शन करने के बाद साधु-संतों से मिलकर जो अभिज्ञताएँ प्राप्त किए थे उसी की बृहद उपलब्धि उनके द्वारा प्रचारित 'एक शरण नाम धर्म' है।

समाज के सभी वर्गों सहित पिछड़े, निम्नवर्ग के लोगों को भी आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाने के लिए शंकरदेव सदा प्रयत्नशील रहे थे। उनके वैष्णव संप्रदाय का मूल आधार श्रीमद्भगवत है। श्रीमद्भगवत को ही आधार मानकर उन्होंने पूर्वोत्तर में एक धार्मिक क्रांति पैदा की थी। शंकरदेव से पहले भी यहाँ धार्मिक क्षेत्रों में शैव, शाक्त, बौद्ध आदि अनेक संप्रदायों का उदय हुआ था और उस समय प्रत्येक संप्रदाय खुद को श्रेष्ठ सिद्ध करने के उद्देश्य से दूसरों को नीचा दिखाने में ही व्यस्त थे। दूसरी ओर शक्ति की उपासना करनेवाले लोग भी पूजा-पाठ, यज्ञ, बलि-विधान आदि में मत्त थे। पूरे भारतवर्ष के साथ-साथ असम के लोगों में भी धर्म के प्रति श्रद्धा अथवा भक्ति के स्थान पर ढोंग तथा बाहरी क्रिया-कलाप आदि ने घर बना लिया था। उस समय लोगों को लोभ दिखाकर, तंत्र-मंत्र द्वारा अथवा डरा-धमकाकर धर्म परिवर्तन कराया जाता था। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों को घृणा की नजर से देखते थे। शंकरदेव ने 'एक शरण नाम धर्म' का प्रवर्तन करके समाज में एक युगांतकारी परिवर्तन की सूचना दी थी। उस समय उन्होंने असमीया समाज में प्रचलित बहु-देव उपासना पद्धति, पूजा-पाठ, कर्मकांड, जप-तप, यज्ञ आदि के स्थान पर केवल एक ईश्वर उपासना पद्धति की प्रतिष्ठा की। शंकरदेव ने अनेक देवी-देवताओं को पूजने की विपरीत केवल उस परमब्रहम भगवान को पूजने का सलाह दिया। जिस तरह से सिर्फ पेड़ के मूल में पानी डालने से पूरे पेड़ को ही पानी मिलता है, ठीक उसी प्रकार उस भगवान कृष्ण की पूजा करने से अन्य सभी देव-देवता संतुष्ट हो जाते हैं। मूल रूप से ईश्वर के साकार अवतरणवाद को स्वीकार करते हुए शंकरदेव मूर्ति विहीन एक ईश्वर की उपासना पर जोर देते हैं।

असल में शंकरदेव मूलतः चिंताविद थे। दार्शनिक पद्धति से ज्यादा वे व्यक्तिगत जीवन शृंखला के ऊपर ही अधिक महत्व देते थे और इसलिए उनके दर्शन नैतिक मूल्य प्रधान है। लोगों में ज्ञान के प्रसार को बढ़ाने के लिए नामघरों में पोथी की पाठ कराके तत्कालीन समय में ही वे वृद्ध लोगों के बीच ज्ञान तथा शिक्षा का प्रसार कर रहे थे। शंकरदेव ने समझाया कि संसार के सभी धर्म के लोगों के प्रति हमें सद्भाव रखना चाहिए। उन्होंने अपने संप्रदाय में ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक को स्थान दिया था। उनके इस चिंतन में भारत की अनेकता में एकता का संदेश मिल जाता है। शंकरदेव के भक्ति आंदोलन की सबसे खास बात यह थी की उन्होंने किसी भी धर्म की परंपरा को नीचा नहीं दिखाया और न ही खुद के द्वारा बनाए गए धर्म को ऊँचा सिद्ध करने की कोशिश की। शंकरी संस्कृति तथा आदर्शों के प्रति लोग अनायास ही आकर्षित होते चले गए थे।

महत्वपूर्ण है, कि शंकरदेव ने अपनी भक्तों की परंपरा में एक मुसलमान भक्त को भी साथ लेकर फिरते थे। इससे उनके उदारता और सहृदयता का उदाहरण भी मिल जाता है। दरअसल शंकरदेव ने जातिभेद को समाज के लिए नकारात्मक शक्ति माना था। जो लोगों में ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शुद्र आदि का भेद रखते हैं, उनलोगों को उन्होंने कड़ी से कड़ी निंदा की है। ऊँच-नीच की दीवार को तोड़कर सामाजिक समानता की प्रतिष्ठा करने में शंकरदेव हमेशा प्रयत्नशील रहे। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

किरात कछारी खाचि गारो मिरी यवन कंक गोवाल।
असम मलूक धोवा ये तुरुक कुबच म्लेच्छ चंदाल॥
आनो पापी नर कृष्ण सेवकर संगत पवित्र हय।
भकति लभिया संसार तरिया बैकुंठ सूखे चलय॥[2]

(भावार्थ : शंकर के अनुसार लोग किरात, कछारी, ख़ासी, गारो आदि किसी भी संप्रदाय से हो भक्ति ही सबका उद्धारक हैं । भगवान की भक्ति से लोगों को बैकुंठ सुख मिलता है। भक्ति से बढ़कर संसार में और कुछ भी नहीं है।)

शंकरदेव ने असम तथा उत्तरपूर्व में एक ऐसे संप्रदाय की कल्पना की जिसमें समाज के सभी वर्गों को एक साथ आगे ले जाया सके और असम तथा भारत में एकता की शक्ति से सभी शक्तिमान हो उठे। जिसके लिए शंकरदेव ने हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सबको उस परम सत्य भगवान का ही अंश माना है। मनुष्य की बात तो अलग है शंकरदेव ने पेड़-पौधे, पतंग, पक्षी तथा सभी जड़-जीव आदि में भी भगवान के उस असीम रूपों की ही कल्पना किया-

'यत जीव जंगम किट पतंगम अग नग जग तेरी काया।
सबकहु मारि पूरत उहि उदर नाही करतू भूतदाया॥[3]

(भावार्थ : संसार की हर एक चीज उस परमब्रहम का ही अंश है। सभी जीवों-जड़ों तथा प्रत्येक चीजों के कण-कण में आत्मा के रूप से ही वह परमब्रह्म विराजमान है। ईश्वर ही कार्य है और कारण भी।)

इस प्रकार की धार्मिक उदारता के कारण ही माधवदेव जैसे वाक-पटु शाक्त को भी उन्होंने अपना मतादर्श परिवर्तन करने के लिए विवश कर दिया था और बाद में वही शंकरदेव के प्रधान और प्रिय शिष्य भी बना। 'एकशरण नाम धर्म' के प्रचार-प्रसार में मधावदेव का भी योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है।

शंकरदेव ने अपनी भक्ति के प्रसार में साहित्य और कला को बहाना बनाया। उनका साहित्य मानवतावादी चिंतन के साथ सांस्कृतिक उत्कर्ष का भी साधन हैं। साधारण लोगों के चिंतन को उच्च बनाना, उनके दिलों में भाईचारा भावों को पैदा करना आदि उनके धर्म की सबसे बड़ी बात थी जिसे उन्होंने अपने साहित्य में लिपिबद्ध किया। वे धार्मिक शुद्धिकरण से ज्यादा नैतिक तथा मन के शुद्धिकरण को महत्व देते थे। उनके साहित्य लोगों को अपनी ओर खींच रहे थे। शंकरदेव ने संस्कृत के क्लिष्ट भाषा से भगवद तथा अन्य भक्ति परक ग्रन्थों का अनुवाद ब्रजबूली (ब्रजावली) भाषा में करके विषय को लोगों के लिए और अधिक सहज और बोधगम्य बनाया। इसके साथ-साथ हिन्दी से भी असमीया लोगों को परिचय करा दिये।

असल में शंकरदेव ने धर्म को कला के रूप में मानते हुये काव्य, नाटक, बरगीत, टोटय, भटिमा, नाम-प्रसंग आदि की रचना की थी। यद्यपि अपनी भक्ति का ही प्रचार करना उनका मूल उद्देश्य था लेकिन वे अपने मूल लक्ष्य को साथ में लेकर कला के साधना द्वारा समाज के सभी लोगों को उसमें भी आह्लादित कराते गए थे।

विश्वायन के इस समय में किसी भी देश को आगे बढ़ने के लिए अर्थ की जरूरत होती है। शंकरदेव ने केवल घर में बैठकर भगवान के उपासना में ही जीवन व्यतीत करने के लिए लोगों को सलाह नहीं दिया था। वे लोगों को मर्यादा के साथ जीवित रहने के लिए कर्म-संस्कृति के ऊपर भी महत्व देने की सलाह दिये थे। अपने नाटकों के लिए उस समय में ही मुखौटा, कपड़े आदि बनाने के लिए मुख-शिल्पी, दर्जी, तथा कुम्हार, कहार आदि को शिल्पी की मर्यादा देकर जीवन जीने का भी तरीका सिखा रहे थे। जिससे उन लोगों की अर्थनैतिक बुनियाद भी मजबूत होती थी और उन्हें कलाकार मर्यादा भी प्राप्त होता था। शंकरदेव का साहित्य, शंकरदेव की सोच असमीया समाज के लिए, असम के लिए बहुत ही प्रेरणास्पद है। साहित्य के साथ-साथ नाटकों में अभिनय, नृत्य-गीतों का प्रदर्शन, वाद्य-यंत्रों को बजाने की कला और चित्रों के अंकन आदि द्वारा अधर्मी और बुरे लोगों की सोच में बदलाव लाकर एक परिवर्तनकामी समाज गढ़ना उनका लक्ष्य बन गया था। शंकरदेव ने अपने प्रिय शिष्य माधवदेव और बारह कला-कौशलों के साथ कपास और रेशम के धागे से जिस भारत गौरव 'बृंदावनी वस्त्र' को तैयार किया वह शंकरदेव की सृजनशीलता का अपूर्व निदर्शन है। जिस वस्त्र में श्री कृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध तक की समस्त घटना को चित्रित किया गया है।

तत्कालीन समय में लोगों के बीच धर्म के नाम पर जो अनेक राहें थीं उन सबको एक साथ लेकर विशुद्ध रूप से आगे ले जाने का एक सफल प्रयास शंकरदेव के भक्ति आंदोलन में है। भक्ति के लिए शंकरदेव ने एक सहज, सरल उपासना पद्धति की प्रतिष्ठा करके नाम, देव, गुरु और भक्त इन चार तत्वों को उन्होंने प्रमुखता दी है।

इसके अलावा शंकरदेव ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु नामघर, सत्र आदि का भी निर्माण किया था। जो वर्तमान समय में उत्तर-पूर्व की सामाजिक, धार्मिक, संस्कृति केंद्र का मूल हैं। शंकरदेव के सत्र को मध्य युग के बौद्ध-संघ (Buddhist Monastery) के साथ तुलना की जा सकती है। नामघर और सत्र दोनों ही वर्तमान युगों की जातिय एकता और उन्नयन का केंद्रस्थल है। इन सत्रों पर अनेक विदेशी तथा भारतीय पंडितों ने शोध भी किए हैं। नामघर और सत्र की विशेषता यह है कि इसमें समानता की भावना बनी रहती है। जहाँ पर कोई किसी के लिए थोड़ा सा भी भेदभाव नहीं रखता। दूसरी ओर सत्र में लोगों को भक्त की स्वीकृति दी जाती है चाहे वे किसी भी संप्रदाय से हों कोई फर्क नहीं पड़ता। इस संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि शंकरदेव द्वारा संस्थापित किए गये सत्रीया नृत्य वर्तमान भारत के आठ प्रमुख शास्त्रीय नृत्य परम्पराओं में से एक है। जिसे शंकरदेव ने लोगों को धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए सत्रों में प्रदर्शन किए थे।

शंकरदेव के भक्ति आंदोलन की एक और प्रमुख विशेषता यह थी कि वे क्रिया बहुल साधना के स्थान पर केवल सामान्य रूप से शुद्ध मन से श्रवण-कीर्तन करने को प्रमुखता देते थे। क्योंकि

किसी के भी माँ-बाप अपने बच्चों को हिंसा नहीं करने देते उनको बस अपने बच्चों से प्यार ही होता है। शंकरदेव ने भी उस परमब्रह्म को पिता-माता मानकर कीर्तन में लिखा है-

'तुमि जगतर गति मति पितामाता॥'[4]

शंकरी संस्कृति के इस साधना में भाग लेने पर पुरुषों के साथ-साथ महिला को भी सम-अधिकार प्राप्त होता था। महिलाओं को ऊँचा दर्जा देते हुये शंकरदेव ने नामघरों में नारी और पुरुष दोनों के ही द्वारा नाम-प्रसंग करना, पोथी पढ़ना, आदि अधिकार तत्कालीन समय में ही दिया था, जो आज भी दूसरे धर्मों में बहुत कम ही नजर आते हैं। यह उत्तर-पूर्व की संस्कृति है कि कुछ संप्रदायों में अभी भी नारी ही घर के प्रमुख हैं।

उस समय में धर्म के नाम पर जो स्वार्थी लोग ब्राह्मण-पंडित आदि का बहाना बनाकर गरीबों को लूट रहे थे, भक्ति के मार्ग को कठिन बता रहे थे। उन सभी भ्रष्टाचारों को शंकरदेव ने खुलेआम विरोध कर 'एक शरण नाम धर्म' के द्वारा लोगों को कुसंस्कार और पारंपरिक सोच से मुक्ति की राह दिखायी। उन्होंने तीर्थ, उपवास, जप-तप, भोग आदि को असार्थक सिद्ध करते हुए कहा -

'तीरथ बरत तप जप भाग योग सुगति। मंत्र परम धरम करम करत गही मुकुति॥'[5]

(भावार्थ : ईश्वर को पाने के लिए तप-जप, उपासना से बढ़कर बस भगवान का नाम उच्चारण ही काफी है। ईश्वर का नाम उच्चारण करके कर्म करते रहने पर ही लोगों को मुक्ति मिलती है।)

दरअसल शंकरी संस्कृति में वाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, यज्ञ, हिंसा, बलि-विधान तथा ऊँच-नीच तथा घृणा-द्वेष की भावनाओं का घोर विरोध है। उनके भक्ति आंदोलन का उद्‌देश्य केवल लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना नहीं था बल्कि समाज में धार्मिक तथा सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाना था, एक क्रांति पैदा करना था। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह है कि, उस समय बलि-विधान के नाम पर निरीह जीवों की हत्या की गयी थी। उन जीवों की बलि चढ़ाकर ये लोग एक पाशविक सुख का अनुभव करते थे। प्रचलित है कि एक समय था जब यहाँ लोग अपनी मंगल कामना करते हुये जीव-जंतुओं के साथ-साथ मनुष्य की भी बालि चढ़ाते थे। शंकरदेव ने इन सबका विरोध किया था। उनके अनुसार सभी जीवों में भगवान निवास करता है और निरीह जीवों की हत्या उचित नहीं, पाप है। इनके संप्रदाय में इन सब का विरोध है। इस प्रकार के धार्मिक विरोधताओं के कारण शंकरदेव को अपने ही समाज से लांछना सहनी पड़ी थी। माधवदेव तो इस बात पर क्रोधित होकर उनसे मिलने आए थे। पर शंकर के आदर्श और युक्ति के सामने पराभूत होकर हमेशा के लिए वैष्णव बन कर रह गए। शंकरदेव के धर्म में जिस प्रकार के समाज सुधार की भावना है वह कबीर से मिलती-जुलती है।

दरअसल धर्म एक संस्कृति सम्पन्न कार्यावली है जो मानवीय अभिज्ञता और मानव मूल्यों को प्रोत्साहित करता है। शंकरदेव धर्म को कला के रूप में देखते थे। क्योंकि ये मनुष्य को अच्छे और उन्नत जीवन निर्वाह करने के लिए राह दिखाते हैं। शंकरदेव के भक्ति आंदोलन ने समाज में अस्पृश्यताओं का निवारण किया, साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रमूल्यों के उत्कर्ष साधन की, आध्यात्मिक-नैतिक आदि क्षेत्रों में उदारता के साथ-साथ अपने कर्मो में खुद को प्रतिष्ठित कराते हुए सत्यता के निर्वाह की राह दिखायी। शंकरदेव ने मानव को पशु से भिन्न मानकर सामाजिक

मर्यादासम्पन्न प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित कराया। तत्कालीन समिश्रित जाति प्रणाली के कारण समाज में फैले जात-पात के भेदभाव, कृषक, मजदूर, सैनिक, नारी तथा सभी जनगन की असंतोषजन्य स्थिति को सुधारकर सबके लिए सम-भाव सम्पन्न धार्मिक-सांस्कृतिक आदर्शों का स्थापना किया।

उनके द्वारा स्थापित कला आदि जिस तरह लोगों को आनंद देती है, ठीक उसी प्रकार लोगों में सद्भाव और सामाजिक न्याय की व्यवस्था का भी निर्माण करती है। साथ ही साथ समाज संस्कार के रीति-रिवाजों के साथ, आध्यात्मिक चिंता और शिक्षा से भी प्रत्यक्ष संबंध कराती है । शंकरदेव ने लोगों को यह समझाया कि धर्म व्यवसाय के लिए नहीं है, न ही अपने पांडित्य की प्रदर्शन के लिए, अथवा दूसरों को सताने के लिए है, अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष द्वारा लोगों की मंगल साधना ही सही अर्थ में असली धर्म है। जिसके लिए उन्होंने एक ही ईश्वर की उपासना पद्धति को प्रमुखता दिया। उन्होंने लोगों को शिक्षा, संस्कृति, सद्भाव, प्रेम आदि की शिक्षा दी। उनकी प्रशंसा जितनी की जाय कम ही है। इसलिए उनके बारे में उनके शिष्य माधवदेव ने लिखा है-

'जय गुरु शंकर सर्व गुणाकार जाकेरी नाहिके उपमा।'[6]

निष्कर्ष :

शंकरदेव के भक्ति आंदोलन का उद्देश्य था समाज के सभी लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान कर अंधेरे से उजाले की ओर, असत से सत की ओर तथा माया से मोक्ष की ओर ले जाना। उन्होंने इस उत्तरदायित्व को बखूबी निभाया और समाज को एक नयी राह दिखायी। आडंबर, बाहरी उपासना पद्धति के स्थान पर एक ईश्वर की उपासना तथा भक्ति के कठिन मार्ग के विपरीत एक सहज, सुगम मार्ग का निर्माण शंकरदेव ने तत्कालीन समय में किया।

उन्होंने अपने भक्ति आंदोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति को असम के साथ जोड़कर अव्यवस्थित और अशृंखलित समाज व्यवस्था में सुधार लाकर सम्पूर्ण उत्तरपूर्वांचल तक को भारत महिमा तथा गौरव का संदेश दिया। उनके 'एक शरण नाम धर्म' ने प्रतिकूल परिस्थितियों में अनेक चुनौतियों का सामना कर पूरे भारत के साथ-साथ असम में जिस 'नव-वैष्णव' आन्दोलन का प्रचार-प्रसार किया वह सही अर्थों में काबिलेतारीफ है।

संदर्भ :

1. चलिहा, भवप्रसाद, (सं.) : शंकरी संस्कृति अध्ययन, गुवाहाटी : श्रीमंत शंकरदेव संघ, 1999, पृ. 15।
2. हाजरिका, सूर्य : श्रीमंत शंकरदेव वाक्यामृत, गुवाहाटी : बाणी मंदिर, 2014, पृ. 225।
3. महंत, वापचन्द, (सं.) : बरगीत, स्टूडेंट्स स्टोर्स कॉलेज हॉस्टल रोड, गुवाहाटी, 1992, पृ. 67।
4. मेधी, कालिराम, (सं.) : महापुरुष शंकरदेवर वाणी, लायर्छ बुक स्टाल, गुवाहाटी, 1997, पृ. 2।
5. भट्टाचार्य, पराग कुमार : प्रेमधर्म आरू वैष्णव काव्य, गुवाहाटी : चन्द्र प्रकाश, 1997, पृ. 22।
6. एकशरण भागवती समाज : नित्य-प्रसंगर आर्ही, एकशरण भागवती समाज, नगाँव, असम, पाँचवीं प्रकाशन, 2002 पृ. 45।

❑❑❑

---

1. सहायक अध्यापक, रंगापरा महाविद्यालय, शोणितपुर, असम
2. शोध छात्र, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

मनमोहन सहगल के उपन्यासों में संघर्षशील नारी

—डॉ. ब्रह्मलता

उपन्यासकार मनमोहन सहगल एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इन्होंने अपने साहित्य में अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा है। इनके साहित्य में इनका उपन्यासकार रूप विशेष रूप से सराहनीय है। इनके उपन्यासों में पात्र इतने सजीव हो उठते हैं कि पाठक को ऐसा महसूस होने लगता है कि वह स्वयं इन समस्याओं से जूझ रहा है। इनके उपन्यासों के नारी पात्र विशेष रूप से उभर सामने आते हैं। उनका त्याग, संघर्ष, मजबूरी, आत्म समर्पण तथा उनकी दूसरों के लिए कुछ करने की भावना पाठक के दिल को छू लेती है।

संघर्ष ही जीवन है। हमारा जीवन संघर्ष का ही दूसरा नाम है। हमारे जीवन में हर रोज नए-नए संघर्ष आते रहते हैं, मनुष्य निरन्तर इन संघर्षों से जूझता रहता है। जो व्यक्ति इन संघर्षों से दूर भागते रहते हैं, इनका डटकर मुकाबला नहीं करते, वे जीवन में हार जाते हैं। जीवन भी संघर्षों से डरने वाले लोगों का साथ नहीं देता।

संघर्ष के बारे में अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं :

डॉ. चन्दुलाल दुबे के अनुसार -

''अस्तित्व के लिए संघर्ष के अनुसार मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाधाओं से संघर्ष करता है। यह तो मनुष्य का प्राथमिक संघर्ष है।''[1]

गिलिन और गिलिन के अनुसार -

''संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी को हिंसा के भय द्वारा प्रत्यक्ष आह्वान देकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं।''[2]

हमें जीवन में आने वाले संघर्षों से घबराना नहीं चाहिए, बल्कि उनका उत्साह से स्वागत करना चाहिए। हमें बिना संघर्ष किए जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती। कहा भी जाता है कि थाली में परोसा गया खाना भी, बिना संघर्ष के हमारे मुख तक पहुँच कर भूख नहीं मिटा सकता, इसके लिए भी हमें संघर्ष करने की आवश्यकता पड़ती है। बिना परिश्रमपूर्वक संघर्ष के तो जंगल में निवास करने वाले शेर के मुँह में भी मृग अपने आप प्रवेश नहीं करता। वनराज सिंह को भी अपना भोजन प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष करने से व्यक्ति का व्यक्तित्व और भी निखर जाता है। जो व्यक्ति संघर्ष से भागता है वह बिखर कर टूट जाता है। जो व्यक्ति सकारात्मक सोच वाले होते हैं, वो अपने आसपास के वातावरण से संघर्ष करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

हमें नकारात्मक विचारों से अपने आपको दूर रखना चाहिए तथा जीवन में निरन्तर संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए। जो व्यक्ति संघर्ष करते हैं, उन्हीं की गणना महान व्यक्तियों में की जाती है। बिना संघर्ष के कोई भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। आज तक जो भी व्यक्ति महान बने अर्थात् जिन्होंने अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है, वे एकदम से ही इतने ऊँचे स्थान पर नहीं पहुँचे, इसके लिए उन्हें दिन-रात, बिना थके संघर्ष करते रहना पड़ा है।

इस सृष्टि में छोटे से छोटे जीव से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक सभी किसी न किसी रूप में संघर्षरत हैं। जिसने भी अपने जीवन में संघर्ष से नाता तोड़ लिया, वह मृतप्राय हो गया। हमें अपने जीवन में प्रकृति के साथ, परिवार के साथ, स्वयं के साथ, परिस्थतियों के साथ संघर्ष करना पड़ता है।

स्त्री हो या पुरुष सभी को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। हमारा जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। कोई यह नहीं कह सकता कि उसने जीवन में बिना संघर्ष किए कुछ हासिल किया है। अगर हमें अपना जीवन बेहतर ढंग से जीना है, तो हमें संघर्ष अवश्य करना पड़ेगा। हर मनुष्य का जीवन में कोई न कोई लक्ष्य जरूर होता है, लेकिन अगर उस व्यक्ति को लक्ष्य की प्राप्ति करनी है, तो उसे संघर्ष करना पड़ेगा। बहुत से लोग गरीब होते हैं, उनके पास कुछ नहीं होता है, लेकिन वे संघर्ष के बल पर इतने बड़े-बड़े लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

हम सभी को अपने जीवन में संघर्ष करना चाहिए ताकि हमें अपने जीवन में सफलता प्राप्त हो सके।

कुंजी शब्द- संघर्ष, अपेक्षा, पर्याप्त, श्रेष्ठ, औलाद, गृहस्थी, पारिवारिक, विरुद्ध, विद्रोह, घिनौना, घृणा, तहखाना, संगठित।

उपन्यासकार मनमोहन सहगल एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इन्होंने अपने साहित्य में अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा है। इनके साहित्य में इनका उपन्यासकार रूप विशेष रूप से सराहनीय है। इनके उपन्यासों में पात्र इतने सजीव हो उठते हैं कि पाठक को ऐसा महसूस होने लगता है कि वह स्वयं इन समस्याओं से जूझ रहा है। इनके उपन्यासों के नारी पात्र विशेष रूप से उभर सामने आते हैं। उनका त्याग, संघर्ष, मजबूरी, आत्म समर्पण तथा उनकी दूसरों के लिए कुछ करने की भावना पाठक के दिल को छू लेती है। उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने प्राचीन से लेकर आधुनिक नारी तक को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु बनाया है। उन्होंने बताया है कि अगर नारी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की ठान लेती है, तो वह अपना कदम बिना लक्ष्य को प्राप्त किए पीछे नहीं हटाती, चाहे इसके लिए उसे कोई भी कीमत क्यों न अदा करनी पड़े।

सहगल ने नारी के संघर्षशील रूप को विशेष रूप से प्रकट किया है। जिसका चित्रण निम्न प्रकार से है :

प्रेम के लिए संघर्ष -

मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास 'कालासच' में प्रेम के लिए संघर्षशील नारी का चित्रण किया है। राजा रायकरण देव रूप सुन्दरी के सौंदर्य पर मोहित हो जाता है। रूप सुन्दरी चाहकर भी

अपने को राजा के घिनौने कृत्य से नहीं बचा सकी। राजा उसे उसके पति माधव की मृत्यु का भय दिखाकर उसकी अस्मिता को भंग कर देता है। रूप सुन्दरी अपने को अपवित्र मानकर राजा की ही तलवार से अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेती है तथा राजा को शाप देती है कि इनका परिणाम उसे ही नहीं उसके पूरे परिवार व सम्पूर्ण राज्य को भुगतान पड़ेगा। जब माधव को राजा की इस घिनौनी हरकत का पता चलता है तो वह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को पाटण राज्य पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित कर लेता है। इस आक्रमण से पाटण राज्य की आन-बान-शान मिट्टी में मिल जाती है। इसके दूसरी तरफ पाटण रियासत की महारानी कमला देवी इस घिनौने काण्ड में अपने पति को रोकने की बजाय उसे प्रोत्साहित करती है ताकि उसका अपने पति पर एकाधिकार स्थापित रहे। उसे डर है कि कहीं दूसरी शादी के बाद उसे सौतिया डाह से न गुजरना पड़े।

महारानी कमला देवी ने अपने पति का सहज उपचार करते हुए कहना आरम्भ किया-"आप रूप पर आसक्त हो गए हैं, तो समस्या क्या है? जाइए आजकल अकेली ही तो है, एकाध दिन उसके पास रह लीजिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"[3]

इस उपन्यास की इन पंक्तियों में लेखक ने नारी को अपने प्रेम पर एकाधिकार रखने के लिए संघर्षशील दर्शाया है।

अर्थ के लिए संघर्ष -

लेखक के उपन्यास 'किराए की कोख' में लक्ष्मी नामक युवती, जो निर्धन होने के कारण धन कमाने की लालसा रखती है। इसके लिए वह सेरोगेसी पद्धति के द्वारा चोपड़ा परिवार का बच्चा पैदा करने के लिए तैयार हो जाती है। वह धन प्राप्त करने के लिए अपनी ममता का सौदा करने के लिए तैयार हो जाती है। इसी उपन्यास में शिल्पी नामक युवती भी धन कमाने के चक्कर में अपना पारिवारिक जीवन नष्ट कर लेती है। लक्ष्मी निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली नारी है, उसका भी मन चाहता है कि वह भी अपने जीवन को कुछ बेहतर तरीके से जीए, उसकी भी जीवन शैली में कुछ सुधार आए। वह एक बार तो किसी और का बच्चा अपनी कोख में पालने के लिए सहमत नहीं होती, लेकिन अपनी गरीबी भरी ज़िन्दगी के बारे में सोचने लगी तो उसे बच्चा अपनी कोख में पालने वाला प्रस्ताव कुछ भला दिखाई देने लगा। वह अपनी वर्तमान असहाय ज़िन्दगी के बारे में सोचती है -

"निर्धनता की ये सूखी रोटियाँ, क्या यही नियति है मेरी? यदि अच्छी मोटी रकम ऐसे कमाई जा सकती है, तो बुराई ही क्या इसमें? ये बड़े-बड़े सेठ-साहूकार क्या नैतिक कमाई करते हैं। चरित्र को बेचकर खा जाते हैं, पैसे के पीछे। गरीब पर ही समाज, नीति और वैधता के प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं, किसी अमीर को कभी किसी ने पूछा कि वह सोता एक खाट पर है, तो प्रातः जगता किसी दूसरी खाट पर कैसे?"[4]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने नारी के अर्थ के लिए संघर्ष को दर्शाया है।

अहं के कारण संघर्ष –

आज हमारे समाज में बहुत से व्यक्ति अंह का शिकार हो जाते हैं। जब व्यक्ति की अपेक्षा की उपेक्षा हो जाती है, तब उसके अंह को चोट पहुँचती है। इसी से संघर्ष का जन्म होता है। जब व्यक्ति के पास ऐश्वर्य के साधन तथा पर्याप्त मात्रा में धन–दौलत आ जाती है तो वह स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है। वह किसी की भी उपेक्षा करने लगता है, उसे अपने से छोटे–बड़े का लिहाज नहीं रखता। किसी की मान–मर्यादा की उसके लिए कोई कीमत नहीं रहती।

लेखक मनमोहन सहगल के उपन्यास 'काला सच' में हुमरो सुल्तान की पुत्रवधू होने के कारण तथा प्रधान सेनापति की बेटी होने कारण अहं का शिकार हो जाती है। वह अपने पति खिज्र का भी सम्मान नहीं करती। वह नौकर–चाकरों के सामने भी उसे डाँटती रहती है।

इसी प्रकार उनके उपन्यास 'किराए की कोख' उर्फ 'अधूरा इंकिलाब' में शिल्पी अहं के कारण ही ममता जैसे पवित्र रिश्ते को नकार देती है। वह अमीर माँ–बाप की औलाद है तथा अमीर घराने की बहू है। वह घर गृहस्थी को छोड़कर धन कमाने के लिए अपने पारिवारिक दायित्व को भूल जाती है। वह इसी प्रवृत्ति के कारण सेरोगेसी पद्धति से अपना व अपने पति का बच्चा नौकर की बेटी से प्राप्त कर लेती है। वह अपने अहं के कारण माँ बनकर भी माँ नहीं बन पाती। शिल्पी अपनी गृहस्थी संभालने की जगह धन कमाने के लिए प्रयत्नरत रहती है। उसकी इसी प्रवृत्ति को इंगित करते हुए उसका पति सचिन सोचता है कि शिल्पी ने अपने शरीर के सौंदर्य को बरकरार रखने के लिए क्या हासिल किया है –

''शिल्पी ने फिगर मैंटेनेंस के चक्कर में क्या बचाया है और लक्ष्मी ने स्तनपान करवाकर जिस ठोस उभार का सौंदर्य प्राप्त कर लिया है, वह कहाँ कम है? मुख पर सन्तोष, ममता का गौरव, यौवन की सुडौलता सब एक तरफ हैं तो दूसरी ओर पाउडर–क्रीमों के बलपर आनन का ओज, धन कमाने के फंडों का गर्व और स्टेटस से नीचे वालों के लिए स्नेह नहीं दया का भाव। यही अन्तर सचिन को दिखा लक्ष्मी और शिल्पी में।''[5] प्रस्तुत पंक्तियों में उपन्यासकार ने धन के प्रभाव के कारण मनुष्य में अहं की भावना का चित्रण किया है।

पारिवारिक संघर्ष –

मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास 'घटता–बढ़ता चाँद उर्फ जेहलम की बेटी' में नारी के पारिवारिक संघर्षशील जीवन को दर्शाया है। इसमें प्रसिद्ध कवयित्री हब्बा खातून के जीवन को दर्शाया है। इसमें हब्बा का निकाह अजीज लोन नामक एक शराबी आदमी से हो जाता है। वह हब्बा के सौंदर्य का दीवाना है। हब्बा की सास को यह बात पसन्द नहीं आती। दोनों को हब्बा का कवयित्री व गायिका का रूप पसन्द नहीं आता। वे उसे तरह–तरह की यातनाएँ देते हैं। हब्बा की हर रोज उसकी सास से कहा–सुनी हो जाती है, तो उसके पति के घर आने पर सास उसकी बेरहमी से पिटाई करवा देती थी। उसे हर रोज अत्यधिक शारीरिक यातनाएँ दी जाती थीं।

हब्बा खातून उन्हें खुश करने के लिए हर सम्भव कोशिश करती है, लेकिन उन पर कोई असर नहीं होता। अन्त में शहजादे यूसुफ से उसका निकाह होता है तथा उसे अजीज लोन जैसे निकम्मे तथा बेकार आदमी से मुक्ति मिल जाती है। शहजादे से निकाह होने से पहले की जिंदगी का विश्लेषण करती हुई हब्बा खातुन सोचती है कि –

''लेकिन, आखिर मेरा कसूर क्या है। क्यों मर जाना चाहिए मुझे ? अल्लाह के रहम–ओ–करम से मेरे माँ–बाप अभी जिन्दा हैं। मैं तो इन खूबसूरत वादियों में चौकड़ियाँ भरते, गीत गाते जिंदगी बिता सकती हूँ। अजीब है, मैं चाहकर भी शौहर को तलाक नहीं दे सकती, वह जरा–सी जबान हिलाकर मेरी ज़िंदगी तबाह कर सकता है। तभी तो हाथ, जबान, लाते, डण्डा सब चलता है, मालूम है न कि कहीं जा नहीं सकती। रात में सुख लो, दिन–भर काम लो, हाथ खुजलाए तो मार लो, बस यहाँ यहीं तो है औरत की कीमत। खुदावंदा। अल्लाह रहमकर।''[6]

इन पंक्तियों में लेखक ने नारी के पारिवारिक संघर्ष का चित्रण किया है।

सामाजिक संघर्ष –

लेखक ने अपने उपन्यास 'समझौते से पहले' में एक ऐसी युवती की संघर्ष गाथा का चित्रण किया है, जो किसी कमजोर क्षण में भावुकता में बहकर अविवाहिता होने पर ही माँ बन बैठी। वह अपनी प्रेम की निशानी से बँधकर सम्पूर्ण समाज तथा विपरीत परिस्थितियों से भी टकरा जाती है। वह अपने कपटी व धोखेबाज प्रेमी के विरुद्ध विद्रोह का स्वर उठाकर समाज में अपने बच्चे के लिए पिता के नाम की अनिवार्यता हटाकर माँ के नाम के विकल्प की वैधता का कानून प्राप्त कर लेती है। इसके बावजूद भी कानून की मौजूदगी में भी वह समाज का मुँह बन्द करने में असमर्थ महसूस करती है। अपने बच्चे को पिता का नाम दिलवाने के लिए उसे अपने पूर्व कपटी प्रेमी से विवाह करना पड़ता है। वह पूरी कलावधि में जिससे घृणा करती रही, बाद में अपने बच्चे के लिए उसी को अपना पति बनाना स्वीकार कर लेती है। उसने समाज के भय से बच्चा पैदा करने से पहले ही अपने पिता का घर छोड़ दिया था ताकि उसके माता–पिता पर कोई उँगली न उठाए। वह अपने बच्चे को लेकर अपने ही बलबूते पर बम्बई में अपनी जगह बनाती है। वह वहाँ पर कॉलेज में राजनीति की प्राध्यापिका नियुक्त हो जाती है, जिससे वह अपने बच्चे का पालन–पोषण करने में सफल हो जाती है। इन सब के साथ–साथ वह कौंडकर की निजी सचिव के रूप में भी कार्य करती है। इसी की लगन मेहनत तथा सूझबूझ से कौंडकर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में चुना जाता है। वह सारी बम्बई की राजनीति में छा जाती है। ऐसा करने में उसे अपनी ममता का गला घोंटना पड़ता है। वह चाहकर भी अपने बेटे तथा अन्य लोगों को अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं करवाती। वह अपनी मंजिल को प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्ष करती रहती है तथा सफल भी होती है। वह अपने जीवन की सच्चाई किसी के सामने प्रकट नहीं करती बल्कि अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है –

''सच्चाई को तब तक छिपाया जा सकता है, जब तक बालक छोटा है, उसकी आन्तरिक जिज्ञासाओं का विकास नहीं हुआ। जिस दिन उसे वयस्क या फिर कौमार्य चेतना भी प्राप्त हुई, उसी दिन पिता के लिए जिज्ञासु हो उठेगा। उस दिन स्वर्गीय प्रमोद को न जलाया जा सकेगा, न मारा जा सकेगा। बल्कि अपना समूचा सामाजिक वर्चस्व ध्वस्त हो जाएगा।''[7]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने नारी के सामाजिक संघर्ष को दर्शाया है। वह अगर कुछ करने की ठान ले तो ऐसा कोई भी कार्य नहीं, जो वह नहीं कर सकती। जब चाहे वह किसी भी क्षेत्र में अपना परचम लहरा सकती है।

देश के लिए संघर्ष -

उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास '1857 प्रेम कथा' में एक तवायफ की देश के प्रति संघर्षशीलता का वर्णन किया है। उसका नाम था अजीजुनिस्सा। वह शम्मसुद्दीन नामक सार्जेंट से आत्मिक प्रेम करती थी। उसी के प्रभाव में आकर वह देश की आजादी के लिए विद्रोह करने वाले विद्रोही सैनिकों के लिए जासूस का काम करती थी। वह अपने चौबारे के तहखाने में विद्रोही सैनिकों की गुप्त बैठक करवाती थी ताकि अंग्रेज अधिकारियों को इसकी खबर न लगे। वह जब अपना नृत्य करने अंग्रेजी अधिकारियों की महफिल में जाती है, तो वहाँ से गुप्त जानकारी लाकर भारतीय विद्रोही सैनिकों को देती थी। कोई अंग्रेज अधिकारी भी उस पर शक नहीं करता था। 1857 के विद्रोह के सफल बनाने के लिए वह विभिन्न रियासतों में गई तथा उन्हें संगठित होने के लिए आह्वान किया ताकि यह विद्रोह सफल हो सके। वह दिल से अंग्रेज कौम से नफरत करती थी। अपनी नफरत को लखनऊ के नवाब के सामने प्रकट करती हुई वह कहती है कि -

"मेरे अन्दर आग लगी है, मुझे कभी-कभी उसकी आँच महसूस होती है। मैं चाहती हूँ कि इन मक्कारों के खिलाफ खड़ी हो सकूँ, जो भी हो, मेरे पास ताकत नहीं, नफरत तो है। मैं किसी अंग्रेज के मुँह पर थूक सकी, तो जिंदगी कीमिया समझ लूँगी।"[8]

इस उपन्यास के इन पंक्तियों में लेखक ने आजीजुनिस्सा के देश के प्रति प्रेम तथा अंग्रेजों के प्रति नफरत को दर्शाया है। वह देश के प्रति अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देती है तथा अपनी जान भी देश के नाम कुर्बान कर देती है।

निष्कर्ष -

मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यासों में नारी को संघर्षरत दिखाया है। उन्होंने लगभग सभी नारी पात्रों को संघर्षशील भूमिका अदा करते हुए दिखाया है, जैसे-सामाजिक संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, अहं के कारण संघर्ष, प्रेम के लिए संघर्ष, अर्थ के लिए संघर्ष तथा उनके नारी पात्र देश के लिए भी संघर्ष करने में प्रयासरत हैं।

सन्दर्भ :

1. डॉ. चन्दुलाल दूबे, नाटक और रंगमंच, पृ. 16
2. डॉ. मोहनलाल रत्नाकर, हिन्दी उपन्यास : द्वन्द्व एवं संघर्ष, पृ. 3
3. मनमोहन सहगल, काला सच, पृ. 7
4. मनमोहन सहगल, किराए की कोख उर्फ अधूरा इंकिलाब, पृ. 54
5. मनमोहन सहगल, किराए की कोख उर्फ अधूरा इंकिलाब पृ. 76
6. मनमोहन सहगल, घटता-बढ़ता चाँद उर्फ जेहलम की बेटी, पृ. 40-41
7. मनमोहन सहगल, समझौते से पहले, पृ. 466
8. मनमोहन सहगल, 1857: प्रेमकथा, पृ. 11

❑❑❑

गाँव व डाकखाना-बलियाली, तहसील-बवानी खेड़ा, जिला-भिवानी (हरियाणा) - 127032

प्रश्न मीडिया की भाषा

—डॉ. प्रेमप्रकाश मीणा

आजकल प्रिंट मीडिया में एक नया ट्रेंड देखने को मिल रहा है। हिंदी अख़बारों के संपादकीय पृष्ठ अंग्रेजी स्तंभ लेखकों से पटे रहते हैं। इन्हें प्रकाशित कर हिंदी संपादक अपने आपको 'धन्य' महसूस करते हैं। यह भी कहा जाता है कि अंग्रेजी के पत्रकार जितने 'सशक्त ढंग' (क्वालिटी) से लिख सकते हैं, हिंदी के पत्रकार वैसा नहीं कर सकते। यह भी एक मनोविज्ञान है जिसके शिकार अधिकांश हिंदीजन हैं। इसी कारण हिंदी मीडिया में अंग्रेजी शब्दों की भरमार होती जा रही है। कहा जा सकता है कि हिंदी मीडिया को दोयम दर्जा देने की कोशिश अंग्रेजी वालों के साथ-साथ हिंदी संपादकों और प्रबंधकों की भी है।

वर्तमान युग सूचना का युग है। सूचनाओं के निंरतर प्रेषण पर ही सारा संसार टिका है। सूचनाओं की इस कमी को पूरा करते हैं संचार-माध्यम अर्थात् मीडिया। मीडिया मनुष्य, समाज, सभ्यता-संस्कृति और राष्ट्र के विकास का सूत्रधार है। मीडिया में जनता की भाषा में जनता की बात को जनता के लिए लिखना तथा प्रकाशित-प्रसारित करना पड़ता है। मीडिया के प्रसार माध्यमों (प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया) में अख़बार पत्रिका, टी.वी., रेडियो, इन्टरनेट आदि प्रमुख हैं। भाषिक दृष्टिकोण से इन माध्यमों का महत्त्व सर्वविदित है। बात चाहे समाचार, फ़िल्मों, धारावाहिकों, विज्ञापनों अथवा अख़बारों की ख़बरों एवं संपादकीय की हो, सभी जगह भाषा को स्वरूप देने में इन माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

भाषा हमारी अभिव्यक्ति का साधन है और साहित्य उस अभिव्यक्ति के प्रस्तुतिकरण का एक रूप है। भाषा ही संस्कृति है, क्योंकि भाषा हमारी समझ, आदतों का निर्माण एवं निर्धारण कर उनको एक दिशा प्रदान करती है। इस प्रकार भाषा हमें समझ के स्तर पर स्वयं से जोड़ते हुए विश्व तक अग्रसरित करती है। नवीन संदर्भों में, हमारी इस भाषा रूपी समझ का निर्माण मीडिया भलीभाँति कर रहा है। मीडिया में प्रसारित विज्ञापन, धारावाहिक, फिल्म एवं समाचार न केवल हमारी भाषा को बल्कि संपूर्ण जीवन एवं संस्कृति को नया आयाम दे रहे हैं। इस दृष्टि से यदि हिंदी भाषा पर विचार किया जाए तो निश्चय ही हिंदी भाषा ने मीडिया के साथ मिलकर एक लंबी दूरी तय की है/कर रही है। पिछले पचास वर्षों में हिंदी का जिन दो क्षेत्रों में अप्रत्याशित विकास हुआ है वह है-मीडिया और राजनीति। कालान्तर में पूर्वोत्तर से सांसद अगाथा संगमा की हिंदी में शपथ लेने की बात हो या लालूप्रसाद यादव की संसद से सड़क तक बोली जाने वाली लोकभाषा मिश्रित हिंदी, सभी जगह इसने मैदान मारा है। हालांकि पहले अटल जी द्वारा यूएन

में हिंदी में भाषण और 2014 के बाद वर्तमान प्रधानमंत्री मोदीजी के हिंदी प्रेम ने देश से लेकर विदेशों तक सही मायनों में हिंदी को वैश्विक परिदृश्य में लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहरहाल, हम मीडिया में प्रयुक्त हिंदी की बात करते हैं। आज हिंदी अख़बारों का सरकुलेशन अंग्रेजी की तुलना में कहीं अधिक है। आम भारतीय अपनी ख़बर अपनी भाषा में पढ़ना चाहता है तो हिंदी का मीडिया में पकड़ बनाना स्वाभाविक है। यह हिंदी का ही दबाव है कि आज तमाम अंग्रेजी अख़बार हिंदी की हैडिंग लगा रहे हैं वह चाहे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' हो या 'आउटलुक' या 'द वीक' या 'वूमन्स एरा'। परंतु दुर्भाग्य यह है कि बाज़ार में हिंदी को अगर अपना औज़ार बनाया है तो वह इसे अपने स्तर पर विकृत भी कर रहा है। इसका उदाहरण अख़बारों में आए दिन छपने वाली ख़बरों के हैडिंग हैं। ख़बरों में सही भाषा एवं सही मुहावरों का प्रयोग उसे संप्रेषणीय बनाता है परंतु आजकल गलत भाषित प्रयोग, गलत लिंग प्रयोग और गलत मुहावरों का प्रयोग आम बात हो गई है। धड़ल्ले से चल रहे नए-नए ई-पेपर्स ने हिंदी को और अधिक विकृत किया है।

यह एक विडंबना ही है कि तमाम प्रयासों के बावजूद हिंदी की स्थिति दिनोंदिन कमज़ोर-सी पड़ रही है जबकि अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा के लिए प्रयास न करने पर भी हर कोई अंग्रेजी सीखना चाहता है। मानो अंग्रेजी आज फैशन के साथ-साथ 'स्टेटस सिम्बल' बन गई है। 'फैशन' या 'स्टेटस सिंबल' के रूप में भाषा का प्रयोग विशेषतया उच्चवर्गीय लोग ही करते हैं। इनमें खिलाड़ी, नेता, अभिनेता, पत्रकार इत्यादि होते हैं जो 'पब्लिक आइकन' (रोल मॉडल) भी होते हैं, ऐसे में ये लोग भाषा के परिष्कार या शुद्धता के लिए अपना योगदान दे सकते हैं, परंतु विडंबना यह है कि ये लोग जब मीडिया के जरिए अपनी अभिव्यक्ति देते हैं तो स्वयं भाषा की शुद्धता का निर्वाह नहीं कर पाते। हिंदी की शब्द-सम्पदा किसी भाषा से कम नहीं है फिर भी हिंदी भाषियों को दूसरी भाषाओं के शब्द अपनाने की 'लत' सी हो गई है। हिंदी फिल्म 'विवाह' (राजश्री प्रोडक्शन) में जब अभिनेता शुद्ध हिंदी में बात करते हुए अटक जाते हैं तो एक महिला पात्र कहती है अ...आ ऽऽए हिंदी भाषा वेरी-काइन्ड लेंग्वेज, इसमें अटकना नहीं मंगता, कोई भी दूसरी भाषा का शब्द ले लो।' ऐसे में अभिनेता अंग्रेजी शब्द का प्रयोग करता है। ऐसा लगता है मानो हिंदी भाषा में अंग्रेजी के अलावा कोई विकल्प नहीं है या यह हिंदी भाषा की मजबूरी है। इसके विकल्प में, मीडिया में अगर लोक-भाषा के मौजूदा स्वरूप को स्थान दिया जाए तो अच्छा होता। हालांकि इधर आजकल बहुत सारी फिल्मों में हिंदी की बोलियों का प्रयोग शुरू हुआ है जो गौर करने लायक है, परन्तु ओटीटी (OTT) पर प्रसारित ऐसी फिल्म्स और सीरीज ने भाषा की विकृति और भाषा की अश्लीलता को बढ़ावा भी दिया है। परन्तु विदेशी भाषा की जगह लोक-भाषा के प्रयोग से लोक-शैलियाँ सुरक्षित रहेंगी और परिनिष्ठित भाषा एवं लोकभाषा के बीच की दूरियाँ कम होंगी। आम जनता की तरफ से उठती ये माँगें ही हिंदी और उसकी सहयोगी लोकभाषाओं को उनका बाज़ार और उनकी सही हैसियत दिलाएगी। यह कार्य मीडिया भलीभाँति कर सकता है और मीडिया का इस प्रकार का कार्य हिंदी को 'संपर्क भाषा' बनाने का लक्ष्य भी पूरा कर पायेगा, जो कि

आजादी के 74-75 साल बाद भी एक सपने की तरह है क्योंकि संपर्क भाषा का स्थान भी अंग्रेजी ने ही ले रखा है।

आज की नई पीढ़ी अपनी सभ्यता-संस्कृति से दूर होती जा रही है, यह बड़े दुःख की बात है। अपने देश को आगे बढ़ाने के लिए अपनी भाषा संस्कृति ही काम आती है। फिल्म ऐसा माध्यम है जो भाषा संस्कृति को न केवल उन्नत करती है बल्कि उसका प्रचार-प्रसार भी करती है। परंतु आज हिंदी फिल्मों को हिंदी भाषा की कम, बाज़ार की अधिक ज़रूरत है। स्वाभाविक भी है परंतु भाषिक 'जिम्मेदारी' का निर्वहन भी ज़रूरी है। लेकिन उदाहरणस्वरूप देखें तो आज हिंदी फिल्मों के नामों-'वॉन्टेड', 'लव-आजकल', 'प्यार इंपोसिबल', 'माइ नेम इज खान', 'थ्री इडियट्स', 'ब्लू'-से लगता है कि अंग्रेजी मसाला ही ज़्यादा हिट है। फिल्मों एवं धारावाहिकों के संवाद भी अंग्रेजी मिश्रित हो गये हैं जो सर्वग्राही ज़रूर हैं परंतु हिंदी के स्वरूप को बाधित भी कर रहे हैं। यही हाल विज्ञापनों का है। सोशल मीडिया में भी कमोबेश यही हाल है, बोलने से लेकर लिखने तक में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने हिंदी भाषा का स्वरूप बनाया कम, बिगाड़ ज़्यादा है।

आजकल प्रिंट मीडिया में एक नया ट्रेंड देखने को मिल रहा है। हिंदी अख़बारों के संपादकीय पृष्ठ अंग्रेजी स्तंभ लेखकों से पटे रहते हैं। इन्हें प्रकाशित कर हिंदी संपादक अपने आपको 'धन्य' महसूस करते हैं। यह भी कहा जाता है कि अंग्रेजी के पत्रकार जितने 'सशक्त ढंग' (क्वालिटी) से लिख सकते हैं, हिंदी के पत्रकार वैसा नहीं कर सकते। यह भी एक मनोविज्ञान है जिसके शिकार अधिकांश हिंदीजन हैं। इसी कारण हिंदी मीडिया में अंग्रेजी शब्दों की भरमार होती जा रही है। कहा जा सकता है कि हिंदी मीडिया को दोयम दर्जा देने की कोशिश अंग्रेजी वालों के साथ-साथ हिंदी संपादकों और प्रबंधकों की भी है। जिस तरह की सस्ती लोकप्रियता आज का मीडिया चाहता है वह एक षड्यंत्र है, परंतु हमें इस अंधी दौड़ में शरीक न होकर सच को जानने की कोशिश करनी चाहिए। कुल मिलाकर हिंदी का बाज़ार बढ़ा है और लोकतंत्र के विकास के साथ-साथ आमजन की भाषा का बढ़ना स्वाभाविक भी हैं। परंतु बाज़ारीकरण के प्रभावस्वरूप मीडिया में हिंदी की जो दुर्दशा हो रही है उस पर ध्यान देने की ज़रूरत है क्योंकि मीडिया लोकतंत्र का 'चौथा स्तम्भ' माना जाता है। गंभीर उत्तरदायित्वपरक भूमिका की उससे अपेक्षा की जाती है। आशा की जाती है कि इस चतुर्थ स्तम्भ के वाहक पूरी समझदारी के साथ जनता को ख़बर के हर पहलू से परिचित कराएँगे, न कि जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करेंगे। वर्तमान प्रधानमंत्री और सरकार द्वारा हिंदी को 'लोकल से ग्लोबली वोकल' (स्थानीय से वैश्विक) बनाने में महत्त्वपूर्ण प्रयास किया जा रहा है जिससे हिंदी की दशा और दिशा में बदलाव भी आ रहा है। मीडिया की सकारात्मक भूमिका इसमें महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

❐❐❐

सहायक प्रोफेसर, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली

गिरीश पंकज के कथा साहित्य का अनुशीलन

—श्रीमती निकिता रामटेके
— डॉ. शंकर मुनि राय

समकालीन कहानी के बरक्स गिरीश पंकज का कथा-संसार अपनी पहचान रखता है। इनकी तमाम कहानियों में विषय तो आज के ही हैं लेकिन जीवन मूल्य शास्वत हैं। गिरीश पंकज ने यथार्थवाद के नाम पर कहानियों की हत्या नहीं की। इनकी तमाम कहानियाँ मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की कहानियाँ हैं। ए लव स्टोरी वाया फेसबुक की समस्त कहानियाँ भी दिशा बोध से सम्पृक्त है।

मूलतः बनारसी संस्कार में जन्मे और छत्तीसगढ़ की खुली प्राकृतिक दुनिया में रचे-बसे गिरीश पंकज का नाम छत्तीसगढ़ के ऐसे रचनाकार की सूची में आता है जिन्होंने अपने रचनाकर्म से हिन्दी संसार को समृद्ध किया। वर्ष 2018 में व्यंग्यश्री की उपाधि से विभूषित पंकज जी की पहचान मुख्य रूप से व्यंग्यकार के रूप में हुई है। किन्तु सच्चाई यह है कि आप विविध विधाओं के सशक्त रचनाकार हैं। व्यंग्य के साथ-साथ कविता, उपन्यास, लघुकथा, बाल-साहित्य और कविता जैसी लोकप्रिय विधाओं में आपकी लगभग 5 दर्जन श्रेष्ठ कृतियों का प्रकाशन हो चुका है। कन्नड़, तमिल, मलयालम, तेलगु, उड़िया, उर्दू, अंग्रेजी, छत्तीसगढ़ी, पंजाबी, बंगला और मराठी भाषाओं में आपके साहित्य का सादर अनुवाद हुआ है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में हास्य विनोद प्रहसन के प्रस्तुतकर्ता गिरीश जी अब किसी परिचय के मोहताज नही हैं। विविध विधाओं के सशक्त रचनाकार गिरीश पंकज मूलरूप से अपने को कथाकार ही मानते हैं। उनका कथन है-''एक व्यंग्यकार के रूप में भले ही अनेक मित्र मुझे पहचानते हैं, लेकिन जानने वाले यह भी जानते हैं कि मैने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं, जो महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कहानी लिखना मेरा प्रिय शौक है। मेरे व्यंग्यों में भी ज्यादातर कथाएँ ही होती हैं। कथाओं का सहारा लेकर मै व्यंग्य करता हूँ।

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद को अपना आदर्श मानने वाले इस रचनाकार ने कहानी को जिस संवेदना के साथ अनुभव किया है, उसी स्तर पर लिखने का भी प्रयास किया है। इनके कथा वैशिष्ट्य को दर्शाते हुए डॉ. चितरंजन ने लिखा है - हिन्दी के कुछ साहित्यकार ऐसे भी हैं जो अनेक विधाओं में समान रूप से और पूरी गरिमा के साथ विचरण करते हैं। गिरीश पंकज भी ऐसा एक चर्चित नाम है। एक कहानीकार के रूप में

उनकी समस्त कहानी को जब हम देखते हैं तो हैरत होती है। समकालीन कहानी के बरक्स गिरीश पंकज का कथा-संसार अपनी विशेष पहचान रखता है। इनकी तमाम कहानियों में विषय तो आज के ही हैं लेकिन जीवन मूल्य शाश्वत हैं।

गिरीश पंकज से संबंधित पूर्ववर्ती कार्य-हिन्दी के क्षेत्र में मेरी जानकारी के अनुसार गिरीश पंकज की रचनाओं पर निम्नलिखित कार्य हो चुके हैं -

गिरीश पंकज के व्यंग्य-साहित्य का अनुशीलन: नागराज, कर्नाटक विश्वविद्यालय हासन।

गिरीश पंकज के सामाजिक व्यंग्य का भाषिक अध्ययन: सत्यशील चौहान, रा ट्रसंत तुकडोजी महराज नागपुर विश्वविघालय नागपुर, (सत्र 2013-14)।

विनोद शंकर शुक्ल तथा गिरीश पंकज की व्यंग्य रचनाओं का सामाजिक अनुशीलन: सविता सिंह पं रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (2017)।

गिरीश पंकज के व्यंग्य : एक अनुशीलन: जमुना प्रसाद वामने बरकतुल्ला विश्वविद्यालय भोपाल।

समकालीन व्यंग्य-लेखन का परिदृश्य और गिरीश पंकज का प्रदेय लता गोस्वामी, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर।

गिरीश पंकज के उपन्यासों में सामाजिक सरोकार : विजय व्यवहार पं रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (2011-12)

व्यंग्य साहित्य के विकास में गिरीश पंकज का योगदान : रुचि अर्जुनवार, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।

गिरीश पंकज के व्यंग्य-साहित्य का मूल्यांकन : दिनेश उपाध्याय, लघु शोध पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (2002-03)।

गिरीश पंकज के व्यंग्य उपन्यास 'मिठलबरा की आत्मकथा' का साहित्यिक अनुशीलन : प्रीतम कुमार दास, लघु शोध, रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (2003-04)।

गिरीश पंकज के व्यंग्य संग्रह 'मंत्री को जुकाम' का साहित्यिक अनुशीलन : अरुणा श्रीवास्तव, लघु शोध, पं रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (2006-07)।

शोध आलेख का उद्देश्य -

1. कथा साहित्य के बदलते प्रतिमान और गिरीश पंकज
2. गिरीश पंकज के कथा साहित्य में सामाजिक समस्याएँ
3. गिरीश पंकज के कथा साहित्य और मानवीय मूल्य
4. युग : परिवेश और गिरीश पंकज की रचना धर्मिता

गिरीश पंकज के प्रकाशित कहानी संग्रह

काशीवास और अन्य कहानियाँ (2018) एक व्यंग्यकार के रूप में गिरीश पंकज की विशिष्ट पहचान है। लेकिन उन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं, जो महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। कहानी लिखना उनका प्रिय शौक है। उनके व्यंग्यों में भी ज्यादातर कथाएँ ही होती हैं। कथाओं का सहारा लेकर ही वे व्यंग्य को विस्तार देते हैं। लेकिन काशीवास एवं अन्य कहानियाँ नामक कहानी संग्रह में शामिल तमाम कथाओं में व्यंग्य नहीं है।

गड्ढे में देश नामक कहानी लगभग व्यंग्य कथा है। बाकी कहानियो में समाज की विभिन्न स्थितियों का चित्रण है। बदलती मानसिकता और सोच को रेखांकित करने वाली ये कहानियाँ समाज के समकालीन चेहरे को पढ़ने की कोशिश है। किस प्रकार से जीवन का मूल्य बदलता जा रहा है, काशीवास और अन्य कहानियाँ (2018) में कुल 16 कहानियों का समावेश है।

काला बक्सा और वृद्धाश्रम में माँ–ये कहानियाँ मर्मस्पर्शी हैं। इस कहानी का नायक रामकृष्ण चतुर्वेदी हैं। ये कहानियाँ जीवन की कटु सच्चाइयों से रू–ब–रू कराती हैं, लोग निर्मम होते जा रहे हैं। रिश्ते स्वार्थ के खूँटे से बँध गए हैं। संवेदनाएँ खत्म होती जा रही हैं।

रिया नही सीता–रिया नहीं सीता लीव–इन रिलेशनशिप के दुष्परिणामों को बताने वाली कहानी है।

प्यार एक अहसास–प्यार एक अहसास निर्मल प्रेम की सात्विक अभिव्यक्ति की कथा कहती है।

अवसाद के आँसू–इस कहानी में भी निर्मम होते समय से आहत बुजुर्ग मन की पीड़ा का आख्यान है।

जल - कुंड–यह कहानी संदेश देती है कि संस्कार बड़ी चीज है, अगर संस्कार है, तो हवा भी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। परिवार की पृष्ठभूमि अच्छी है तो कोई पथ–भ्रष्ट नहीं हो सकता।

कालगर्ल की बेटी–इस कहानी में कथाकार ने यह संदेश दिया है कि एक महिला किसी कारणवश भले ही गलत राह चुन ले लेकिन वह अपनी संतान को अपनी काली छाया से दूर ही रखना चाहती है।

गड्ढे में देश–गड्ढे में देश नामक कहानी लगभग व्यंग्य कथा है। इस कहानी का नायक देश कुमार है। ये कहानी बदलती मानसिकता और सोच को रेखांकित करती है।

फोरलेन सड़क–यह कहानी नई सभ्यता के विकास पर तंज करती है। सड़कें बन रही हैं और पर्यावरण नष्ट हो रहा है।

एक नपुंसक मौत–एक नपुंसक मौत नामक कहानी में लेखक ने एक ट्रांसजेन्डर (किन्नर) के मनोभावों को पकड़ने की कोशिश की है। इस कहानी का नायक सुकांत और नायिका प्रज्ञा है।

काशीवास–इस कहानी का नायक रामदयाल है। इस कहनी में बुजुर्ग मन की पीड़ा का आख्यान है। आज के समय में कैसे अपने बच्चे माता–पिता की उपेक्षा करते हैं। माता पिता को बोझ समझते हैं।

सीढ़ियाँ–इस कहानी की नायिका शारदा है। वह अपनी कामयाबी के लिए रामानंद विष्णुस्वरूप और रीतेश जैसे लोगों को सीढ़ियों की तरह इस्तेमाल करते हुए आगे बढ़ती जाती है। वह अपना तन, मन, लोक, लाज, लुटाकर आगे बढ़ती हुई कामयाबी की सीढ़ियों को पार करती चली जाती है।

रामकुमार व्यथित की खुदकुशी–इस कहानी के माध्यम से देश बढ़ते भ्रष्टाचार, शोषण, गरीबी, महँगाई, सूदखोरी, राजनीति में अवसरवाद, कुर्सीवाद इन सभी समस्याओं को दर्शाया गया है। इन सभी समस्याओं से त्रस्त हो कर नायक रामकुमार खुदकुशी कर लेता है।

मैं यही रहूँगा–इस कहानी में बुजुर्ग मन की पीड़ा को बताया गया है कि कैसे बच्चे बुढ़ापे में माता–पिता का सहारा बनने के बजाय उन्हें छोड़कर अलग रहना पसंद करते हैं। माता–पिता की उपेक्षा करते हैं।

देवता–रमेश और श्याम बचपन के दोस्त थे। बुरा हो बाजारू प्रतिस्पर्धा की जिसके कारण राम और श्याम की जोड़ी टूट गई। रमेश अपने दोस्त श्याम की तरक्की पर जलने लगा। उसे अपना दुश्मन समझने लगा। दोनों की दोस्ती में दूरियाँ आ गई। एक दिन जब रमेश को हार्ट–अटैक आया तो श्याम ही उसे हॉस्पिटल ले गया। अंत में वही दोस्त काम आया और रमेश को अपने किये पर शर्मिंदगी महसूस होने लगी। रमेश श्याम से माफी माँगता है और उसे अपना दोस्त समझने लगा। इस प्रकार दोनों दोस्तों का पुनर्मिलन हो गया।

ए लव स्टोरी वाया फेसबुक–"ए लव स्टोरी वाया फेसबुक" एक बेहतरीन कहानी भी हैं और एक तीखा व्यंग्य भी। आज के हमारे तकनीकी विकास के कारण बदलते जा रहे समाज में व्यक्ति के अकेले पड़ते जाने की एक भयावह और नंगी सच्चाई भी है। इस कहानी का नायक रामशरण है। विधुर रामशरण के जीवन की तन्हाई, अकेलापन सिर्फ उनका ही नहीं बल्कि हमारे समाज के उन सभी प्रौढ़ो और वृद्धों की कहानी है। जो किन्हीं परिस्थितियों के कारण अपने जीवन साथी से बिछड़ चुके हैं और अपने अकेलेपन को दूर करने कि लिए उन्हें किसी साथी की तलाश है।

फिर वही पाठक–इस कहानी के माध्यम से वर्तमान समय में कहानी के नाम पर जो अश्लीलता परोसी जा रही है उसे दर्शाया गया है। यथार्थ के नाम पर पवित्र रिश्तों के बीच मर्यादाएँ बाँध दी गई हैं। कहानी का पालन हो रहा है। समाज अराजक होता जा रहा है। अग्रज कथाकारों ने कैसी अद्‌भुत कहानियाँ लिखी हैं, उनकी कहानियों में संस्कार है। लेकिन उत्तर आधुनिक समय में कहानियाँ, कहानियाँ नहीं अश्लील पाठों में रूपांतरित होती चली गईं।

गिरीश पंकज की कहानियों का वर्गीकरण –

सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत जीवन पर आधरित, हास्यपरक, बाल साहित्य या बाल मनोविज्ञान।

गिरीश पंकज की कहानियों की विशेषताएँ –

(अ) भाव पक्ष (ब) कला पक्ष।

भाव पक्ष–गिरीश पंकज स्पष्टवादी हैं, अपने जीवन में भी और लेखन में भी वे सच्चे अर्थों में पारदर्शी कृतित्व और व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आदमी जिस शैली से अपने जीवन को गढ़ता है, उसी शैली में वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। रचना वही सार्थक और कालजयी होती हैं जो युगीन पीड़ा स्वर देती है, अन्याय के बराबर खड़ी होती है। साहित्य का अर्थ यही है कि हित को साथ लेकर चले। जनहित तो सच का पर्दाफाश करने में है। जो छिपे हुए नकली लोग हैं उनका सच सामने लाना ही धर्म है। गिरिश पकंज की रचनाओं में संप्रेषणीयता व सहज आकर्षण है। गिरीश पंकज की कहानियों में आलोचनात्मक शैली, समीक्षात्मक, पत्रात्मक, विवरणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

कलापक्ष–मानव समाज ही नहीं, यह सृष्टि विभिन्नताओं से भरी हुई है। तथापि उनमें पारस्परिकता ही वह आधार है, जिस पर हमारा अस्तित्व निर्भर है। गिरीश पंकज के समस्त लेखन का दर्शन भी यही है। सामान्यत: हित से युक्त होना ही साहित्य है, जो वस्तुत: वाङ्गमय का पर्याय है, क्योकि प्रत्येक ज्ञानानुशासन मानव–हितार्थ है। गिरीश के लेखन में साहित्य की यही परिभाषा जीवंत हो कर उभरती है। गिरीश पंकज की तमाम कृतियाँ सहृदय पाठकों को बेहतर मनुष्य बनाने का संदेश देती हैं। उनकी लगभग हर कृति यही बताने का रचनात्मक अनुष्ठान रही है कि "अंत भला सो सब भला" काव्य या साहित्य को "सत्यं-शिवं-सुन्दरम" की शाब्दिक कला साधना कहा जाता है, जबकि वर्तमान समाज में "असत्यं–अशिवं –असुन्दरम" का वर्चस्व है। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन के रूप में जो स्थापनाएँ की हैं उनमें से व्यंग्यकार शिवेतरक्षतये (अकल्याण के विनाश के लिए) प्रयोजन को चुनता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शिव समुद्र–मंथन से नि:सृत अमृत–विष में विष को चुनते है सृष्टि का कल्याण करते हैं। इस सृष्टि में अन्यथा सौंदर्य की कहाँ कमी है, परन्तु असौंदर्य के रहते सौंदर्य का वैभव निस्तेज हो जाता है।

हिन्दी के कुछ साहित्यकार ऐसी भी हैं जो अनेक विधाओं में समान रूप से और पूरी गरिमा के साथ विचरण करते हैं। गिरीश पंकज भी ऐसा एक चर्चित नाम है। एक कहानीकार के रूप में उनकी समस्त कहानियों को जब हम देखते हैं तो हैरत होती है। समकालीन कहानी के बरक्स गिरीश पंकज का कथा–संसार अपनी पहचान रखता है। इनकी तमाम कहानियों में विषय तो आज के ही हैं लेकिन जीवन मूल्य शास्वत हैं। गिरीश पंकज ने यथार्थवाद के नाम पर कहानियों की हत्या नहीं की। इनकी तमाम कहानियाँ मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की कहानियाँ हैं। ए लव स्टोरी वाया फेसबुक की समस्त कहानियाँ भी दिशा बोध से सम्पृक्त है। ये कहानियाँ पाठकों को नैतिक बल प्रदान करती हैं। इस मामले में गिरीश स्वयं को प्रेमचंद की परम्परा का लेखक मानते हैं। ऐसे समय में कोई कथाकार शालीनता के साथ अपने समय की कथा कहे तो वह अभिनंदनीय है। इस निष्कर्ष पर गिरीश पंकज का कथाकार खरा साबित होता है।

संदर्भ :

1. गिरीश पंकज, काशीवास और अन्य कहानियाँ नई दिल्ली; किताबवाले प्रकाशक, 2018 पृष्ठ 118
2. गिरीश पंकज, काशीवास और अन्य कहानियाँ नई दिल्ली; किताबवाले प्रकाशक, 2018 पृष्ठ (ट) फ्लैप पेज
3. गिरीश पंकज, ए लव स्टोरी वाया फेसबुक कानपुर; अमन प्रकाशन, 2018 पृष्ठ 57
4. गिरीश पंकज, ए लव स्टोरी वाया फेसबुक कानपुर; अमन प्रकाशन, 2018, फ्लैप पेज
5. शर्मा सुधीर संपादक, पचास के गिरीश; 167
6. शर्मा सुधीर संपादक, पचास के गिरीश; 169
7. पंकज गिरीश : मेरे जीवन के अनुभव, पृष्ठ 50
8. वही, पृष्ठ 80

❒❒❒

1. शोधार्थी, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगाँव (छ.ग.)
2. शोध निर्देशक, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगाँव (छ.ग.)

महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन

—अजय कुमार यादव
—डॉ. कविता पड़ेगाँवकर

खेलकूद से शरीर स्वस्थ रहता है, स्वस्थ शरीर से ही व्यक्ति अपने जीवन में संघर्ष करते हुए सफलता प्राप्त करता है। खेल मैदान में ही यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी कार्य को अनुशासित तरीके से ही पूरा किया जा सकता है। खेल से ही व्यवहारिक जीवन में अनुशासन के महत्व का पता चलता है। अगर कोई खिलाड़ी खेल के दौरान अनुशासनहीनता करता है, तो पहले उसे चेतावनी फिर दंड दिया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस अध्ययन में जिला हैंडबॉल एसोसिएशन के खिलाड़ियों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि से किया गया। जिसमें 20 महिला खिलाड़ी एवं 20 पुरुष खिलाड़ियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया। व्यक्तित्व के गुणों को जाँचने के लिए मंजू अग्रवाल द्वारा निर्मित बहुपक्षीय व्यक्तित्व इन्वेंटरी का उपयोग किया गया था। समंकों के विश्लेषण हेतु माध्य, माध्यिका एवं t-test का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में सार्थक अन्तर पाया गया है।

परिचय

व्यक्तित्व आधुनिक मनोविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विषय है। व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार का पूर्वकथन भी किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएँ होती हैं जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होतीं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाएँ और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजन करने के लिए होता है।

व्यक्तित्व विकास में जितना महत्व शिक्षा का है उतना ही महत्व खेलों का भी है। शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ही शिक्षार्जन का लाभ उठा सकता है और इसके लिए खेलों को जीवन से जोड़ने की जरूरत होती है। एक संपूर्ण व्यक्ति बनने के लिए शिक्षा के साथ-साथ खेलकूद भी बहुत जरूरी है। खेलकूद से शरीर स्वस्थ रहता है, स्वस्थ शरीर से ही व्यक्ति अपने जीवन में संघर्ष करते हुए सफलता प्राप्त करता है। खेल मैदान में ही यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी कार्य को अनुशासित तरीके से ही पूरा किया जा सकता है। खेल से

ही व्यवहारिक जीवन में अनुशासन के महत्व का पता चलता है। अगर कोई खिलाड़ी खेल के दौरान अनुशासनहीनता करता है, तो पहले उसे चेतावनी फिर दंड दिया जाता है। खेल के बिना जीवन में अनुशासन के महत्व को समझना कठिन है।

देहगान, एहमद, हादी अब्दुल्लाही हादी एवं रेज़ाई, (2014)एली सनयून एवं ओथेक फूमियो (2014) एयादव, रेखा (2014) ए मार्क एस. एलन, स्टेवर्ट ए. वेला व सिल्वेन लेबोर्डे (2014) ए भारद्वाज, रजनी, *खान व वसीम अहमद* (2013) ने खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के लक्षण पर विभिन्न अध्ययन किए।

वास्तव में वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए व्यक्तित्व पर शोध कार्य करने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है, यद्यपि व्यक्तित्व पर पूर्व में उत्कृष्ट एवं उपयोगी कार्य हो चुके हैं किन्तु फिर भी इस विषय पर नवीन कार्य भविष्य में उपयोगी होंगे। अतः शोधकर्ता ने परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को आधार मानकर, व्यक्तित्व पर कार्य करने का निर्णय लिया।

समस्या

''महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन''

अध्ययन का उद्‌देश्य

महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

''महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में सार्थक अन्तर नहीं होगा''

शोध विधि

प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन हेतु जिला हैंडबॉल एसोसिएशन के खिलाड़ियों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि (RENDOM SAMPLING METHOD) से किया गया। जिसमें 20 महिला खिलाड़ी एवं 20 पुरुष खिलाड़ियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया।

चर

साहित्य के पुनरावलोकन एवं विद्वानों के साथ चर्चा के आधार पर, इस अध्ययन के लिए चर के रूप में व्यक्तित्व के गुणों का चयन किया गया।

शोध उपकरण

अध्ययनकर्ता द्वारा व्यक्तित्व के गुणों को जाँचने के लिए मंजू अग्रवाल द्वारा निर्मित बहुपक्षीय व्यक्तित्व इन्वेंटरी का उपयोग व्यक्तित्व लक्षणों का आकलन करने के लिए किया गया था। इन्वेंट्री में 120 आइटम हैं और प्रत्येक 20 आइटम व्यक्तित्व के उपायों से संबंधित हैं- अंतर्मुखी-बहिर्मुखी, आत्म-अवधारणा, स्वतंत्रता-निर्भरता, स्वभाव, समायोजन और चिंता। इसकी वैधता 0.82 है।

समंक संकलन की प्रक्रिया

समंक व्यक्तित्व प्रश्नावली की सहायता से एकत्र किया गया। प्रश्नावली हैंडबॉल खिलाड़ियों के मध्य व्यक्तिगत रुप से अलग-अलग वितरित की गयी। परीक्षण संबंधी सभी आवश्यक निर्देश खिलाड़ियों को दिये गए। अंत में प्रत्येक खिलाड़ियों से प्रश्नावली प्राप्त की गयी।

समंक विश्लेषण हेतु सांख्यिकी तकनीक का प्रयोग

शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राप्तांकों के रूप में समंकों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया। इसमें माध्य, माध्यिका एवं t-test का प्रयोग किया गया।

समंक विश्लेषण एवं परिणाम

शोधार्थी इस शोध कार्य में प्रश्नावली की सहायता से हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व का अध्ययन सांख्यिकीय पद्धति से गणना करके किया गया और सार्थकता की जाँच टी-टेस्ट 0.05 स्तर पर की गयी, जिसमें दोनों समूहों में सार्थक अन्तर पाया गया।

सारणी क्रमांक-1 महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में अन्तर

Categoy	Mean	SD	't' Ratio	Lavel of Confidence
Male	41.66	3.78	12.72	0.05
Female	36.18	4.76		

उपरोक्त सारणी में पुरुष और महिला खिलाड़ी के व्यक्तित्व के गुणों का SD, Mean और T-test, अध्ययन से प्राप्त परिणाम दर्शाया गया है। पुरुष और महिला खिलाड़ी दोनों के औसत स्कोर 41.66 और 36.18 हैं। प्राप्त टी मूल्य 12.72 है जो 0.05 पर अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इससे यह ज्ञात होता है कि पुरुष और महिला खिलाड़ी के व्यक्तित्व के गुणों में महत्वपूर्ण अंतर है।

ग्राफ क्रमांक-1 महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में अन्तर का ग्राफीय प्रदर्शन

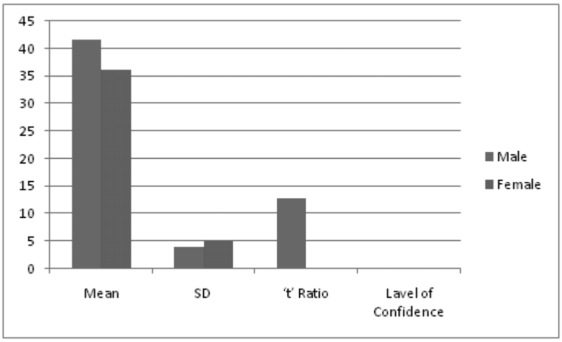

महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में अन्तर ज्ञात पाया गया है। यह सार्थक परिणाम को प्रदर्शित करता है। इससे यह ज्ञात होता है कि पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का स्तर उच्च है। जिसका Lavel of Confidence 0.05 है। अध्ययन से प्राप्त परिणाम दर्शाया गया है। पुरुष और महिला खिलाड़ी दोनों के औसत स्कोर 41.66 और 36.18 हैं। प्राप्त टी मूल्य 12.72 है जो 0.05 पर अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इससे यह ज्ञात होता है कि पुरुष और महिला खिलाड़ी के व्यक्तित्व के गुणों में महत्वपूर्ण अंतर है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों में सार्थक अन्तर पाया गया है। अतः यह परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

सुझाव

1. हैंडबॉल खिलाड़ियों की मनोगामक योग्यताओं का समग्र विश्लेषण भविष्य में संभावित है।
2. महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के व्यक्तित्व के गुणों का अध्ययन भविष्य में संभावित है।

3. महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों की धनात्मक व्यक्तित्व के सभी पक्षों का अध्ययन भविष्य में संभावित है।
4. महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के सकारात्मक व्यक्तित्व के गुण, उनके उत्कृष्ट प्रदर्शन में सहायक होंगे।
5. महिला एवं पुरुष हैंडबॉल खिलाड़ियों के सकारात्मक व्यक्तित्व के गुण, उनके निर्णय क्षमता को बढ़ाने में सहायक होगी।

संदर्भ :

Bhardwaj, Rajnee & Dr. Khan, Waseem Ahmad. (2013) शासकीय विद्यालयों के छात्रों और पब्लिक विद्यालयों के छात्रों के बीच व्यक्तित्व के विकास के रूप का एक तुलनात्मक अध्ययन, Education At The Crossroads Journal, An International Journal of Humanities, APH Pub.Vol. II, Page 76.

Dehagan ahmad, hadi abdullahi & Rezai (2014), भावनात्मक बुद्धि पर वृहद पाँच व्यक्तित्व लक्षणों के प्रभाव पर एक अध्ययन, International Journal of Industrial Engineering Computations

Dr. Dhrul, Indira & Yadav, Preeti. (2014) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच व्यवसाय से संतुष्टि के संबंध में उनके व्यक्तित्व और कुछ जनसांख्यिकीय चर, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 274.

Dr. Ganai, M.Y. & Muhammd, Asharaf Mir. (2013) माध्यमिक स्तर पर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों और गैर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का एक तुलनात्मक अध्ययन, Edu world, A peer reviewed Journal of Education & Humanities, APH Pub., Vol. II, Page 295.

Guleriya, Monika (2014) पंजाब व राजस्थान राज्य के शिक्षित और अशिक्षित माताओं के बच्चों का व्यक्तित्व और मानसिक स्वास्थ्य, उनकी बुद्धि के संबंध में एक तुलनात्मक अध्ययन, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 268.

Ishwari, P. (2004) तमिलनाडु में सहायक प्राथमिक शिक्षा के अधिकारियों का व्यक्तित्व के साथ, प्रशासनिक और शैक्षणिक उत्तरदायित्व का सम्बन्ध, The Primary Teacher, NCERT, Vol. 29, Page 52.

Kumari S. Ashwini & Mayuri K. (2015) व्यक्तित्व के कारक एवं अकादमिक उपलब्धि : ग्रामीण शासकीय विद्यालय के छात्रों पर एक अध्ययन, Indian Psychological Review, Agra Psychological Research Cell, Vol. 84, Page 17.

Kumar, Sunil & Dr. Kumar, Jeetendra. (2014) गुड़गांव जिले की कामकाजी और गैर कामकाजी माताओं के उच्चतर विद्यालयों के बच्चों के व्यक्तित्व लक्षण का अध्ययन, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 62.

Lee sanyun & Othek fumiyo (2014), विद्यालयीन शिक्षा, आय और कैरियर संवर्धन पर व्यक्तित्व लक्षण और व्यवहार संबंधी लक्षण के प्रभाव, Discussion Paper Series 14-E-023, http://www.rieti.go.jp/en/1 RIETI

Mark S. Allen , Stewart A. Vella & Sylvain Laborde. (2014) किशोरावस्था में स्वास्थ्य से संबंधित व्यवहार और व्यक्तित्व के गुणों का विकास, Retrieved from http://www.indianjournals.com/ijor.aspx?target=ijor:gjpe&volume=7&issue=2&article=004

❏❏❏

1. शोधार्थी, भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल
2. प्राध्यापक, भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल

भाषा और व्यक्तित्व

—बसन्त कुमार

जन्म से मृत्युपर्यन्त मानव जितने भी अनुभव प्राप्त करता है उसमें भाषा की अहम भूमिका होती है, जिस प्रकार की भाषा होगी उसका प्रभाव व्यक्ति के अनुभव पर सीधा-सीधा पड़ता है क्योंकि भाषा केवल शब्द या वाक्य नहीं है अपितु भाषा मनोभाव को प्रगट करने का साधन है, जो केवल शब्दों से नहीं बल्कि भाव भंगिमाओं के साथ शब्दों के माध्यम से प्रगट करने का साधन है। भाषा-भाव है, भाषा-लहजा है, भाषा-व्यवहार का तरीका है, भाषा-सभ्यता है, भाषा-व्यक्ति की पहचान है, तो साथ ही साथ भाषा के प्रयोग के जटिल नियम हैं, भाषा व्यवहार की नियमावली है। यही कारण है कि भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष होता है।

भाषा व्यक्तित्व का आइना है, क्योंकि व्यक्ति के भावों की अभिव्यक्ति उसकी भाषा से परिलक्षित होती है। व्यक्ति के क्रियाकलापों को आकार भाषा के माध्यम से प्राप्त होता है, इंसान को इंसान से जोड़ने का काम भाषा करती है, व्यक्ति का परिवार समाज और राष्ट्र में स्थान भाषा के द्वारा ही निर्धारित होता है, यहाँ तक कि व्यक्ति की पहचान उसकी भाषा ही है। भाषा प्रयोग की वस्तु है, भाषा के संबंध में एक कहावत बहुत प्रचलित है **"बातन हाथी पाइये, बातन हाथी पाँव"** अर्थात् आप जिस प्रकार से भाषा का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार से आपको प्रति उत्तर प्राप्त होता है। भाषा के प्रयोग से आपको हाथी (बड़ी से बड़ी चीज) भी प्राप्त हो सकती है और आप हाथी के पाँव तले कुचले जा सकते हैं। अर्थात् एक क्षेत्र विशेष में, घर परिवार समाज में भाषा तो सभी एक ही होती है परन्तु प्रभाव उसके उपयोग का पड़ता है।

भाषा और व्यक्ति का विकास चोली दामन के साथ जैसा है व्यक्ति का विकास भाषा के माध्यम से हुआ और भाषा का विकास व्यक्ति के माध्यम से हुआ। भाषा के बगैर व्यक्ति और समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। जब भाषा का विकास नहीं हुआ था तब व्यक्ति आखेट में अपना जीवन व्यतीत करता था, जैसे-जैसे भाषा विकसित हुई वैसे-वैसे व्यक्ति ने समूह और समाज की संकल्पना सामने आई, आखेट युग से लेकर आज तक के विकास में उपरिवर्धन में भाषा ने ही माध्यम का कार्य किया। जब भी मानव के विकास में भाषा के प्रभाव पर संदेह होता है तो उसके उत्तर के रूप में एक प्रश्न जहन में आता है कि भाषा न होती तो क्या होता? अत: इसके आधार पर नि:संदेह यह कहा जा सकता है कि भाषा ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास का उपकरण है, साधन है। विकास का संरक्षण एवं परिमार्जन भाषा के द्वारा ही संभव है। भाषा के

बगैर विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि कल्पना के लिये भी भाषा की ही आवश्यकता होगी।

भाषा के संदर्भ में चोमस्की महोदय ने कहा है कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। यदि इसका विस्तार किया जाये तो व्यक्ति के अन्दर इसके अपने भाव क्या हैं, क्या व्यक्ति चाह रहा है, उसकी सोच क्या है, को आकार भाषा के माध्यम से ही प्रदान किया जाना संभव है। यहाँ तक कि चोमस्की महोदय ने बताया कि वाक्य रचना के नियम (संरचनात्मक ज्ञान) का ज्ञान आंशिक रूप से जन्मजात होता है। प्राथमिक भाषाई डाटा को इस जन्मजात भाषाई क्षमता के द्वारा पूरक किया जाना चाहिये, यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि एक बिल्ली का का बच्चा और मानव का बच्चा दोनों अगमनात्मक तर्क करने में सक्षम हैं परन्तु मानव के बच्चे में भाषा को समझने एवं उत्पादन करने की क्षमता होती है, परन्तु बिल्ली के बच्चे में यह क्षमता नहीं होती है। चोमस्की ने क्षमता के इस अंतर को भाषा अधिग्रहण उपकरण के रूप में संदर्भित किया और यही मानव के विकसित होने का मूल मंत्र है।

भाषा उपयोग में जितनी सहज और सरल है उतनी ही संवेदनशील है एक छोटा सा परिवर्तन पूरे भाव को बदल देता है, इस हेतु मुझे एक उदाहरण याद आता है कि एक कक्षा में शिक्षक ने बोर्ड पर लिखा-आजबाजारबंदरखाजायेगा। और इसे विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये कहा गया तो कुछ विद्यार्थियों ने इसे आज बाजार बंद रखा जायेगा पढ़ा, तो कुछ ने इसे-आज बाजार बंदर खा जायेगा पढ़ा। अत: भाषा कोई भी हो वह संवेदनशील होती है एक छोटा सा परिवर्तन पूरे अर्थ/भाव को परिवर्तित कर देता है।

भाषा और व्यक्तित्व के संबंध को समझने से पहले भाषा और व्यक्ति के संबंध को समझना आवश्यक है, नवजात बच्चे के जीवित होने न होने की सर्वप्रथम पहचान उसकी आवाज होती है। वह अपने भाव (भूख, प्यास, दर्द, खुशी) आदि को आवाज के माध्यम से प्रगट करता है और यह प्रकृति जन्मजात होती है। जैसे-जैसे उसका शारीरिक विकास होता है वैसे-वैसे उसमें भाषा के उच्चारण की क्षमता विकसित होती जाती है और व्यक्ति इन भावों को अनुभवों को भी संरक्षित/धारण करता चला जाता है। इसका व्यक्ति और व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है, विकास का निर्धारण व्यक्ति की आन्तरिक क्षमता (जन्मजात, जैविक और अर्जित) से तात्पर्य जन्मजात वह क्षमता जो उसे अनुवांशिक रूप से प्राप्त हुई, जैविक और अर्जित जो पूर्व अनुभवों से प्राप्त की है, के साथ बाहरी वातावरण से अर्जित किया करता है, तब उसमें यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है और नित नये अनुभवों, भावों को जन्म देती है। व्यक्ति अपने आप को और बाहरी वातावरण को पहचानता है इन्हीं क्षमताओं के समतुल्य वह अपना प्रदर्शन भी करता है। व्यक्ति अपने आप को उतना ही प्रदर्शित कर सकता है जितनी उसकी आन्तरिक क्षमता होती है। अर्थात व्यक्ति को अपने आप को प्रदर्शित करने की उच्चतम कोटि उसकी अपनी आन्तरिक क्षमता कम या बराबर होती है। वह अपने आप को क्यों और कैसा प्रदर्शित करना चाहता है यह उसकी आन्तरिक क्षमता पर निर्भर करता है। कालान्तर में जब व्यक्ति

के पास अर्जित अनुभव प्रचुर मात्रा में एकत्रित हो जाते है तब व्यक्तित्व का स्वरूप भी स्थायित्व ग्रहण कर लेता है। कोई व्यक्ति अंर्तमुखी है या बहिर्मुखी है वह आन्तरिक शक्तियों के अनुरूप है जिसमें उसकी अर्जित शक्तियों/क्षमताओं की अहम भूमिका होती है।

जितने भी बाहरी अनुभव होते हैं वे अर्जित अनुभवों का रूप धारण करते हैं, वह उसे दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार से प्राप्त होते हैं और इन्हें प्रगट करने का माध्यम और साधन व्यक्ति की भाषा होती है। और इन्हीं अनुभव के आधार पर ही व्यक्ति के गुणों का निर्धारण होता है। ये गुण समग्र रूप में व्यक्ति के प्रकार (type) और लक्षण (traits) का निर्धारण करते हैं।

व्यक्ति के प्रदर्शित रूप को ही व्यक्तित्व कहते हैं, अतः कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के अच्छे, बुरे अनुभवों का आपेक्षित रूप होता है।

जन्म से मृत्युपर्यन्त मानव जितने भी अनुभव प्राप्त करता है उसमें भाषा की अहम भूमिका होती है, जिस प्रकार की भाषा होगी उसका प्रभाव व्यक्ति के अनुभव पर सीधा-सीधा पड़ता है क्योंकि भाषा केवल शब्द या वाक्य नहीं है अपितु भाषा मनोभाव को प्रगट करने का साधन है, जो केवल शब्दों से नहीं बल्कि भाव भंगिमाओं के साथ शब्दों के माध्यम से प्रगट करने का साधन है। भाषा-भाव है, भाषा-लहजा है, भाषा-व्यवहार का तरीका है, भाषा-सभ्यता है, भाषा-व्यक्ति की पहचान है, तो साथ ही साथ भाषा के प्रयोग के जटिल नियम हैं, भाषा व्यवहार की नियमावली है। यही कारण है कि भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। कभी-कभी कड़वी बातों को भी मीठे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और मीठे भाव भी भाषा के माध्यम से कड़वे अनुभव उत्पन्न करता है, अतः कहा जा सकता है कि ''भाषा और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक हैं'' भाषा की खूबसूरती को व्यक्त करते हुए मैं अपने शब्दों को विराम देने की अनुमति चाहता हूँ।

''काने को काना कहोगे तो काना जायेगा रूठ।
और धीरे-धीरे पूछ लो भैया कैसे गई थी फूट।।''

संदर्भ :

- भाई योगेन्द्रजीत, हिन्दी भाषा शिक्षण, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- क्षत्रिय के. मातृभाषा शिक्षण, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- लाल रमन बिहारी, हिन्दी शिक्षण रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ
- रघुनाथ हिन्दी शिक्षण विधि, पंजाब घर जालंधर
- शर्मा लक्ष्मीनारायण, भाषा शिक्षण की विधियाँ और पाठ नियोजन, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- शुक्ल राम चन्द्र, हिन्दी भाषा का इतिहास, DPH नई दिल्ली
- On Language: Chomsky's Classic Works: Language and Responsibility and Reflections on Language Kindle Edition by Noam Chomsky (Author) Format: Kindle Edition

❑❑❑

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, गुरु घासीदास वि.वि., विलासपुर (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ का इतिहास (नामकरण के संदर्भ में)

—मनीष कुमार कुर्रे

प्राचीन समय में छत्तीसगढ़ को दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था। कोसल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द कुशल से हुई है, जिसका अर्थ मुदित अथवा प्रसन्न से है। छत्तीसगढ़ में कोसल या कोसलीय नामक गाँव मल्लार से 16 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। ऐसी मान्यता है कि माता कौशल्या इसी गाँव से थी, जिसके कारण कोसल की उपमा छत्तीसगढ़ को मिली। दक्षिण कोसल का सर्वप्रथम उल्लेख पाणिनी के अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। इस समय तक यह जनपद का स्वरूप धारण कर चुका था।

छत्तीसगढ़ का इतिहास बहुत प्राचीन है। इस विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद अद्यतन जारी है। संभव है कि आने वाले समय में नए तथ्यों का उजागर भी हो जाए जो आज तक हमसे छिपा हुआ है। नामकरण के संदर्भ में भी विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। वर्तमान छत्तीसगढ़ का संबंध प्राचीन गौरव पूर्ण इतिहास से जोड़कर भी देखा जाता है। छत्तीसगढ़ को महाभारत एवं रामायण काल से भी जोड़कर बताया गया है, जिसके साक्ष्य छत्तीसगढ़ में आज भी विद्यामान हैं। वास्तव में यह राज्य मध्यप्रदेश का हिस्सा है, जो दक्षिण पूर्व में स्थित हैं। यह शोध का विषय है कि छत्तीसगढ़ राज्य का नाम कब और कैसे पड़ा? इस धरा को कई नामों से अभिमत किया जाता रहा है यथा:-प्राचीन तोसल या कोसल, महाकोसल, दक्षिण कोसल, दंडकारण्य (महारण्य), दंडकवन, चेदिकोसल, चेदिगढ़, चेदिजनपद, अधिष्ठी, महाकांतार, महाकारण्य, कोसल दक्षिण, कोसल जनपद, दंडक जनपद आदि।

मुख्य शब्द : कोसल, महाकोसल, दक्षिण कोसल, दंडकारण्य, दंडकवन, चेदिकोसल, चेदिगढ़ या चेदिशगढ़, चेदिजनपद, अधिष्ठी, महाकांतार, महाकारण्य, कोसल दक्षिण, कोसल जनपद, दंडक जनपद

उद्देश्य :

1. छत्तीसगढ़ के इतिहास के संदर्भ में नामकरण को उजागर करना।
2. विभिन्न नामों के आधार पर विश्लेषण करना।
3. साहित्य के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ शब्द का प्रयोग।

कोसल : चौथी शताब्दी के प्रयाग प्रशस्ति में कोसल नाम ही उल्लेखित है। उत्कीर्ण लेखों में 'स' एवं 'श' दोनों अक्षरों का प्रयोग किया गया है। वायु पुराण में भी कोसल का ही उल्लेख मिलता है।[1] कालिदास कृत रघुवंशम् में कोसल और उत्तर कोसल का वर्णन मिलता है।[2] दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) राज्य के सर्वप्रथम संस्थापक नरेश वैवस्त मनु के पुत्र सुद्युमन

थे।[3] रतनपुर शाखा के कलचुरी शासक जाजल्य देव के अभिलेख में भी दक्षिण कोसल नाम अंकित है। गुप्त कालीन इलाहाबाद हरिषेण लिखित प्रयाग प्रशस्ति में भी दक्षिण कोसल का ही उल्लेख है।[4]

दक्षिण कोशल/कोसल : प्राचीन समय में छत्तीसगढ़ को दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था। कोसल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द कुशल से हुई है, जिसका अर्थ मुदित अथवा प्रसन्न से है। छत्तीसगढ़ में कोसल या कोसलीय नामक गाँव मल्लार से 16 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। ऐसी मान्यता है कि माता कौशल्या इसी गाँव से थी, जिसके कारण कोसल की उपमा छत्तीसगढ़ को मिली।[5] दक्षिण कोसल का सर्वप्रथम उल्लेख पाणिनी के अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। इस समय तक यह जनपद का स्वरूप धारण कर चुका था। अपने वन गमन के समय श्री राम दंडकारण्य अर्थात् छत्तीसगढ़ में आये और कुछ समय व्यवतीत किये।[6] रामायण से दो कोसल की जानकारी मिलती है। प्रथम : उत्तर कोसल जो सरयू नदी के तट पर विस्तृत फैला हुआ है। द्वितीय : दक्षिण कोसल जो विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में फैला हुआ था। इस समय दक्षिण कोसल के राजा भानुमान थे, जिसका दूसरा नाम भानुमंत था। माता कौशल्या इन्हीं की पुत्री मानी जाती हैं, जिनको भानुमति कहा जाता था। रामायण युग में श्री राम ने अपने पुत्र कुश को दक्षिण दिशा में स्थित दक्षिण कोसल का राज्य दिया और अपने दूसरे पुत्र लव को उत्तर कोसल का अधिपति बनाया। इस समय दक्षिण कोसल सात कोसलों में विभाजित था :

1. मेकल कोसल 2. कांति कोसल 3. चेदिकोसल 4. दक्षिण कोसल 5. काशिकोसल 6. पूर्व कोसल 7. कलिंग कोसल। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने छत्तीसगढ़ को दक्षिण कोसल कहा है।[7]

कालिदास के रामगिरि को रामगढ़ मानने वाले विद्वानों का मत है कि दंडकारण्य प्राचीन छत्तीसगढ़ का वाचक है। पुराणों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि दक्षिण कोसल (अर्थात् आधुनिक छत्तीसगढ़) से भिन्न दंडक एक स्वतंत्र जनपद था। अतएव उसकी अवस्थिति दक्षिण कोसल जनपद में नहीं मानी जा सकती। रामायण के ही साक्ष्य से ज्ञात होता है कि उस युग में दो कोसल थे जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कोसल द्वय पर दो पृथक-पश्थक राजा शासन करते थे :

इमौ कुशीलवौ राजनभविश्यच्य नाराधिप। कोसलेषु कुशं वीरं उत्तरेशु तथा लवम्।।

(रामायण, 7.107.7)

इक्ष्वाकु द्वारा प्रवर्तित सूर्यवंश के राजा उत्तर कोसल पर राज्य करते थे और अयोध्या उनकी राजधानी थी। दशरथ द्वारा सम्पादित अश्वमेघ यज्ञ में भानुमंत नामक किसी कोसल राजा को आमंत्रित किया गया था :-

तथा कोसलराजानं भानुमंतं सुसंस्कृतम्।। (रामायण, 1.13.26)

यह भानुमंत संभवत: दक्षिण कोसल अर्थात् प्राचीन छत्तीसगढ़ का शासक व माता कौशल्या का पिता था।[8]

त्रिपुरी के राजा काकल्य द्वितीय (990 से 1055) के समय कलचुरी वंशीय कलिंग राजा ने दक्षिण पर आक्रमण कर विजय प्राप्त किया और तुमान को राजधानी बनाई। यही तुमान दक्षिण कोसल को सबसे पुरानी राजधानी मानी जाती है। राजिम स्थित मंदिर के एक शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि 11वीं-12वीं शताब्दी में दक्षिण कोसल का अधिकांश क्षेत्र कलचुरी वंश के

अधीन था।[9] इसके पश्चात इसका विस्तृत क्षेत्र महाकोसल कहा जाने लगा। श्री सी.व्ही. वैद्य ने छत्तीसगढ़ को कोसल कहा है।[10]

कोसल के सन्दर्भ में तोसड्डु नामक देश का उल्लेख सुदेवराज के आरंग ताम्रपत्र (EI, XXXII-20) में हुआ, जो आरंग के दक्षिण पूर्व में अवस्थित था तथा जिससे पौराणिक तोसल का संकेत मिलता है। संभव है कालांतर में यह नाम कोसल हो गया हो।[11]

ह्वेसांग ने भी अपने यात्रा 639 ई. के विवरण में लिखा है कि मध्य देश से हीरे लाकर बेचा जाता था। यह मध्य देश महानदी तट स्थित कोसल देशीय सम्बलक या सम्बलपुर से अन्य नहीं है। पूर्व के तट पर एक बंदरगाह (पोर्ट) था, जिसका नाम 'कोसल' था। कोसल नामक यह बंदरगाह कोसल देशीय हीरे के व्यापार के कारण विदेश में विख्यात रहा होगा ऐसा अनुमान किया जाता है।[12]

महाकोसल :- महाकोसल नाम का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इस सन्दर्भ में डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा है- "दंडकारण्य क्षेत्र दक्षिण कोसल कहलाता था। महाकोसल कब और क्यों और किसके कारण चल पड़ा? इसका कोई पक्का पता नहीं जान पड़ता। सहस्त्रार्जुन के वंशज चेदि, हैहयों ने जिनका इस ओर डेढ़ हजार वर्ष तक राज्य रहा, इसकी महत्ता बढ़ाने के लिए इसे महाकोसल कहना प्रारम्भ कर दिया। जैसे :- नदी का नाम महानदी हो गया, आराध्य देवी का नाम महामाया हो गया, छोटे इलाके का नाम महासमुंद हो गया, राजाओं का नाम महाशिव गुप्त हो गया आदि। यही महाकोसल आज का छत्तीसगढ़ कहलाता है"।[13] मि. कनिंघम ने अपने पुरातात्विक रिपोर्ट आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (1881-82) की रिपोर्ट में छत्तीसगढ़ का पुराना नाम 'महाकोसल' बतलाया।[14] हरिठाकुर के अनुसार प्राचीन छत्तीसगढ़ कोसल नाम से प्रसिद्ध था। मालवी प्रसाद श्रीवास्तव ने छत्तीसगढ़ शीर्षक कविता में इसे महाकोसल कहा है :-

महाकोसल का यह शुभनाम, मिला था जिसे वीरता जन्य नाम,
जहाँ ये मोरध्वज से वीर विश्वविजयी बल गुण के धाम।।[15]

पंडित लोचन प्रसाद पाण्डेय ने महाकोसल का गुणगान इन पंक्तियों में किया है :-

हमें है स्वर्ग से प्यारा, महाकोसल-महाकोसल। हमारे नेत्र का तारा, महाकोसल-महाकोसल।
महानदी जहं बहत महामाया जहं राजत। नरपति महाशिव तथा महाभव क्रम सो भाजत।
निकट महाकांतार राज्य जाके छवि छाजे। दक्षिण दिशि महं देश महाकोसल सोई राजे।
चित्रोत्पला बहत जहुं सरिता है कोसल के तीरा। पुण्य क्षेत्र बन गिरि छवि अनुपम, उपजे कंचन हीरा।।[16]

माहाकांतार :-

वैदिक काल में यह भू-भाग माहाकांतार नाम से प्रसिद्ध था। माहाकांतार अर्थात् घना जंगल जो दण्डक क्षेत्र था। आर्यों के दक्षिण भारत में प्रवेश के पूर्व उन्हें माहाकांतार से होकर जाना पड़ता था। इसी कारण इसे दक्षिणापथ भी (दक्षिण भारत जाने का मार्ग) कहा जाता था। यह भी माना जाता है कि प्रसिद्ध नागार्जुन एक रोमन व्यवसायी के कन्या से प्रेम करते थे और इसी कारण वे इस रास्ते से व्यापार के लिए जाते थे। उस समय इसे दक्षिणापथ ही कहा जाता था।[17]

दक्षिणापथ :-

दक्षिणापथ का शाब्दिक अर्थ दक्षिणवर्ती मार्ग है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद (10.161.18), एतरेय ब्राम्हण (7.34), बौद्धायन धर्म सूत्र (1.1.2.13), जैमिनीय उपनिषद् (2.440),

प्रश्नोपनिषद् (2.1), वृहदारण्याकोपनिषद् (2.6.3), महाभारत (सभापर्व 31.17), मार्कण्डेय पुराण (57.45), वायु पुराण (45.104.,124.88.11), मत्स्यपुराण (112.46), विष्णु पुराण (4.2.3.), भागवत पुराण (9.1.41), राजतरंगिणी (4.152.,8.227) आदि संस्कृत ग्रंथों व समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से हुआ है। जिसकी चर्चा फा-हियान (Travels of Fa-Hian,ed.s.bcal. p-139) के यात्रा विवरण में मिलती है। पुराणों के विवरण से ज्ञात हो जाता है कि नर्मदा का दक्षिणवर्ती अंचल ही दक्षिणापथ का वाचक था। वायु पुराण (45.104) में यह चर्चा है कि गोदावरी दक्षिणापथ में प्रवाहित होती थी। महाभारत में भी तेलवाहा, शबरी व गोदावरी का उल्लेख मिलता है। पालि साहित्य में दक्षिणापथ को गोदावरी के तट पर अवस्थित बताया गया है।[18]

दंडकारण्य :- दंडकारण्य का सर्वप्रथम उल्लेख आदि कवि वाल्मीकि के रामायण में मिलता है। इस आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि विंध्य क्षेत्र के दक्षिण व गोदावरी के उत्तर पूर्व वन्य भाग को ही दंडकारण्य कहा जाता था। (अरण्यकांड, 10) यहाँ एक उद्धरण प्रस्तुत है जिससे दंडकारण्य की अवस्थिति का ज्ञान हो सकेगा:-

प्रविश्य तु महारन्य दंडकारण्यमात्मवान्। रामो ददर्श दुधुर्ष्ताप्साश्रममंडलम्।।

(अरण्यकांड, 1)

उपर्युक्त श्लोकांतर्गत प्रयुक्त दंडकारण्य की व्याख्या रामानुजाचार्य ने इस प्रकार की है :-

दंडकस्य राज्ञो देश: शुक्र शापवशादरण्यमभूत। तत: प्रभृति दंडकारण्य संज्ञा।।

यहाँ एक संकेत यह भी कि दंडकारण्यक अपर पर्याय महारण्य भी था। जो समुद्र गुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का महाकांतार ही है। वह दंडकारण्य :-

शरण्यं सर्वभूतानां सम्मृष्टाजिरं सदा। मृगैबर्हुभिराकीर्ण पथिसंघै: समावश्तम्।।

(अरण्यकांड, 3.1.3)

एक आधार यह भी कि यहाँ महावृक्ष अर्थात शालवृक्ष तथा कंद-मूल की प्रचुरता के कारण इसका नाम महाकान्तार या दंडकवन माना जाता है :-

समिद्भिस्तोयकलशै: फलमूलैश्च शोभितम्। आरण्यैश्च महावृक्षै: पुष्पै: स्वादुफलैर्वृतम्।।

(अरण्यकांड, 3.1.15)[19]

कुछ विद्वानों ने प्राचीन बस्तर को ही दंडकारण्य माना है। जो विंध्याचल तथा शैवल पर्वत के मध्य अवस्थित था :-

विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये (अरण्यकांड, 3.12.14)

कालिदास के रघुवंशम् (12.9) में भी दंडकारण्य का जो वर्णन है :-

स सीतालक्ष्मणसख: सत्याद्गुरूमलोपयन्। विदेश दंडकारण्यं प्रत्येकं च सतां मन:।।

(रघुवंशम्, 12.9)

रैप्सन ने (Ancient India, page-116) बहुत पहले महानदी तथा गोदावरी के मध्य क्षेत्र को ही दंडकारण्य माना था। यह भी की शुक्तिमत, ऋक्षवान् तथा विंध्याचल दक्षिणपथ की सीमा बनाते थे।

दंडकारण्य को प्राचीन बस्तर के रूप में सिद्ध करने वाले विद्वानों में मिलिन्दपहों (पृ.130), के आधार पर कनिंघम (Ancient Geography of India, page-591) तथा पौराणिक साक्ष्यों

के आधार पर एस. एम. अली (The Geography ot the puranas, New Dehli, 1966, page-157) ने भी प्राचीन बस्तर को ही दंडकारण्य का उपलक्षक माना है।[20]

अधिष्ठी :-

प्रसिद्ध शास्त्री टालेमी का मत है कि अधिष्ठान पर्वत माला इसके दक्षिण में होने के कारण यह अंचल 'अधिष्ठी' कहलाया हो। यही कालांतर में अधिष से छत्तीस हो गया। इस विचार से मि. कनिंघम भी सहमत हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

चेदिशगढ़ :- रायबहादुर हीरालाल का मत है कि यह राज्य चेदि शासकों के अधीन भी रहा था। अतः उसे चेदिशगढ़ कहा गया। छत्तीसगढ़ को चेदिशगढ़ का ही अपभ्रंश रूप माना जाता है। रतनपुर के शासक चेदि कहलाते और उनके द्वारा चलाया गया संवत् चेदि संवत् कहलाता था। बिलासपुर आमोदा ग्राम में प्राप्त अभिलेख में चेदिस्य संवत् 831 अंकित है।[21] इंडियन एंटिक्यूरी (1933) में प्रो. रायबहादुर हीरालाल ने कहा है कि छत्तीसगढ़ कभी चेदिशगढ़ रहा है लेकिन फिर भी चेदिशगढ़ से छत्तीसगढ़ की ध्वनि विकास संभव नहीं है। यह परिवर्तन ध्वनि नियम के विरुद्ध जान पड़ता है। भाषा विज्ञान के दृष्टि से छत्तीस की व्युत्पति-शटत्रिंशत्-छत्तीस, छत्तिसा-छत्तीस इस प्रकार होता है।[22] अतः उक्त व्युत्पत्ति खींचतान कर ही की गयी है। इसलिए इसे कल्पना मात्र मानते हैं। लेकिन चेदि शासकों के बात को नकारा भी नहीं जा सकता।

गढ़ का वाचक छत्तीसगढ़ :-

छत्तीसगढ़ का नामकरण गढ़ों के आधार पर भी किया जाता है। अर्थात् छत्तीसगढ़ शब्द का अर्थ है :-'36 गढ़' या 'किले'। कुछ विद्वानों का मानना है कि गढ़ों के आधार पर इन गढ़ों में शिवनाथ नदी के उत्तर में 18 गढ़ और शिवनाथ नदी के दक्षिण में 18 गढ़ थे। कुल 18+18 = 36 गढ़ थे।

हेविट के सेटलमेंट रिपोर्ट सन् 1868 के अनुसार गढ़ों के नाम निम्नानुसार थे-

शिवनाथ के उत्तरी भाग के गढ़ जो रतनपुर राज्य के अंतर्गत थे :-

1. रतनपुर 2. मारो 3. विजयपुर 4. खरोद 5. कोटगढ़ 6. सोठीगढ़ 7. नवागढ़ 8. ओखरगढ़ 9. पंडरभाठा 10. सेमरियागढ़ 11. मदनपुर (चांपा जमींदार) 12. कोसगई (कोसागढ़) छूरी जमींदारी 13. लाफागढ़ 14. केंदागढ़ 15. मातिनगढ़ 16. उपरोडागढ़ 17. कंडरी (पेंड्रा) 18. करक्कटी (अब बघेलखण्ड में)।

शिवनाथ के दक्षिण भाग के गढ़ जो रायपुर राज्य के अंतर्गत थे :-

1. रायपुर 2. पाटन 3. सिमगा 4. सिंगारपुर 5. लबन 6. अमीरा 7. दुर्ग 8. सरदा या सारधा 9. सिरसा 10. मोहदी 11. खलारी 12. सिरपुर 13. फिंगेश्वर 14. राजिम 15. सिंघनगढ़ या सिंगारगढ़ 16. सुअरमार 17. टेंगनागढ़ 18. अकलतरा या अकलबाड़ा।[23]

1457 वि. के अंतर्गत ये गढ़ कलचुरी शासन काल के रतनपुर शाखा एवं रायपुर शाखा के अंतर्गत आते थे। प्राचीन समय में इन गढ़ों या दुर्ग को सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता था। मि. इलियट की रिपोर्ट भी यह प्रमाणित करती है कि बस्तर के राजा भैरवदेव ने अपने छोटे भाई को 18 गढ़ दिये थे। इसी तरह सम्बलपुर और पाटन के जाट राज्यों के सम्बन्ध में 18 गढ़ों का नाम दिया जाता है। कालीहांडी राज्य जो पहले करोंद कहलाता था, भी पहले 18 गढ़ों में विभाजित था। मि. ब्लंट ने भी गढ़ों की बात स्वीकार किया और बताया कि एक-एक गढ़ के अंतर्गत 84 गाँव होते थे।[24]

गढ़ शब्द की व्याख्या :-

ऋग्वेद में एक अन्य शब्द 'गर्त' का उल्लेख मिलता है। इस शब्द का दो अर्थ बताया गया है-मानव आवास तथा गाड़ी। निरुक्त ने इसका तीसरा अर्थ दिया है-'गड्ढा'। किले के चारों ओर बना गड्ढा गर्त कहा जाता है। गढ़ शब्द की उत्पत्ति इसकी संरचना तथा उपयोगिता के कारण इसी गर्त से हुई है।

एक अन्य शब्द 'कोट' है जो परकोटा का लघु रूप है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'प्राकार' शब्द से हुई है जिसका अर्थ सुरक्षा दिवाल से है। गढ़ शब्द की उत्पत्ति 'गर्त' से हुई जो, जिसका तात्पर्य 'गड्ढे' से है, जिसे संस्कृत में 'परिखा' कहा जाता है। ज्ञातव्य हो कि कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में गढ़ों को दुर्ग कि संज्ञा दी है।[25]

मध्यकालीन सामंत भी सुरक्षा कि दृष्टि से गढ़ों का निर्माण कराते थे। बंदूक और करतूसों के आविष्कार के पूर्व सामंतों की रक्षा की दृष्टि से यह गढ़ अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते थे। राजपूत काल में भी दुर्गों (गढ़ों) का निर्माण अनिवार्य हो गया था। इस अवधि में गढ़ों के स्थापना का इतना अधिक महत्व हो गया कि इस गढ़ बहुल क्षेत्र का नाम छत्तीसगढ़ पड़ गया।[26]

खैरागढ़ के प्रद्युमन सिंह ने लिखा है-प्राचीन समय में छत्तीसगढ़ विभागों में 36 राजा राज करते थे। इसमें 36 राजधानियाँ थीं और प्रत्येक राजधानी में एक गढ़ था। गोपाल राय बिंझिया के गीत वर्णन में गढ़ों की महत्ता की ओर इंगित करते हुए गढ़ों की संख्या की गणना की जाती थी :-

कतेक राजा के परगना ,सात राजा के संजारी। सोना राजा के बलौद, असी राजा के धमधा।
बावन के गढ़, बावन के मंडीला, बावन के वनराज। अठारह गढ़ में रतनपुर और अठारह में राईपुर।।[27]

पंडित शुकलाल प्रसाद पाण्डेय छत्तीसगढ़ का गुणगान निम्न पंक्तियों में किया है :-

कहलाती थी पूर्व चेदि ही दक्षिण कोसल। गढ़ थे दृढ़ छत्तीस, नृपों के यही महाबल।
इसलिए तो नाम पड़ा छत्तीसगढ़ इसका। जैसा इसका भाग्य जगा, जागा त्यो किसका।
श्रीपुर भांदक औ रतनपुर थे इसकी राजधानियाँ। चेरी थी श्री औ शारदा, दोनों ही महारानियाँ।[28]

कुल या वंश के आधार पर :-

छत्तीसगढ़ के नामकरण के सम्बन्ध में छत्तीस कुलों या वंशों के क्षत्रियों का भी उल्लेख मिलता है, जिसे कुरी अर्थात् कुल या वंश से संबंधित माना जाता है। इस बात का प्रमाण गोपालचंद्र मिश्र कवि के खूबतमासा (1689) और बाबू रेवाराम कृत विक्रमविलास के निम्न पंक्तियों में मिलता है :-

1. बसै छत्तीस कुरी सब दिन के बनवारी सब के। (गोपालचंद्र मिश्र)[29]
2. बसत नगर शोभा की खानि चारि बरन निज धरम निदान।
   और कुरी छत्तीस है तहां रूपराशि गुन पुरन महां।। (बाबू रेवाराम)[30]

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (1881-82) की रिपोर्ट में श्री जे.डी. बेगलर ने लिखा है :- इस क्षेत्र का नाम छत्तीस-घर था और कालांतर में छत्तीसगढ़ हो गया। यह बिहार के एक किंवदंतियों पर आधारित था, जिसमें 36 घर बिहार से आकर बसे थे। जिसे इतिहासकार पी.एन. बोस ने अस्वीकार कर दिया।[31]

साहित्य में छत्तीसगढ़ शब्द का प्रयोग :-

साहित्य में छत्तीसगढ़ नाम का प्रथम प्रयोग खैरागढ़ रियासत के राजा लक्ष्मीनिधि राय के आश्रित चारण या भाट कवि दलराम राव ने अपने आश्रयदाता राजा के प्रशस्ति में 1497 ई. में किया था। वह छंद इस प्रकार था :-

लक्ष्मीनिधि राय सुनौ चित्त दे, गढ़ छत्तीस में न गढ़ैया रही।
मरदुमी रही नहि मरदन के, फेर हिम्मत से न लड़ैया रही।
भव-भाव भरे सव काँप रहे, भय है नहिं जाय डरैया रही।
दलराम भनै सरकार सुनौ, नश्प कोड न टाल अड़ैया रही।।

इसके पश्चात् साहित्य के क्षेत्र में द्वितीय बार छत्तीसगढ़ शब्द प्रयोग रतनपुर के कवि गोपालचंद्र मिश्र ने अपनी पुस्तक खूब तमासा में सन् 1689 (संवत् 1746) में किया :-

छत्तीसगढ़ गाढ़े जहाँ बड़े गढ़ोई जानि। सेवा स्वामिन को रहे, सके ऐंड को मानि।।[32]

साहित्य में हिंदी के जिन कवियों की रचनाओं में छत्तीसगढ़ शब्द का उल्लेख मिलता है उनका समय 300 से 400 वर्षों से अधिक नहीं जान पड़ता। पंडित लोचन प्रसाद पाण्डेय ने 'ए ग्रामर ऑफ छत्तीसगढ़ी डायलेक्ट' की भूमिका में ऐसे कवियों में गोपालचंद्र मिश्र (रतनपुर हैहयवंशी राजा राजसिंह कार्यकाल:-1689-1712 ई.) प्रहलाद दुबे और बाबू रेवाराम कायस्थ का नाम गिनाया है। बाबू रेवाराम ने सिंहासन बत्तीसी के पद्यानुवाद विक्रमविलास (संवत् 1896 वि.) नामक ग्रंथ में दक्षिण कोसल और छत्तीसगढ़ शब्द के व्यवहार किया है :-

तिनमें दक्षिण कोसल देसा, जहां हरि औतु केसरी बेसा।
तासु मध्य छत्तीसगढ़ पावन, पुण्यभूमि सुर मुनि मन भावन।।[33]

इसी तरह गोपालचंद्र मिश्र के खूब तमासा में उल्लेख मिलता है :-

देस रतनपुर राजसिंह को सहर राजपुर सोहै।

इसके पूर्व प्राचीन कवियों ने इस क्षेत्र को छत्तीसगढ़ तो नहीं कहा लेकिन रतनपुर का उल्लेख अवश्य मिलता है :-

दक्खिन दहिने रहै तिलंगा, उत्तर माँझ होय करह कटंगा।
माँझ रतनपुर सौह दुआरा, झारखंड ये बांय पहारा।।

उस समय दक्षिण की ओर रतनपुर प्रसिद्ध नगरी थी। हो सकता है जायसी का आशय इसी रतनपुर से हो। जहाँगीरनामा में भी रतनपुर के सम्राट कल्याणशाह का उल्लेख मिलता है।[34]

कुछ विद्वानों का मानना है कि इस भू-भाग के लिए छत्तीसगढ़ नाम 1493 ई. के लगभग प्रचार में आया लेकिन अधिकारिक रूप में इस क्षेत्र के लिए छत्तीसगढ़ शब्द का प्रयोग प्रथम बार 1795 ई. में किया गया। इससे यह अनुमान किया जाता है कि संभवत: मराठाकाल में ही इस नाम को प्रसिद्धि मिली हो। जिसका उल्लेख बिलासपुर गजेटियर में हुआ है।[35] छत्तीसगढ़ नामकरण आधुनिक काल में हुआ और इसी कारण प्राचीन या मध्यकालीन ग्रंथों में छत्तीसगढ़ नामक किसी स्थल या निवासियों का उल्लेख नहीं मिलता। अपने अंचल के बारे में लोगों को श्रद्धा रहती है और इसी श्रद्धावस छत्तीसगढ़ अंचल के द्विवेदी युगीन कवि शुकलाल प्रसाद पाण्डेय ने लिखा है :-

ये हमर देस छत्तिसगढ़ आगू रहिस जगत सिरमौर।
दक्खिन कौसल नांव रहिस है मुलुक-मुलुक मा सोर।।[36]

निष्कर्ष :-

प्राप्त स्रोतों के आधार पर हम पाते हैं कि छत्तीसगढ़ का नामकरण भिन्न-भिन्न मतों पर आधारित है। कुछ काल्पनिक प्रतीत होते हैं तो कुछ इतिहास के प्रमाणिक दस्तावेज भी प्रस्तुत करते हैं। छत्तीसगढ़ के नामकरण के सम्बन्ध में प्रस्तुत समस्त तर्कों, मतों का अध्ययन एवं अनुशीलन आज भी जारी है। कोसल से छत्तीसगढ़ नाम की यात्रा किस समय प्रारंभ हुई, यह निश्चित तौर पर कह पाना टेड़ी-खीर है। फिर भी इन सभी मतों को नाकारा नहीं जा सकता कि छत्तीसगढ़ का सम्बन्ध प्राचीन कोसल से रहा है। छत्तीसगढ़ गौरव नामक द्विवेदी युगीन खण्ड-काव्य में पंडित शुकलाल प्रसाद पांडेय ने छत्तीसगढ़ के विभिन्न नामों को इस तरह प्रस्तुत किया है :-

सी.पी. हिंदी जिले प्रकृति के महाराम से। थे पहिले ख्यात महाकांतार नाम से।
रामायण कालीन दंडकारण्य नाम था। वन-पर्वत से ढका बड़ा नयनाभिराम था।
पुनि चेदि नाम विख्यात, फिर नाम गोंडवाना हुआ।
कहलाता मध्यप्रदेश अब खेल चुका अगणित जुआ।

संदर्भ :

1. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास, नरेन्द्र देव वर्मा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी अकादमी रायपुर, 2009, पृष्ठ-24
2. छत्तीसगढ़ का समग्र इतिहास, डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ला, डॉ. (श्रीमती) अर्चना शुक्ला, मातुश्री पब्लिकेशन श्री राम नगर रायपुर, संस्करण 2018, पृष्ठ-01
3. तपश्चर्या एवं आत्मचिंतन गुरु घासीदास, बलदेव प्रसाद, जय प्रकाश मानस, रामशरण टंडन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ-24
4. समग्र छत्तीसगढ़, हीरालाल शुक्ल एवं अन्य, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकदमी रायपुर, संस्करण 2017, पृष्ठ-10
5. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. रामकुमार बेहार, छत्तीसगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादामी रायपुर, चतुर्थ संस्करण 2018, पृष्ठ-13
6. दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़ का इतिहास तथा वास्तुशिल्प प्रारंभ से लेकर 13वीं शती तक), डॉ. श्याम कुमार पांडेय, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ-29
7. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ-291
8. लंका की खोज, डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-84/85/86/87/88/89
9. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ-292
10. छत्तीसगढ़ इतिहास एवं संस्कृति (कोसल से छत्तीसगढ़ तक), डॉ. संजय अलंग, अनामिका प्रकाशन, रायपुर, 2019, पृष्ठ-16
11. लंका की खोज, डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-31
12. छत्तीसगढ़ी लोकजीवन एवं लोक साहित्य का अध्ययन, दयाशंकर शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ-18
13. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. रामकुमार बेहार, छत्तीसगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादामी रायपुर, चतुर्थ संस्करण 2018, पृष्ठ-13/14
14. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. भगवान सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी भोपाल, प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ-05
15. तपश्चर्या एवं आत्मचिंतन गुरु घासीदास, बलदेव प्रसाद, जय प्रकाश मानस, रामशरण टंडन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ-23/24

16. छत्तीसगढ़ी लोकजीवन एवं लोक साहित्य का अध्ययन, दयाशंकर शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ–20/21
17. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ–290/291
18. लंका की खोज, डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ–36
19. प्राचीन छत्तीसगढ़, प्यारेलाल गुप्त, प्रकाशक पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ–42/43
20. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. भगवान सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी भोपाल, प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ–05
21. छत्तीसगढ़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. शंकरशेष, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, संस्करण 1973, पृष्ठ–04
22. छत्तीसगढ़ी लोकजीवन एवं लोक साहित्य का अध्ययन, दयाशंकर शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ–18
23. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. भगवान सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी भोपाल, प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ–09/10
24. दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़ का इतिहास तथा वास्तुशिल्प प्रारंभ से लेकर 13 वीं शती तक), डॉ. श्याम कुमार पांडेय, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ–25/26
25. छत्तीसगढ़ का इतिहास (1818–1854), डॉ. भगवान सिंह वर्मा, सेंट्रल बुक हॉउस, रायपुर, 1986, पृष्ठ–07
26. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास, नरेन्द्र देव वर्मा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी अकादमी रायपुर, 2009, पृष्ठ–21/22
27. छत्तीसगढ़ गौरव, शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1972, पृष्ठ–6
28. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ–298
29. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ–297
30. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. भगवान सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादामी भोपाल, प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ–06/07
31. छत्तीसगढ़ का इतिहास, डॉ. रामकुमार बेहार, छत्तीसगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादामी रायपुर, चतुर्थ संस्करण 2018, पृष्ठ–16
32. छत्तीसगढ़ी बोली व्याकरण एवं कोश, डॉ. कांति कुमार जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2018, पृष्ठ–28
33. छत्तीसगढ़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. शंकरशेष, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, संस्करण 1973, पृष्ठ–06
34. प्राचीन छत्तीसगढ़, प्यारेलाल गुप्त, प्रकाशक पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ–38
35. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन (प्रथम भाग), मदन लाल गुप्ता, भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर, मध्यप्रदेश, 1996, पृष्ठ–300
36. छत्तीसगढ़ गौरव, शुकलाल प्रसाद पांडेय, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1972, पृष्ठ–1/53

❑❑❑

हिन्दी विभाग, शास. दिग्विजय महा. राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़
मेरेगाँव, अम्बागढ़ चौकी, राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़–491665, मो.नं. 9669226959 ईमेल– manishkumarkurreymkk@gmail.com

डॉ. गणेश खरे का हिन्दी साहित्य में योगदान

—चैतराम यादव
—डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत

डॉ. खरे जी ने लेखन कार्य 1954 से प्रारंभ किया था, तब से लेकर, अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक साहित्य की हर विधा से संबंधित रचनाएँ लिखे हैं। समीक्षा साहित्य से संबंधित 11 कृतियाँ हैं, 5 ऐतिहासिक उपन्यासों को मिलाकर कुल 14 उपन्यास लिखे हैं तथा इनके अतिरिक्त, लघु कथाएँ, योग, स्फुट रचनाएँ, नव साक्षर साहित्य, संपादित एवं पुरस्कृत नव साक्षर साहित्य आदि आपकी कई उल्लेखनीय कृतियाँ प्रकाशित हैं।

डॉ. गणेश खरे साहित्य जगत के एक अनुभवी, स्वाभिमानी व्यक्ति के साथ-साथ, सादगीपूर्ण, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी वरिष्ठ साहित्यकार थे। इन्होंने ख्याति प्राप्त प्रखर आलोचक एवं भाषाविद् आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के मार्गदर्शन एवं दिशा-निर्देशन में एम.ए. हिन्दी एवं पीएच-डी की उपाधि सागर विश्वविद्यालय सागर से प्राप्त की। उन्होंने छत्तीसगढ़ के उच्च शिक्षा विभाग में विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापक एवं प्राचार्य के रुप में सेवायें दीं। डॉ. खरे एक शोध-निर्देशक थे। उनके निर्देशन में 30 से अधिक शोधार्थियों ने पीएच-डी की उपाधि प्राप्त की है। आपका राजनांदगाँव जिले से गजानन माधव मुक्तिबोध, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बलदेव प्रसाद मिश्र, विनोद कुमार शुक्ल जैसी हस्तियों से नाता रहा है।

वरिष्ठ साहित्यकार प्रोफेसर डॉ. गणेश खरे का जन्म 15 जनवरी, 1937 को ग्राम-केवलारी, तहसील-पथरिया, जिला-दमोह (म.प्र.) में हुआ था। खरे जी को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 34 वर्षों के अध्यापन कार्य का अनुभव था। इसमें वे 14 वर्षों तक शासकीय महाविद्यालय में प्राचार्य भी रहे और 1997 में सेवानिवृत्त होकर साहित्य साधना करते रहे। वे स्वयं 30 से अधिक पीएच-डी शोधकर्ताओं का मार्गदर्शन कर चुके हैं। डॉ. खरे हिन्दी जगत के प्रखर आलोचक एवं भाषाविद् आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के मार्गदर्शन में ही सागर विश्वविद्यालय से अध्ययन एवं शोधकार्य संपन्न किये थे। राजनांदगाँव (छ.ग.) के कमला कॉलेज रोड स्थित गायत्री कॉलोनी निवासी डॉ. खरे राजनांदगाँव के दिग्विजय कॉलेज में हिन्दी के प्रोफेसर के रूप में लंबे समय तक सेवा देने के बाद घुमका महाविद्यालय से प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए थे। उन्होंने 14 उपन्यास, 11 समीक्षात्मक साहित्य ग्रंथ, हिन्दी भाषा एवं व्याकरण

की 6 किताबें, 6 लघु कहानियाँ, 8 नाटक, 10 स्फुट रचना, 45 एकांकी, 6 काव्य संकलन, 21 नव साक्षर साहित्य संपादित ग्रंथ एवं पुरस्कृत साक्षर साहित्य आदि लगभग 150 पुस्तकें लिखी हैं तथा वे प्रकाशित भी हो चुकी हैं। वे एक शोध-निर्देशक भी थे। आपका राजनांदगाँव जिले से गजानन माधव मुक्तिबोध, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, विनोद कुमार शुक्ल और बलदेव प्रसाद मिश्र जैसी हस्तियों से नाता रहा है। खरे जी के पिता श्री दुर्गा नारायण खरे जी का राष्ट्रीय नेताओं तथा द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों से संपर्क था। उनकी राष्ट्रीय कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। माता जी ललिता देवी एक धर्मपरायण महिला थीं। इन्हें विभिन्न बीमारियों के इलाज व दवाईयों का अच्छा ज्ञान था। वे गांव में पुरुषों एवं महिलाओं का मुफ्त में इलाज भी करती थीं।

ऐसे माता-पिता के सुपुत्र डॉ. खरे साहित्य मर्मज्ञ, एक कर्मवीर, एकांतवासी साधक थे। जो जीवन भर साहित्य साधना में लगे रहे। वे मृदुभाषी, सरल, सहज परंतु गंभीर व्यक्तित्व के धनी थे। उनके आकर्षण से आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही उबर पाएँ क्योंकि उनके लिए वे एक प्रेरणा स्रोत भी थे। वे एक साधारण व्यक्तित्व लिये हुए असाधारण थे। ऐसे व्यक्ति संसार में कम ही होते हैं। 85 वर्षीय डॉ. खरे ने रायपुर के निजी अस्पताल में 26 दिसम्बर 2020 को अंतिम सांस ली।

डॉ. खरे का रचनाकार व्यक्तित्व बहुआयामी व विविधतापूर्ण था। अपनी रचना-यात्रा में खरे जी ने जिस ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक तत्वों से प्रेरणा प्राप्त की, वह उनकी रचना का आधार बनी। वह साहित्य फलक में एक ऐसे तारे के समान थे, जो हमेशा चमकते रहे। डॉ. खरे ने साहित्य जगत में लगभग सभी विधाओं में लिखे हैं, लेकिन मुख्य रूप से वे लेखक ही थे। उन्होंने समाज, शिक्षा, धर्म, साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पक्षों के स्वरूप को अपने साहित्य का विषय बनाया।

डॉ. खरे जी ने लेखन कार्य 1954 से प्रारंभ किया था, तब से लेकर, अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक साहित्य की हर विधा से संबंधित रचनाएँ लिखे हैं। समीक्षा साहित्य से संबंधित 11 कृतियाँ हैं, 5 ऐतिहासिक उपन्यासों को मिलाकर कुल 14 उपन्यास लिखे हैं तथा इनके अतिरिक्त, लघु कथाएँ, योग, स्फुट रचनाएँ, नव साक्षर साहित्य, संपादित एवं पुरस्कृत नव साक्षर साहित्य आदि आपकी कई उल्लेखनीय कृतियाँ प्रकाशित हैं। आपकी दो पुस्तक पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के कला संकाय के पाठ्यक्रम में निर्धारित थी। उनमें से एक व्यावहारिक हिन्दी तथा दूसरी क्रांतिदूत उपन्यास जुड़ी हुई थी। क्रांतिदूत उपन्यास में छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव जिला के छात्र-आंदोलन, रियासती जीवन, मिल-मजदूरों के शोषण की कथा तथा भारतीय क्रांतिकालीन जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया गया है। क्रांतिदूत में इन सारी घटनाओं को एक क्रम-व्यवस्था के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।[1] इस उपन्यास में ठाकुर प्यारेलाल भारतीय स्वतंत्रता के अग्रदूत

रहे थे। इनमें से कुछ ऐसी घटना हुई जो प्रदेश एवं देश के इतिहास में सर्वप्रथम राजनांदगाँव शहर में घटित हुई।

छत्तीसगढ़ के उच्चशिक्षा विभाग में भिन्न-भिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापक एवं प्राचार्य के रूप में 34 वर्षों की सेवा प्रदान की। वे शोध निर्देशक थे, उनके निर्देशन में 30 शोधार्थियों को पीएच-डी की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। आपने पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि. रायपुर के अतिरिक्त इंदिरा कला संगीत वि.वि. खैरागढ़ तथा महर्षि महेश योगी विश्वविद्यालय जबलपुर में शोध निर्देशक के रूप में अपनी सेवायें दीं।[2]

डॉ. खरे की सबसे पहली रचना कविता के रूप में सृजित हुई, जो सन् 1954 को सागर में स्थानीय समाचार पत्र 'राही' में प्रकाशित हुई थी। आप स्वतंत्र रूप से 60-65 वर्षों तक साहित्य साधना से जुड़े रहकर साहित्य जगत में सफलता पूर्वक सृजन किया। आपने विद्यार्थी जीवन में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी के साथ लगभग भारत के महत्वपूर्ण स्थानों तथा हिन्दी के बड़े-बड़े संस्थानों की यात्रा की।[3] उस समय आप राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजित होने वाली हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेते रहे। उपन्यासों में बालार्जुन, जाजल्यदेव कीर्ति, गुरू घासीदास, क्रांतिदूत एवं एक हाथ की ताली महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क्रम के उपन्यास हैं।

'माता कौशल्या' नामक उपन्यास में श्री राम की माँ कौशल्या देवी के जीवन वृत्त के माध्यम से उस युग की सनातनी संस्कृति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में माता कौशल्या के माध्यम से संपूर्ण राम कथा का सार समाहित हो गया है।[4]

डॉ. खरे ने 5-6 वीं ईसा शताब्दी के पाण्डुवंशीय महाराजा महाशिवगुप्त पर 'बालार्जुन' नाम से अन्य उपन्यास लिखा है। जिसमें बालार्जुन जीवन तथा तात्कालीन बौद्ध, जैन और हिन्दू संस्कृतियों पर प्रकाश डाला गया है।[5]

इसी प्रकार कल्चुरि वंशीय 11वीं शताब्दी के सम्राट जाजल्यदेव पर भी उपन्यास लिखा है। जिनके संबंध में एक शिलालेख में लिखा है कि ऐसा राजा न आपने कभी देखा होगा न सुना होगा। इस पुस्तक का आधार प्यारेलाल गुप्त लिखित इतिहास 'प्राचीन छत्तीसगढ़' से लिया गया।[6] जाजल्यदेव रतनपुर के सम्राट थे।

इसी प्रकार 'गुरू घासीदास' में घासीदास को लोक जीवन में एक महान तपस्वी, साधक और सतनाम पंथ के प्रवर्तक के रुप में प्रकाश डालते हुए उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। ठाकुर प्यारेलाल पर आधारित 'क्रांतिदूत' और 21वीं शताब्दी में महिला सशक्तीकरण तथा आर्थिक उन्मुखीकरण पर आधारित छत्तीसगढ़ के फूलबासन के कृतित्वों के आधार पर 'एक हाथ की ताली' नामक उपन्यास लिखे हैं। जिनमें फूलबासन देवी समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाती है।[7] जो महिलाओं के साथ स्व सहायता समूह का गठन कर कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। फूलबासन देवी को छ.ग. सरकार द्वारा पद्मश्री

एवार्ड भी प्रदान किया गया है। वर्तमान शताब्दी में महिला सशक्तिकरण की दिशा में श्रीमती फूलबासन ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इस अंचल को गौरवान्वित किया है। इसी तरह 'दुर्लभ की खोज' में वर की खोज में आने वाली समस्या, 'जशपुर का जश' में बुंदेली ग्रामीण वातावरण एवं आपसी संघर्ष, 'यथावत' में नवयुवक की उद्यमिता का चित्रण, 'शेष अशेष' में प्रशासन तंत्र का भ्रष्टाचार, 'सृजन पथ' में उच्चशिक्षा पर आधारित तथा 'तेजस्विनी' में एक युवती के स्वावलंबन की कथा आदि विविध पक्षों का चित्रण इन रचनाओं में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही ऊपरी हवा, तथास्तु आदि डॉ. खरे के उल्लेखनीय कथा साहित्य हैं। 'तथास्तु' उपन्यास में किशोरियों से अपचार की घटनाओं का परिणाम तथा महिला सशक्तिकरण और स्वरोजगारों को प्रमुखता प्रदान की गई है।[8] उनके आधे उपन्यास छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक चेतना, दर्शन, आध्यात्म और विभिन्न राजाओं की प्रशासनिक व्यवस्था से संबंधित रहे हैं। उन्होंने उपन्यास के माध्यम से छत्तीसगढ़ की 5-6 वीं शताब्दी से 21-22वीं शताब्दी तक की घटनाओं एवं यहाँ की सम्पूर्ण सांस्कृतिक वैभव का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक, दर्शन, धार्मिक पक्षों पर आधारित ऐतिहासिक नाटक बाबू छोटे लाल, अन्ना का अनशन (एकांकी), अटल जी और मुशर्रफ, सतनाम (खंडकाव्य), परशुराम का धनुष (एकांकी संग्रह), महालक्ष्मी (कहानी संग्रह), स्वामी सत्यानंद का भक्ति योग (स्फुट रचना), राष्ट्र की शान (एकांकी), विद्यासागर, सद्भाव के क्षण, सफलता का महामंत्र, बंधुवा मजदूर आदि रचनाओं के द्वारा साहित्य-जगत को समृद्ध किया है। खरे जी ने इस अंचल के शहीद वीर नारायण सिंह तथा बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव से प्रेरित होकर भी राष्ट्रीय महत्व के कृति का सृजन किया साथ ही डोंगरगढ़ की माँ बम्लेश्वरी की महिमा को उन्होंने माँ 'बिम्लेश्वरी' रचना के माध्यम से एकांकी लिखा।

डॉ. खरे का साहित्यिक अवदान साहित्य लोक की अमूल्य धरोहर है। उन्होंने अपनी साहित्य साधना से साहित्य संसार को पल्लवित और पुष्पित किया, जो उन्हें सदियों तक अमर रखेगा।

संदर्भ :

1. खरे, डॉ. गणेश-क्रांतिदूत, शांति प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1984, पृष्ठ-7
2. जीवित अवस्था में (साक्षात्कार)
3. जीवित अवस्था में (साक्षात्कार)
4. खरे, डॉ. गणेश-माता कौशल्या, वैभव प्रकाशन रायपुर, 2018, पृष्ठ-2
5. खरे, डॉ. गणेश-बालार्जुन, वैभव प्रकाशन रायपुर, द्वितीय संस्करण 2018, (भूमिका से)
6. गुप्त, प्यारे लाल-प्राचीन छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ हिन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर 2018, पृष्ठ-93
7. खरे, डॉ. गणेश-एक हाथ की ताली, सिद्धी प्रकाशन राजनांदगांव, पृष्ठ-87
8. खरे, डॉ. गणेश-तथास्तु, सिद्धी प्रकाशन राजनांदगांव 2018, पृष्ठ-1

❑❑❑

1. शोधार्थी, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)
2. सहायक प्राध्यापक, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की प्रासंगिकता (वर्तमान संदर्भ में)

—एस कुमार गौर
—डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत

कृष्णा सोबती जी के कथा-साहित्य में चित्रित नारी पात्रों के संघर्ष का मूल्यांकन वर्तमान संदर्भ में करते हैं तो पाते हैं कि कृष्णा जी की नारी पात्रों का संघर्ष आज भी समाज में दिखाई देता है। जिन नागरिक अधिकारों के अंतर्गत-स्वतंत्रता, समानता, अभिव्यक्ति की वकालत कृष्णा जी करती हैं, तो वहीं दूसरी ओर आज की नारी भी इन्हीं अधिकारों के लिए लड़ती-जूझती नजर आती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में साहित्य रचना की गद्य शैली में अनेक बदलाव के रंग दिखाई देते हैं। मार्क्सवादी सामाजिक चेतना ने सम्पूर्ण विश्व को साम्यवाद (समाजवाद) की स्थापना की नई दृष्टि दी। जिसका प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी पड़ा। फलतः आजादी के पूर्व ही साहित्य में नवीन चेतना का अभ्युदय होने लगा था। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ साहित्यिक रचनाओं में भी इसका प्रभाव दिखने लगा।

फलस्वरूप अनेक महिला रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलाई जिसमें मन्नू भंडारी, ममता कलिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रियवंदा, चित्रा मुद्गल, अल्का सरावगी, चंद्रकांता, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठी आदि हैं। कृष्णा सोबती जी इन महिला कथाकारों में एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। कृष्णा सोबती जी के व्यक्तित्व की झलक उनके कथाओं में, पात्रों को देखने-पढ़ने को मिलती है। सहृदयता, मर्यादा, नैतिकता, अनुशासन, स्वाभिमान, ईमानदारी, अपने और अपनों से प्यार का बड़प्पन या भोलापन दिखाई देता है।

कृष्णा सोबती जी की रचनाओं-उपन्यासों या कथाओं में चित्रित नारी पात्रों में आधुनिकता बोध का दर्शन होता है और जहाँ आधुनिकताबोध नारी के अंदर दिखाई देगा, पुरुष-प्रधान समाज उसे स्वीकार नहीं करता और न ही परम्परावादी, रुढ़िवादी समाज इसकी स्वीकृति देता है। यही कारण है कि कृष्णा सोबती के उपन्यासों-मित्रो मरजानी, सूरजमुखी अंधेरे के, डार से बिछुड़ी, यारों के यार और दिलो दानिश में चित्रित पात्रों को बोल्ड या अश्लील माना गया है।

स्त्री अस्मिता के लिए संकल्पित कृष्णा जी ने निडरता से समाज के यथार्थ को उपन्यासों में अंकित किया है। अपने आत्मसम्मान के लिए जूझ रही नारी कि छटपटाहट को कृष्णा जी ने संजीदगी के साथ साहित्य में उकेरा है। ये कृष्णा जी ही हैं, जो कर सकती थीं, लिख सकती थीं। ये साहस और शक्ति केवल और केवल कृष्णा जी के पास थी।

भाषा और शिल्प में बेजोड़ पकड़ रखने वाली साहित्यकारों में कृष्णा जी अग्रगण्य थीं। उनकी रचनाएँ तहलका मचा देने वाली थीं क्योंकि उनकी कथाएँ जमीन से जुड़ी होती थीं। उनकी रचनाएँ सामाजिक प्रसंगों, आम जनजीवन, सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हुई होती थीं। कृष्णा जी का लेखन उच्चकोटि का होता था। उनकी भाषा शैली पाठक वर्ग को झकझोर कर रख देती थी। वे धरती की एकाकार हुई लेखिकाओं में से एक थीं।

कृष्णा सोबती जी के कथा-साहित्य में चित्रित नारी पात्रों के संघर्ष का मूल्यांकन वर्तमान संदर्भ में करते हैं तो पाते हैं कि कृष्णा जी की नारी पात्रों का संघर्ष आज भी समाज में दिखाई देता है। जिन नागरिक अधिकारों के अंतर्गत-स्वतंत्रता, समानता, अभिव्यक्ति की वकालत कृष्णा जी करती हैं, तो वहीं दूसरी ओर आज की नारी भी इन्हीं अधिकारों के लिए लड़ती-जूझती नजर आती है। सामाजिक, पारिवारिक मानसिक संकीर्णता एवं रुढ़िवादिता से मुक्ति का आह्वान अद्यतन जारी है। समाचार पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन, अन्य यान्त्रिक माध्यमों से आये दिन इस प्रकार की घटनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं या प्रकाश में आती हैं।

कहना लाजमी होगा कि कृष्णा सोबती जी जिन अधिकारों की बातें अपने पात्रों के माध्यम से विषय वैविध्य के साथ करती हैं, स्वातंत्र्योत्तर काल में जिसकी बुनियाद वे रखती हैं, संघर्ष करती हैं, वर्तमान में उनके नारी पात्रों के संघर्ष की प्रासंगिकता है।

वर्तमान संदर्भ में जब तीन तलाक रिवाज शारीरिक शोषण, रेप, अवैध संबंधों की चर्चा होती है तो हमें कृष्णा सोबती जी के पात्रों मित्रो, रत्ती, महकबानो, जया, करिश्मा, पाशो का स्मरण हो उठता है। कृष्णा जी के ये वे अमर पात्र हैं जिन्होंने स्त्री अस्मिता के लिए संघर्ष का नया अध्याय शुरू किया। महिला सशक्तिकरण को नया आयाम दिया। उनकी डार से बिछुड़ी नामक उपन्यास के पात्र पाशो का संघर्ष नारी के दोहरे द्वंद्व को चित्रित करता है। एक स्वयं से और दूसरा बाह्य जगत से।

पाशो विधवा माँ की बेटी है। माँ का अवैध संबंधों के चलते शेख के घर चली गयी है। पाशो को अपने नानी एवं मामा-मामी के साथ रहना पड़ता है लेकिन अपने मन से नहीं बल्कि केवल तन से। घर की कड़ी पहरेदारी, माँ के किये की सजा पाशो को भुगतनी पड़ती है। नानी के संग ठाकुरद्वारे जाती तो नानी के तेवर चढ़ा, सिर ठोकती-''रब्ब तुझे संभाले, अरी कपड़ा नीचे रखा कर।''[1]

कभी कुएँ से पानी भरकर गागर ले आयी तो बड़ी मामी कहती है-''पसार धूने लगी-न शर्म, न हया। अरी, ओढ़नी अब तेरे गले तक से उठने लगी।''

मामू द्वारा डाँटने पर नानी तिरस्कार कर बोलती है-''अरी कुएँ में डूब मरी थी तेरा बीज डालने वाली। अब तू सँभालकर सांस भर।''[2]

कल की मर्यादा के लिए जिम्मेदार मानते हुए पाशो को अपने जान का खतरा मानते हुए वहाँ से भाग जाती है लेकिन अपने अस्तित्व के लिए जीवन भर यहाँ-वहाँ भटकती रहती है। अपनी मर्यादा और चाह के लिए पाशो बार-बार बेची और खरीदी जाती है। सोबती जी की महिला पात्र पाशो के चरित्र का चित्रांकन बताता है कि किस तरह नारी अपने सम्मान के लिए भटक रही है। यहाँ आज भी नारी अपने स्वाभिमान के लिए संघर्ष करती हुई नजर आती है।

कृष्णा जी की उपन्यास सूरजमुखी अँधेरे के में रतिका या रत्ती का द्वंद्व को चित्रित किया गया है। रत्ती बचपन में शारीरिक शोषण का शिकार हो जाती है। कक्षा में उनके मित्रों द्वारा बार-बार घटना के बारे में जिक्र करने पर वह आवेशित, आक्रोशित हो जाती है। उनके व्यवहार में

चिड़चिड़ापन आ जाता है। समाज उसे सदैव कामुकता भरी नजारों से देखता है। संवेदनहीन एवं हीनता का भाव-बोध उनके जीवन को नरक बना देता है। जहाँ से निकलने के लिए वह संघर्ष करती है। अनेक पुरुषों के साथ अपना सम्बन्ध बनाती है पर अपनी नजर में समझने वाला कोई नहीं मिलता। राजन रत्ती से कहता है-"मुझे हमेशा शक था, तुम औरत हो भी कि नहीं!!"[3]

रत्ती अपनी विवशता को राजन से कहती है-"मुझे तुमसे माफी माँगनी है राजन! वह एक जहरीला क्षण हर बार मुझे झपट लेता है और मैं काठ हो जाती हूँ।"[4]

अंत में दिवाकर के रूप में रत्ती अपने संघर्ष में सफल होती है और अपने जीवन को धन्य करती है। रत्ती के द्वारा दिवाकर को यह कहना कि-"जिसके पास मिलों लम्बा एकान्त हो, वह अकेले में अपने लिए अपने को क्यों न पढ़ता रहेगा। दिवाकर अकेले में कोई क्या से क्या हो जाता है, यह सिर्फ देखकर पता पाया नहीं जा सकता।"[5]

रत्ती का दिवाकर का न सुनना बल्कि अपने-आप कहती चले जाना कि-"मैं जुड़े हुए को नहीं तोड़ूँगी। विभाजन नहीं करूँगी। मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर।"[6]

यह दर्शाता है कि वह अपने जीवन के संघर्ष में अंतिम मुहाने तक पहुँचती है जहाँ उसे एक नई आशा, नई ऊर्जा व नया जीवन दिखाई देता है। स्त्री का जीवन संघर्ष आज भी समाज में घटित कई घटनाओं, प्रसंगों का स्मरण कराती है, समाज को मूल्यबोध की शिक्षा देती है।

कृष्णा सोबती के पात्रों में मित्रो मरजानी की मित्रो अपने समय की अमर पात्र है। मित्रो की उपस्थिति ने मध्यम वर्गीय समाज और पाठकों की बीच अपनी उपस्थिति से नई बहस-विमर्श को जन्म दिया। मित्रो मरजानी मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की कहानी है। मित्रो आधुनिकता बोध की परिचायक है, वह अपने स्वाभिमान, अस्तित्व की लड़ाई के लिए खुले तौर पर सामाजिक, पारिवारिक बंधनों की मान्यताओं को चुनौती देती है। मित्रो की कामुक चाह ने उसे बोल्ड बना दिया, जिसके लिए वह समझौता करने को तैयार नहीं है। मित्रो कहती है-"जिठानी, तुम्हारे देवर सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दु:ख-सुख, न प्रीति-प्यार, न जलन-प्यास बस आए दिन धौल-धप्पाई लानत-मालामत!"[7]

मित्रो सुहागवती से कहती है-"अब तुम्हीं बताओ, जिठानी, तुम जैसा सतबल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ्ते पखवारे और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली-सी तड़पती हूँ।"[8]

मित्रो के प्यास की संघर्ष सभी मध्यमवर्गीय परिवार में विद्यमान है, जिसकी वकालत कृष्णा जी मित्रो के माध्यम से करती है। बावजूद इसके मित्रो अपने पति सरदारी का साथ नहीं छोड़ती है, पारिवारिक दु:ख-सुख में अपनी सहभागिता देती है। मित्रो के माध्यम से मध्यम वर्गीय स्त्री को पीड़ा और संघर्ष को व्यक्त करने की कोशिश की गई है। हम आज 21वीं सदी में स्त्री-स्वतन्त्रता एवं मुक्ति की बात तो करते हैं लेकिन यथार्थ इसके विपरीत है।

साहित्य में मित्रो की बनावट व बुनावट स्त्री की दशा पर चिंतन के लिए विवश करती है। मित्रो का सृजन कृष्णा जी की विषय विशिष्टता को बतलाती है कि वे स्त्रियों के लिए कितनी मुखर थी।

कृष्णा जी की उपन्यास-दिलो दानिश में कुटुम्बप्यारी एवं महकबानों के माध्यम से महल और पराशत खाने के द्वंद्व को चित्रित किया गया है। रखैल के रूप में महकबानो एवं पत्नी के रूप

में कुटुम्बप्यारी अपने-अपने अधिकारों एवं अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। कुटुम्बप्यारी कृपानारायण से कहती है-''जिस दिन से ब्याहकर आए हमने खानदान की खिदमत की, इसकी इज्ज़त सिर पर उठाई पर आपने हमें दुखियारी करार करके ही दम लिया। बिरादारी भर में बदनाम कर दिया।''

कृपा नारायण के तीखे प्रहार के जवाब में कुटुम्बप्यारी कहती है-''हमारा गला घोंट दीजिए। आप ऊँचे वकील हैं। साफ बच निकलिएगा। उस बाजारू औरत से आपके दो बच्चे हैं और आपने हमें खबर तक न होने दी।''[9]

सार्वजनिक रूप से बदरू का यह कहना कि-''लड़के कहते हैं तुम हिन्दू की औलाद हो। तुम्हारा नाम बद्दरुद्दीन नहीं बदरीनारायण है।''[10]

अंत में महकबानो, कृपा नारायण से कहती है-''माँ कोई भी हो, बच्चे तो बड़े बाप के है न! उन्हें भी गया गुजरा क्यों समझे हुए हैं आप। कलम दवात तो मुंशी जी कापी-किताब तो मुंशी जी, कायदे से कुछ इंतज़ाम किया होता। हम पर क्या अहसान है साहिब, औलाद आपकी है। हम कुछ न हुए तो।[11]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि सोबती जी ने परत-दर-परत स्त्री मन को पढ़ने एवं गढ़ने की कोशिश की है। अपने स्वाभिमान और हक की लड़ाई में कुटुम्बप्यारी और महकबानो का चित्रण विशिष्ट है।

कृष्णा सोबती जी ने 'ऐ लड़की' उपन्यास के माध्यम से अम्मू एवं उसकी लड़की के संघर्ष को चित्रित किया है। अम्मू अपने जीवन के अनुभवों से पूर्ण है और, वह मृत्यु की शैया पर पड़े हुए हैं लेकिन अपनी समग्र यादों एवं अनुभवों को अपनी बेटी के साथ बाँट लेना चाहती है, परन्तु उसकी बेटी आधुनिक विचारों की हिमायती है। बेटी की चिंता और अपना जीवन अनुभव के माध्यम से सीख देना चाहती है। अर्थात् अतीत के अनुभवों एवं वर्तमान के संघर्ष को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

अम्मू अपने-आप से कहती है-''सिर-मस्तक, मुख-नेत्र, नाक-कपोल, हाथ-पाँव-कटी, रचने वाले ने भी क्या रच डाला। अंदर लगा दी पल-छिन वाली घड़ी। न एक सांस ज्यादा न कम। जो इस दुनिया में घर बनाकर बैठते हैं, उन्हें आखिर को मरना ही पड़ता है।''[12]

इस तरह वह अपनी बेटी को शाश्वत जीवन के सत्य को बतलाना चाहती है।

माँ-बेटी के रिश्ते की अहमियत बताते हुए कहती है-''लड़की हम कहीं न कहीं, कभी न कभी मिलेंगी जरूर। एक-दूसरे को पहचान लेंगी। इतनी बड़ी दुनिया है। इसमें भूल नहीं हो सकती। माँ कहीं भी हो, बेटी कहीं भी हो, माँ कोई भी हो, बेटी कोई भी हो, माँ-बेटी तो माँ-बेटी रहेंगी। रहती दुनिया तक।''[13]

उपरोक्त कथ्य के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार अम्मू अपनी बेटी की रक्षा करते हुए जीवन के अंतिम पड़ाव में भी अपने अनुभवों को बाँटना चाहती है, तो वहीं दूसरी ओर उसकी बेटी अपनी स्वच्छ विचारों में विचरण करती है। माँ-बेटी का यह वैचारिक संघर्ष हमें आज वर्तमान संदर्भ में भी दिखाई देता है। वास्तव में कृष्णा जी के पात्रों का संघर्ष बेटी का संघर्ष नहीं है बल्कि पुरातन परम्परा एवं आधुनिकताबोध का संघर्ष है, जो कि आज हमें समाज में देखने को मिलता है। अत: कहा जा सकता है कि कृष्णा जी के पात्रों की प्रासंगिकता विविध विषयों एवं मूल्यों को लेकर आज भी हमारे समक्ष खड़ी हुई है।

आजादी के 75 वर्ष बाद उनके पात्रों की द्वंद्व एवं संकल्प की चर्चा आवश्यक हो जाती है। उनके उपन्यासों का पुनर्पाठ या अध्ययन हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। कृष्णा जी की रचनाओं के केंद्र में नारी है पुरुष नहीं। उन्होंने आजीवन अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को एक नया आयाम दिया।

समकालीन कथाकारों में मन्नू भंडारी, ममता कलिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रियवंदा, चित्रा मुद्‌गल, अल्का सरावगी, चंद्रकांता, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठी, कृष्णा सोबती आदि स्वतंत्र लेखिकाओं ने अपनी साहित्यिक यात्रा को जारी रखा। सोबती जी आधुनिकताबोध की बुलंद आजाज थीं, सशक्त हस्ताक्षर थीं।

साहित्यकार अपने युग का प्रत्यक्षदर्शी होता है, अपने काल में घटित घटनाओं का यथार्थ दस्तावेज उनका कर्म-मर्म होता है। सोबती जी का यही कर्म और मर्म उन्हें विशिष्टता के शिखर तक पहुँचता है।

आज सामाजिक मूल्यों में अवमूल्यन इसका द्योतक है कि हमारे बीच-नारी स्वाभिमान, अस्मिता बचाने की चुनौती है। हत्या, रेप, दहेज़, शोषण के केंद्र में नारी दिखाई दे रही हैं। संवैधानिक अधिकारों की माँग दिन-प्रतिदिन बलवती होती जा रही है। ऐसे में सोबती जी के पात्रों-पाशो, मित्रो, रत्ती, महकबानो, जया आदि के संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकता। जाते-जाते नारी सम्मान में एक कविता :-

''कर पदाघात अब मिथ्या के मस्तक पर, सत्यान्वेषण के पथ पर निकलो नारी।
तुम बहुत दिनों तक बनी दीप कुटिया का, अब बनो क्रांति की ज्वाला की चिंगारी।।''[14]

संदर्भ :

1. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी, राजकमल प्रकाशन, 1958, पृष्ठ - 16
2. वही पृष्ठ - 17
3. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, 1972, पृष्ठ -102
4. वही पृष्ठ - 101
5. वही पृष्ठ - 115
6. वही पृष्ठ - 142
7. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, 1967, पृष्ठ - 18
8. वही पृष्ठ - 20
9. कृष्णा सोबती, दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, 1993, पृष्ठ - 54
10. वही पृष्ठ - 122
11. वही पृष्ठ - 158
12. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, 1993, पृष्ठ - 15
13. वही पृष्ठ - 81
14. नारी सशक्तिकरण, डॉ. हरीदास शेण्डे 'सुदर्शन', ग्रंथ विकास प्रकाशन, जयपुर, 2008, पृष्ठ -16

❏❏❏

1. सहायक प्राध्यापक, शास. रानी सूर्यमुखी देवी महाविद्यालय, छुरिया
2. हिन्दी विभाग, शास. दिग्विजय स्व ाासी महा. राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़) ईमेल - sgaur3498@gmail.com

समकालीन आदिवासी कविता : समस्यायें और चुनौतियाँ

—डॉ. प्रियंका सिंह

आदिवासियों की सहजता, सरलता को सदियों से छला जाता रहा है। इतिहासकारों ने इनके भोलेपन का फायदा उठाकर स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में इनके योगदान को कमतर आंका वहीं विकास के नाम पर सरकारी दस्तावेज रूपी कागजी घोड़ों से ही काम चलाना पड़ा। मुख्यधारा समाज से ये हमेशा कटे रहे। परिधि से बाहर रहे। हरि राममणि 'खत्म होती हुई एक नस्ल' कविता में इसी व्यथा को प्रकट करते हैं तो दूसरी तरफ 'बेदखल होते हुए' कविता में वे नव पूँजीवाद के छल छद्म को भी आदिवासी समाज के सम्मुख प्रकट करते हैं।

समकालीनता का अर्थ केवल सम सामयिकता या तत्कालीनता से नहीं जोड़ा जा सकता बल्कि अतीत एवं भविष्य भी इसके अर्थ में समाहित है। वस्तुतः इसीलिए समकालीन कविता केवल कालबोधक रूप में ग्राह्य नहीं है, अपितु मूल्य बोधक भी है, जो अपनी रचनाशीलता में वर्तमान को इतिहास-निरपेक्ष ढंग से न देखकर इतिहास-बोध से जोड़कर अर्थात भविष्योन्मुख दृष्टि से देखता है।

समकालीन दौर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से उथल-पुथल का दौर रहा है। साहित्य में विषय वैविध्य भी रहा। विमर्शों का दौर चला। हाशिये पर रखे जाने वाले विषयों को केन्द्र में लाया गया। समकालीन आदिवासी कविता भी इसी क्रम में आती है।

समकालीन आदिवासी कविता में आदिवासी समाज, उनकी सभ्यता-संस्कृति, उनका रहन-सहन, उनके जीवन-दर्शन की प्रतिछवि देखने को मिलती है। वंदना टेटे के शब्दों में –

''आदिवासी जीवन के स्थायी मूल्य-सामूहिकता, सहजीविका, सहअस्तित्व है, वहीं उसके समस्य अभिव्यक्तियों का भी उद्देश्य है। इसमें साहित्य भी शामिल है।''[1]

वर्तमान भौतिकवादी मानव-जीवन के विपरीत है आदिवासी जीवन। आदिवासी जीवन सरल, सहज है। सहअस्तित्व पर आधारित है, कृत्रिमता से दूर। आदिवासी कविता अपने इन्हीं जीवन-सौन्दर्य, मूल्यों की रक्षा हेतु निरंतर प्रयासरत है। महादेव टोप्पो 'जंगल का कवि' कविता में लिखते हैं –

''जंगल के हरेपन को / बचाने की खातिर / जंगल का कवि / मांदर बजाएगा / चढ़ा कर प्रत्यंचा पर कलम।''[2]

आदिवासियों की पहचान ही उनकी प्रकृति है। चूँकि उनकी पहचान पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं और उसकी छटपटाहट

उनकी कविताओं में दिखती है। तभी तो ग्रेस कुजूर को 'सरहुल के फूलों के बिना' जूड़ा बहुत सूना लगता है। यहाँ सरहुल का फूल केवल सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री नहीं है बल्कि प्रकृति से उनकी निकटता, उनके नैसर्गिक जीवन, उनकी सहजता का परिचायक है। वी. कृष्ण मानते हैं, ''प्रकृति के साथ बेरहम छेड़खानी केवल आदिवासियों के अस्तित्व का संकट नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता व मानवेत्तर प्राणी जगत के लिए खतरा है।''[3]

आदिवासियों की सहजता, सरलता को सदियों से छला जाता रहा है। इतिहासकारों ने इनके भोलेपन का फायदा उठाकर स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में इनके योगदान को कमतर आंका वहीं विकास के नाम पर सरकारी दस्तावेज रूपी कागजी घोड़ों से ही काम चलाना पड़ा। मुख्यधारा समाज से ये हमेशा कटे रहे। परिधि से बाहर रहे। हरि राममणि 'खत्म होती हुई एक नस्ल' कविता में इसी व्यथा को प्रकट करते हैं तो दूसरी तरफ 'बेदखल होते हुए' कविता में वे नव पूँजीवाद के छल छद्म को भी आदिवासी समाज के सम्मुख प्रकट करते हैं –

''पृथ्वी की सारी सभ्या / एक भीम काय रोड रॉलर की मानिंद / लुढ़कती आ रही है हमारी जानिब / और हम बदहवास भाग रहे हैं / खोहे और गुफाओं की ओर / बेदखल होते हुए / हमारी अपनी पुश्तैनी जमीनों से।''[4]

बाजारवाद छल छद्म का सहारा लेकर घुसपैठिये की तरह घुसकर उनके ही जल, जंगल, जमीन का दोहन कर रहा है, उनके ही संसाधनों को लूट रहा है और उन्हें निर्वासित होने को मजबूर कर रहा है। ऐसे में ''आदिवासी चेतना का लेखन, जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूँढ़ने की चेष्टा है, वहीं आज वह प्रस्थापितों (established) द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने, अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षड्यंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना से भी लैस है।''[5]

समकालीन आदिवासी कविता में न सिर्फ बाजारवाद के दुष्चक्र को रोकने की कोशिश है बल्कि इसके प्रतिरोध स्वरूप देशज तकनीक को भी बचाने की कोशिश दिखी है–''कि नहीं जान पाएँगे मेरे बच्चे/डोरी, कुसुम से तेल निकालने की/मछली और चिड़िया पकड़ने की/देशज तकनीक''

वास्तव में 'आज का कोई भी कवि मानव संस्कृति और समस्त जीवन को नष्ट करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध कर ही महत्वपूर्ण बन सकता है।'[6]

हमारे समाज में आर्थिक संपन्नता ही किसी समुदाय, वर्ग की विकसित या सभ्य होने की कसौटी है। इस दृष्टिकोण से नैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिक संपन्न होते हुए भी आदिवासी समाज को पिछड़ा हुआ माना जाता है। हालांकि आदिवासी भूमि

में खनिज संपदा भरी पड़ी है लेकिन सरकार और साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा उनका दोहन होता है। अगर अपने अधिकारों हेतु कोई इनके विरुद्ध आवाज उठाने की कोशिश करता है तो छत्तीसगढ़ की सोनी सूरी जैसे कोप भाजन बनना पड़ता है। जिसके चेहरे पर तेजाब जैसे ज्वलनशील पदार्थ फेंक कर उसके मनोबल को तोड़ने का प्रयास किया गया। लेकिन सोनी सूरी उस समुदाय की बेटी है जहाँ कोई कुरूप नहीं होता। तभी तो वंदना टेटे लिखती हैं -

''तुम्हारा चेहरा/जामुन हो गया है सोनी/इसकी मिठास अब और बढ़ गयी है / इसका अर्क/असाध्य रोगों की अचूक दवा है''

वास्तव में आदिवासी समाज में शारीरिक सौन्दर्य को महत्व नहीं दिया जाता है लेकिन सभ्य समाज के लोगों के लिए उनका अधखुला शरीर हमेशा आकर्षण का केन्द्र रहा है। देश के इतिहास में, विकास में, उन्नति में भले ही आदिवासी समाज के योगदान को महत्व न दिया जाए लेकिन उनके श्रम से लेकर स्त्री देह तक सब पर इस कथित सभ्य समाज की निगाह है। निर्मल पुतुल लिखती हैं-''मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में / प्रिय है तो बस / मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने / जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ / खेतों में उगी सब्जियाँ / घर की मुर्गियाँ / उन्हें प्रिय है / मेरी गदराई देह / मेरा मांस प्रिय है उन्हें?''[7]

निर्मला पुतुल ने भोले-भाले आदिवासी समाज की बहू-बेटियों पर कथित सभ्य समाज की बुरी नियत का पर्दाफाश तो किया ही है लेकिन साथ ही आदिवासी समाज में व्याप्त कुरीतियों, नशाखोरी को चित्रित किया है। वे कहती हैं-''तुम्हारे पिता ने कितनी शराब पी यह तो मैं नहीं जानती/पर शराब उसे पी गई यह जानता है सारा गाँव/ इससे बचो चुड़का सोरेन!/बचाओ इसमें डूबने से अपनी बस्तियों को/देखो तुम्हारे ही आंगन में बैठ/तुम्हारे हाथों बना हड़िया तुम्हें पिला-पिलाकर/कोई कर रहा है तुम्हारी बहनों से ठिठोली''[8] तथाकथित चित्रण को देख हम कह सकते हैं 'आदिवासी कविता बाहरी लोगों की साजिशों को पहचानने लगी है।'[9]

भूमंडलीकरण ने मनुष्य को केवल क्रेता-विक्रेता में रूपांतरित नहीं किया, यांत्रिक नहीं बनाया बल्कि उसकी बोली, भाषा, संस्कृति को भी प्रदूषित करने का कार्य किया है, आदिवासी समाज भी इस प्रदूषण से अतिक्रमित होते जा रहा है। वंदना टेटे की कविता 'हमारे बच्चे नहीं जानते तोता-रे नोने रे' ऐसे ही कविता हैं जहाँ कवियत्री को अपनी 'पुरखा संस्कृति' के विलुप्त होने की आशंका सता रही है -

'आह! कितनी-कितनी सारी जानकारियाँ/छूट जाएँगी हमारे बच्चों से/क्योंकि नहीं लिखी गई हैं किताबें/इस पर, नहीं बने हैं साफ्टवेयर/और नहीं रहे अब घुमकुडिया, गितिओड़ा गिताः चाड़ी''

आदिवासी समाज सदा से उपेक्षित रहा है। आज भी वह साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ की कठपुतली ही है। भले ही सरकारी दस्तावेजों में उनके उद्धार हेतु कई विधेयक पारित हुए हों लेकिन वास्तविक भूमि पर उन्हें उनके जमीन से वंचित किया जा रहा है। उनके खनिज संपदा को लूटा जा रहा है और उन्हें कभी असभ्य, कभी जंगली तो कभी माओवादी कहकर प्रताड़ित किया जाता है। उनकी स्त्रियों के श्रम और अंग दोनों का शोषण किया जा रहा है। उनके चौतरफा शोषण को मीडिया हाउस भी अपनी रिर्पोटिंग में स्थान रहीं देती या मामूली कवरेज मिलता है। ऐसे विषम माहौल में भी आदिवासी साहित्य और समकालीन आदिवासी कविता एक सशक्त चुनौती देती हुई दिख रही है। तभी तो ग्रेस कुजूर अपने 'पूरखा बूढ़ा' और 'पूरखा बुढ़िया' की विरासत को बचाने हेतु सम्पूर्ण आदिवासी समाज का आह्वान करती है-''सच!! / बहुत जरूरत है झारखंड में / फिर एक बार / एक जबरदस्त / जनी-शिकार।''[10]

वास्तव में ''आदिवासी जब बोलता नहीं था, तो अन्याय का विरोध तीर चलाकर करता था। अब वह कलम की मारक शक्ति से परिचित हो गया है और अपनी लेखन शक्ति को तीव्र बनाने की राह ताक रहा है।'[11]

अतएव समकालीन आदिवासी कविता अपने सम्पूर्ण समाज के बचाव और रचाव का साहित्य है। जहाँ उनका भोलापन भी है, जीवन के नैसर्गिक सौन्दर्य के दर्शन भी हैं, प्राकृतिक छटा भी हैं वहीं तथाकथित सभ्य समाज, साम्राज्यवादी शक्तियों, बाजारवाद द्वारा पोषित अधोपतित अपसंस्कृति से अपने आदि सभ्यता-संस्कृति को बचाने की कोशिश भी दिखती हैं।

संदर्भ :

1. आदिवासी दर्शन और साहित्य, वंदना टेटे, पृ. 27
2. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 27
3. आदिवासी विमर्ष, सं. वी. कृष्ण / भीम सिंह, पृ. 104
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 28
5. आदिवासी साहित्य यात्रा, रमणिका गुप्ता, पृ. 5
6. कविता का समय, अरूण कमल, पृ. 19
7. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ. 73
8. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ. 19
9. आदिवासी विमर्श, सं. वी. कृष्ण / भीम सिंह, पृ. 105
10. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गृप्ता, पृ. 23
11. आदिवासी साहित्य यात्रा, रमणिका गुप्ता, पृ. 8

❐❐❐

जमशेदपुर को-आपरेटिव कॉलेज, आदर्श विद्या निकेतन स्कूल के नजदीक, छोटा गोविन्दपरु, जमशेदपुर-15 मो. नं. 9031166365

समाकेतिक शिक्षा में डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन

—रूबी शर्मा
—डॉ. विनोद कुमार जैन

समाकेतिक शिक्षा में शिक्षा के डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, शोध एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है जिसका एक निश्चित दिशा में निश्चित उद्देश्य होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य मुरादाबाद जिले के समाकेतिक शिक्षा के डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के अधिगम एवं उनके शैक्षणिक उपलब्धि में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

शिक्षा में डिजिटलीकरण के लिये ई-लर्निंग 2020 से बहुत पहले से मौजूद था, लेकिन इसका इस्तेमाल ज्यादातर आमने-सामने कक्षा में जुड़ाव के विकल्प के रूप में किया जाता था. शिक्षकों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करके केवल शिक्षण के लिए तेजी से समायोजित करना पड़ा, उनकी शिक्षण शैली, पाठ्यक्रम डिजाइन, मूल्यांकन और रिकॉर्ड-कीपिंग को संशोधित करना एक नियंत्रित कक्षा सेटिंग से डिजिटल उपकरणों और हार्डवेयर के उपयोग के लिए संक्रमण भी छात्रों द्वारा दूर किया गया था। अपने शिक्षकों के सक्रिय समर्थन से वे नई शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित रहे हैं।

संकेतक शब्द : शिक्षा के डिजिटलीकरण से शैक्षणिक उपलब्धि

प्रस्तावना : शिक्षण कार्य को सुचारु रूप से चलाने एवं बालक के भावी जीवन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का डिजिटलीकरण किया जाय जिससे उनके अधिगम और शैक्षणिक उपलब्धि का विकास हो सके। अध्यापन का तरीका होते हुए भी, सीखने के लिए एक सहायक और अनुकूल वातावरण प्रदान करने में छात्रों के सीखने के प्रति दृष्टिकोण को हमेशा उनके शिक्षकों की प्रभावशीलता द्वारा आकार दिया जाता है। जब शैक्षणिक तकनीकें त्वरित गति से विकसित होती हैं, तो वे शिक्षकों के व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास को सुविधाजनक बनाने में सहायक बन जाती हैं। विश्व स्तर पर 21वीं सदी की चुनौतियों के लिए छात्रों को तैयार करने के लिए, शिक्षक अपने विश्लेषणात्मक और समस्या-समाधान कौशल, महत्वपूर्ण सोच, तर्क, अनुसंधान और नवाचार कौशल, कल्पना, रचनात्मकता और प्रभावी संचार को सम्मानित करने पर काम कर रहे हैं।

अनिवार्य डिजिटलीकरण को अपनाने के साथ, शिक्षकों को जूम, गूगल क्लासरूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम्स आदि जैसे

प्लेटफार्मों का उपयोग करके अपने छात्रों के साथ संवाद करने और बातचीत करने के अधिक प्रभावी और कुशल तरीके खोजने पड़े हैं। उन्होंने स्लाइड या जैसे डिजिटल टूल पर अपने कौशल का सम्मान किया है। दस्तावेज साझा करना, व्हाइटबोर्ड, ब्रेकआउट रूम, ऑनलाइन कक्षाओं को अधिक इंटरैक्टिव बनाने और सक्रिय सीखने को बढ़ावा देने के लिए त्वरित चैट ने शिक्षकों के बीच सहयोग को भी प्रेरित किया है और उन्हें विभिन्न तकनीकों को आजमाने के लिए प्रेरित किया है, जैसे कि कहानियों और खेलों जैसे मूल कलाकृतियों को विकसित करना, समूह गतिविधियों को डिजाइन करना और महत्वपूर्ण अवधारणाओं को पेश करने के लिए वर्कशीट तैयार करना।

डिजिटल मॉडल प्रशिक्षकों को व्याख्यान-आधारित शिक्षण से स्थानांतरित करने और छात्रों को अधिक इंटरैक्टिव सीखने का अनुभव प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करने में एक महत्वपूर्ण कदम रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऑनलाइन सीखने से छात्रों को अपनी गति से सीखने की अनुमति मिलती है और वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित कर सकते हैं।[1]

लाभों के साथ प्रत्यक्ष अनुभव के बाद, वे ई-लर्निंग को अपने नए समाज का हिस्सा बना लेंगे। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी विकसित होती है, ऑनलाइन शिक्षण और सीखना जारी रहेगा, और शैक्षिक विशेषज्ञों का अनुमान है कि आने वाले अनिश्चित समय के साथ, हमें प्रौद्योगिकी और डिजिटलीकरण के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है। जब हम इस नई दुनिया में आगे बढ़ेंगे तो यह तत्व बना रहेगा।

यद्यपि हमने इस महामारी का अंत नहीं देखा है, शिक्षण समुदाय यह सुनिश्चित करना जारी रखता है कि छात्रों के लिए सीखना बंद न हो। डिजिटलीकरण को तेजी से अपनाने से समर्थित आधुनिक शिक्षण पद्धति की प्रभावशीलता महामारी के बाद की दुनिया में आगे बढ़ने का रास्ता है। प्रौद्योगिकी यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक बच्चे की शिक्षा तक पहुँच हो और प्रत्येक शिक्षक बच्चों को अंत:क्रियात्मक रूप से ऐसी गति से पढ़ाने का तरीका खोजे जिससे बेहतर समझ और प्रतिधारण को बढ़ावा मिले। जिसके कारण आधुनिक युग में अधिगम और सरलीकृत हो गया है साथ ही विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में भी वृद्धि हुई है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि ज्ञात करने के लिए निदानात्मक परीक्षण किया जाता है। मूल्यांकन के पश्चात् प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्न श्रेणी प्राप्त विद्यार्थियों को अतिरिक्त कक्षाओं में अध्यापन कार्य कराया जाता है जिसके कारण शैक्षणिक उपलब्धि में भी परिवर्तन हुआ है।

समस्या का कथन :

समाकेतिक शिक्षा में शिक्षा के डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, शोध एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है जिसका एक निश्चित दिशा में निश्चित उद्देश्य होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य मुरादाबाद जिले के समाकेतिक

[1]Srivastav, D. N. (2010). Anushandhan Vidhiya. Agra: Sahitya Prakashan

शिक्षा के डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के अधिगम एवं उनके शैक्षणिक उपलब्धि में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। वर्तमान युग में शिक्षा के डिजिटलीकरण का विद्यार्थियों के शैक्षणिक विकास में सर्वोपरि स्थान है। इस परिस्थिति में प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह अध्ययन करने का प्रयास है कि शिक्षा के डिजिटलीकरण का विद्यार्थियों के अधिगम एवं उनके शैक्षणिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव होगा।

शोध के उद्देश्य :

1. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के छात्रों के शिक्षा में डिजिटलीकरण व उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के छात्राओं के शिक्षा में डिजिटलीकरण उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षा में डिजिटलीकरण उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना : विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि ज्ञात करने हेतु परिकल्पना

1. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के छात्रों में शिक्षा के डिजिटलीकरण व उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।
2. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों की छात्राओं के शिक्षा में डिजिटलीकरण व उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य काई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।
3. समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण व उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।

शोध अध्ययन का क्षेत्र एवं परिसीमा : शोधकार्य करने हेतु मुरादाबाद जिले का चयन किया गया जिसके अंतर्गत मुरादाबाद जिले के 02 समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों का चयन किया गया तथा चयनित किये गये महाविद्यालयों से कुल 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

संबंधित शोध साहित्य का अध्ययन:

1. बेंजिमन, थॉमस डॉन (2008) ने "विद्यालयी सुविधाओं और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध" शीर्षक पर शोधकार्य किया और निष्कर्ष रूप में पाया कि साक्षात्कार के निष्कर्ष में पाया कि विद्यालय का भवन और विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया। वहाँ जन समूह ने भी माना कि विद्यालयी भवन का विद्यार्थियों के अधिगम पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं होता है। इन्होंने पाया कि विद्यालयी सुविधाओं की स्थिति एवं अध्यापकों और विद्यार्थियों की उपलब्धि के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं पाया गया, क्योंकि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले बहुत से अन्य कारक हो सकते हैं। इसके लिए केवल भवन को उचित कहना ठीक नहीं है।
2. मिश्रा, के.एस. (2003) ने "शैक्षिक उपलब्धियों पर वैज्ञानिक प्रक्रियाओं व अधिगम वातावरण का प्रभाव।" शीर्षक पर प्रायोजनात्मक स्तरीय अनुसंधान कार्य किया। इन्होंने

अपने शोधकार्य में पाया कि विद्यार्थियों की उपलब्धि व अधिगम वातावरण के बीच सह सम्बन्ध के आधार पर बालकों की वैज्ञानिक उपलब्धि सकारात्मक रूप से एकता, विषमता, औपचारिकता व स्पर्धात्मकता से सम्बन्धित है जबकि नकारात्मक रूप से यह रुचि शून्यता/उदासीनता से सम्बन्धित है। बालिकाओं की वैज्ञानिक उपलब्धि व अधिगम वातावरण के आयामों–विषमता, गतिशीलता, सहजता, विरोधाभास, सृजनात्मकता व समानता से सम्बन्धित नहीं है।

चर :

स्वतंत्र चर – शिक्षा के डिजिटलीकरण,

आश्रित चर – शैक्षिक उपलब्धि

शोध विधि : प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान मे ंरखकर शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है, क्योंकि शोध अध्ययन में आँकड़ों का संग्रह सर्वेक्षण विधि द्वारा सहजतापूर्वक किया जा सकता है।

जनसंख्या : प्रस्तुत शोध प्रबंध में जनसंख्या के अंर्तगत समाकेतिक शिक्षा में अध्ययनरत् मुरादाबाद जिले के 02 महाविद्यालयों का चयन किया गया है।

न्यादर्श : प्रस्तुत शोध प्रबंध में जनसंख्या के अंर्तगत मुरादाबाद जिले के 02 समाकेतिक शिक्षा में अध्ययनरत 100 छात्र–छात्राओं का चयन प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रतिदर्श के रूप में किया गया है।

उपकरण :

1. विद्यार्थियों के शिक्षा का डिजिटलीकरण ज्ञात करने हेतु डीम्पल रानी द्वारा निर्मित डिजीटलीकरण मापनी का प्रयोग किया गया।
2. विद्यार्थियों के शिक्षा का डिजिटलीकरण का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव ज्ञात करने हेतु डॉ. विद्यावती माल्या, डॉ. के.सी. माल्या एवं एल.एन. दुबे द्वारा निर्मित शैक्षिक उपलब्धि मापनी का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण : उपकरण से प्राप्त प्राप्तांकों अथवा आँकड़ों को विभिन्न तालिकाओं में व्यवस्थित कर उनका विश्लेषण मध्यमान (ड) ए मानक विचलन (SD)ए क्रान्तिक अनुपात (CR)ए सहसम्बन्ध गुणांक (त) की गणना कर किया गया तथा दण्ड आरेख द्वारा प्रदर्शित कर व्याख्या की गयी।

परिकल्पनाओं का प्रमाणीकरण –समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन करना के अन्तर्गत परिकल्पित परिकल्पना Ho1 "समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के छात्रों में शिक्षा के डिजीटलीकरण व उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।" का सत्यापन क्रन्तिक अनुपात की मदद से किया गया है, जिसके विश्लेषण से प्राप्त परिणाम को तालिका संख्या–1 में दर्शाया गया है–

तालिका संख्या - 1

शैक्षणिक उपलब्धि	छात्र		छात्राओं		'CR' मान	.05 सार्थकता स्तर, कत्रि 98 पर निष्कर्ष
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन		
शैक्षणिक उपलब्धि (कुल)	44.9	8.70	43.40	9.02	2कृ64	सार्थक

*.05 सार्थकता स्तर पर 'CR' का सारणी मान = 1.96

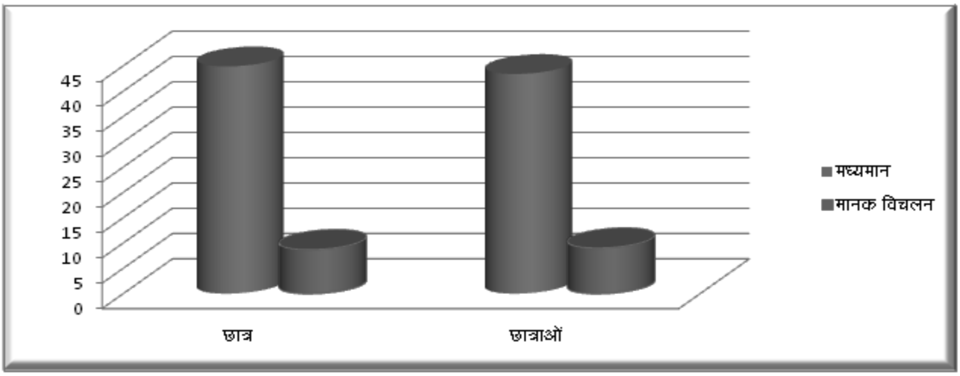

दण्ड आरेख संख्या-1 शैक्षणिक उपलब्धि मापनी पर छात्र एवं छात्राओं की संख्या, मध्यमान एवं मानक विचलन का दण्ड आरेख

विश्लेषण : उपरोक्त तालिका संख्या-1 में शैक्षणिक उपलब्धि मापनी पर प्राप्त छात्र एवं छात्राओं के प्रदत्तों के कुल शैक्षणिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 44.9 व 43.40 मानक विचलन क्रमशः 8.70 व 9.02 तथा 'CR' का मान 2.64 है, प्राप्त 'CR' का मान स्वतन्त्रता के स्तर df=98 पर सार्थकता के स्तर 0.05 पर सारणी मान=1.96 से अधिक है, अतः यह प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

परिणाम : प्रतिपादित परिकल्पना-1 में कुल शैक्षणिक उपलब्धि की परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है, यह परिणाम इंगित करता है कि छात्र एवं छात्राओं के शैक्षणिक उपलब्धि के मध्यमान में सार्थक अन्तर नहीं है, अर्थात छात्र एवं छात्राओं के शैक्षणिक उपलब्धि में अन्तर व्याप्त नहीं है।

अध्ययन के उद्देश्य संख्या 2

"समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण व उनके शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।" के अन्तर्गत परिकल्पित परिकल्पना Ho2 "समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण व उनके शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।" का सत्यापन r' परीक्षण के आधार पर किया गया है, जिसके विश्लेषण से प्राप्त परिणाम को तालिका संख्या-2 में दर्शाया गया है-

तालिका संख्या-2 समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा अधिगम के मध्य 'r' मान

	N	मध्यमान	सहसम्बन्ध गुणांक ('r') मान	निष्कर्ष
शिक्षा के डिजिटलीकरण	100	80.34	0.978	मध्यम धनात्मक सह-सम्बन्ध तथा .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
अधिगम	100	75.85		

0.05 सार्थकता स्तर पर 'r' का सारणी मान = .088

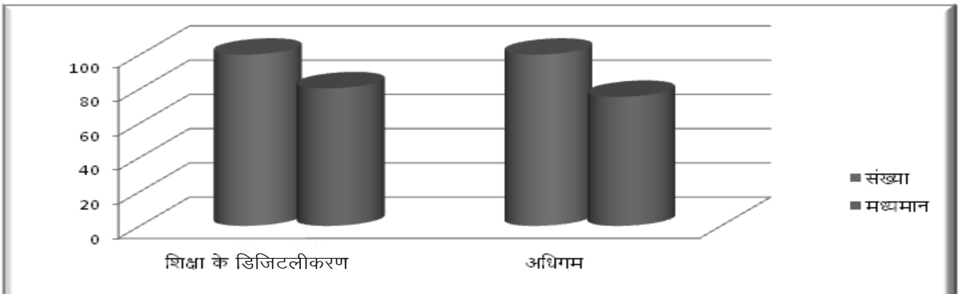

समाकेतिक शिक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा अधिगम उपलब्धि के संख्या एवं मध्यमान

विश्लेषण : उपरोक्त तालिका संख्या-2 में शिक्षा के डिजिटलीकरण मापनी तथा अधिगम मापनी पर 200 विद्यार्थियों के प्रदत्तों का मध्यमान क्रमश: 80.34 व 75.85 है तथा शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा अधिगम के मध्य प्राप्त 'r' का मान 0.978 है, यह प्राप्त मान .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

परिणाम : प्रतिपादित परिकल्पना-2 को अस्वीकार किया जाता है, प्राप्त 'r' का मान इंगित करता है कि विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा अधिगम के मध्य सार्थक माध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है, अर्थात विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा अधिगम के मध्य में महत्वपूर्ण सम्बन्ध व्याप्त है।

विवेचना : उपरोक्त परिणाम इंगित करते है कि अधिकतर विद्यार्थियों का शिक्षा का डिजिटलीकरण जिस स्तर का है उसी स्तर का उनका शैक्षिक उपलब्धि भी है। अत: परिणाम इंगित करता है कि विद्यार्थियों का शिक्षा का डिजिटलीकरण एवं शैक्षिक उपलब्धि एक ही दिशा में कार्य करते है। अर्थात् यदि विद्यार्थियों का शिक्षा का डिजिटलीकरण का स्तर उच्च है तो उन विद्यार्थियों का शैक्षिक उपलब्धि भी ज्यादातर उच्च स्तर का होता है तथा यदि विद्यार्थियों का शिक्षा का डिजिटलीकरण का स्तर निम्न है तो उन विद्यार्थियों का शैक्षिक उपलब्धि भी ज्यादातर निम्न स्तर का होता है।

अध्ययन के उद्देश्य संख्या 3

"समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षा में डिजिटलीकरण व उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना। के अन्तर्गत परिकल्पित परिकल्पना Ho3 समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण व

उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाएगा।" का सत्यापन r' परीक्षण के आधार पर किया गया है, जिसके विश्लेषण से प्राप्त परिणाम को तालिका संख्या-3 में दर्शाया गया है-

तालिका संख्या - 3

समाकेतिक शिक्षा के महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य 'r' मान

	N	मध्यमान	सहसम्बन्ध गुणांक ('r') मान	निष्कर्ष
शिक्षा के डिजिटलीकरण	100	80.34	0.957	मध्यम धनात्मक सह-सम्बन्ध तथा .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
शैक्षणिक उपलब्धि	100	88.35		

'0.5 सार्थकता स्तर पर 'r' का सारणी मान = .088

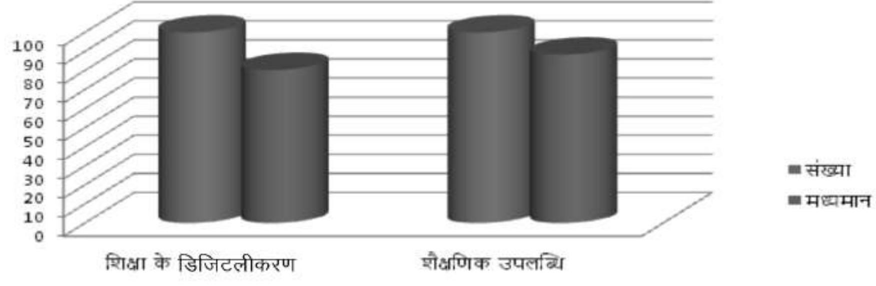

समाकेतिक शिक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा शैक्षणिक उपलब्धि के संख्या एवं मध्यमान

विश्लेषण : उपराक्त तालिका संख्या-3 में शिक्षा के डिजिटलीकरण मापनी तथा शैक्षणिक उपलब्धि मापनी पर 100 विद्यार्थियों के प्रदत्तों का मध्यमान क्रमशः 80.34 व 88.35 है तथा पारिवारिक वातावरण शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त r' का मान 0.957 है, यह प्राप्त मान .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

परिणाम : प्रतिपादित परिकल्पना-3 को अस्वीकार किया जाता है, प्राप्त r' का मान इंगित करता है कि विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण मापनी तथा शैक्षणिक उपलब्धि मापनी के मध्य सार्थक मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध है, अर्थात विद्यार्थियों के शिक्षा के डिजिटलीकरण तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य में महत्वपूर्ण सम्बन्ध व्याप्त है।

विवेचना : उपरोक्त परिणाम इंगित करते है कि अधिकतर विद्यार्थियों का शिक्षा के डिजिटलीकरण जिस स्तर का है उसी स्तर की उनकी शैक्षणिक उपलब्धि भी है। परिणाम इंगित करता है कि विद्यार्थियों का शिक्षा के डिजिटलीकरण एवं शैक्षणिक उपलब्धि एक ही दिशा में

कार्य करते हैं। अर्थात् यदि विद्यार्थियों का शिक्षा के डिजिटलीकरण का स्तर उच्च है तो उन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि भी ज्यादातर उच्च स्तर की होती है तथा यदि विद्यार्थियों का शिक्षा के डिजिटलीकरण का स्तर निम्न है तो उन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि भी ज्यादातर निम्न स्तर की होती है।

निष्कर्ष : शैक्षणिक उपलब्धि के विकास में शिक्षा के डिजिटलीकरण की भूमिका अभिभावकों, शिक्षकों व विद्यार्थियों से अवगत करा विद्यार्थियों में शिक्षा के डिजीटलीकरण में विकास हेतु शैक्षिक अभिविन्यास कायर्क्रम का आयाजेन, व उत्तम शैक्षणिक उपलब्धि बनाये रखने हेतु उनमें समायोजन तथा संवेगात्मक स्थायित्व के विकास हेतु विद्यालय में कायर्क्रमों का संचालन व छात्रों को जिम्मेदारियां निर्धारण कर उनमें नेतृत्व के गुणों का विकास किया जा सकेगा तथा शिक्षा के डिजिटलीकरण का शैक्षणिक उपलब्धि के साथ अभीष्ट संबंध के महत्व को समझ विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन, शिक्षा के क्षेत्रों में आवश्यक परिमार्जन कर शिक्षक तथा विद्यार्थी के मध्य उचित शैक्षिक वातावरण स्थापित किया जा सकेगा और प्रदत्त शिक्षा का उद्देश्य परिपूर्ण किया जा सकेगा।

शिक्षकों के लिये सुझाव :-

1. शिक्षा के डिजिटलीकरण, अधिगम एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध के महत्व के संदर्भ में अभिभावकों व छात्रों को जागरूक करना चाहिये।
2. शिक्षकों को विद्यार्थियों से सहानुभूति, मित्रतापूर्ण व्यवहार कर उचित शैक्षिक वातावरण का निर्माण व संबंध स्थापित करना चाहिये।
3. सभी विद्यार्थियों के साथ एक समान व्यवहार करना चाहिये।
4. विद्यार्थियों को विभिन्न शैक्षिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना चाहिये।
5. विद्यार्थियों में सामाजिक दक्षता के गुणों को विकसित करने वाली गतिविधियों व कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

सन्दर्भ :

1. Srivastav, D. N. (2010). Anushandhan Vidhiya. Agra: Sahitya Prakashan.
2. Mangal, S. K. (2007). Essentials of educational psychology. New Delhi: Prentice-Hall of India Private Limited.
3. Thomson, R. (2007). The influence of family environment on mental health need and service use among vulnerable children. Chilled Welfare, 86(5), 57-74.
4. Shankar, S. P. & Jebaraj, R. (2006). Mental health of tsunami affected adolescent orphan children. Edutracks, 6(2), 38-40.
5. Shah, B. (1990). Familyclimate Scale. Agra: Kachahri Ghat, National Psychological Corporation.
6. राय, पी. (2010-11) अनुसंधान पश्रच्य, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन।
7. राठौर, (2008) माध्यमिक स्तर शिक्षा के माध्यम का विद्यार्थियों शैक्षिक रुचि एवं समायोजन पर प्रभाव। एम. एड., छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।

❑❑❑

सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.)

समकालीन हिन्दी कविता में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण (राजेश जोशी और ज्ञानेन्द्रपति के विशेष संदर्भ में)

—डॉ. सुनीता शर्मा
—निम्रता

सृष्टि के आरम्भ से ही पर्यावरण पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों के लिए जीवन दाता के रूप में भूमिका निभाता रहा है परन्तु फिर भी मानव अपने जीवन को सुखदाई बनाने के लिए प्रकृति को अपने ढंग से, अपने लाभ के लिए विनष्ट करता रहा है। उसके इन्हीं कृत्यों के कारण पर्यावरण परिवर्तित हो रहा है और आज बहुत बड़े ख़तरे से जूझ रहा है।

समकालीन से अभिप्राय है कि, "समकालिक, समसामयिक।"[1] अर्थात् जो वर्तमान से संबंध रखता हो, जिसमें यथार्थता हो, जिसमें ज्यों का त्यों वर्णन हो वह समकालीन कहलाता है। वर्तमान परिवेश एवं परिस्थितियों को चित्रित करने वाले हिन्दी साहित्य में बहुत से कवि एवं रचनाकार उभर कर सामने आए हैं। कविता का अर्थ है–कवि कर्म। समकालीन कवियों ने अपने कवि कर्म का निर्वाह करते हुए अपनी कविताओं की रचना की जिसमें उन्होंने अपने-अपने परिवेश में व्याप्त अद्यतन मुद्दों को चित्रित कर समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से यह कवि समकालीन कविता के पक्षधरता के रूप में सामने आते हैं। वर्तमान परिवेश को उद्घाटित करती समकालीन कविता को डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने इस तरह परिभाषित किया है, ''समकालीन कविता आदर्श को बिल्कुल नकारती है, वह जीवन और समाज के यथार्थ स्वरूप को व्यंजित करने में विश्वास रखती है। आज की विसंगतियों को ज्यों का त्यों वर्णित करना उसका लक्ष्य है।''[2] इस तरह समकालीन कविता आम आदमी की कविता भी मानी जाती है क्योंकि यह कविता आम जन से जुड़ी हुई है और उसके जीवन के हर एक पहलू को उद्घाटित करती हुई आगे बढ़ती है। इसमें उच्च वर्ग, निम्न वर्ग और समाज में त्रस्त तथा वह प्रत्येक जो पीड़ित है, उसकी दारूण स्थिति का वर्णन देखने को मिलता है जैसे कि ब्रजमोहन शर्मा ने समकालीन कविता को इस तरह परिभाषित किया है, ''समकालीन कविता नित्यप्रति उठने वाले प्रश्नों, महसूस होने वाली समस्याओं, टूटते-चरमराते मूल्यों, परिवर्तित संबंधों को अभिव्यक्ति देने वाली कविता है, इसलिए इसमें समकालीन जीवन की गंध है। समकालीन विसंगतियों और विद्रूपताओं को सही अभिव्यक्ति देने के फलस्वरूप डॉ. शंभूनाथ ने इस कविता को जनमानस की रामायण तक कह दिया है।''[3] इसके अतिरिक्त समकालीन का अन्य अर्थ समय से संबंधित भी लिया जा सकता है जैसे कि एक ही समय में रचना करने वाले कवि समकालीन कहलाते हैं। समकालीन हिन्दी कविता आज के व्यक्ति को केन्द्र में रख कर

चलती है और उसके जीवन में आने वाली समस्याओं, विसंगतियों को अपना विषय बनाती है। इस परिप्रेक्ष्य से हिन्दी कवि विजेन्द्र, ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी, आलोक धन्वा, मंगलेश डबराल, मनमोहन, अरूण कमल, उदय प्रकाश, विनय, अशोक वाजपेयी इत्यादि समकालीन कहे जा सकते हैं। इन्होंने वर्तमान समय में व्याप्त विसंगतियों को उभारने का प्रयास किया है।

हिन्दी जगत के रचनाकारों ने आधुनिक समय में व्याप्त ज्वलंत मुद्दों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। इन्होंने अपनी कविताओं में नारी, निम्न वर्ग, बाज़ारवाद, बाल मज़दूरी, पर्यावरण संबंधी आधुनिक समस्याओं को वर्णित किया। जिसमें पर्यावरण प्रदूषण एक गंभीर मुद्दा बनता जा रहा है। प्रस्तुत शोधालेख का लेखन मुख्य रूप से समकालीन कवि राजेश जोशी और ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण को मुख्य रखते हुए किया जाएगा। राजेश जोशी का जन्म सन् 1946 में हुआ तथा इन्होंने छः कविता संग्रहों की रचना की। इनके समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति का जन्म 1950 में हुआ और अब तक इनके आठ कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों कवियों ने अपनी कविताओं में क्रमशः आधुनिक संदर्भों को, औद्योगीकरण, मशीनीकरण, शहरीकरण, नारी स्वातंत्र्य, निम्न वर्ग, शिक्षा प्रणाली, कृषक जीवन, महंगाई, बेरोज़गारी, राजनीतिक भ्रष्टाचार, भोपाल गैस त्रासदी, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि को वर्णित किया हैं। समकालीन कवियों की रचनाओं में वर्णित पर्यावरण प्रदूषण को जानने से पूर्व पर्यावरण एवं प्रदूषण को जानना आवश्यक है, जिसे इस प्रकार जाना जा सकता है:-

सृष्टि के आरम्भ से ही पर्यावरण पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों के लिए जीवन दाता के रूप में भूमिका निभाता रहा है परन्तु फिर भी मानव अपने जीवन को सुखदाई बनाने के लिए प्रकृति को अपने ढंग से, अपने लाभ के लिए विनष्ट करता रहा है। उसके इन्हीं कृत्यों के कारण पर्यावरण परिवर्तित हो रहा है और आज बहुत बड़े ख़तरे से जूझ रहा है। पर्यावरण हमारे चारों ओर फैले भू, जल, वायु, ध्वनि के सम्मिलित रूप को कहा जाता है जिसमें पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जल, हवा इत्यादि शामिल है। मानव इनका मनमाने ढंग से उपयोग करके इन्हें प्रदूषित करता है। प्रदूषण से आशय है कि,''वातावरण को दूषित करने वाली वस्तु या बात, अशुद्ध करने वाला पदार्थ, तत्व वस्तु।''[4] जिसके कारण सम्पूर्ण मानवता एवं जीव जन्तुओं को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे पृथ्वी पर फैले कूड़े कर्कट के कारण उनके रहने के लिए जगह कम पड़ रही है, उनको पीने के लिए गंदा जल मिलता है, दूषित वायु में सांस लेना पड़ता है जिस कारण मानव तरह-तरह की बीमारियों का शिकार हो रहा है और उसका जीवन समय के पहले खत्म हो रहा है। इनका दुष्प्रभाव मानव के साथ-साथ जीव जन्तुओं पर भी पड़ रहा है। इन स्थितियों को देखते हुए पर्यावरण असंतुलन के प्रति सामान्य मानव ही नहीं बल्कि कवियों ने भी चिंता व्यक्त की है। राजेश जोशी और ज्ञानेन्द्रपति सजग समकालीन रचनाकार हैं। उनका कवि हृदय पर्यावरण के प्रति संवेद्य है इसलिए इन रचनाकारों ने पर्यावरण को अपनी कविताओं का विषय बनाया है और सम्पूर्ण मानवता को प्रदूषण के प्रति सचेत करने के लिए लेखन किया है जिस पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है:-

भू प्रदूषण:-

भू पर्यावरण में वह सभी जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, जानवर, पेड़-पौधे इत्यादि शामिल हैं जो भूमि पर निवास करते हुए अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। भू पर्यावरण आज कई कारणों से प्रदूषित हो रहा है जिसमें पेड़ों की कटाई, प्लास्टिक, घरेलू कूड़ा कर्कट इत्यादि शामिल हैं।

आलोच्य कवि जोशी ने वृक्षों की खत्म हो रही संख्या के प्रति चिंता व्यक्त की है क्योंकि वृक्ष हमें आक्सीजन देते हैं। जिससे मानव जिंदा रहता है अर्थात् वृक्ष ही जीवन दाता है इनके अभाव में पृथ्वी पर मानव का जीवन असंभव है। मानव के जीवन में इनका इतना महत्व होने के बाद भी मानव इन्हें काट रहा है। जोशी ने पहाड़ों से लकड़ी काट कर आ रहे लकड़हारों को इस तरह वर्णित किया है :–

''लकड़हारे अक्सर रास्तों में मिलते थे, / जो लाते थे पहाड़ों से लकड़ियाँ, / और गाँव में बेचते थे। / पहाड़ों पर घूमते / लकड़हारे अक्सर मिल जाते थे, / सिर पर लकड़ियों का गट्ठर लादे।''[5]

तत्पश्चात् जोशी ने निरंतर कट रहे वृक्षों पर चिंता व्यक्त की है कि मानव अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए इन्हें काट रहा है जिससे पृथ्वी पर आगामी बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वृक्षों के निरंतर कम होने पर आने वाली समस्याओं को सोच कवि जोशी चिंतित है इसलिए वह इनकी कटाई पर अपनी प्रतिक्रिया को इस तरह व्यक्त कर रहे हैं:–

''यहाँ वृक्ष काटे जा रहे हैं लगातार! / अकाल या महामारी में जिस तरह लोग बाग छोड़ कर
चले जाते हैं अपने घर बार, / छायाएँ छोड़ कर जा रही हैं अपनी जगह!''[6]

इसी तरह ज्ञानेन्द्रपति ने झारखण्ड में महुआ के वृक्ष की कटाई पर प्रकाश डाला है। महुआ से आशय है कि,''एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके फूल, फल खाने और लकड़ी ईंधन तथा इमारती कामों में आती है।''[7]

मानव इनको बेचने के लिए बड़ी मात्रा में काटता है और इनके पत्तों एवं फलों को बेच कर धन प्राप्त करता है। इसका प्रयोग खाने, शराब बनाने और लकड़ी के लिए किया जाता है। इसके बीज के रस को निकाल कर पूरियाँ बनाई जाती हैं और इसका पेस्ट बना कर, इसे आटे में मिला कर, इसकी रोटियाँ बनाई जाती है तथा इसके फूलों से शराब को बनाया जाता है। इसके खाने में किए जाते अन्य इस्तेमाल को ज्ञानेन्द्रपति ने इस तरह प्रकट किया है:–

''प्राय: तो पान के एक रंगीनमिज़ाज पत्ते का पर्यंक बनने / एक गिलौरी की सेज / टूट आता है महुए का एक हथेली भर पत्ता / रसज्ञ नगर के मुख के इतना क़रीब तक / पनरस–पगे बतरस तक, कुछ देर ठिठका हुआ / तम्बाकू से मदहोश, चूने से बिन्धा, चकराता।''[8]

मानव ने अपनी सुविधाओं के लिए बिजली एवं टेलीफोन का आविष्कार किया है जिसे मानव तक पहुँचाने के लिए बहुत से वृक्षों का होम किया तथा उनके पत्तों को काट कर छोटे कर दिया। इस तरह के वृक्षों को देख कवि ज्ञानेन्द्रपति को बड़ा दु:ख होता है जिसे उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया है:–

''उनका ऊँचा सिर / कलम कर दिया गया एक दोपहर / एक लम्बी–सी सीढ़ी लगा कर / देखना यह है / वसंत इनके साथ अबके क्या करता है।''[9]

इसके बाद समकालीन कवि लीलाधर मंडलोई ने भी वृक्षों की कटाई के प्रति चिंता व्यक्त की है तथा इनके अभाव में पक्षी अपने घोंसलों के लिए जगह–जगह भटक रहे हैं जैसे कि:–

''लपलपाती कुल्हाड़ियाँ हैं हर तरफ़, / पेडॉक काँपते हैं जड़ों तक, / बदलती हैं चिड़ियाँ घोंसलें।''[10]

वृक्षों के कम होने से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है जिससे भू पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है जिस कारण मानव एवं जीवों के जीवन पर खतरा मंडरा रहा है इसलिए इन कवियों ने हमें इस बढ़ते खतरे के कारणों से परिचित करवाने का प्रयास किया है।

जल प्रदूषणः-

जल से अभिप्राय है कि, ''वारि, पानी, पानी का स्थान।''[11] अर्थात् पानी एवं पानी के स्रोत, यहाँ से पानी को प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें नदियां, झीलें, समुद्र इत्यादि सभी सोते जल-पर्यावरण के अंतर्गत आते हैं।

जल मानवीय जीवन का अहम् हिस्सा है। जल आज कई कारणों से प्रदूषित हो रहा है, जैसे कि मल-मूत्र, लिफ़ाफे, प्लास्टिक, साबुन, कारखानों से निकलने वाले पदार्थ जिसमें रसायन, अम्ल, क्षार, तेल, वसा, रासायनिक लवण, रंग रोगन, चर्म, शोधन, कीटनाशक, रासायनिक उर्वक, सीसा, पारा, उष्ण जल इत्यादि से दूषित हो रहा है। इस प्रदूषित जल का प्रयोग करने से मनुष्य हैजा, उल्टी, टाइफाइड, पीलिया और पोलियो जैसी बीमारियों का शिकार हो रहा हैं। दूषित जल का प्रयोग करने से जलीय जीवों का जीवन खत्म हो रहा है। इसके दुष्प्रभाव को देखते हुए कवियों ने इसे अपनी कविताओं का विषय बनाया।

सारी वनस्पति पानी से ही फलती फूलती है और इनको ज्यादातर बारिश से ही जल मिलता है तथा यह जल इनके लिए बहुत लाभदायक होता है जिससे वह बिना रुकावट विकास करते हैं। गर्मी में उमस के दिनों में बारिश न होने पर सभी प्राणी गर्मी से बेहाल होते हैं और वनस्पति भी अच्छी तरह से विकसित नहीं हो पाती तथा सूख जाती है। सावन के महीने में ट्रेन में सफर करते हुए बारिश के अभाव में त्रस्त लोगों एवं खराब फसलों को देख कवि जोशी ने आगामी संकट को इस तरह वर्णित किया है:-

''आषाढ़ के बादल बिना बरसे ही इस बार / उत्तर भारत से फरार हो गए थे / मानसून से पहले की फुहारें भी इन इलाकों / में नहीं पड़ी थीं / और चौपट हो चुकी थी सोयाबीन की सारी फसल।''[12]

इसके पश्चात् कवियों ने गंगा नदी के जल में बढ़ रहे प्रदूषण को वर्णित किया है कि मानव आज उसमें कपड़े धो रहा है और अपशिष्ट पदार्थों को जल में फेंक देता है जैसे कि ज्ञानचंन्द्र गुप्त की प्रस्तुत पंक्तियों से पता चलता है:-

''पानी बस इतना, कि धोबी घाट के पाट से / कपड़े पटकने की, आती रहे आवाज़।''[13]

वहीं नदियों के जल में साबुन को मिलता देख कवि ज्ञानेन्द्रपति भी चिंतित दिखाई देते हैं जैसे कि:-

''वह एक साबुन है / साबुन की एक साबुत बट्टी / रैपर से खुलकर, प्रस्तुत पड़ी / जल-डूबी घाट-सीढ़ी के ऊपर / सूखी घाट-सीढ़ी पर / एक नीली साबुन-बट्टी।''[14]

इसके साथ-साथ मानव ने शहरों के गंदे नालों को भी नदियों के साथ मिला दिया है जिससे वह गंदे नाले का पानी शुद्ध जल में मिलकर उसे भी विष बना देता है जैसे कि:-

''गंगा में जहाँ वह, नगर का नाला खुलता है / गंदा हुआ तो क्या, कलरव करता है।''[15]

तत्पश्चात् मानव फैक्ट्रियों से निकलने वाले प्रदूषकों को भी नदी के जल में मिलाकर इसे प्रदूषित कर रहा है जो कि प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है:-

''आह! लेकिन / स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते / बेंगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा।''[16]

इस गंदे जल ने शुद्ध जल को प्रदूषित ही नहीं किया बल्कि उसमें रहने वाले बहुत से जीव-जन्तुओं को भी मार दिया है जिन की मृत्यु से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है, इसलिए कवि ने उन जीवों के दर्द को नदी का मानवीकरण कर उससे प्रदर्शित करवाया है जैसे कि:-

''गंगा का जी कँपता है / इस बदहाली में भी उसके जल में / पलती है मछलियाँ / और उन मछलियों पर पलते हैं कछुए / जिनके बीच सख्तखोल घोंघे / कवचधारी घोंघे।

ओंह! उनके लिए / गंगा का जी कँपता है / अपने जलजीवों के लिए / और अपने उन थलजीवों के लिए भी।''[17]

गंगा का जल इतना अधिक प्रदूषित हो गया है कि वह जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं को तो खत्म करता ही है बल्कि उसका सेवन करने वाले पशु-पक्षी भी इसका शिकार हो जाते हैं। गंगा के प्रदूषित जल के प्रभाव को कवि अरूण कमल ने इस तरह वर्णित किया है:-

''गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी / विष की थाह से झुलस जाएगा / कि एक दिन गंगा / नहीं रहेगी और फिर गंगा / वे रख गए हैं गंगा के द्वार पर विषपात्र। / षड़यंत्र, गंगा के साथ भी षड़्यंत्र।''[18]

इसके अतिरिक्त गंगा के जल के प्रति बनी धारणाएँ भी खत्म होती जा रही हैं कि इसके जल से मानव रोग मुक्त हो जाता है परन्तु आज स्थिति यह है कि उसके जल को पीने से मानव अपने रोगों से मुक्ति की बजाय अपने शरीर से मुक्ति पा लेता है जिसे कि कवि ज्ञानेन्द्रपति ने इस तरह वर्णित किया है:-

''और कल की उसकी अमरित-बूँद आज / चंगे को बीमार करने वाली / और बीमार के लिए तो / सचमुच मोक्षदा साबित होने वाली अकाल ही।''[19]

कवियों ने प्रदूषण के दुष्प्रभाव से समस्त सजीव प्राणियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव से परिचित करवाया है और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रेरित किया है।

वायु प्रदूषण:-

वायु से अभिप्राय है कि, ''हवा, पाँच तत्वों में से एक जो पृथ्वी के चारों ओर ऊपर आकाश तक व्याप्त है, जिससे सब प्राणी साँस लेते हैं।''[20] अर्थात् पवन जो हर जगह व्याप्त है, जिसमें बहुत सी गैसें विद्यमान रहती हैं, जिससे पृथ्वी पर प्राणियों का जीवन संभव है, वह वायु कहलाती है।

वायु के बिना मानव का जीवन असंभव है। वायु आज कई कारणों से प्रदूषित हो रही है जिसमें कारखानों, मोटर वाहनों, भट्टों से निकलने वाली गैसें एवं धुआँ, लिफाफे, प्लास्टिक के जलने से निकलने वाला धुआँ इत्यादि वायु को प्रदूषित कर रहे हैं। हवा के दूषित होने के कारण पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रत्येक प्राणी का जीना दूभर हो गया है।

इसी तरह उद्योगों से निकलने वाला धुआँ भी सभी जीवों के लिए हानिकारक है और कभी-कभी फैक्ट्रियों से गैस का रिसाव हो जाता है जो कि बहुत ज्यादा खतरनाक होता है, जैसे कि जोशी ने अपनी कविता 'हवा' में भोपाल में हुए गैस रिसाव से प्रदूषित हुई वायु को देखकर कवि बहुत व्यथित होते हैं और उन्होंने इसको अपनी कविता में इस तरह से वर्णित किया है:-

''हवा को डस लिया है, किसी करात ने / या कौड़िया साँप ने, लहर मारता है जहर / थरथराता है रह-रहकर, हवा का बदन।''[21]

इसी के साथ आग से निकलने वाला धुआँ भी वायुमंडल को प्रदूषित करता है। मानव अपने कई कार्य आग से करता है जैसे खाना बनाना, मृत व्यक्ति को जलाना इत्यादि। इसके लिए वह लकड़ियों को जलाता है जिससे धुआँ निकलता है और यही धुआँ हवा को दूषित करता है जैसे कि कवि ने 'सुब्हे बनारस' कविता में मणिकर्णिका घाट (जो कि वाराणसी में है) पर निरंतर जलने वाली चिताओं से निकलने वाले धुएँ से होने वाले वायु प्रदूषण को वर्णित किया है, क्योंकि इस घाट के बारे में कहा जाता है कि यहाँ पर अग्निदाह करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए यहाँ पर दिन-रात चिताएँ जलती रहती हैं इससे दूषित होती वायु को देख कवि जोशी वायु पर्यावरण के प्रति इस तरह चिंता व्यक्त करते हैं:-

''मणिकर्णिका घाट पर धू-धू करती कोई चिता जलती थी / घाट के पीछे बने पत्थर के गलियारों की दीवार पर / लगता था सदियों की कालिख जमा थी।''[22]

इसके पश्चात् कवियों ने फैक्ट्रियों से निकलने वाले धुएँ को वर्णित किया है कि मानव अपने स्वार्थ हेतु वायु पर्यावरण की परवाह न करते हुए इनको बढ़ावा देता है जैसे कि फैक्ट्रियों को चलाने वाले मालिक स्वयं तो इनसे धन प्राप्त करते ही हैं परन्तु इन्होंने दूसरों का जीना भी दूभर कर दिया है, क्योंकि इन्होंने उनकी शुद्ध वायु को प्रदूषित कर दिया है जैसे कि प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है:-

''पेड़ों के बीच अदीख / खड़ी, उर का आक्रोश उलीचती वह करियाई चिमनी / हवा के हवाले करती अपना जहरीला धुआँ कि, आत्मसुखी / चौमुखी विनाश-कामना।''[23]

इसके अतिरिक्त मानव युद्धों में या चट्टानों को तोड़ने के लिए बारूद का इस्तेमाल करता है जिसके फटने से बहुत मात्रा में धुआँ उत्पन्न होता है और जो वायु को प्रदूषित करता है जैसे कि:-

''और फटाफट धड़ाधड़ / चालू हो जाएँगे क्रशर / बारूद की गन्ध फैल जाएगी हवा में / उनके टूटने की गन्ध के ऊपर / और वे बोल्डरों में गिट्टियों में खण्ड-खण्ड हो जाएँगे।''[24]

इनके अतिरिक्त भारत में ईंटों को बनाने वाले बहुत से भट्ठे चलते हैं उन भट्ठों की चिमनियों से अत्याधिक मात्रा में धुआँ निकलता हैं जिसका दुष्प्रभाव वृक्षों के साथ-साथ पक्षियों पर भी पड़ता है जैसे कि राधेश्याम तिवारी की प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है:-

''टूटे-फूटे रास्तों की धूल-धक्कड़ ने / भट्ठे की चिमनी के उगलते धुएँ ने / पेड़ों के पत्तों की हरीतिमा को / बुरी तरह ढँक लिया है / जैसे पोत दी हो कालिख उन पर / आम के पेड़ बिन बौराये ही / साँस थामे असहाय से खड़े हैं / डाल पर बैठी कोयल हुई उदास / कैसे कूके बेचारी गंध के बिना / प्रदूषण की इस आबोहवा में।''[25]

कवियों ने इन कविताओं के माध्यम से वायु को प्रदूषित करने वाले कारणों पर प्रकाश डालते हुए इससे होने वाले नुकसान से परिचित करवाने का प्रयास किया है तथा वायुमंडल को शुद्ध रखने के लिए मानव को प्रेरित करने का प्रयास किया है।

ध्वनि प्रदूषण:-

ध्वनि से तात्पर्य है कि, ''शब्द, आवाज़, आवाज़ की गूँज।''[26] अर्थात् जिन उपकरणों से हम किसी ध्वनि को सुनते हैं वह सब ध्वनि के स्रोत कहलाते हैं जैसे मोटर गाड़ी, रेलगाड़ी, कारखानों की मशीनें, गोलाबारी, जीव-जन्तुओं इत्यादि द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ। ध्वनि हमारे जीवन को संचारित करती है परन्तु जब ध्वनि हमारे कानों को प्रिय न लगे और हम उसे समझने में सक्षम न हों तथा वह

ध्वनि हमारी श्रवण इंद्रियों को बाधित कर मानसिकता को कुंद करे उसे ध्वनि प्रदूषण कहा जाता है। अधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्रों के कारण मानव को बहुत सी शारीरिक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है जैसे अनिद्रा, रक्त चाप, हृदय रोग, मानसिक तनाव इत्यादि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आधुनिक कवि जोशी और ज्ञानेन्द्रपति बढ़ते ध्वनि प्रदूषण के प्रति भी चिंतित हुए हैं और उसे भी अपनी कविता में शामिल किया जिसमें मंत्री की गाड़ी के साइरन और पटाखों से निकलने वाली ध्वनियों को चित्रित किया है जिन पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है:-

मंत्री जो देश और राज्य के कार्य भार को संभालते हैं तथा जिन्हें लोगों द्वारा अपना वोट डाल कर चुना जाता है। बहुमत प्राप्त करने पर वह आम से खास बन जाते हैं और उनकी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कड़े इंतजाम किए जाते हैं जैसे उनकी रक्षा के लिए गार्ड दिए जाते हैं जो दिन-रात उनके साथ या आस-पास रहते हैं और कहीं जाने पर उनके साथ ही उनके आगे-पीछे वाली गाड़ियों में होते हैं। मंत्री के आगे वाली गाड़ियों पर साइरन लगे होते है जिन्हें रोड पर बार-बार बजाया जाता है ताकि उनके लिए पुलिस कर्मचारी रास्ता खाली करवा सके। मंत्रियों की गाड़ी के निरंतर बजने वाले हार्न से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को कवि जोशी ने इस तरह व्यक्त किया है:-

''साइरन बजाती इस गाड़ी के पीछे-पीछे / बहुत तेज़ गति से आ रही होगी किसी मंत्री की कार।''[27]

तत्पश्चात् कवि ज्ञानेन्द्रपति ने त्यौहारों पर होते ध्वनि प्रदूषण को वर्णित किया है, जैसे दीवाली के समय इतने ज्यादा पटाखे चलाए जाते हैं जिसके शोर से बूढ़े-बुजुर्ग तो परेशान होते ही हैं पशु-पक्षी भी त्रस्त होते हैं, वह भी अपने घोंसलों से बाहर नहीं निकलते हैं। वह इस ध्वनि से बेहाल हो जाते हैं क्योंकि यह शोर उनके कानों को कष्ट देता है जिससे वह चिड़चिड़े हो जाते हैं। कवि ज्ञानेन्द्रपति ने ध्वनि प्रदूषण के पड़ने वाले प्रभाव को इस तरह व्यक्त किया है:-

''फिर छूटा एक पटाखा / बच्चों के आनन्दित शोर के शिखर पर / एक पल को करता उन्हें भी स्तब्ध / चिहुँककर बुदबुदाए बूढ़े दादा / अपनी आरामकुर्सी में कसमसाए / उड़ गई चिड़ियाएँ / घरों के मुँडेरों पर से।''[28]

प्रस्तुत कवियों ने ध्वनि प्रदूषण के जगत पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव पर प्रकाश डाला है कि अत्याधिक ऊँची ध्वनि भी मानव के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपरोक्त आधुनिक कवि राजेश जोशी और ज्ञानेन्द्रपति अपनी कविता में इन्द्रधनुषी रंगों के साथ उपस्थित हुए है पर उनका प्रकृति प्रेम भी सराहनीय है इसलिए उन्होंने प्रकृति को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। इन्होंने प्रदूषित होते परिवेश के प्रति गहरी चिंता व्यक्त की है तथा इनसे संबंधित समस्याओं को उभारने का प्रयास किया है। इन कवियों ने पाठकों का ध्यान पर्यावरण की तरफ आकर्षित करने का प्रयास किया है क्योंकि अगर पर्यावरण स्वच्छ रहेगा तो हम भी स्वस्थ रहेंगे इसलिए इन्होंने मानव को पर्यावरण के आगामी संकट के प्रति सचेत तथा सजग करने का प्रयास किया है ताकि वह अपनी भावी पीढ़ियों को साफ तथा शुद्ध वातावरण दे सके। इन रचनाकारों ने पर्यावरण असंतुलन के दुष्प्रभावों से परिचित करवाते हुए इसे शुद्ध रखने के लिए मानव, समाज तथा सरकार को प्रेरित किया है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आज का कवि पारखी एवं सूक्ष्म दृष्टि का स्वामी है। उन्होंने पर्यावरण प्रदूषण का बहुपक्षीय अध्ययन कर उसके सम्मुख खड़ी हुई समस्याओं को चित्रित करते हुए सरकार, समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है जिससे प्रदूषित हुए परिवेश को तो शुद्ध बनाया जा सके और मानव पर पड़े उस प्रदूषण के हानिकारक परिणामों को कम किया जा सके।

संदर्भ :

1. प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोश, धर्मेन्द्र वर्मा (संपा.) (भाग-2) नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2010, पृ-2453
2. हुकुमचन्द राजपाल, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, दिल्ली : कोणार्क प्रकाशन, 1980, पृ-10
3. ब्रजमोहन शर्मा, समकालीन कविता और लीलाधर जगूड़ी, नई दिल्ली : नालन्दा प्रकाशन, 1993, पृ-12
4. राजकमल बृहत् हिन्दी शब्दकोश, पुष्पपाल सिंह (संपा.), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2017, पृ-720
5. राजेश जोशी, धूपघड़ी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ-34
6. राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1994, पृ-77
7. बृहत् हिन्दी कोश, कालिका प्रसाद (संपा.), वाराणसी : ज्ञानमण्डल, 2001, पृ-1156
8. ज्ञानेन्द्रपति, गंगा-बीती, दिल्ली : सेतु प्रकाशन, 2019, पृ-136
9. वहीं, पृ-147
10. लीलाधर मंडलोई, घर-घर घूमा, दिल्ली : शिल्पायन, 2010, पृ-69
11. प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोश, धर्मेन्द्र वर्मा (संपा.) (भाग-1) नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2010, पृ-970
12. राजेश जोशी, चाँद की वर्तनी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ-21
13. पृथ्वी के पक्ष में (कविता-झरही), राधेश्याम तिवारी (संपा.), दिल्ली : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 2006, पृ-263
14. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999, पृ-20
15. वहीं, पृ-62
16. वहीं, पृ-20
17. वहीं, पृ-21
18. अरूण कमल, अपनी केवल धार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1980, पृ-63
19. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999, पृ-22
20. राजकमल बृहत् हिन्दी शब्दकोश, पुष्पपाल सिंह (संपा.), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2017, पृ-720
21. राजेश जोशी, धूपघड़ी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ-86
22. राजेश जोशी, चाँद की वर्तनी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ-24
23. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999, पृ-50
24. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2004, पृ-23
25. पृथ्वी के पक्ष में (कविता-गाँव में भी), राधेश्याम तिवारी (संपा.), दिल्ली : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 2006, पृ-320
26. राजकमल बृहत् हिन्दी शब्दकोश, पुष्पपाल सिंह (संपा.), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2017, पृ-446
27. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृ-24
28. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2004, पृ-244

❒❒❒

1. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।
2. शोधछात्रा, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

रामचरित मानस की वर्तमान में प्रासंगिकता

—सोनिया

महाकवि तुलसीदास ने मानस में दुर्गुणों को समाप्त करने के अनेक उपाय बतलाए हैं। वे अपने साहित्य से सभी के लिए कल्याणकारक सन्तप्रवृत्ति के समाज की रचना करने में सफल हुए हैं। उनका सम्पूर्ण सृजन विशेषतः रामचरित-मानस आज ही नहीं, भविष्य में भी उसी प्रकार सदुपयोगी तथा प्रासंगिक रहेगा। जो लोग सत्य और प्रेम सामीप्य का रसानंद पान करना चाहते हैं, शबरी और अहिल्या की भाव विह्वलता उनके विश्वास को दृढ़ करती है।

रामचरितमानस हिंदी साहित्य की अनुपम रचना है, जो लोक-शिक्षा, लोक-प्रेरणा, लोकोपदेश, लोक-व्यवहार तथा लोकाचार की पुण्य ज्ञानगंगा को प्रवाहित करती है। मानवीय सत्यता से परिपूर्ण यह ग्रन्थ न केवल तुलसी के समूचे युग की व्यवाहरिकता व सैद्धान्तिकता को दर्शाता है अपितु वर्तमान व भविष्य के मूल्यों की झलक और नैतिकता के पोषण का अतुलनीय कार्य करता है। गोस्वामी तुलसीदास के इस महान ग्रन्थ में पाठकों को लोकानुभव जन्य अनेक ऐसे सदुपदेश उपलब्ध होते हैं जिनके द्वारा समाज बुराइयों से सजग रहकर भलाई की ओर सरलता से अग्रसर हो सके और अपने जीवन तथा समाज को सुखी बना सके। गोस्वामीजी के समय में कलयुग के प्रभाव से तथा विदेशी शासकों के अनाचार के कारण लोगों में नैतिकता का पतन हो गया था। राजा, प्रजा, वर्ण, समाज सभी ने बौद्धिक चेतना का परित्याग कर दिया था जिसके कारण समाज में अनैतिकतापूर्ण दुराचार व्याप्त हो गया था। समाज में कोई भी नियमों का पालन नहीं करता था। इस स्थिति का अवलोकन करके गोस्वामीजी की आचारवादी और मर्यादावादी भावना को अवश्य ही गहरी ठेस पहुँची होगी। इसीलिये उन्होंने रामचरितमानस में पग-पग पर नीति-निरूपण करते हुए समाज को सदाचार, मर्यादा पालन, नियम-पालन आदि की शिक्षा तथा प्रेरणा दी है।

मुख्य शब्द : राजनीति, समरसता, सदाचरण, नैतिकता, व्यावहारिकता, मानवीय सत्यता, रामराज।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वराज के बाद जिस सुराज रूपी रामराज की कल्पना की थी, वह तुलसीदास जी ने अपने मानस के उत्तरकाण्ड में रामराज्य की विशिष्टताओं के साथ वर्णित किया है। नवजीवन पत्र में गांधी जी तुलसी के मानस के बारे में बार-बार लिखते रहते थे कि रामराज्य फिर से स्थापित हो। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी साकेत में मानसकार का ऋणी होना स्वीकार किया है।

आज मानस और तुलसीदास पर नारी विमर्शवादियों के तीखे आक्रमण होते हैं कि उन्होंने नारी के प्रति न्यायपूर्ण शब्दों का प्रयोग नहीं किया। तुलसी ने रामचरितमानस के नारीपात्रों सुनयना, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसुइया, शबरी आदि के चरित्र में ऋषि चेतना द्वारा प्रदत्त मूल्य, मान, मर्यादा को देखा और प्रशंसनीय भावों को उनसे जोड़ा तथा कामरूपी शूपर्नखा, क्रोधरूपी ताड़का, लोभरूपी मन्थरा और अहंकाररूपी लंकिनी को उचित दण्ड दिलवाया, जबकि मोह रूपी त्रिजटा को जगतजननी सीताजी की सेविका के रूप में परिवर्तित होने के कारण छोड़ा क्योंकि जगत में काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तो त्यागने ही हैं, पर सात्विक मोह तो प्रभु के साथ जोड़ता है।

"जननीसम जानहिं पर नारी। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।" (अयोध्याकाण्ड पृष्ठ 33)[1]

महाकवि तुलसीदास ने मानस में दुर्गुणों को समाप्त करने के अनेक उपाय बतलाए हैं। वे अपने साहित्य से सभी के लिए कल्याणकारक सन्तप्रवृत्ति के समाज की रचना करने में सफल हुए हैं। उनका सम्पूर्ण सृजन विशेषत: रामचरितमानस आज ही नहीं, भविष्य में भी उसी प्रकार सदुपयोगी तथा प्रासंगिक रहेगा। जो लोग सत्य और प्रेम सामीप्य का रसानंद पान करना चाहते हैं, शबरी और अहिल्या की भाव विह्वलता उनके विश्वास को दृढ़ करती है। सत्य और प्रेम का निवास पर्णकुटी में हो या निषादराज के यहाँ कोल, भील, किरात, वानर, रीछों के साथ हो अथवा ऋषि-मुनियों के आश्रमों में चित्रकूट व पंचवटी में, वहाँ सभी जीव अपने वैर भाव को नष्ट कर देते हैं।

अवध के सत्ताधीश राम का सामीप्य राम के अनुजों व सीता के अतिरिक्त जिन अन्यों को प्राप्त हुआ वे थे जामवन्त, अंगद, नल-नील, सुग्रीव व हनुमान आदि। इन सभी ने राम को अपनी कार्यकुशलता से प्रभावित किया था। तभी तो राम ने सभी को सम्मानित किया। उन्होंने अनुजों व सीता को सिंहासन पर स्थान दिया। हनुमानजी ने सम्मान में माँगा था-बसहु राम सिय मानस मोरे, इसलिए राम जी ने उन्हें अपने राजसिंहासन के समीप्य में स्थान दिया। जो सत्ताधीश के मानस में बसते हैं और योग्य हैं, वही सर्वोच्च स्थान पाते हैं। राम ने चयन में नर, रीछ और वानर नहीं देखा, समर्पण देखा। हनुमान के चयन में वशिष्ठ की कोई भूमिका नहीं थी। रामचरितमानस में व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन मिलता है। जो जिस योग्य है, उसे वैसा ही काम दिया गया। जो योग्य नहीं, वह पीछे बैठा दिखता है। इसलिए मानस में जहाँ वशिष्ठ की आवश्यकता है, वहाँ सुमन्त व हनुमन्त भी पीछे हैं। राम ने द्रुतगामी कार्यों के लिए ज्ञानियों में अग्रगण्य हनुमानजी का चयन किया, राजनीति के लिए राजदूत अंगद को बनाया, वनवास में रहने के लिए स्थान एवं आवास की सलाह ऋषियों से ली, केवट से नौका माँगी, लंका के लिए सेतु का निर्माण नल-नील से करवाया। जब संग्राम में रावण व मेघनाथ आए, तब स्वयं राम एवं लक्ष्मण आगे खड़े हुए। कार्य के अनुसार मानस में योग्य पात्रों को सदैव आरक्षित किया गया।

वर्तमान में एक शब्द प्रचलन में है राजनीति। जब राजा होते थे तब राज्य सत्ता के संचालन की राजा की जो नीति थी, उसे राजनीति कहा जाता था। आज इस शब्द को अपमानित किया जाता है, वैश्या कहा जाता है। आज दल है, दलनीति है या प्रतिपक्ष को पटखनी देने की नीति है, राजनीति कहाँ? आज सत्ता का कोई भी अंग यह कहने को तैयार नहीं है-

"जो अनीति कछु भाखों भाई। तो मोहिं बरजहु भय बिसराई।।"[2]

उससे कोई अन्याय या अनीति हो जाए तो उसे बिना किसी भय के डाँटा जाए। तुलसी ने तो यह भी कहा कि-

"करयि साधुमत लोकमत नृप निय निगम निचोरिह"[3]

यानी सज्जनों और लोकमत के अनुसार ही राजा कार्य करे। ऐसा न करने पर वे सावधान करते हुए कहते हैं–

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी"[4] यानी जिस राजा के राज्य में प्रजा दु:खी हो, उस राजा को नरक में ही स्थान मिलता है। तुलसी के रामराज्य में कोई भी नागरिक दु:खी, दरिद्र, दीन, दुष्चरित्र आदि नहीं होता था। शासन, प्रशासन लिपिक व सेवक सभी को अपने व्यवहार में यह लाना होगा। तभी राजनीति शब्द सार्थक होगा।

यदि हम सामाजिक समरसता की दृष्टि से देखें तो वहाँ भी रामचरित मानस हमें प्रतिबिम्ब और पथ दोनों दिखाता है। प्रतिबिम्ब इसलिए कि हम अपने व्यक्तित्व एवं तदनुरूप कार्य व्यवहार व सामाजिक योगदान के वास्तविक रूप को जान सकें, और पथ इसलिए कि जहाँ हम एक समाज के रूप में भटक रहे हैं वहाँ सन्मार्ग का चयन कर सकें और उस पर चलने का साहस-सामर्थ्य जुटा सकें। इसी क्रम में श्रीराम को मना कर वापस ले जाने के लिए चित्रकूट जाते हुए भरत की भेंट निषादराज से होती है तो इस समरसता और मर्यादा का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है जब निषाद अपना नाम बताता है-

"देखि दूरी ते कहि निज नामू...." (बताने के लिए कि मैं नीची जाति का हूँ), और इस पर भरत की प्रतिक्रिया इस समरसता का प्रमाण देती है जब वह अपना रथ त्याग कर बड़े प्रेम से उसकी ओर जाते हैं–

"राम सखा सुनि स्यंदन त्यागा, चले उतरि उमगत अनुरागा।
करत निषाद दंडवत पाई, प्रेमहि भरत लीन्ह उर लाई।
भेंटत भरत ताहि अति प्रीती, लोग सिहाहिं प्रेम कइ रीती।"[5]

और इसकी अप्रत्याशित पराकाष्ठा तो तब होती है जब चित्रकूट में निषाद नीची जाति का होने के कारण डर तथा संकोच वश दूर से प्रणाम करता है और मुनि वशिष्ठ निषादराज को अपने बाहुपाश में भर कर मिलते हैं। मानस में वर्णित यह सामाजिक सद्‌भाव यहीं तक अर्थात निषाद तक सीमित नहीं रहता। इसके आगे श्रीरामचरितमानस जनजाति को भी समाज का अभिन्न और सम्मानित अंग बनाता है, जब गोस्वामी तुलसीदास जी श्री हनुमान जी के माध्यम से वानरराज सुग्रीव की भेंट भगवान राम से करवाते हैं।

किसी ने वानर को वन में रहने वाला नर कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सुग्रीव और उनकी सेना के सदस्य वानर-भालू ही न होकर जंगल में रहने वाली जातियाँ रही होंगी जो कि नगर और गाँव में रहने वालों से कम 'शिक्षित-सभ्य' मानी जाती रही होंगी।

किष्किंधा में राम-लक्ष्मण से भेंट होने पर हनुमान जी अपने राजा सुग्रीव का परिचय देकर उनके साथ मित्रता का निवेदन करते हैं। मानस में किष्किंधाकांड का प्रसंग रखने की पृष्ठभूमि में गोस्वामी जी के मन में केवल मित्रता मात्र का वर्णन करना नहीं था वरन इसके माध्यम से वह यह बताने की कोशिश कर रहे थे कि राजा (शासक) को किसी बड़े काम की सफलता के लिए (चाहे वह शत्रु-विजय हो अथवा कोई अन्य बड़ा सामाजिक-राष्ट्रव्यापी अभियान), जन-सहभागिता (सबके विकास के लिए सबका साथ) परम आवश्यक है।

मानस के उपर्युक्त प्रसंग इस बात की पर्याप्त पुष्टि करते हैं कि समरसता के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण रामचरितमानस का एक अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। तुलसीदास की समतापरक दृष्टि ही ऐसे राजघाट की परिकल्पना करती है जहां सभी वर्णों और श्रेणियों के लोगों को स्नान करने का समान अधिकार है–

"राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिहुँ नर।।"[6]

अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट ने सन् 1941 में आधुनिक मानव समाज के लिए चार प्रकार की स्वतन्त्रताओं का प्रतिपादन किया था। भाषा व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, अपने ढंग से ईश्वर को पूजने की स्वतन्त्रता, भयमुक्त होने की स्वतन्त्रता एवं अभाव मुक्ति की स्वतन्त्रता। तुलसीदास रामचरितमानस में इन सभी प्रकार की स्वतन्त्रताओं को राजतन्त्रीय शासन व्यवस्था में भी सम्यक प्रकार से विन्यस्त दिखलाते हैं। किसी व्यक्ति की वैचारिक स्वतन्त्रता एक महान लोकतान्त्रिक मूल्य तथा मानव जाति की प्रगति की आधारशिला है, जिस पर राजसत्ता मदान्ध होकर अंकुश लगाने का यत्न कर सकती है किन्तु 'चित्रकूट सभा' की प्रसंगोद्भावना के माध्यम से व्यक्ति के इस विचार स्वातन्त्र्य का पूर्ण निर्वाह किया है। इस प्रसंग का वैशिष्ट्य निरूपित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं–"धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना तुलसी के विशाल मानस में ही संभव थी। यह संभावना उस समाज के भीतर बहुत से भिन्न–भिन्न वर्गों के समावेश द्वारा संघटित की गई है। राजा और प्रजा, गुरू और शिष्य, भाई–भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, श्वसुर और जमाता, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राहमण, ब्राहमण और शूद्र, सभ्य और असभ्य के परस्पर व्यवहारों के धर्म गांभीर्य और भावोत्कर्ष के कारण अत्यन्त मनोहर रूप प्रस्फुटित हुआ है।"

इस आदर्श राज्य रामराज्य में दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों के आतंक से प्रजा सर्वथा भयमुक्त है व सभी मनुष्य इच्छानुसार स्वधर्म का पालन करते हैं–

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।"[7]

निष्कर्ष: भक्ति आंदोलन के आकाश में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान ध्रुव तारे के समान है। उनकी रचना 'रामचरितमानस' हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। यह जीवन के विविध आयामों की विवेचना कर हमें सही मार्ग पर चलने की दिशा प्रदान करती है। जो सदैव प्रासांगिक रहेगी।

सन्दर्भ :

1. रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा 129 चौपाई 3 गीताप्रेस, गोरखपुर
2. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा 42 चौपाई 3 गीताप्रेस, गोरखपुर
3. रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा 258 गीताप्रेस, गोरखपुर
4. रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा 70 चौपाई 3, गीताप्रेस, गोरखपुर
5. रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा 192 चौपाई 4, गीताप्रेस, गोरखपुर
6. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा 29 चौपाई 2, गीताप्रेस, गोरखपुर
7. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा 29 चौपाई 1, गीताप्रेस, गोरखपुर

❑❑❑

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिंदी), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, जालन्धर, पंजाब

स्त्री-विमर्श : समकालीन परिप्रेक्ष्य में

—माहेश्वरी
—डॉ. चन्द्रकुमार जैन

स्त्री विमर्श मात्र पाश्चात्य की देन, आयातित नारा या विचारधारा नहीं है। इसके लिए दो तर्क दिए जा सकते हैं-पहला, प्रत्येक समाज की मान्यताएँ अलग होती हैं और उन्हें दूसरे समाज पर लागू नहीं किया जा सकता। दूसरा, प्रमुख तर्क यह है कि भारत में ही बौद्धकालीन घेरीगाथा, मध्यकालीन मीरा व नवजागरण काल में राजाराममोहन राय, विद्यासागर, दयानंद सरस्वती आदि के स्त्री अधिकारों के लिए किए गये संघर्षों के रूप में स्त्री-विमर्श का एक लम्बा इतिहास रहा है। आधुनिक काल में भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा के लिए बालाबोधिनी पत्रिका का सम्पादन किया।

स्त्री समकालीन चिंतन का एक प्रमुख विषय है। हिन्दी साहित्य में करीब दो-तीन दशक से स्त्री-विमर्श पर चर्चाएँ हो रही हैं। स्त्री विमर्श पर न केवल पुरुष विचारकों ने बल्कि स्त्री विचारकों ने भी अपना सक्रिय योगदान दिया है। किसी भी देश और समाज में स्त्री प्राय: दूसरे दर्जे की नागरिक मानी जाती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि महिला सदियों से भेदभाव एवं शोषण सहते-सहते निशक्त हो गई है। आज जब कभी भी साहित्यिक चर्चा होती है तो 'विमर्श' शब्द स्वत: बहस के केन्द्र में आ जाता है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द अत्यंत प्राचीन हैं परंतु आज यह शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है यह शब्द के साथ होने पर एक विशिष्ट प्रकार की अर्थवत्ता देने लगता है। स्त्री विमर्श ऐसा लेखन है, जिसने स्त्री के बारे में गहराई से सोचने-समझने के लिए ध्यान आकृष्ट किया है। 'स्त्री-विमर्श' के जरिये स्त्री के शोषण, दमन, उत्पीड़न की बातें सामने आ रही है। स्त्री किस प्रकार से अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना सकती है, पितृसत्ता का विरोध कर शोषण से छुटकारा पा सकती है, इसके लिए 'स्त्री विमर्श' ही ऐसा लेखन है जिसके द्वारा स्त्री-विमर्शकार स्त्री के उत्पीड़न के साथ-साथ उन सवालों को भी उठा रहे हैं जिनसे स्त्रियों की उपेक्षा हुई है।

'स्त्री' शब्द 'सत्यै' धातु में ड्रप और डीप प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है ठहरना, घेरा बनाना, फैलना, इस प्रकार इसका व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ हुआ-'सत्यायते अस्या गर्भ इति स्त्री'। अर्थात् जहाँ पर गर्भ ठहरता है, उसे स्त्री कहते हैं नारी, औरत, वामा, महिला आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीन अंग्रेजी भाषा में यह शब्द will से बना है जिसका अर्थ है-Human being, आगे चलकर यह शब्द wifmen बना तत्पश्चात wimman और आधुनिक भाषा में पहुँचते-पहुँचते women बन गया। विश्व में आधी दुनिया के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी माना गया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट

की आत्मकथा' नामक उपन्यास में नारी तत्व की बात की है जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है जहाँ कहीं अपने आपको सुख-दुख के लाख धाराओं में दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी तत्व है। इस संबंध में मैथिलीशरण गुप्त जी की निम्नांकित पंक्ति उल्लेखनीय है –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी / आंचल में है दूध और आखों में पानी।

पिछले तीन दशकों में यह विमर्श अधिक उभर कर सामने आया है। इससे पहले तो स्त्री इतनी विवश थी कि उसका अपने तन-मन पर भी अधिकार नहीं था। कारण, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के शोषण रूपी शिकंजे में पूरी तरह जकड़ी हुई थी और दुर्भाग्यवश उसने इसे अपनी नियति स्वीकार कर रखा था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के बाद स्त्री में चेतना जागृत हुई और उसने इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह किया। सुमनराजे के अनुसार-उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के महिला-लेखन और समकालीन स्त्री विमर्श में एक मौलिक अन्तर है जिसे साफ किये जाने की जरूरत है। वहाँ स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरुष' नहीं जड़ीभूत रूढ़ियाँ हैं, जिनके विरुद्ध वे स्वयं खड़ी होती है और अपनी बहनों को जागृत भी करती है, समकालीन स्त्री-विमर्श अपने को पूरी तरह उस पृष्ठभूमि से काटकर अपनी ऊर्जा पश्चिम के नारी आंदोलनों से ग्रहण करता है। इस तरह वह अपने दोनों तरफ सीमा रेखाएँ बना लेता है। एक केवल स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य, दो केवल स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य अर्थात् स्त्री द्वारा लिखा गया, स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य ही साहित्यिक स्त्री विमर्श है।

स्त्री विमर्श का जन्म लिंग के आधार पर की जाने वाली असमानता के विरोध में हुआ था। इसके अंतर्गत स्त्री की नियति, उसकी स्थिति व समस्याएँ अपने अधिकारों के लिए किए जाने वाले आंदोलन, हाशिए के जीवन से उबर कर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के संघर्ष आदि पर विचार किया जाता है। स्त्री केवल घर-परिवार की नहीं बल्कि समग्र समाज की एक इकाई है। इस प्रकार उसका अस्तित्व व्यक्तिगत भी है और समूहगत भी तथा अपने इसी अस्तित्व को वह स्त्री विमर्श के माध्यम से समाज में स्थापित करना चाहती है। स्त्री विमर्श की अवधारणा को विभिन्न आलोचकों ने स्वर दिया है।

डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने इसे संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर समतामूलक समाज की स्थापना करना माना है-'स्त्री-विमर्श' का अर्थ स्त्री-मुक्ति का आख्यान रचना नहीं हैं, अपने और दूसरों की 'नाक' को बचाकर चलते सह-अस्तित्वपरक-संरचना का मानवीय स्वप्न है। जाहिर है ऐसे समाज में लिंगगत भेद और मुक्ति के मुद्दे उठेंगे ही नहीं। वहाँ मुद्दे होंगे भविष्य की रक्षा और परिष्कार के जो पर्यावरण संवर्धन, आतंकवाद की समाप्ति, साम्प्रदायिक सद्भाव सरीखे सकारात्मक प्रयोजनों से लबरेज होंगे।

अर्चना वर्मा ने स्त्री-विमर्श का अर्थ स्त्री की नियति, स्थिति समस्याओं पर विचार करना माना है-स्त्री-विमर्श का अर्थ, स्त्री के द्वारा तथा स्त्री के विषय में अन्यों के द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों, आग्रहों, योजनाओं, कार्यक्रमों आदि की व्याख्या, विवेचन में सक्रिय मत-मतान्तरों का समुच्चय है। इन मत मतान्तरों में सहमत से लेकर घनघोर असहमत तक की श्रेणियाँ एक साथ मौजूद हो सकती हैं।

स्त्री विमर्श मात्र पाश्चात्य की देन, आयातित नारा या विचारधारा नहीं है। इसके लिए दो तर्क दिए जा सकते हैं-पहला, प्रत्येक समाज की मान्यताएँ अलग होती हैं और उन्हें दूसरे समाज पर लागू नहीं किया जा सकता। दूसरा, प्रमुख तर्क यह है कि भारत में ही बौद्धकालीन घेरीगाथा, मध्यकालीन मीरा व नवजागरण काल में राजाराममोहन राय, विद्यासागर, दयानंद सरस्वती आदि के स्त्री अधिकारों के लिए किए गये संघर्षों के रूप में स्त्री-विमर्श का एक लम्बा इतिहास रहा है। आधुनिक काल में भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा के लिए बालाबोधिनी पत्रिका का सम्पादन किया। हिन्दी साहित्य में बंग महिला पहली स्त्री थी जिसने सर्वप्रथम नारी के अधिकार के लिए आवाज उठाई और छायावाद की प्रमुख स्तम्भ महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़ियाँ नामक रचना स्त्री विमर्श की महनीय कृति है। ये सब तथ्य इस तर्क को निराधार सिद्ध करते हैं कि स्त्री विमर्श पश्चिम की नकल मात्र है।

जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी के अनुसार-"जो लोग यह कहते हैं कि स्त्रीवाद आयातित है वे वस्तुतः हमारे समाज में स्त्री की मौजूदगी से ही आँख फेर रहे होते हैं।" जब समाज में सभी जगह औरत है उनका शोषण है, उत्पीड़न है और उनके प्रति लिंगभेदीय रवैया है तब यह कैसे सम्भव कि उनकी आवाज ही सुनाई न दे, वे संघर्ष करते दिखाई न दे। अतः स्त्रियों के संघर्ष, संगठन एवं साहित्य के प्रति सशंकित भाव से देखने की जरूरत नहीं है, सशंकित भाव से देखने का अर्थ है-स्त्री के वजूद को अस्वीकार करना।

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः यह कहना उचित प्रतीत होता है कि 'स्त्री-विमर्श' में स्त्री-समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उठाया गया है। इसने समाज रचना के वर्ग तथा वर्ण की विसंगतियों, नारियों के संत्रास, अमानवीय शोषण और सभी वर्गों-वर्णों में नारी-पराधीनता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। स्त्री-विमर्श बौद्धिकता का प्रतिफल ही नहीं, बल्कि यह सक्रिय आंदोलन का विषय है। स्त्री के अस्तित्व की वास्तविक पहचान व मिथक भंजन इसकी अनिवार्य शर्त है। स्त्री को शिक्षित और नये संस्कार से दीक्षित करने की आवश्यकता है तभी अगला सोपान समतावादी सोच के धरातल पर मजबूती से खड़ा हो सकेगा।

संदर्भ :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ-120
2. सुमनराजे, 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' पृष्ठ-304
3. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, 'इतिवृत्ति की संचतना और स्वरूप' पृष्ठ-380
4. अर्चना वर्मा, हिंदी ग्रंथ की अन्य विधाएँ : लेखन के सरोकार, इन्द्रप्रस्थ भारती (पत्रिका) जनवरी - मार्च 2006, पृष्ठ-10
5. जगदीश्वर चतुर्वेदी, 'स्त्रीवाद साहित्य-विमर्श' पृष्ठ-184

❑❑❑

1. शोधार्थी, शास. दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनादगांव (छ.ग.)
2. शोध निर्देशक, शास. दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनादगांव (छ.ग.)

भारतीय आधुनिकता

—डॉ. भास्कर लाल कर्ण

भारतीय आधुनिकता पश्चिमी आधुनिकता का भारतीय संस्करण नहीं है। पश्चिम की आधुनिकता उपनिवेशवाद में ढलती है (भले ही यह पूँजीवाद विकास का परिणाम ही क्यों न हो) तो भारतीय आधुनिकता उपनिवेशवाद से संघर्ष करते हुए रूप लेती है। ऐसे में उपनिवेशवादी मूल्य भारतीय आधुनिकता के मूल्य नहीं हो सकते। तय है, आधुनिकता की दो परम्परायें हैं-साम्राज्यवादी आधुनिकता और प्रतिरोधी आधुनिकता। जिस सीमा तक उसकी अंतर्वस्तु वर्चस्व और प्रतिरोध की परस्पर विरोधी शक्तियों से बनी है, उस हद तक उनमें भिन्नता है। जिस हद तक वे आधुनिक परिवेश और विश्वबोध से निर्मित हुई है, उस हद तक उनमें समानता है।

आधुनिकता के मूल तत्त्व आधुनिकता के सभी संस्करणों पर लागू किये जा सकते हैं, लेकिन आधुनिकता जब अलग-अलग समाज, संस्कृतियों, सभ्यताओं में प्रकट होती है तब अनेक आधुनिकताओं के रूप में दिखायी पड़ती है। आधुनिकता निर्गुण रूप है जबकि आधुनिकताएँ सगुण हैं।[1] ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अलग-अलग होती है। ऐतिहासिक विकासक्रम की उपलब्धियाँ देश या प्रदेश की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अनिवार्यतायें आधुनिकीकरण और उसके लक्ष्यों का नियमन करती हैं। हालाँकि अक्सर यह समझ लिया जाता है कि आधुनिकता अर्जित करने के लिए अनिवार्यत: पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से गुज़रना होगा। ''पश्चिमीकरण से तात्पर्य उन समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यापक रूप से मानव-मूल्यों, प्रतिमानों तथा उसी प्रकार की संस्थाओं और विधानों को अपना लेना है जिनसे पश्चिम और खासकर यूरोप गुज़रा है।''[2] यदि यह मान भी लिया जाए कि बोध को राष्ट्रीय सीमाओं में संकुचित नहीं किया जाना चाहिए, तो भी राजनैतिक, धार्मिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और जातीय दृष्टि से एशिया की विशेषतायें भिन्न हैं। ऐसे में उसका मूल्यांकन और उसके इतिहास की व्याख्या यूरोपीय दृष्टि से करना उचित नहीं होगा। यूँ तो विकसित देशों के आधुनिकीकरण से विकासशील देशों और अविकसित राष्ट्रों का आधुनिकीकरण निश्चित रूप से भिन्न होगा। इसी संदर्भ में भारतीय आधुनिकीकरण पर विचार करना चाहिए।

यूरोप में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया दो चरणों में पूरी हुई। पहला चरण 15वीं-16वीं शताब्दी का पुनर्जागरण था, दूसरा चरण 18वीं शताब्दी का ज्ञानोदय। पहले चरण में यूरोप ईसाइयत की छाँव में हजार साल की नींद से अंगड़ाई लेता हुआ जाग रहा था, और दूसरे चरण में विश्वविजेता बनकर

औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर रहा था।[3] भारत की स्थिति अलग थी। भारत न तो हजार साल की धर्म निद्रा में सोया था, न विश्वविजय पर निकला था। यह जगत् गुरू भले रहा हो, विश्वविजेता नहीं रहा। भारतीय इतिहास अंधकार युग में नहीं सोया। वह आक्रमण, प्रतिरोध, निर्माण और पराजय के उथल-पुथल से बनता-बिगड़ता रहा है। लेकिन यहाँ भी आधुनिकता की प्रक्रिया के दो चरण देखे जा सकते हैं। पहला 15-16वीं शताब्दी का जागरण, जिसे डॉ. रामविलास शर्मा 'लोकजागरण' कहते हैं, और दूसरा 19वीं सदी का जागरण जिसे डॉ. शर्मा ही 'नवजागरण' कहते हैं। 15-16वीं शताब्दी का जागरण सोये हुए समाज का जागरण नहीं था, बल्कि किसानों, कारीगरों, व्यापारियों की सामाजिक शक्ति का जागरण था, और 19वीं सदी का जागरण एक पराधीन औपनिवेशिक राष्ट्र के 'स्वत्व' का जागरण था। यूरोपीय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दोनों चरण जहाँ एक-दूसरे से जुड़ी, विकास की निरंतरता में घटित हुआ, वहीं भारतीय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दोनों चरण एक-दूसरे से विच्छिन्न और स्वतंत्र रहे। दूसरे शब्दों में नवजागरण, लोकजागरण का विकास नहीं है। इसका कारण है अंग्रेजी राज। "भारत अपनी समस्त आर्थिक और सामाजिक संरचना के साथ विकास की जिस स्वभाविक दिशा में अग्रसर था, उसे अंग्रेजी शासन और पाश्चात्य प्रभाव ने बलात् मोड़ दिया।"[4] 19वीं सदी की साहित्यकारों की टिप्पणियों और 20वीं सदी के इतिहासकारों के निष्कर्षों की तुलना करें तो अंग्रेजी लूट-खसोट का पूरा परिदृश्य साफ हो जाएगा। उद्योगों के तबाह होने पर भारत कैसे 'कृषि प्रधान देश' बना इसका स्पष्टीकरण एक ही तथ्य से हो जाएगा। तीन दशकों में भारत से कपास के निर्यात का आँकड़ा इस प्रकार है : 1813 में 19 लाख पौंड, 1833 में 3 करोड़ 20 लाख पौंड, 1844 में 8 करोड़ 80 लाख पौंड।[5] प्राचीन काल से दुनिया को सूती कपड़ा पहनाने वाला देश इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के साथ 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कच्चे माल का निर्यातक बन गया। एक तरफ ये लूट, दूसरी तरफ अकाल से मरने वालों की संख्या बढ़ रही थी। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में सात बार अकाल पड़े, जिनमें 14 लाख लोग मरे, उत्तरार्द्ध में 24 बार अकाल पड़े, जिनमें 3 करोड़ से अधिक लोग मरे। 1851 से 1875 के छः अकालों में 50 लाख और 1876 से 1900 के 18 अकालों में ढाई करोड़।[6] स्पष्ट है कि लोक जागरण से जुड़े आधुनिकीकरण की सहज विकासशील प्रक्रिया को अंग्रेजी राज ने नष्ट कर दिया। ऐसे में औपनिवेशिक सत्ता से संघर्ष के साथ नवजागरण की नई चेतना पैदा हुई। भारत में आधुनिकता की यह नयी शुरुआत थी।

यूरोपीय आधुनिकता का संघर्ष सीधे मध्ययुगीन मान्यताओं और मूल्यों से था और अमरीकी आधुनिकता का सीधे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से। लेकिन भारतीय आधुनिकता को एक साथ अनेक स्तरों और दिशाओं में संघर्ष करना पड़ा। यह संघर्ष जहाँ एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक-राजनैतिक मोर्चे पर था, वहीं दूसरी ओर धार्मिक और सांस्कृतिक मोर्चे पर भी, और इन सबके बीच शामिल था भारतीय कमजोर पूँजीपतिवर्ग, संकटग्रस्त सामंतवर्ग और उनके मूल्य, नई शिक्षा और पश्चिम के अनुकरण की कशमकश।

भारत ठग, संन्यासी, जुआरी, जादूगर, सँपेरे आदि का देश है, यह बौद्धिक जाल अंग्रेजों ने भारतीय समाज के बारे में पूरी दुनिया में फैला दिया था। इस काल में उनकी मदद की

तुलनात्मक समाजशास्त्र और नृ-विज्ञान ने, जिसका प्रादुर्भाव 19वीं सदी में ही हुआ था। दरअसल औपनिवेशिक युग के साथ-साथ अनेक आधुनिक शास्त्रों की भी शुरुआत होती है। डार्विन, फ्रायड, दुर्खिम, मार्क्स आदि इन शास्त्रों के प्रणेता थे। तुलनात्मक समाजशास्त्र इन में से एक है। यह समाज के भीतर स्थित वैज्ञानिक नियमों की खोज करता है, इसीलिए इसे 'समाज का प्राकृतिक विज्ञान' कहा गया। डार्विन के विकासवाद ने इस मध्ययुगीन विश्वास को तोड़ा कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है। लेकिन समाज के प्राकृतिक विज्ञान से नस्लवाद चला और इस आधार पर सामाजिक अंतर को खोजने की कोशिश की गयी। इसीलिए विद्वानों ने रेखांकित किया कि "अंग्रेजी शिक्षा का भारत में मुख्य उद्देश्य अंधविश्वासों और रूढ़ियों को समाप्त करना नहीं था, वे हमें सभ्यता का वरदान देने नहीं, वरन् बड़े अप्रत्यक्ष ढंग से भारतीय मानस में यह अहसास जगाने आए थे कि दर्शन, विचारादर्श और सांस्कृतिक स्तर पर हमारे पास कुछ नहीं था या है।"[7] इस तरह वे यूरोपीय समाज जो श्वेत होने के नाते नस्लीय दृष्टि से भी श्रेष्ठ मानी जाती थी-को सर्वश्रेष्ठ साबित कर अपने उपनिवेशवादी विस्तार को उचित ठहरा रहे थे। इसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी और इसी प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय अतीत व परम्परा का उत्खनन हुआ, और भारतीय संदर्भों में आधुनिकता की खोज और चेष्टा शुरू हुई।

एक चेष्टा, पाश्चात्य प्रभाव व अनुकरण को आधुनिक मानने से इंकार करती थी और उसका विरोध कर उसे राष्ट्रीय संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहती थी। इसका प्रतिनिधित्व किया आर्य समाज ने, जिसकी कोशिश भारतीय संस्कृति के स्रोतों से भारत को आधुनिक बनाने की थी। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी थे जो पश्चिमी प्रारूप में भारतीय चेतना और संस्कृति को आरोपित करके विविधता में एकता स्थापित करना चाहते थे। इसके प्रतिनिधि थे राजा राममोहन राय और ब्रह्मसमाज। एक ओर ऐसी दृष्टि थी जो राष्ट्रीय संस्कारों और संस्थाओं का पुनर्गठन करके आधुनिक और समसामयिक समस्याओं का स्वजातीय समाधान चाहती थी। लेकिन दूसरी ओर एक दृष्टिकोण और था जो पाश्चात्य चिंतन और प्रतिमानों का कायल था।

अगर पश्चिम का अंधानुकरण सामाजिक परिवर्तन का विवेकपूर्ण रास्ता नहीं था तो भारतीय रूढ़िवाद भी पश्चिम का विकल्प नहीं था, क्योंकि एक "अधिक समर्थ शक्ति के आगे अतीत हमारी रक्षा नहीं कर सकता था।"[8] भविष्य कैसा हो इसका निर्णय ठोस सामाजिक शक्तियों के हाथ में था-अंग्रेजों, ज़मींदारों और कमजोर पूँजीपतियों के हाथ में या प्रशासन तंत्र के हाथ में, जिसे अंग्रेज अफसर और अंग्रेजपरस्त नया भारतीय मध्यवर्ग मिलकर चलाते थे। ये वही मध्यवर्ग है जिसके बारे में बी.बी. मिश्र ने लिखा कि "ब्रिटिश राज के परवर्ती काल में जो मध्यवर्ग संवर्धित हुआ वह उद्योग के विकास की देन न होकर माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की वृद्धि की उपज था।"[9] और जो मध्यवर्ग भारत में यूरोपीय उद्योगों की उपज था वह भी अपने शहरी सम्पर्क के कारण अंग्रेजी रंग-ढंग में रंगा, साहब ग्रंथी का शिकार और मानसिक रूप से गुलाम था। इस उलझन भरी परिस्थितियों में आधुनिकता के भारतीय साँचे की खोज कम दुविधापूर्ण नहीं है।

यूरोप में जहाँ आधुनिकता धर्म और विज्ञान के प्रखरतम संघर्ष की परिणति थी, वहीं भारत में धर्म और विज्ञान का कोई वास्तविक द्वन्द्व नहीं उभरा। वैज्ञानिक चेतना का अधिकतर

आयात ही हुआ और धर्म की भूमिका निर्णायक बनी रही। राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति धार्मिक जागरण के प्रतिबिम्ब के रूप में हुई। प्रारंभिक अवस्थाओं में स्वयं धार्मिक चेतना राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्ब थी। सामाजिक तथा राजनीतिक धारणाएँ, जनतांत्रिक तथा देशभक्तिपूर्ण आकांक्षायें, एक श्रेष्ठतर जीवन के लिए आशायें–ये सब धार्मिक रूपों में प्रकट हुई थीं। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने जिस भारतीय नवजागरण का सूत्रपात किया, उसका लक्ष्य धर्म से पूर्णत: सम्बन्ध विच्छेद कर लेना नहीं था। यह नवजागरण एक ओर पुराने धार्मिक रीति–रिवाजों और कर्मकाण्डों का विरोध करने और दूसरी ओर, नयी परिस्थितियों के अनुरूप धर्म की नयी व्याख्या करने पर आधारित था। इस प्रकार भारत में पूँजीवाद और आधुनिक सभ्यता के विकास के लिए संघर्ष अभिन्न रूप से धर्म के प्रति दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है।[10]

स्पष्ट है, भारतीय आधुनिकता पश्चिमी आधुनिकता का भारतीय संस्करण नहीं है। पश्चिम की आधुनिकता उपनिवेशवाद में ढलती है (भले ही यह पूँजीवाद विकास का परिणाम ही क्यों न हो) तो भारतीय आधुनिकता उपनिवेशवाद से संघर्ष करते हुए रूप लेती है। ऐसे में उपनिवेशवादी मूल्य भारतीय आधुनिकता के मूल्य नहीं हो सकते। तय है, आधुनिकता की दो परम्परायें हैं–साम्राज्यवादी आधुनिकता और प्रतिरोधी आधुनिकता। जिस सीमा तक उसकी अंतर्वस्तु वर्चस्व और प्रतिरोध की परस्पर विरोधी शक्तियों से बनी है, उस हद तक उनमें भिन्नता है। जिस हद तक वे आधुनिक परिवेश और विश्वबोध से निर्मित हुई है, उस हद तक उनमें समानता है। पूरी आधुनिकता को 'संदिग्ध' और 'समस्याग्रस्त' बना देने वाला उत्तर–आधुनिक विमर्श इस द्वन्द्वात्मकता को नज़रअंदाज करता है। यहाँ यह दोहराना ज़रूरी है कि आधुनिक पूँजीवाद ने अंतर्राष्ट्रीय उपनिवेश कायम किये, सिकंदर के विश्व विजय के अधूरे सपने को पूरा किया, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण को एक बनाया, लेकिन इससे औपनिवेशिक परियोजना और आधुनिक चेतना एक नहीं हो जाती।[11] ज़ाहिर है कि औपनिवेशिक आधुनिकता के विकल्प के प्रयत्नों को 'प्रति आधुनिकता' न कहा जाए (रावर्ट सी. यंग ने पहले गाँधी की कार्य प्रणाली को, फिर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में 'औपनिवेशिक आधुनिकता' के विरोध की रणनीति को 'प्रति आधुनिकता' (counter modernity) की संज्ञा दी है।[12] तो आधुनिकता की एक अलग अवधारणा बनेगी–साम्राज्यवाद विरोधी आधुनिकता। दोनों आधुनिकताओं का फर्क साधन से ज्यादा मूल्यों में निहित है।

औपनिवेशिक आधुनिकता 'शक्ति' का विमर्श है। शक्ति का आधार है सेना, पूँजी, प्रौद्योगिकी और उसका उद्देश्य है वर्चस्व और शोषण तथा परिणाम है हिंसा और दासता। औपनिवेशिक आधुनिकता का विकल्प उलझन भरा हो सकता है, लेकिन यह प्रतिरोधी आधुनिकता श्रेष्ठता और अलगाव में यकीन करके नहीं चल सकती। उसके प्रतिरोध के मूल्य होंगे; वर्चस्व नहीं संघर्ष, शक्ति नहीं ज्ञान, हिंसा नहीं अहिंसा, उत्पीड़न नहीं सद्भाव, विषमता नहीं बंधुत्व और दासता नहीं स्वतंत्रता।[13] स्वयं गाँधीजी ने अपने संघर्ष में जिस प्रतिरोधी आधुनिकता का विकास किया, उसमें सामाजिक आवश्यकता और व्यक्तिगत नैतिकता का

अटूट संतुलन था। जनता की चेतना को समझकर उन्होंने सिद्धान्त और आंदोलन की रणनीति में सामंजस्य स्थापित किया। उनके तीन बड़े आंदोलनों के संदर्भ में (सत्याग्रह, असहयोग और भारत छोड़ो) हुमायूँ कबीर ने विचारणीय बात कही है कि गाँधीजी ने जनता को एक-एक कदम शिक्षित करते हुए क्रमशः आगे बढ़ाया-पहले जेल का भय दूर किया, फिर सम्पत्ति खोने का भय दूर किया और अंत में प्राण का भय दूर किया-'करो या मरो'।[14] एक ओर दुनिया का सबसे उन्नत पूँजीवाद, दूसरी ओर गुलामी के अंधेरे में भटकती जनता, गाँधीजी के राजनीतिक दर्शन में भारत की विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं के फलस्वरूप परम्परा और आधुनिकता के अनेक पहलू इस तरह गुँथे हुए हैं कि उन्हें अलगाया नहीं जा सकता। धर्म की आस्था और विज्ञान का विवेक, प्राचीनता का पुनर्जागरण और इतिहास का सीख, जनता से तादात्म्य और ट्रस्टीशिप का आश्वासन, सत्याग्रह की शक्ति और अहिंसावाद का हठ, पंचायती राज का जनतंत्र और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की माँग।[15] इसीलिए कहा जाता है कि "भारत में नयी शक्तियाँ सदा अतीत से उग्र विच्छेद के बिना ही आत्मसात् होती रही हैं। निरंतरता की भावना इतनी गहरी अन्यत्र कहीं नहीं बनी रह सकी हैं जितनी भारत में।"[16] इन्हीं दुविधाओं के बीच भारतीय आधुनिकता और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विकास होता है।

भारतीय आधुनिकता के भी दो दौर हैं-एक औपनिवेशिक दौर, दूसरा उत्तर-औपनिवेशिक दौर। स्वतंत्रता से पहले आधुनिकता और आधुनिकीकरण का मतलब यदि पश्चिम और पश्चिमीकरण रहा है तो उसके बाद वह अमरीका और अमरीकीकरण भी हो गया है। औपनिवेशिक भारत में पहले दौर की आधुनिकता समाज की निर्धनता, सांस्कृतिक जागरण और मध्यवर्ग के पश्चिमीकरण से परिभाषित होती है। पूँजीवादी भारत में नये दौर की आधुनिकता, सामाजिक विषमता और विदेशी कर्ज़ से परिभाषित होती है। स्वभावतः आधुनिकता, चाहे समाज में देखें या अवधारणा में, एक अंतर्विरोधपूर्ण घटना है। इस अंतर्विरोध की पृष्ठिभूमि में ठेलते हुए उत्तर-आधुनिक विचारक उसे समस्याग्रस्त घटना बताते हैं। दोनों में फर्क यह है कि अंतर्विरोध विकास का स्रोत है और समस्याग्रस्तता विकास की सम्भावना से शून्य है।[17]

उत्तर-औपनिवेशिक आधुनिकता का सफर आधुनिकता, आधुनिकतावाद से उत्तर-आधुनिकता की स्थापना आधुनिकता के अंत तक होती है। भारत के स्वाधीन राज्य का उदय साम्राज्यवाद की 'आधुनिकता' परियोजना और साम्प्रदायिक रणनीति के दबाव में हुआ। 'पूरबवादी' धारणाओं को अपनी योजना के माध्यम से सुदृढ़ करने की कार्यनीति का परिणाम है, भारत का विभाजन। स्वाधीन भारत की बहुत-सी उलझनें इसी विरासत पर आधारित हैं। सुनील खिलनानी के अनुसार "भारत छोड़कर जा रहे अंग्रेजों को वैसे तो यकीन था कि उपमहाद्वीप अपने धार्मिक जज़्बात में पिछड़ा हुआ और अंधविश्वासी है लेकिन इसके बावजूद उन्होंने धर्म को ही सिद्धांत बनाकर उसके आधार पर दो आधुनिक राष्ट्र बना डाले।"[18] भारतीय उपमहाद्वीप को धार्मिक जज़्बात में 'पिछड़ा हुआ अंधविश्वासी' मानना पूरबवादी धारणा का उदाहरण है, धर्म के आधार पर दो 'आधुनिक राष्ट्रों' का निर्माण पूरबवाद को कार्यरूप देने का उदाहरण है।

दूसरी तरफ स्वतंत्र भारतीय राज्य ने पूँजीवाद और समाजवाद की 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' को अपनाया। उसी तरह साम्प्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता के बारे में भी मिश्रित रूख़ अपनाया। इसका उदाहरण है 'सर्वधर्मसमभाव' के रूप में धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा। धीरे-धीरे राज्य के समाजवादी उद्देश्यों को तिलांजलि दे दी गयी। परिणाम यह हुआ कि पूँजीवाद और सम्प्रदायवाद दोनों को एकसाथ बढ़ावा मिला। जैसे-जैसे पूँजीवादी विकास के संकट गहरे हुए और जन असंतोष तेज हुआ, भारतीय राज्य का जनतंत्र विरोधी चरित्र भी उभरा और धर्मप्राण आस्था भी उभरी। एक तरफ आर्थिक विषमता, शोषण और जीवन स्तर में भारी असंतुलन, दूसरी तरफ हिन्दू और मुस्लिम दोनों प्रकार के कट्टरपंथियों का साम्प्रदायिक उभार; दोनों ने आधुनिकता की चूलें हिला दीं। समाज की अग्रगामी चिंताओं और शक्तियों को गहरा आघात लगा, बदले में धार्मिक राजनीति और बाज़ारवाद का नया गठबंधन सामने आया। ऐसे में आधुनिकता के विश्लेषकों ने ज्ञानोदय के प्रोजेक्ट को संकटग्रस्त पाया। ल्योतार ने ज्ञानोदय से सभी 'तार्किक और समग्रतावादी' महावृत्तांतों को संदेहास्पद करार दिया।[19] ज्ञानोदय को एक ऐसे आदर्शवादी महाख्यान के रूप में देखा गया, जहाँ तक पहुँचना अब इस भूमंडलीकृत विश्वबाज़ार व्यवस्था वाले दौर में असंभव था। प्रबोधन या ज्ञानोदय की यह आलोचना मूलतः आधुनिकता और पूँजीवाद को पर्यायवाची मानने का परिणाम है, जिसमें सामाजिक अंतर्विरोध ओझल हो गए और पूँजीपति वर्ग की दग़ाबाजियों के लिए उनके 'आदर्श' ज़िम्मेदार बन गए। 'भारत में आधुनिकता की परियोजना कई पश्चिमी चिंतकों की धारणा की तरह सभ्यताओं के संघर्ष से नहीं जुड़ी है, बल्कि उसका लक्ष्य दुनिया की तमाम सभ्यताओं के उच्चसार से अपनी सभ्यता को और अधिक समृद्ध करना रहा है।'[20]

दरअसल आधुनिकता की ये समस्याएँ पूँजीवादी विकास की अंतर्विरोधपूर्ण प्रक्रिया से जन्म लेती हैं। आधुनिकता का आगमन जैसा कि कहा जा चुका है बाज़ार, जनतांत्रिक मूल्यों और वैज्ञानिक चेतना की संश्लिष्ट भूमिका से सम्बद्ध है। लेकिन आधुनिकता पूँजीवादी व्यवस्था लेकर आयी, इसलिए बाज़ार की सत्ता क्रमशः स्वतंत्र कारीगर को, जनतंत्र और विज्ञान को अपने मातहत करती गई। आधुनिकता अगर तर्कवाद, मानववाद और आर्थिक प्राविधिक विकास के मूल्यों से परिभाषित होती है तो श्रमिकों की दासता, प्रकृति के दोहन और पूँजी के अंतर्राष्ट्रीयकरण से भी परिभाषित होती है। वह अगर स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व से परिभाषित होती है तो विषमता, परतंत्रता और उत्पीड़न से भी परिभाषित होती है। उसने ज्ञान, अनुशासन, मानवाधिकार ही नहीं दिये, साम्राज्यवादी उपनिवेश भी दिए। ऐसे में यह कहना कि 'आधुनिकता या तो पूँजीवादी परियोजना थी या फिर सत्ताधारी वर्ग ने उसे हड़प लिया।'[21] ठीक नहीं है। यहाँ यह देखना भी ज़रूरी है कि एकरूपता, वर्चस्व, शक्ति जैसे सभी पद आधुनिकता से ज़्यादा साम्राज्यवाद और उसके नये रूप में द्योतक हैं। हमारा युग और समाज केवल इन्हीं विशेषताओं से नहीं बल्कि विविधता, भिन्नता, प्रतिरोध से भी अभिव्यक्त होता है। यूरोप की आधुनिकता भी केवल पूँजीवादी राज्य-सत्ताओं और साम्राज्यवादी शक्तियों के अभ्युदय से ही नहीं जुड़ी है, वह श्रमिक संघर्षों और क्रांतिकारी आंदोलनों से भी जुड़ी है। सबसे बढ़कर आधुनिकता के पुरस्कर्ता स्वयं पूँजीपति वर्ग

के सदस्य नहीं थे, आधुनिक पूँजीवादी शासन के संस्थापक स्वयं पूँजीवादी सीमाओं से मुक्त थे।[22] वे श्रम विभाजन की दासता से बँधे 'विशेषज्ञ' नहीं थे, वे योद्धा, कलाकार, वैज्ञानिक साथ-साथ थे।

विडम्बना यह है कि आधुनिकता का ध्वजवाहक पूँजीपति वर्ग 'वृद्ध' होकर उसी आधुनिकता के विरुद्ध खड़ा हो गया। वास्तविकता यह है कि पूँजीवाद ने अब नवसाम्राज्यवाद का रूप ले लिया है। परिणाम यह हुआ कि आधुनिक पश्चिम से एकीकरण की 'उदारवादी' प्रक्रिया और अतीतजीवी धार्मिक पुनरूत्थान की संकीर्णतावादी प्रवृत्तियाँ, दोनों परस्पर विरोधी घटनायें भारत में साथ-साथ विकसित हो रही हैं। ऐसे में समसामयिक आधुनिकता की पहचान नवसाम्राज्यवादी विचारधारा से संघर्ष करते हुए प्रतिरोधी आधुनिकता की निरंतरता के रूप में की जा सकती है। देश-काल की ठोस ज़रूरतों के अनुसार इसके प्रतिमान बदल सकते हैं।

संदर्भ :

1. 'संधान', अंक-3, अक्टू.-दिसं.-2001, सम्पा. सुभाष गाताडे, पृ० 20.
2. धनन्जय वर्मा, आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, विद्या प्रकाशन मंदिर, संस्करण 1984, पृ० 187.
3. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 32.
4. 'समकालीन सृजन', सम्पा. शंभुनाथ, अंक-21, वर्ष-2002, पृ० 80.
5. रजनीपाम दत्ता, आज का भारत, अनु. आनंदस्वरूप वर्मा, मैकमिलन इंडिया, संस्क.-1985, पृ० 147.
6. वी. ब्रोदोव, इंडियन फिलासफी इन माडर्न टाइम, प्राग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, संस्करण -1984, पेज 160.
7. धनन्जय वर्मा, आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, पृ० 207.
8. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 33.
9. धनन्जय वर्मा, आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, पृ० 193 से उद्धृत.
10. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्क.-2001, पृ० 361.
11. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 36.
12. राबर्ट ई. जे. यूंग, पोस्ट कानियलिज़्म : एन हिस्टोरिकल इंट्रोडक्शन, ब्लैकवेल, यूएसए, 2001, पेज 383.
13. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 35.
14. हुमायूँ कबीर, विज्ञान, जनतंत्र और इस्लाम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्क.-2000, पृ० 132-133.
15. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 35.
16. विश्वनाथ नरवणे, आधुनिक भारतीय चिंतन, अनु. नेमिचंद जैन, राजकमल प्रकाशन, संस्क.-1966, पृ० 9.
17. 'तद्भव', अंक-11, वर्ष-2004, सम्पा. अखिलेश, पृ० 45.
18. सुनील खिलनानी, भारतनामा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्क.-2001, पृ० 212.
19. पोस्ट-माडर्न कंडिशन्सरू ए रिपोर्ट आन नालेज़, मैंचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, संस्करण-1979, पेज xxiv
20. शंभुनाथ, दुस्समय में साहित्य : परम्परा का पुनर्मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2002, पृ० 12.
21. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2000, पृ० 13-23.
22. मार्क्स/ऐंगेल्स, साहित्य तथा कला, प्रगति प्रकाशन, मास्को, हिंदी अनुवाद-1981, पृ० 290.

❒❒❒

119B, प्रथम तल, प्लैटिनम एंक्लेव, सेक्टर 18, रोहिणी, नई दिल्ली - 110089, फ़ोन - 9891266601

ईमेल : bhaskarmlnc@gmail.com

भारतेंदु का बलिया व्याख्यान और वर्तमान परिदृश्य

—डॉ. वेदप्रकाश

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बलिया अधिवेशन में कहा था–'वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए। जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।... भाई हिंदुओ! तुम भी मतमतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जप करो।

चिंतन सृजन का मूल है। चिंतन की प्रक्रिया सनातन ज्ञान परंपराओं से सक्रिय होती है, युगीन वातावरण इस प्रक्रिया को निरंतर विकसित करता है। भारतभूमि पर समय-समय पर ऐसे चिंतन होते रहे हैं जिनसे मानवता का कल्याण हो। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य विश्व चिंतन के आदि ग्रंथों के रूप में स्थापित है। वसुधैव कुटुंबकम् एवं सर्वे भवंतु सुखिनः का चिंतन-दर्शन भी वैदिक ऋषियों की देन है। भारत भारती नामक पुस्तक में हमारी सभ्यता शीर्षक से मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

शैशव-दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे।

निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे। संसार को पहले हमींने ज्ञान-भिक्षा दान की, आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की।[1]

गुप्त जी द्वारा रचित प्रस्तुत पंक्तियों से विश्व मानवता को भारतीय चिंतन का प्रदेय स्पष्ट होता है। इसी पुस्तक में एक उद्धरण स्वरूप 20 फरवरी 1884 के डेली ट्रिब्यून नामक पत्र में विदेशी विद्वान डी.ओ. ब्राउन का वक्तव्य भी उद्धृत है, जिसमें लिखा है–'यदि हम पक्षपात रहित होकर भली-भाँति परीक्षा करें तो हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं।'[2] इतिहास साक्षी है कि भारत ने विभिन्न कारणों से लंबी दासता झेली। एक सुनियोजित ढंग से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि विभिन्न तरह की श्रेष्ठता को समाप्त करने का उपक्रम चलता रहा। आचार्य चाणक्य ने कहा था–

शस्त्रैर्हतास्तु रिपवो न हता भवन्ति
प्रज्ञाहतास्तु रिपवो सुहता भवन्ति।

अर्थात् शस्त्रों के द्वारा मारे गए शत्रु पूरी तरह नहीं मरते हैं, उनका सर्वनाश तभी हो सकता है जब वे प्रज्ञाहत हो याने उनकी बुद्धि मारी जाए।[3] ब्रिटिश शासकों ने बड़े पैमाने पर भारतीय जनमानस को प्रज्ञाहत करने का कार्य किया। लॉर्ड मैकाले की

विभिन्न नीतियां इसका प्रमाण कहीं जा सकती हैं। 10 दिसंबर 1836 को अपने पिता को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा–'मेरी बनाई शिक्षा पद्धति से यहाँ शिक्षा क्रम चलता रहा तो आगामी तीस वर्षों में बंगाल में एक भी हिंदू नहीं बचेगा, सारे खिस्ती बन जाएँगे या फिर केवल पॉलिसी के लिए नाममात्र हिंदू (पॉलिटिकल हिंदू) बने रहेंगे। धर्म पर या वेदों पर उनका विश्वास कतिपय नहीं रहेगा।'[4]

सर्वविदित है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात भारत ब्रिटिश उपनिवेश बना, तत्पश्चात भिन्न-भिन्न रूपों में भारतवर्ष के गौरव और गर्व को विकृत करने का कार्य ब्रिटिश नीतियों में निरंतर जारी रहा। भारतवर्ष के स्वतंत्रता संग्राम में जहाँ एक ओर समाज सुधारकों, क्रांतिकारियों एवं संत परंपरा का महत्वपूर्ण योगदान है वहीं दूसरी ओर साहित्यकारों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात भारतवर्ष नए रूप में तैयार हो रहा था। यह स्व के जागरण का काल था। भारतेंदु और उनके मंडल के रचनाकार जन जागरण के कार्य को वाणी दे रहे थे। भारत दुर्दशा और अंधेर नगरी जैसी कालजयी रचनाएँ जन-जन में प्रचलित हो रही थी। मेले, भजन-कीर्तन और छोटे-बड़े सामाजिक आयोजन जन जागरण के मंचों के रूप में संदेश प्रसारित कर रहे थे, इसी श्रृंखला में 1884 में उत्तर प्रदेश के बलिया का ददरी मेला महत्वपूर्ण है। इसी मेले में भारतेंदु हरिश्चंद्र के स्वागत-सम्मानार्थ बलिया इंस्टिट्यूट की एक सभा में कोटि-कोटि हृदय के भूषण भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' इस विषय पर व्याख्यान दिया। बाद में यह व्याख्यान हरिश्चंद्र चंद्रिका नामक पत्रिका में प्रकाशित भी हुआ। व्याख्यान के विभिन्न बिंदुओं पर चिंतन और विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यह व्याख्यान उस समय के भारत के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में जागरण का संदेशवाहक था। इस व्याख्यान से यह भी स्पष्ट होता है कि साहित्य समय के अनुरूप समाज की दिशा और संवेदना का निर्माण करे। पिछले कुछ वर्षों से भारतवर्ष पुन: नवनिर्माण की ओर अग्रसर है। भारत विश्व गुरु बने, राष्ट्रीय नेतृत्व समुचित रूप में इस दिशा में प्रयासरत है, ऐसे में यह आवश्यक है कि जन सामान्य भी इसमें भागीदार बने।

वर्ष 1884 से आज वर्ष 2022 में जब हम भारतेंदु का बलिया व्याख्यान और वर्तमान परिदृश्य पर विचार करते हैं तो कई महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होते हैं। 1884 का समय भारतवर्ष के स्वतंत्रता संग्राम का समय था, समाज के नवजागरण का समय था और आज वर्ष 2022 भारतवर्ष के नव निर्माण का समय है। आज भारत वैश्विक पटल पर शिखरोन्मुख है। व्याख्यान की आरंभिक पंक्तियां वर्तमान परिदृश्य में भी सटीक बैठती हैं-'इस छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं। इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाए वही बहुत कुछ है।'[5] आलस्य का सिलसिला आज भी जारी है। छोटे-छोटे नगर आत्मनिर्भरता, कौशल और स्वच्छता की मिसाल बन रहे हैं और बड़े नगर आज भी आलस्य में और टीका-टिप्पणी तक सीमित दिखाई दे रहे हैं। जनशक्ति बड़ी होती है, राष्ट्रीय सरोकारों की सिद्धि इस जनशक्ति के बिना संभव नहीं है लेकिन जिस प्रकार हनुमान को जामवंत ने बल याद दिलाया था, जिस प्रकार बलिया व्याख्यान के माध्यम से भारतेंदु ने भी जन-जन को उसके बल का स्मरण करवाने का काम किया था, वर्तमान परिदृश्य में यह आवश्यक है कि धार्मिक,

सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक नेतृत्व पूरी ईमानदारी से जन-जन को उसकी ताकत का स्मरण कराएँ। आज यह नितांत आवश्यक है कि शासन-प्रशासन और अन्यत्र शीर्ष पर बैठे हुए लोग स्वयं की सुख-साधन संपन्नता की चिंता छोड़कर आम जन के सरोकारों की चिंता करें। वैश्विक फलक पर उन्नति की घुड़दौड़ हमेशा रही है। भारतेंदु ने अपने व्याख्यान में कहा-'यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंगरेज, फरासिस आदि तुरकी ताजी सब सरपट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें...यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जाएगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकेगा।'[6] वर्तमान परिदृश्य भी ऐसा ही है जब वैश्विक पटल पर चहुँ ओर उन्नति की घुड़दौड़ दिखाई दे रही है, ऐसे में निहित स्वार्थों में उलझकर विकास के पहिए को रोकने का उपक्रम क्या प्रमाद की निशानी नहीं है? समय का सदुपयोग, नूतन दृष्टि विकास में महत्वपूर्ण घटक के रूप में कहे जा सकते हैं। अमीर-गरीब सभी विकास के भागीदार होने से ही विकास की संकल्पना साकार होती है।

भारतेंदु ने कहा था-'बहुत लोग यह कहेंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करें?...इंग्लैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के काँटों को साफ किया। क्या इंग्लैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवान, मजदूर, कोचवान आदि नहीं हैं? किसी देश में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किंतु वे लोग जहाँ खेत जोतते-बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी और कौन सी कल या मसाला बनावें जिसमें इस खेती में आगे से दूना अन्न उपजै। विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं। जब मालिक उतरकर किसी दोस्त के यहाँ गया उसी समय कोचवान ने गाड़ी के गद्दी के नीचे से अखबार निकाला।'[7] वर्तमान परिदृश्य में विचार करें तो शासन-प्रशासन द्वारा औद्योगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र में निरंतर नई-नई तकनीक एवं योजनाएँ लाने पर भी किंतु-परंतु का सिलसिला जारी है। आज भी भिन्न-भिन्न रूपों में हमारे कोचवान हुक्का पीने, गप्प करने और मोबाइल पर चैट में ही अधिक व्यस्त दिखाई देते हैं, क्या भारतवर्ष की उन्नति में उनका योगदान नहीं होना चाहिए? क्या वे अपने कार्य-व्यवसाय में उन्नति के लिए चिंतित नहीं होने चाहिए? दरिद्रता का बड़ा कारण आर्थिक संसाधनों की कमी होना है, किंतु क्या आलस्य भी एक बड़ा घटक नहीं है? भारतेंदु का संदेश जन-जन के लिए आज भी प्रासंगिक है-'भाइयो, राजा-महाराजाओं का मुँह मत देखो, मत यह आशा रक्खो कि पंडित जी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो।... दौड़ो इस घुड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है।'[8] सजग रचनाकार भूत, वर्तमान और भविष्य की विविध आयामी विवेचना करता है। वह समय के महत्वपूर्ण प्रश्नों को संबोधित करता है। भारतवर्ष की उन्नति के संबंध में भारतेंदु ने अपने व्याख्यान में कहा था-'और वह सुधरना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश में उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो जो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों, चाहे तुम्हें लोग

निकम्मा कहें या नंगा कहें, कृस्तान कहें या भ्रष्ट कहें। तुम केवल अपने देश की दीनदशा को देखो और उनकी बात मत सुनो।'[9] वर्तमान परिदृश्य में उन्नति के उपर्युक्त वर्णित इन सब आयामों को निष्कंटक करने की आवश्यकता है। वर्तमान परिदृश्य में इन आयामों में कई प्रकार के विकार दिखाई दे रहे हैं। कई बार इन विकारों की चर्चा होने पर भी समाज का एक बड़ा वर्ग उन्हें संस्कारवत चिपकाए हुए है। आज भी भारतवर्ष की उन्नति में विकारी मानसिकता बड़ी बाधक है। अपने व्याख्यान में भारतेंदु ने धर्म को सब उन्नति का मूल कहकर विश्लेषित किया है–'सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे पहले सबके धर्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अँगरेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली हैं, इससे उनकी दिन–दिन कैसी उन्नति है। उनको जाने दो, अपने ही यहाँ देखो! तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज–गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं।'[10] उन्होंने बलिया मेला महास्नान की परंपरा, एकादशी का व्रत, पर्व–उत्सवों का महत्व आदि की उदाहरण सहित व्याख्या की है। क्या आज साहित्यकार और विद्वत समाज का यह दायित्व नहीं है कि वह विद्या और नीति के फैलाव में अपना योगदान दें? क्या ऐसे लोग स्वेच्छा से आगे आ रहे हैं? साहित्यकार, कलाकार और चिंतक अपने सृजन कर्म और संदेशों से जन जागरण कर सकते हैं, किंतु विगत कुछ वर्षों में ऐसा देखने में आया है कि कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियों की मंडली देश के टुकड़े–टुकड़े और समाज जीवन में उन्माद फैलाने में ही सक्रिय बनी हुई है। पूजा पद्धति को ही धर्म मानकर उसके विषय में तरह–तरह के भ्रम और शंकाएं फैलाने का कार्य जारी है। निहित स्वार्थ और राजनीतिक स्वार्थों में राष्ट्रहित की अनदेखी निरंतर जारी है। क्या ऐसे में भारत के विश्व गुरु बनाने की संकल्पना साकार हो सकेगी? भारतीय ज्ञान परंपरा में महर्षि वाल्मीकि, कबीर, गुरु नानक एवं रविदास आदि के संदेशों में जाति–संप्रदाय से ऊपर मानवता की स्थापना विद्यमान है। संत रविदास लिखते हैं–

आदिधर्म आदि का, यहां मानव जाति सामान।
छोटो बड़ो कोई नहीं, है मानुष जन्म महान।।[11]

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बलिया अधिवेशन में कहा था–'वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए। जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।...भाई हिंदुओ! तुम भी मतमतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जप करो। जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ पकड़ो।'[12] अपने व्याख्यान में भारतेंदु ने बालकों की शिक्षा, बड़ों का व्यवहार, कौशल विकास, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता और निज भाषा की उन्नति का मंत्र देते हुए कई महत्वपूर्ण सूत्र दिए। व्याख्यान के अंत में उन्होंने कहा–'कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहाँ बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहै वह करो। देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली है, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड, फरासीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है।... तुम ऐसे हो गए

कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसे ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।'[13] भारतेंदु द्वारा दिए गए इस महत्वपूर्ण व्याख्यान के आलोक में वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट है कि आज भी अनेक ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जो भारतवर्ष की उन्नति के मार्ग में यथावत् खड़े हैं, जिन पर गंभीर मंथन की आवश्यकता है। विडंबना है कि अब बड़े-बड़े साहित्यिक मंचों पर 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यान क्यों नहीं होते और यदि होते हैं तो फिर वे मील का पत्थर सिद्ध क्यों नहीं हो पा रहे हैं? कहीं आज का साहित्यकार केवल निहित स्वार्थों की पूर्ति में तो सक्रिय नहीं है? 1857 का स्वतंत्रता संग्राम नामक पुस्तक में वीर सावरकर ने लिखा है-'चाहे कितने ही छोटे घर का निर्माण क्यों न करना हो यदि उसके आकार-प्रकार के अनुसार उसकी आधारशिला नहीं रखी गई तो वह घर चिरस्थाई नहीं हो सकता।'[14] आज जब भारत के नवनिर्माण के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में आधारशिला रखी जा रही हैं तो क्या भारतेंदु के बलिया व्याख्यान से कुछ सूत्र लेते हुए साहित्यकार नवभारत के निर्माण में भागीदार बन सकते हैं? आज राजनीतिक स्वार्थ, स्वहित, भ्रम, भय और उन्माद की मानसिकता जोर पकड़ रही है। जाति, संप्रदाय एवं प्रादेशिकता की संकीर्णता में राष्ट्रभाव हाशिए पर डालने का प्रयास हो रहा है। ऐसे में आवश्यकता है साहित्यकार महत्वपूर्ण व्याख्यान दें। जन मन में आत्मबल एवं स्व के जागरण का कार्य केवल साहित्यकार ही कर सकते हैं।

संदर्भ :

1. भारत भारती- मैथिलीशरण गुप्त
2. भारत भारती- मैथिलीशरण गुप्त
3. कृष्णवन्तो विश्वमार्यम्-भूमिका भाग-डॉ. शरद हेबालकर
4. कृष्णवन्तो विश्वमार्यम्-भूमिका भाग-डॉ. शरद हेबालकर
5. भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. रविदास ग्रंथावली
12. भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है-भारतेंदु हरिश्चंद्र
13. वही
14. 1857 का स्वतंत्रता संग्राम-स्वधर्म तथा स्वराज्य-वीर सावरकर

❑❑❑

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9818194438 ईमेल : ved0550@gmail.com

सूचना क्रांति के दौर में भाषिक चुनौतियाँ

—डॉ. जैनेन्द्र कुमार पाण्डेय

परिवर्तनशीलता किसी भी भाषा का अनिवार्य गुण है, हिन्दी इसका अपवाद नहीं। किसी भी भाषा में होने वाला परिवर्तन उसकी मूल आत्मा को हमेशा बचाए रखने के लिए ही होता है। जिस भाषा में परिवर्तन नहीं होता है वह एक समय के बाद काल-कवलित हो जाती है लेकिन साथ ही परिवर्तन की उतावलापन भी उसे काल का ग्रास बना देता है। आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा के इस ह्रासमूलक परिवर्तन का संकेत किया है।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर जिस तरह से हमारी निर्भरता बढ़ रही है, उसे देखते हुए आज के समय को 'इलेक्ट्रॉनिक युग' कहना गलत न होगा। स्मार्टफोन, टैबलेट, लैपटॉप, कंप्यूटर जैसे उपकरण आज हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गए हैं। इन उपकरणों के प्रयोग के अब हम इतने आदी हो गए हैं कि इनसे अलगाव की कल्पना मात्र से असहज हो उठते हैं। सही है कि इन उपकरणों ने हमें तमाम सुविधाएँ उपलब्ध करायी हैं। इनके सही इस्तेमाल से हमारे जीवन में एक तरह की सहजता और सुगमता भी आई है । सूचना एवं संचार क्रांति के कारण हमारी भौतिक दूरी बेमानी हुई है और आपसी संवाद एवं आदान-प्रदान की प्रक्रिया में भी अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। कई लोग विशेषकर युवा इस अवसर का लाभ उठा रहे हैं और अपनी प्रतिभा का दमदार प्रदर्शन भी कर रहे हैं । हममें से अधिकांश लोग सामान्य पृष्ठभूमि से आने वाले उन युवाओं से अवश्य परिचित होंगे, जिन्होंने हाल के वर्षों में तमाम सोशल साइट्स पर अपनी प्रतिभा की अमिट छाप छोड़ी है और इनके जरिए काफी धन व सम्मान अर्जित किया है। बेशक आज देश-दुनिया की एक बड़ी आबादी इन मंचों का उपयोग अपने भावों-विचारों की रचनात्मक अभिव्यक्ति और आत्मविस्तार के लिए कर रही है, पर इसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसे हम कत्तई नजरंदाज नहीं कर सकते। क्या यह सच नहीं है कि जहाँ सूचना प्रौद्योगिकी ने हमें कई सहूलियतें प्रदान की हैं, वहीं कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी पेश की हैं? भाषा के क्षेत्र में जिस तरह के बदलाव हो रहे हैं, क्या वे किसी बड़ी चुनौती का संकेत नहीं दे रहे हैं?

निस्संदेह भाषा भावों-विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। पर सोशल साइट्स पर आजकल वह जिस रूप या जिन रूपों में प्रयुक्त हो रही है, वह निश्चय ही चिंताजनक है। चाहे छोटा संदेश हो या कोई बड़ा आलेख, आजकल लिखने के लिए लोग धड़ल्ले से की-बोर्ड का इस्तेमाल कर रहे हैं। कलम या पेंसिल से लिखने की हमारी आदत छूटती जा रही

है। स्थिति यही रही तो वह दिन दूर नहीं, जब कलम और पेंसिल से लिखने वाले ढूँढ़े नहीं मिलेंगे। ठीक वैसे ही, जैसे आज हाथ की बनी सरकंडे या किरमिच की कलम से लिखने वाले ढूँढ़े नहीं मिलते। एक समय था जब लोग चाकू आदि के इस्तेमाल से घर पर ही अपनी पसंद और आवश्यकता के हिसाब से पतली या मोटी नोक वाली कलम बनाते थे। जो व्यक्ति इस कार्य में दक्ष नहीं होता वह बेहिचक किसी कुशल विशेषज्ञ की मदद भी ले लेता। निचली कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी प्रायः हाथ से बनी इन्हीं कलमों का इस्तेमाल करते और इनसे 'सुलेख' लिखते हुए अपने लेखन कौशल का प्रदर्शन भी करते। जिन लोगों ने टाट-पटरी के जमाने में अपनी आरंभिक शिक्षा ली है उन्हें पता होगा कि कैसे इन कलमों का प्रयोग लिखावट को सुंदर बनाने के लिए किया जाता था। उस जमाने के शिक्षक भी लिखावट की सुंदरता पर विशेष बल देते थे, जिसके कारण विद्यार्थियों में सुंदर लिखने की प्रायः होड़ मची रहती थी। जिस विद्यार्थी की लिखावट सुंदर होती, उसकी सभी लोग इज्जत करते थे। हाथ से बनी कलम की जगह जब कंपनी में निर्मित पेन ने ले ली, तब सुंदर लिखने वालों की पूछ घटने लगी। यद्यपि पेन के प्रयोग ने लिखावट में कौशल दिखाने की संभावना को सीमित अवश्य कर दिया, परंतु इसे बंद कभी नहीं किया। पेन से सुंदर एवं कलात्मक ढंग से लिखने वाले आज भी आपको मिल जाएँगे, पर उस दिन की कल्पना कीजिए जब सब लोग लिखने के लिए की-पैड/बोर्ड का इस्तेमाल कर रहे होंगे। यहाँ सुंदर लिखने का मशीनी तरीका तो मौजूद होगा, लेकिन वैयक्तिक प्रतिभा, कौशल और सौन्दर्य चेतना के उपयोग का कोई अवकाश नहीं होगा। ऐसे में सुलेख या सुंदर लिखावट की कला समाप्तप्राय हो जाएगी, जिसे मनुष्य ने काफी जद्दोजहद के उपरांत विकसित किया था। यही नहीं हस्तलिखित सामग्री अथवा पांडुलिपियाँ भी संग्रहालय की वस्तु बनकर रह जाएँगी। एक ऐसे युग में जहाँ तकनीकी विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जा रही है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) न केवल सिर चढ़कर बोल रही है बल्कि वह एक विमर्श का हिस्सा बन चुकी है, तब हमें अपनी प्राकृतिक बुद्धिमत्ता पर ठीक ढंग से विचार करना जरूरी प्रतीत होता है। इसी बुद्धिमत्ता का एक अनिवार्य हिस्सा हमारी भाषा है, जिसके लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता तमाम तरह के संकट पैदा कर रही है। इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रसार से हमारी मातृभाषा के लेखन और वाचन में आने वाली चुनौतियों से निपटने के उपायों के बारे में भी हमें गंभीरता से सोचना होगा।

वैसे तो की-बोर्ड एवं फॉन्ट के स्तर पर काफी उन्नति हुई है, फिर भी हिन्दी सहित तमाम भारतीय भाषाओं में कुछ वर्णों एवं चिह्नों का अभाव परेशानी का सबब बना हुआ है। उदाहरण के लिए देवनागरी में लिखने के लिए यूनिकोड में जिस मंगल फॉन्ट का सर्वाधिक प्रयोग होता है, उसमें टाइपिंग करते हुए 'शृंगार' अथवा 'श्रंगार' शब्द से ही काम चलाना पड़ता है, जबकि ये दोनों शब्द वर्तनी की दृष्टि से सही नहीं हैं। आज के तकनीकी युग में जो सहज-सुलभ है, उसी से काम चलाने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। ऐसे में सटीक वर्णों एवं शब्दों की तलाश में सिर खपाने के बजाय लोग उन विकल्पों से काम चला रहे हैं जो सहज उपलब्ध हैं। आजकल विभिन्न मंचों पर साझा किए जाने वाले संदेशों को देखने पर यह बात स्वयं प्रमाणित हो जाती है। हिन्दी में साझा किए जाने वाले अधिकांश संदेशों की लिपि प्रायः रोमन होती है। इनमें ऐसे-ऐसे संक्षिप्त

एवं सांकेतिक शब्द प्रयोग किये जाते हैं, जिन्हें समझना आसान नहीं है। हिन्दी के शब्द जब रोमन में लिखे जाते हैं तो उन्हें समझने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। हिन्दी के 'मैं' को रोमन में 'उंप' या 'उंपद' के रूप में लिखा जाता है। 'मैं' के अलावा इन दोनों का उच्चारण क्रमश: 'माई' और 'मेन' शब्द के लिए भी किया जाता है। जाहिर है, ऐसे में भाषा के दुरूह और अबूझ होने का खतरा लगातार बढ़ रहा है। इधर भाषा में मिलावट की प्रवृत्ति भी तेजी से बढ़ी है और इसके मूल में कहीं न कहीं तकनीक की अहम भूमिका है, इस तथ्य को खारिज नहीं किया जा सकता। आजकल पुस्तक या किताब को 'बुक'; दोस्त या मित्र को 'फ्रेंड' कहने का चलन इतना बढ़ गया है कि लगता ही नहीं कि ये शब्द हिन्दी के नहीं, अंग्रेजी के हैं। हिन्दी या दूसरी भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी शब्दों की घुसपैठ पहले भी होती थी, लेकिन इधर इसकी गति काफी बढ़ी है और इसके मूल में कहीं न कहीं तकनीकी उपकरणों का व्यापक प्रसार है। इसका व्यापक प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों पर भी दिखाई दे रहा है, जहाँ आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले देशज शब्द तेजी से लुप्त हो रहे हैं और उनकी जगह अंग्रेजी के शब्द लेते जा रहे हैं। आजकल के ग्रामीण बच्चे भी 'गाय ', 'भैंस', 'बकरी', 'आलू' की जगह 'काउ', 'बफैलो', 'गोट', 'पोटैटो' जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं और ऐसा करते हुए गर्व की अनुभूति भी कर रहे हैं, जो निश्चय ही चिंताजनक है। किसी भी भाषा में दूसरी भाषा के जरूरी शब्दों की ग्राह्यता गलत नहीं है, लेकिन दिक्कत तब होती है जब हम अपनी भाषा के प्रचलित और सहज शब्दों के स्थान पर किसी दूसरी भाषा के शब्दों को जबरदस्ती ठूँसने लगते हैं। लोग अंग्रेजीदाँ दिखने के चक्कर में जिस तरह से अंग्रेजी के शब्दों को अपनी भाषा में घुसाकर उसे बोझिल बना रहे हैं वह चिंताजनक है। यह स्थिति केवल हिन्दी भाषा की ही नहीं है बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं का भी यही हाल है। अंग्रेजी भाषा अपने प्रभुत्व काल से ही शक्ति और ज्ञान का प्रतीक बनने का दावा करती रही है, जबकि स्थिति इसके भिन्न है। ज्ञान और शक्ति किसी भाषा की चाकर नहीं, जो उसके अधीन रहे। कहना न होगा कि इस भाषा का संबंध औपनिवेशिक मानसिकता से है। औपनिवेशिक ताक़तें न केवल आर्थिक दोहन करती हैं बल्कि वह हमें मानसिक तौर पर पंगु भी बना देती हैं। वह सबसे पहले हमारी संस्कृति और भाषा के प्रति हमारे मन में हीनताबोध पैदा करती हैं जिससे हम अपनी ही भाषा और संस्कृति के प्रति उदासीन हो जाएँ। वह प्रक्रिया लंबे समय तक चलती है, उसका परिणाम आज भी दिखाई पड़ता है।

प्रसंगात् प्रख्यात चिंतक पवन वर्मा ने औपनिवेशिक सत्ता के कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि, "अतीत में जो भी औपनिवेशिक हुकूमतें थीं, उन्हें न सिर्फ शासितों पर शारीरिक नियंत्रण कायम करने में सफलता मिली बल्कि उनकी असली सफलता दिमाग के औपनिवेशीकरण में रही और इस मामले में अंग्रेजों को सबसे ज्यादा कामयाबी मिली।" (भारतीयता की ओर, पृ.सं. 18) अंग्रेजी शासन व्यवस्था द्वारा विभिन्न विद्वानों को भारतीय भाषाओं के अध्ययन हेतु नियुक्त किया जाना उनकी कूटनीति का हिस्सा था। भाषा सर्वेक्षण करने वाले अनेक विद्वानों का अध्ययन न केवल चौंकाने वाला है बल्कि भारतीय समाज में विभेद पैदा करने वाला भी रहा है। इसमें एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में सन् अठारह सौ सत्तावन की क्रांति मौजूद है। इस महत्वपूर्ण घटना के बाद न केवल भारत में सामाजिक परिवर्तन

हुआ बल्कि औपनिवेशिक शासकों ने अपनी अनेक नीतियों में उलटफेर भी किया। इसी बदलाव का एक हिस्सा भाषायी विभेद पैदा करना था। सुविख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने इस दिशा में गंभीर कार्य किया है। उनका विचार है कि, "सन सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिन्दी-उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा, वह उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अभिन्न अंग थी।" (भाषा और समाज, पृ.सं.-319) इस विभेद-नीति को समझे बिना उनके भाषायी प्रेम का मूल्यांकन केवल अधूरा होगा। भारतीय मानस इसे समझे बिना उनके बुने हुए जाल में फँसता चला गया। यह बोध अत्यंत आवश्यक है कि अपनी परंपरा और संस्कृति से बौद्धिक मुठभेड़ करना, उसकी रूढ़ियों और विसंगतियों को अस्वीकृत करना एक स्वस्थ परंपरा का परिचायक है, जबकि अपनी हीनताबोध के कारण विदेशी संस्कृति और भाषा का केवल अंधानुकरण बौद्धिक दिवालियापन का प्रतीक है।अत: इस संकट से बचने के लिए अपनी परंपरा का ज्ञान और सांस्कृतिक बोध अत्यंत आवश्यक है।

परिवर्तनशीलता किसी भी भाषा का अनिवार्य गुण है, हिन्दी इसका अपवाद नहीं। किसी भी भाषा में होने वाला परिवर्तन उसकी मूल आत्मा को हमेशा बचाए रखने के लिए ही होता है। जिस भाषा में परिवर्तन नहीं होता है वह एक समय के बाद काल-कवलित हो जाती है लेकिन साथ ही परिवर्तन की उतावलापन भी उसे काल का ग्रास बना देता है। आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा के इस ह्रासमूलक परिवर्तन का संकेत किया है। उनका मंतव्य है कि भाषा में होने वाले परिवर्तन को प्राय: उसके विकास के नाम से जाना जाता है लेकिन यह परिवर्तन हमेशा प्रगतिगामी नहीं होता है। कभी-कभी यह परिवर्तन प्रगतिविरोधी भी होता है। उन्होंने लिखा है कि, "विकास का अर्थ यह न लगाना चाहिए कि भाषा में प्रत्येक परिवर्तन हर अवस्था में प्रगति का बोधक होता है। नितान्त ह्रासशून्य विशुद्ध विकास किसी क्षेत्र में नहीं होता, भाषा के क्षेत्र में भी नहीं होता।" (भाषा और समाज, पृ.सं.-319) स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में, और सभ्यता के प्रत्येक चरण में होने वाला भाषागत विकास आगे बढ़ने वाला ही नहीं, वह पीछे धकेलने वाला भी होता है। ऐसी स्थिति में हमें समझना होगा कि प्रत्येक भाषा एक खास व्याकरणिक संरचना और अनुशासन से बँधी होती है और एक सीमा तक ही वह इनमें किसी बदलाव को स्वीकार करती है। इस कारण यह जरूरी हो जाता है कि भाषा के मूल स्वरूप को बचाते हुए ही किसी प्रकार के प्रयोग की छूट दी जाए और ऐसा करते हुए विशेष सतर्कता बरती जाए।

अंत में एक और चुनौती की ओर ध्यान देने की जरूरत है, जो अनुवाद से जुड़ी है। अनुवाद विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों को जोड़ने वाले सेतु की तरह होता है। इस दृष्टि से किसी भी बहुभाषी समाज में उसकी अपरिहार्यता असंदिग्ध है। अकारण नहीं है कि प्राचीन काल से ही अनुवाद का कार्य होता चला आ रहा। यह जरूर है कि अब उसका स्वरूप बदल गया है। पहले अनुवाद का कार्य मनुष्य द्वारा किया जाता था, लेकिन वर्तमान में यह कार्य विभिन्न ऐप्स और सॉफ्टवेयर के माध्यम से भी संपादित किया जाता है। अनुवाद को जोखिम भरा कार्य माना जाता है। इसमें थोड़ी सी असावधानी अर्थ का अनर्थ कर सकती है। अनुवाद की महत्ता यह है कि कोई भी अनूदित कृति मूल कृति का केवल प्रतिबिंब नहीं होती है बल्कि वह उसकी पुनर्रचना होती है। अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले समाजशास्त्री अभय कुमार दुबे ने इसकी महत्ता

और चुनौतियों का विश्लेषण किया है। उनका विचार है कि, "अनुवाद मूल कृति का पुनरुत्पाद नहीं, पुनर्रचना है। चित्र जैसी कलाकृति का तो पुनरुत्पादन ही संभव है पर अनुवादक एक समूचे पाठ को एक दूसरी भाषा में, दूसरी लिपि में, दूसरी वाक्य-रचना में और दूसरी संस्कृति के जगत में रचता है। परकाया-प्रवेश जैसी कार्रवाई के नतीजे में जो काया बनती है उसके प्रमाणीकरण के लिए मूल काया कहीं और मौजूद रहती है। इस तरह दो पाठ बन जाते हैं।" (सत्ता और समाज, पृ. सं.-17) एक बार किसी प्रतियोगी परीक्षा के प्रश्नपत्र में 'स्टील प्लांट' का अनुवाद 'लौह पौध' किया गया था। यह अनुवाद कितना अनर्थकारी है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। पता नहीं यह अनुवाद किसी व्यक्ति ने स्वयं किया था या इसमें किसी सॉफ्टवेयर की मदद ली थी, पर अंततः इसे मानवीय लापरवाही का ही नमूना माना जाएगा। यदि मानव द्वारा किया गया अनुवाद पूरी तरह से निर्दोष नहीं हो सकता तो कंप्यूटर द्वारा किया गया अनुवाद कितना सटीक और निर्दोष होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मशीनी अनुवाद के हास्यास्पद किस्से रोज ही हमें देखने-सुनने को मिल जाते हैं। मशीनी अनुवाद में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) का प्रयोग होता है, जो अनुवाद में तेजी की गारंटी दे सकता है, परंतु सटीकता की नहीं। हमें समझना होगा कि मनुष्य के मस्तिष्क का विकल्प कृत्रिम बुद्धिमत्ता नहीं हो सकता। इसलिए आवश्यक है कि अनुवाद के मामले में भी ऐप्स या सॉफ्टवेयर के भरोसे न रहकर जितना संभव हो मानव मस्तिष्क का उपयोग किया जाए।

कहने का आशय है कि कोई भी तकनीकी विकास अपने साथ कुछ चुनौतियाँ भी लाता है, जिन्हें नजरंदाज करना भाषा और संस्कृति के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। सच है कि तकनीक के सहारे ही आज के दौर में विकास संभव है और इस दृष्टि से उसके साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने में ही बुद्धिमानी है। पर यह ध्यान रखना होगा कि इस प्रक्रिया में हमारे पाँव उखड़ने न पाएँ, बल्कि वे मजबूती के साथ जमीन पर टिके रहें। हमारी परंपरा में अनेक तत्त्वों का मिश्रण इस बात का संकेत करता है कि उसकी दृष्टि भविष्य की ओर होती है और इसी दृष्टि से वह अतीत को आत्मसात भी करती है, लेकिन उसकी वर्तमान प्रासंगिकता को नजरअंदाज नहीं करती। उसके सतत प्रवहमान रहने का एक अनिवार्य गुण उसका लचीलापन है, अपने इसी स्वभाव के कारण वह आगे बढ़ जाती है। अपने समय की चुनौती का मुक़ाबला करने के लिए यह बोध अत्यंत आवश्यक है। यदि ऐसा होगा तो निश्चय ही हम भाषा व अन्य क्षेत्रों में आने वाली किसी भी चुनौती का मुकाबला करने में समर्थ साबित होंगे।

संदर्भ :

वर्मा, पवन. (2010). भारतीयता की ओर (अनु. वैभव सिंह). हरियाणा, पेंगुइन रैंडम हाउस

शर्मा, रामविलास. (2017). भाषा और समाज. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

बिष्ट, पंकज. (2008). हिन्दी का पक्ष. बीकानेर, वाग्देवी प्रकाशन

शेठ, धीरूभाई (2019). सत्ता और समाज (अनु. अभय कुमार दुबे). नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन

❑❑❑

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश-277001

मोबाइल 9415319547, ईमेल : jainendratdc@gmail.com

ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन

—दीपमाला
—डॉ. कविता पड़ेगाँवकर

ग्रामीण विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमशः 71.24 एवं 70.06 है। छात्रों के व्यक्तित्व का मध्यमान छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि परिकलित टी मान 1.11 है जबकि df = 244 के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.96 है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस अध्ययन के लिए भोपाल जिले के ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि से किया गया। जिसमें 123 छात्र एवं 123 छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया। व्यक्तित्व के गुणों को जाँचने के लिए मंजू अग्रवाल द्वारा निर्मित बहुपक्षीय व्यक्तित्व इन्वेंटरी का उपयोग किया गया था। समंकों के विश्लेषण हेतु माध्य, माध्यिका एवं t-test का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व के गुणों में सार्थक अन्तर पाया गया है।

परिचय

व्यक्तित्व आधुनिक मनोविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विषय है। व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार का पूर्वकथन भी किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएँ होती हों जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होतीं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाएँ और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजित होने के लिए है। व्यक्तित्व के विकास में शिक्षा का महत्व है। एक संपूर्ण व्यक्ति बनने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा किसी भी कार्य को अनुशासित तरीके से ही पूरा किया जा सकता है।

देहगान, एहमद, हादी अब्दुल्लाही हादी एवं रेज़ाई, (2014), ली सनयून एवं ओथेक फूमियो (2014), यादव, रेखा (2014), मार्क एस. एलन, स्टेवर्ट ए. वेला व सिल्वेन लेबोर्डे (2014), भारद्वाज, रजनी, खान व वसीम अहमद (2013) ने व्यक्तित्व के लक्षण पर विभिन्न अध्ययन किए।

वास्तव में वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए व्यक्तित्व पर शोध कार्य करने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है, यद्यपि व्यक्तित्व पर पूर्व में उत्कृष्ट एवं उपयोगी कार्य हो चुके हैं किन्तु

फिर भी इस विषय पर नवीन कार्य भविष्य में उपयोगी होंगे। अतः शोधकर्ता ने परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को आधार मानकर, व्यक्तित्व पर कार्य करने का निर्णय लिया।

समस्या

"ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन"

अध्ययन का उद्देश्य

ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

"ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं होगा"

प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन हेतु भोपाल जिले के ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि (RENDOM SAMPLING METHOD) से किया गया। जिसमें 123 छात्र एवं 123 छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया।

चर

साहित्य के पुनरावलोकन एवं विद्वानों के साथ चर्चा के आधार पर, इस अध्ययन के लिए चर के रूप में व्यक्तित्व का चयन किया गया।

शोध उपकरण

अध्ययनकर्ता द्वारा व्यक्तित्व के गुणों को जाँचने के लिए मंजू अग्रवाल द्वारा निर्मित बहुपक्षीय व्यक्तित्व इन्वेंटरी का उपयोग व्यक्तित्व लक्षणों का आकलन करने के लिए किया गया था। इन्वेंट्री में 120 आइटम हैं और प्रत्येक 20 आइटम व्यक्तित्व के उपायों से संबंधित हैं- अंतर्मुखी-बहिर्मुखी, आत्म-अवधारणा, स्वतंत्रता-निर्भरता, स्वभाव, समायोजन और चिंता। इसकी वैधता 0.82 है।

समंक संकलन की प्रक्रिया

समंक व्यक्तित्व प्रश्नावली की सहायता से एकत्र किया गया। प्रश्नावली विद्यार्थियों के मध्य व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग वितरित की गयी। परीक्षण संबंधी सभी आवश्यक निर्देश विद्यार्थियों को दिये गए। अंत में प्रत्येक विद्यार्थी से प्रश्नावली प्राप्त की गयी।

समंक विश्लेषण हेतु सांख्यिकी तकनीक का प्रयोग

शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राप्तांकों के रूप में समंकों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया। इसमें माध्य, माध्यिका एवं t-test का प्रयोग किया गया।

समंक विश्लेषण एवं परिणाम

शोधार्थी ने इस शोध कार्य में प्रश्नावली की सहायता से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का अध्ययन सांख्यिकीय पद्धति से गणना करके किया और सार्थकता की जाँच टी-टेस्ट 0.05 स्तर पर की गयी, जिसमें दोनों समूहों में सार्थक अन्तर पाया गया।

सारणी क्रमांक-1

चर	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी-सारणी मान	परिकलित टी-मान	सार्थकता 0.05 स्तर
व्यक्तित्व	छात्र	123	71.24	9.36	1.96	1.11	असार्थक (NS)
	छात्राएँ	123	70.06	8.11			

ग्रामीण विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमशः 71.24 एवं 70.06 है। छात्रों के व्यक्तित्व का मध्यमान छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि परिकलित टी मान 1.11 है जबकि df = 244 के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता परीक्षण के लिए टी का सारणीमान 1.96 है। इस प्रकार सारणीमान से परिकलित मान कम है (1.11<1.96) अतः सार्थक अन्तर नहीं है। अतः कह सकते हैं कि ग्रामीण विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार परिकल्पना स्वीकृत होती है।

सुझाव

1. विद्यार्थियों की मनोगामक योग्यताओं का समग्र विश्लेषण भविष्य में संभावित है।
2. विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के गुणों का अध्ययन भविष्य में संभावित है।
3. विद्यार्थियों के धनात्मक व्यक्तित्व के सभी पक्षों का अध्ययन भविष्य में संभावित है।
4. विद्यार्थियों के सकारात्मक व्यक्तित्व के गुण, उनके उत्कृष्ट प्रदर्शन में सहायक होंगे।
5. विद्यार्थियों के सकारात्मक व्यक्तित्व के गुण, उनके निर्णय क्षमता को बढ़ाने में सहायक होगी।

संदर्भ :

Bhardwaj, Rajnee & Dr. Khan, Waseem Ahmad. (2013) शासकीय विद्यालयों के छात्रों और पब्लिक विद्यालयों के छात्रों के बीच व्यक्तित्व के विकास के रूप का एक तुलनात्मक अध्ययन, Education At The Crossroads Journal, An International Journal of Humanities, APH Pub. Vol. II, Page 76.

Dehagan ahmad, hadi abdullahi & Rezai (2014), भावनात्मक बुद्धि पर वृहद पाँच व्यक्तित्व लक्षणों के प्रभाव पर एक अध्ययन, International Journal of Industrial Engineering Computations

Dr. Dhrul, Indira & Yadav, Preeti (2014) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच व्यवसाय से संतुष्टि के संबंध में उनके व्यक्तित्व और कुछ जनसांख्यिकीय चर, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 274.

Dr. Ganai, M.Y. & Muhammd, Asharaf Mir. (2013) माध्यमिक स्तर पर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों और गैर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का एक तुलनात्मक अध्ययन, Edu world, A peer reviewed Journal of Education & Humanities, APH Pub., Vol. II, Page 295.

Guleriya, Monika (2014) पंजाब व राजस्थान राज्य के शिक्षित और अशिक्षित माताओं के बच्चों का व्यक्तित्व और मानसिक स्वास्थ्य, उनकी बुद्धि के संबंध में एक तुलनात्मक अध्ययन, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 268.

Ishwari, P. (2004) तमिलनाडु में सहायक प्राथमिक शिक्षा के अधिकारियों का व्यक्तित्व के साथ, प्रशासनिक और शैक्षणिक उत्तरदायित्व का सम्बन्ध, The Primary Teacher, NCERT, Vol. 29, Page 52.

Kumari S. Ashwini & Mayuri K. (2015) व्यक्तित्व के कारक एवं अकादमिक उपलब्धि : ग्रामीण शासकीय विद्यालय के छात्रों पर एक अध्ययन, Indian Psychological Review, Agra Psychological Research Cell, Vol. 84, Page 17.

Kumar, Sunil & Dr. Kumar, Jeetendra (2014) गुड़गांव जिले की कामकाजी और गैर कामकाजी माताओं के उच्चतर विद्यालयों के बच्चों के व्यक्तित्व लक्षण का अध्ययन, Journal of Educational & Psychological Research, C.L.D.S. Memorial Education Society, Vol. IV, Page 62.

Lee sanyun & Othek fumiyo (2014), विद्यालयीन शिक्षा, आय और कैरियर संवर्धन पर व्यक्तित्व लक्षण और व्यवहार संबंधी लक्षण के प्रभाव, Discussion Paper Series 14-E-023, http://www.rieti.go.jp/en/ 1 RIETI

Mark S. Allen, Stewart A. Vella & Sylvain Laborde (2014) किशोरावस्था में स्वास्थ्य से संबंधित व्यवहार और व्यक्तित्व के गुणों का विकास, Retrieved from http://www.indianjournals.com/ijor.aspx?target=ijor:gjpe&volume=7&issue=2&article=004

❒❒❒

1. शोधार्थी, भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल 2. प्राध्यापक, भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल

आदमी का ज़हर बनाम मोछू नेटुआ

—सत्येन्द्र पाण्डेय

मोछू नेटुआ की गुहार में भोजपुरी की मिठास है। उसकी जनपद की भाषा में उत्तर भारत साकार हो उठा है। गाँव आज भी डेहर, दियरखा, खपरा और नरिया से बाहर नहीं निकल पाया है। गाँव को लेकर कवि की बेचैनी स्वाभाविक है। जिस लोकतंत्र की बात करते हम थकते नहीं हैं; वह कहीं न कहीं चूक रहा है। अमेरिकी न्यायविद लुई डीब्रैंड ने कहा था कि-"किसी देश में लोकतंत्र हो सकता है या थोड़े से लोगों के हाथों में भारी संपदा का संकेंद्रण हो सकता है, लेकिन दोनों एक साथ नहीं रह सकते।" अर्थात आर्थिक विषमता और लोकतंत्र का एक साथ होना संभव नहीं है। आर्थिक विषमता हमारे लोकतंत्र के प्रभाव को कम कर रही है।

"हर पल जीने का दोहराव भर नहीं है जिंदगी
सांसों की मौलिक कविता है अनूठी यह"

(संतोष कुमार चतुर्वेदी)

समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं युवा कवि संतोष कुमार चतुर्वेदी। उनकी कविताएँ 'लोक' के धरातल पर फलती-फूलती रही हैं। उनकी कविताओं से गुजरते हुए मुझे हमेशा ऐसा लगा कि उनकी कविताएँ जन संघर्ष को आवाज देती हैं। वह समय की सामाजिक गतिकी को पहचान कर यथास्थिति को तोड़ती हैं; तथा जन की संवेदना को व्यक्त करती हैं। यहाँ कवि की संवेदना स्थानीय होते हुए भी वैश्विक हो गई है। कवि का अपने गांव 'हुसेनाबाद' के प्रति लगाव साफ झलकता है। वहाँ की प्रकृति उनकी कविताओं में साकार हो उठी है। ग्रामीण शब्दों का इतना सुंदर चित्रण वही कर सकता है, जिसका चेतन ग्रामीण प्रकृति के प्रभाव से विकसित हुआ हो। संतोष कुमार चतुर्वेदी एक सजग दायित्वशील कवि हैं। वह अपने समय की अग्रगामी चेतना को बड़ी संजीदगी से पकड़ते हैं। वह केवल जन के दु:ख दर्द का चित्रण ही नहीं करते बल्कि उसे दिशा भी देते हैं। इस संदर्भ में मुझे पाब्लो नेरुदा की कविता 'धीमी मौत' याद आती है। जिसमें वे कहते हैं:

"किश्तों में मरते चले जाने से बचना है
तो याद रखना होगा हमेशा
कि जिंदा रहने के लिए काफी नहीं बस सांस लेते रहना,
कि एक प्रज्ज्वल धैर्य ही ले जाएगा हमें
एक जाज्वल्यमान सुख की ओर।"

यह प्रज्ज्वल धैर्य हमें संतोष कुमार चतुर्वेदी की कविताओं में दिखाई देती है। वह उन उपेक्षित पहलुओं को अपनी कविता का विषय बनाते हैं जिस पर चर्चा करने से भी कुलीन वर्ग घबराता है। इस दृष्टि से उनकी लंबी कविता 'मोछू नेटुआ' महत्वपूर्ण है जो, उनके दूसरे काव्य संग्रह 'दक्खिन का भी

अपना पूरब होता है' में संग्रहित है। कवि मोछू नेटुआ जैसे अछूत जनजाति के जीवन संघर्ष तथा सामाजिक अंतर्विरोध को व्यक्त कर जन विरोधी मानसिकता को चुनौती देता है। मोछू एक ऐसा पात्र है जो अपने चरित्र के माध्यम से पूरे देश की ग्रामीण संवेदना को व्यक्त करता है। मोछू नेटुआ सांप पकड़ने के क्रम में जब किरिया खाता है तब उसका चरित्र विशाल लगने लगता है; क्योंकि किरिया हम उसी के खाते हैं जो हमारा अत्यंत आत्मीय होता है। यहाँ किरिया का दायरा बहुत व्यापक है। मोछू डीह, डिहवार तक की शपथ लेता है। वह कसम खाता है :

"माई किरिया, बाप किरिया, बेटा किरिया / बेटी किरिया, दामादकिरिया / गांव किरिया, सीवान किरिया / डीह किरिया, डिहवार किरिया"

इससे साफ विदित होता है कि जहाँ स्वार्थ अपने चरम पर पहुँच गया हो, व्यक्ति का व्यक्ति से भरोसा समाप्त हो गया हो, धन वर्चस्व की धूरी पर संबंधों का बिखराव हो रहा हो, विशिष्ट जन की आकांक्षा का दायरा बढ़ता जा रहा हो, वहीं जन का अपने संबंधों और अपनी धरती के प्रति अटूट आस्था, नई चेतना का संचार करती है। विचारणीय है कि आज जहाँ विकास के बड़े-बड़े वायदे किए जा रहे हैं, विकास के आँकड़े गिनाए जा रहे हैं, वहीं मोछू नेटुआ जीविकोपार्जन हेतु सांप पकड़ने के लिए अभिशप्त है। वह सांप पकड़ने वाले मंत्र को बुदबुदाता हुआ आगे बढ़ता है। वह सांप से बाहर निकलने की गुहार लगाता है :

"किनिकलि आओ जहाँ भी छुपे बैठे हो वहाँ से / निकलि आओ कोने से अंतरे से / धरनि से, सरदर से, कोरो से, मलिकथम से, / निकलि आओ पटनी से, डेहर से दियरखा से / खपरा से, नरिया से / बिल से, बिलवार से"

मोछू नेटुआ की गुहार में भोजपुरी की मिठास है। उसकी जनपद की भाषा में उत्तर भारत साकार हो उठा है। गाँव आज भी डेहर, दियरखा, खपरा और नरिया से बाहर नहीं निकल पाया है। गाँव को लेकर कवि की बेचैनी स्वाभाविक है। जिस लोकतंत्र की बात करते हम थकते नहीं हैं; वह कहीं न कहीं चूक रहा है। अमेरिकी न्यायविद लुई डीब्रैंड ने कहा था कि-"किसी देश में लोकतंत्र हो सकता है या थोड़े से लोगों के हाथों में भारी संपदा का संकेंद्रण हो सकता है, लेकिन दोनों एक साथ नहीं रह सकते।" अर्थात आर्थिक विषमता और लोकतंत्र का एक साथ होना संभव नहीं है। आर्थिक विषमता हमारे लोकतंत्र के प्रभाव को कम कर रही है। हालांकि आज भी कहीं अगर थोड़ी सी भी आत्मीयता बची है तो वह गाँव ही है।

ऐसे ही गाँवों में घूम-घूम कर मोछू नेटुआ अपनी कला का प्रदर्शन करता है। उसके करतब के स्थापत्य को देखकर लोग चमत्कृत हो जाते हैं। मोछू अशिक्षित होते हुए भी सांपों के बारे में इतना कुछ जानता है कि जीव विज्ञान के विद्वान भी भौचक्के रह जाएँ। मोछू डाक्यूमेंट्री फिल्मों से अपरिचित सरकारी दस्तावेजों से अलग अपनी ठेठ पहचान बनाता है। वह गाँव की गलियों का खाक छानता हुआ जीवन से संघर्ष करता है। उसमें अभी भी मनुष्यता बची हुई है। वह पेट के लिए षड्यंत्र नहीं करता, डाका नहीं डालता, राजनीति की दलाली नहीं करता। उसे भौतिक सुख सुविधा की चाह नहीं। उसे दो वक्त की रोटी चाहिए। इसीलिए वह सारी कठिनाइयों को झेलता है। कवि ने मोछू का बड़ा सुंदर चित्र खींचा है :

"अपने सिर पर पगड़ी बाँधते / कान में जड़ी खोंसते / डण्डा फटकारते अबूझ-सा मन्त्र पढ़ते / तमाम संबंधों की कसमें खाते / वह घुस जाता तब किसी एक कमरे में"

वह सांप को पकड़कर अपने झंपोली में सुरक्षित रख देता है; इस वादे के साथ कि उसे वह जंगल में छोड़ देगा। मोछू का अपनी प्रकृति, वहाँ के जीव-जंतु के प्रति लगाव उसे बड़ा आदमी बनाता है।

दरअसल हमारे देश के बारे में यह प्रचलित मान्यता रही है की यह सांप, सपेरों और जादू-टोनों को महत्व देने वाला देश है। पर वास्तविकता तो यह है कि हमारे यहाँ देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों, सर्पों के साथ प्रकृति की भी आराधना की जाती है जो अकारण नहीं है। इसके माध्यम से जैव विविधता के प्रति लोगों को जागरूक किया जाता है तथा जीवों और प्रकृति के प्रति लोगों में प्रेम भाव भरने का प्रयास किया जाता है। यह भारत की वैज्ञानिक दृष्टि है। पर्यावरण के संरक्षण में सांपों की अहम भूमिका है। यह खेती के रक्षक भी हैं। इसीलिए संतोष कुमार चतुर्वेदी मोछू नेटुआ के माध्यम से सांपों के संरक्षण पर बल देते हैं। समय के साथ-साथ सांप और जंगल दोनों का सफाया होता जा रहा है। इसकी चिंता कवि को गहराई तक कुरेदती है। वह मोछू जैसे अछूत पात्र को खड़ा कर कुलीन वर्ग से लोहा लेता है। मोछू कहता है :

"हमीं है असली रमता जोगी बहता पानी / कभी हमारे देश को गुलाम बनाने वाले फिरंगियों ने / हम जैसे तमाम घुमंतु जातियों को / घोषित कर दिया था अपराधी / और तब से यह लेबल अपने चेहरे पर लगाये / मरते हुए जीने की कोशिशों में / लगातार लगे हुए हैं हम।"

ध्यातव्य है कि मोछू जैसे अछूत जनजातियों को शक की निगाह से देखा जाता है। कहीं भी जिला जवार में चोरी डकैती पड़ने से इन्हें ही परिवार समेत पकड़ लिया जाता है और खंभे में बाँधकर तब तक मारा जाता है जब तक किये बेसुध ना हो जाते। मोछू को भली-भांति ज्ञात है कि आज के समय में गरीबी सबसे बड़ा अपराध है। वह तुलसी को याद करते हुए कहता है-'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' मोछू जैसे जनजातियों को कभी आतंकवादी ठहराया जाता है तो कभी नक्सलवादी। आज तक इन जनजातियों के प्रति सरकार में संवेदना की भावना नहीं है। भले ही कागजों पर तरह-तरह की सुविधाएँ उभर आई हों, लेकिन जमीनी स्तर पर यह जनजातियाँ आज भी अछूत और अपराधी हैं। हम अपने शुभ कार्यों में तो इन्हें बुलाते हैं पर अछूत की तरह। सोचने की बात है कि जिसकी उपस्थिति से हमारे मांगलिक कार्य पूर्ण होते हैं उसे ही हम स्वार्थ के लिए अपराधी घोषित कर देते हैं। जनता का सेवक हो या रक्षक सभी मोछू जैसे जनजातियों को मनुष्य की कोटि में रखते ही नहीं। मोछू तो कहता है कि यह सरकार भी 'राई-रत्ती कम नहीं फिरंगियों से' वह आगे इस व्यवस्था पर व्यंग्य करता है :

"दरअसल असली विषधर हैं ये समाज के / अमिट कलंक हैं ये हमारे आज के / जिन्हें बाहर नहीं निकाल पा रहा कोई तंत्र-मंत्र / इन मायावियों के सामने / सारे हरवा-हथियार पड़ते जा रहे हैं बेअसर / तंत्र मंत्र पड़ते जा रहे हैं बांझ।"

मोछू का आक्रोश इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है। वह अब समझ गया है कि इस क्रूर व्यवस्था से लड़ने के लिए नया ब्रह्मास्त्र खोजना होगा। कवि विजेंद्र भी इसी क्रूर व्यवस्था पर चोट करते हुए कहते हैं :

"तुम मनुष्यता को करने वाले राख / अनअघाये दस्यु / मेरे देश के बहुमूल्य खनिजों को लूटते / पसीना आत्मा का सत है / चाहिए अन्नहर पेट को / रोशनी हर आँख को / आकाश हर पाँख को / तुम्हारे, ओह.......क्रूर राक्षसी पंजे से मुक्त होने को / चाहिए घनों की चोटें / हंसिया, हथौड़ा, कुल्हाड़ी / पत्थर उचालने की गेंती और सब्बल।" (पसीना)

दरअसल वह नया ब्रह्मास्त्र जनशक्ति ही हो सकती है। यही वह ब्रह्मास्त्र है जिसकी काट पूँजीवादी व्यवस्था के पास नहीं है।

'मोछू नेटुआ' में कवि के तटस्थ दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। वह अपनी संवेदना को द्वंद्वात्मकता के माध्यम से बुद्धिगत बनाता है। वाह मोछू जैसे लोगों से एकात्म होकर उनके दु:ख-दर्द तथा संघर्ष को महसूस करता है। यही कारण है कि उसकी संवेदना धारदार होती गई है। मोछू कहता है :

"दरअसल अपने समय की हँसमुख दुनिया का ही / एक उदास चेहरा हैं हम"

कवि ने नेटुआ जनजाति की समस्याओं को बहुत ईमानदारी से उठाया है। उनका संघर्ष कवि के आँखों देखा है। मोछू का जीवन एक रील की भाँति कविता के स्क्रीन पर चलता जाता है और कवि जैसे गौण कथा की भूमिका अदा कर रहा है।

समाज में नेटुआ जनजाति की स्थिति बहुत दयनीय है। किसी तरह उन्हें दूसरे वक्त का भोजन नसीब होता है। उनके बच्चे बचपन का अर्थ ही नहीं समझ पाते हैं। वही रोज का दरबदर भटकते फिरना, वही भूख और तंगहाली। ऐसी स्थिति से तंग आकर मोछू के दोनों बच्चे अपना कांवर, अपनी झंपोली फ़ेंक-फाँक कर मजदूरी करने निकल पड़ते हैं। मोछू कहता है :

"ठीक ही तो किया उन दोनों ने / दर-दर भटकना तो नहीं पड़ेगा उन्हें हमारी तरह / दो जून की रोटी के लिए।"

यहाँ हमें प्रेमचंद के 'गोदान' का गोबर याद आता है; जो व्यवस्था से तंग आकर शहर चला जाता है। उसकी सोच होरी से बहुत भिन्न है। इस कविता में भी दो पीढ़ियों के फर्क की ओर संकेत किया गया है। लेकिन मोछू नेटुआ होरी से कहीं अधिक आधुनिक और तार्किक है। वह अपनी रक्षा के लिए किसी के तलवे को सहलाना पसंद नहीं करता बल्कि वह अपने शर्तों पर जीता है। वह प्रकृति का प्रेमी है। उसे प्रकृति से छेड़छाड़ स्वीकार नहीं। वह सांपों को पकड़कर वादे के अनुसार जंगल में छोड़ देता है। उसकी मान्यता है कि-

"किसी को डंसने मारने से बेहतर है / जिंदगी जीने का यह सलीका"

उसकी चिंता हमेशा से यही रही कि सांप बड़ी तेजी से खत्म हो रहे हैं; साथ ही सपधरवे भी। यह चिंता एक जन की चिंता है जबकि कुलीन वर्ग को इससे फर्क नहीं पड़ता। कवि

ने बहुत सहजता से अपनी बात को स्पष्ट कर दिया है। उसकी जनपक्षधरता समझी जा सकती है। यह कविता देखने में जितनी ही सहज है उतनी ही संश्लिष्ट भी है। ऐसे अछूत विषयों पर कविता करना आसान नहीं है। कवि विजेन्द्र तो साफ कहते हैं "जब कवि अपने अनुभूत ज्ञान संवेदना को बुद्धिगत बनाकर उसे पुनर्गठित करता है, उस समय वह अपने विचार, अपनी जीवन-दृष्टि, अपने रुझान का भी उसमें समावेश कर देता है।" (वागर्थ, अप्रैल -2017)

मोछू नेटुआ बाजार के कुचक्र को समझता है। वह बाजारवाद के मीठे जहर को महसूस करता है, जो हमारी संस्कृति, प्रकृति और संवेदना को नष्ट कर देना चाहता है। बाजारवाद अपने महत्वपूर्ण उपकरण उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के माध्यम से हमारे आंतरिक संबंध, परंपरा, संस्कृति, राष्ट्रीयता, जातीयता को ग्रस लेना चाहता है। वह हमेशा यह भ्रम पैदा करता है कि पूरा विश्व एक ग्राम है और सभी समस्याओं का समाधान बाजारवाद से ही संभव है। उसने उदार शब्द के अर्थ को ही बदल दिया है। हमारे यहाँ उदारता मनुष्यता की पहचान है। बिना उदार हुए हम लोगों को जटिल समस्याओं से नहीं निकाल पाएँगे। हमारी संस्कृति हमारे अंदर उदारता भरती है। हमारी परंपरा के मूल में उदारता रही है। लेकिन बाजारवाद, उदारीकरण का इस्तेमाल मार्केटिंग के रूप में करता है। यहाँ मनुष्य महत्वपूर्ण नहीं बाजार महत्वपूर्ण है। बाजारवाद ने हमारे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव को अपने चंगुल में ले लिया है। कुलीन वर्ग इसके कारिंदे हैं। व्यवस्था भी इसी की बोली बोलती है। देश विकास के शिखर पर पहुँच गया है। अच्छे दिन आ गए फिर चारों तरफ हाहाकार क्यों मचा हुआ है? किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? सांप्रदायिक दंगे क्यों हो रहे हैं? इस दृष्टि से वीरेन डंगवाल की कविता 'हड्डी खोपड़ी खतरा निशान' महत्वपूर्ण है। वह कहते हैं :

"डोमाजी उस्ताद सुधर चुके / और विधान सभा भी कभी की वातानुकूलित की जा चुकी / मान लिया भद्र लोगों कोई खतरा नहीं बाकी बचा / हड्डी खोपड़ी विहीन वह शुभ दिन / आ ही गया आखिर हमारे देश में।" (दुष्चक्र में स्रष्टा)

आज दृश्य यह है कि आर्थिक वृद्धि के साथ मानव विकास नहीं हो रहा। दोनों एक दूसरे के विरोधी हो गए हैं। आर्थिक वृद्धि से बाजार तो चमक रहा है लेकिन लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। कागजों पर विकास का मीटर तो बहुत ऊँचा है पर जमीन पर बेरोजगारी और भूख से जनता प्राण गँवा रही है। कैसी विडंबना है कि जिस जमीन और जंगल की रक्षा के लिए आमजन अपने प्राणों की आहुति देता रहा वही उससे छीन ली जा रही है। उसके पारंपरिक मूल्यों को भी धता बताया जा रहा है। आजीविका के परंपरागत साधन का भी क्षरण हो रहा है। मोछू नेटुआ कहता है :

"अब तो नहीं रहे वे सांप / ना ही रहे वे संपधरवे"

बाजार के कुदृष्टि से सांप भी नहीं बच पाए हैं। ऐसी एक मशीन इजाद हो गई है जो सांपों को दूरदराज से खोज लेती है। सांपों को पकड़ कर उसके जहर को निकाल लिया जाता है जिससे महंगी दवाइयाँ बनाई जाती हैं और बाद में उसके खाल के लिए उसे बड़ी बेरहमी से मार दिया जाता है। मोछू के शब्दों में :

"फिर वे अपने कहर के जहर से मार डालते हैं सांपों को / महज उसकी खाल के लिए / सुना है जिससे तैयार होते हैं कारखानों में / महंगे महंगे कोट / महंगे महंगे बैग / बाजारों में बेचने के लिए"

कवि की चिंता केवल सांपों तक सीमित नहीं है। वह पूरी धरती की चिंता करता है। वह देखता है कि दुआर गायों से खाली हो गए हैं और खूंटों से बैल गायब हैं। यहाँ तक कि :

"अपनी सख्त कवच के बावजूद / कछुए नहीं बचा पाए खुद को / और हमारे देखते-देखते गायब होते गये / दूर तक नजर रखने वाले गिद्ध"

वैसे ही मनुष्य से भी मनुष्यता गायब होती जा रही है। वह भौतिक सुख सुविधा के लिए अपने ईमान तक को बेचने में हिचकता नहीं। आज के इस बाजारवाद के दौर में मनुष्य केवल अस्थि पंजर और मांस का बुत बनता जा रहा है। उसके धमनियों में रक्त की जगह जहर का प्रवाह हो रहा है। यहाँ मोछू के शब्दों में कवि की चिंता व्यक्त हुई है :

"कि बेअसर पड़ता जा रहा है सांप का जहर / और लगातार जहरीला होता जा रहा है आदमी"

मोछू खुद इस बात की पुष्टि करता है कि वह सांपों को तो आसानी से पहचान लेता था कि कौन गेहुँवन है और कौन करैत। वह कहता है :

"लेकिन आदमी को आदमी की भीड़ से बीन कर / जहरीले तौर पर अलगा पाना / एकदमे से असंभव है मालिक"

कवि दुनिया को लगातार जहरीली प्रक्रिया से गुजरते हुए देख रहा है। हर ओर मानवीय मूल्यों का क्षरण हो रहा है। राजनीति, समाज और साहित्य सभी अपने दायित्व से विलग हो रहे हैं। ऐसी विकट परिस्थिति कवि को गहराई तक झकझोर कर रख देती है। यहाँ मुझे विजेन्द्र की एक कविता 'विरल क्षणों का गाना' याद आता है जिसमें वह लिखते हैं :

"देखा है मैंने / झोपड़िया उजड़ते / फिर राख के ढेर पर उठी भव्य इमारतें / तुम्हें देना होगा हिसाब पसीने की हर बूँद का / लूट-खसोट की इस आँच में / झुलता है गरीब ही / बजट में कुछ नहीं है / उसके धचके पेट के लिये / उभरी पसलियों के लिए" (बेघर का बना देश)

संतोष कुमार चतुर्वेदी की संवेदना हर उस जन के प्रति है जिसमें अभी भी मानवीय मूल्य जीवित हैं। जिनकी आँखों में सुखद भविष्य की तस्वीर उभर रही है। वह अपने समय की एक बेहद सुखद तस्वीर बनाना चाहते हैं।

❑❑❑

C2M1-5, फ्लैट नंबर-534, सी.एम.डी.ए. नगर, बारासात रोड, वायरलेस मोड़ के सामने, बैरकपुर-700121 (पश्चिम बंगाल)
मोबाइल : 9832558528

भारतीय संस्कृति के दर्पण में 'विदुर नीति'

—डॉ. अंजू बसंल

भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन में पल्लवित भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप साहित्य के ग्रंथों में अपनी सुंदर झांकी दिखलाता हुआ सहृदयों के हृदय को आकर्षित करता है तथा सत्य की राह प्रशस्त करता है। महर्षि बाल्मीकि तथा व्यास, कालिदास तथा भवभूति आदि ने जिस प्रकार मनोरम काव्य की रचना की है उसी प्रकार महात्मा विदुर की नीति ने मानव को उपदेश की जिस धारा से स्निग्ध किया वह वर्तमान में भी सांस्कृतिक मूल्यों प्रतिभाषित कर रही है।

साहित्य के दर्पण में संस्कृति की प्रत्येक झलक प्रतिबिम्बित होती है, साहित्य संस्कृति का वाहन है। भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन से पल्लवित, भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप साहित्य के द्वारा सहृदयों को आकर्षित करता है। इसी संदर्भ में 'विदुर नीति' महाभारत का ऐसा पृष्ठ है, अगर यह पृष्ठ वास्तव में धृतराष्ट्र के द्वारा अध्ययन कर समझ लिया जाता तो यह संग्राम विनाश और महाभारत न होता।

महाभारत के उद्योग पर्व में 'विदुर नीति' आठ अध्यायों में संकलित है। संस्कृति से अभिप्राय मात्र लोक व्यवहार, रीति-रिवाज ही नहीं है अपितु हमारे जीवन मूल्य, आदर सत्कार, परोपकार, दया, प्रेम, सहानुभूति, विश्वबन्धुत्व की भावना, प्रेम, करुणा, सत्य, अहिंसा आदि है। महात्मा विदुर ने अपनी वाणी से भारतीय संस्कृति के गुणों की गंगा को प्रवाहित किया है। प्रस्तुत शोधपत्र वर्तमान संदर्भ में भी विदुर नीति की उपयोगिता व प्रासंगिकता सिद्ध करने का प्रयास है।

महात्मा विदुर आठवें अध्याय में राजा धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं –

"इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि, पुण्यं पदं तात महाविशिष्ट्म।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्म जह्याज्जीवितस्यापि हे तो:
नित्यों धर्म: सुख दु:खे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य:
व्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये, संतुश्य त्वं तोशपरों हि लाभ:।।[11]

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक परिस्थिति में धर्म का पालन करें, कामना से, भय से, लोभ से, कभी भी धर्म का मार्ग न छोड़ें, धर्म नित्य है सुख-दु:ख, राज्य आदि अनित्य।

उपरोक्त वर्णित भारतीय संस्कृति की जो झाँकी विदुर जी ने अपने उपदेशों के माध्यम से इस संसार को प्रदान की है वह अमूल्य है।

भारतीय संस्कृति के दर्पण में 'विदुर नीति'

साहित्य समाज के दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है। साहित्य का प्रत्येक बदलता स्वरूप, उत्थान-पतन, सुख-दुख, संयोग-वियोग के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तात्कालिक साहित्य होता है। इस प्रकार साहित्य संस्कृति की प्रत्येक झलक को प्रदर्शित करता है, साहित्य वास्तव में संस्कृति का प्रधान वाहन है जिस पर सवारी कर संस्कृति विश्व के कोने-कोने तक पहुँचती है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झाँकी सदा प्रदर्शित करती है। संस्कृति के प्रसार और प्रचार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग साहित्य ही है। साहित्य संस्कृति पर आधारित है, यदि संस्कृति में आध्यात्मिकता की धारायें प्रवाहित है तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता की गंगा में अवगाहन करेगा। संस्कृति नींव है जिस पर साहित्य रूपी भवन का निर्माण होता है, नींव जिस प्रकार की होगी साहित्य भी उसी चेतना से अनुप्राणित होगा।

भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन में पल्लवित भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप साहित्य के ग्रंथों में अपनी सुंदर झांकी दिखलाता हुआ सहृदयों के हृदय को आकर्षित करता है तथा सत्य की राह प्रशस्त करता है। महर्षि बाल्मीकि तथा व्यास, कालिदास तथा भवभूति आदि ने जिस प्रकार मनोरम काव्य की रचना की है उसी प्रकार महात्मा विदुर की नीति ने मानव को उपदेश की जिस धारा से स्निग्ध किया वह वर्तमान में भी सांस्कृतिक मूल्यों प्रतिभाषित कर रही है। वृहत्तर भारतीय संस्कृति का प्रचार तलवार के सहारे नहीं हुआ, कलम के सहारे हुआ। जब-जब समाज ने भारतीय संस्कृति के विपरीत कार्य किया, तलवारें चली, परिणामस्वरूप महाभारत का जन्म।

महात्मा विदुर के उपदेशों को स्वीकार न करना ही संग्राम का कारण बना, अतः प्रस्तुत शोध में भारतीय संस्कृति के दर्पण में 'विदुर नीति' को आलोकित करने का प्रयास है, वर्तमान संदर्भ में यह आलोक किस प्रकार जन-मानस को प्रकाशित कर संघर्षों से जूझते मानव को आनन्द के दर्शन करा सकेगा यही शोध के मापदण्डों पर परखा जायेगा।

भारतीय संस्कृति के मूल्यों के रूप में विदुर नीति

'विदुर नीति' महाभारत का अत्यन्त हृदयगामी प्रसंग है, इसमें महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को कल्याणकारी उपदेश अपनी मधुर वाणी में दिये हैं। महाभारत के उद्योग पर्व में 'विदुर नीति' आठ अध्यायों में संकलित है। 'विदुर' जी के ये उपदेश मानव कष्टों को दूर करने का उपाय बता रहे हैं, आगे प्रस्तुत है-

लोभ के संदर्भ में विदुर वचन -

धृतराष्ट्र कहते हैं—तात्! मैं चिन्ता से जलता हुआ अभी तक जग रहा हूँ। संजय ने कहा है कि "तुम अपने पुत्रों के वश में होकर पाण्डवों के बिना ही सारा राज्य अपने अधीन कर लेना चाहते

हो। राजन्! तुम्हारे द्वारा पृथ्वी पर अधर्म फैलेगा, यह कर्म तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है" ऐसा वचन सुनकर मेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं। मेरे लिए जो कल्याण की बात समझो, वह कहो, तब विदुर जी बोले–

"अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीन साधनम्। हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः।"

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप। कच्चिच्च परवित्तेषु गृहयत्र परितप्यसे।।[1]

जिसका बलवान् के साथ विरोध हो गया है, उस साधन हीन दुर्बल मनुष्य को, कामी को, चोर को रात में जागने का रोग लग जाता है। नरेन्द्र! कहीं पराये धन के लोभ से तो आप कष्ट नहीं पा रहे हैं।

वर्तमान परिस्थितियों में विदुर के वचनों की सार्थकता सिद्ध है क्योंकि मनुष्य केवल दूसरों के धन के लोभ में शान्ति को प्राप्त नहीं कर रहा है अपने हिस्से के धन से उसका पेट नहीं भरता और उचित या अनुचित किसी भी मार्ग से वह दूसरों के धन के लोभ में विचरण करता रहता है। रिश्वतखोरी, चोरी, डकैती, किसी भी फाइल का पैसे के बिना न खिसकना आदि इसी लोभ का परिणाम है।

आगे वे पण्डित होने के लक्षण बताते हुए कहते हैं–"अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, उद्योग, दुख सहने की शक्ति और धर्म में स्थिरता–ये गुण जिस मनुष्य को पुरुषार्थ से च्युत नहीं करते, वहीं पण्डित कहलाता है। जो अच्छे कर्मों का सेवन करता है और बुरे कामों से दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके ये सद्‌गुण पण्डित होने के लक्षण हैं। दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहले से किये हुए विचार को नहीं जानते, बल्कि काम पूरा होने पर जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है। सर्दी–गर्मी, भय–अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता–ये जिसके कार्य में विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है। पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं। उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करने वालों में दोष नहीं निकालते। जो अपना आदर होने पर हर्ष के मारे फूल नहीं उठता, अनादर से संतप्त नहीं होता तथा गंगा जी के कुण्ड के समान जिसके चित्त को क्षोभ नहीं होता, वहीं पण्डित कहलाता है।"[2] वास्तव में पण्डित होने के लिए विदुर जी के उपदेशों को हृदयसात करना है, वर्तमान में मनुष्य स्वयं को विद्वान व पण्डित समझता है। उसको इन उपदेशों पर स्वयं को परखना चाहिए तभी उसको यह ज्ञात होगा कि वास्तव में वह पण्डित की पंक्ति में आता है या नहीं।

"अश्रुतच्श्च समुन्नद्धो दरिद्रच्श्च महामनाः, अर्थाच्श्चकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते वुधेः।"[3]

अर्थात बिना पढ़े ही गर्व करने वाले, दरिद्र होकर भी बड़े–बड़े मनसूबे बाँधने वाले और बिना काम किये ही धन पाने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को पण्डित लोग मूर्ख कहते हैं। पण्डित और मूर्ख को परिभाषित करने में विदुर जी के ज्ञान में अत्यन्त गहराई व सत्य के दर्शन होते हैं, वर्तमान में मूर्ख व्यक्ति स्वयं को पण्डित समझकर धन के लोभ में समाज को दूषित कर रहे हैं।

महात्मा विदुर के दर्पण में 'क्षमा'-

"एकः क्षमाव्रतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते। यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।"[4]

क्षमाशील पुरुषों में एक ही दोष का आरोप होता है, दूसरे की सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्य को लोग असमर्थ समझ लेते हैं। क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थों का भूषण है, इस जगत में क्षमा वशीकरण रूप है।

भारतीय संस्कृति के संवाहक गुणों की विस्तार से चर्चा करते हुए महात्मा विदुर कहते हैं :

"द्वाविमौ पुरूषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः। प्रभुच्श्च क्षमया युक्तो दरिद्रच्श्च प्रदानवान।।"[5]

अर्थात राजन्! ये दो प्रकार के पुरुष स्वर्ग के भी ऊपर स्थान पाते हैं। शक्तिशाली होने पर क्षमा करने वाला और निर्धन होने पर भी दान देने वाला।

महाराज! इन्द्र के पूछने पर उनसे बृहस्पति जी ने जिन चारों को तत्काल फल देने वाला बताया था, उन्हें आप मुझसे सुनिये-

'देवताओं का संकल्प, बुद्धिमानों का प्रभाव, विद्वानों का प्रभाव और पापियों का विनाश।'

पाँच ज्ञानेन्द्रियों वाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय छिद्र (दोष) युक्त हो जाये तो उससे उसकी बुद्धि इसी प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशक के छेद से पानी। निम्नांकित छः प्रकार के मनुष्य छः प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं, सातवें की उपलब्धि नहीं होती।

चोर	-	असावधान पुरुष से,
वैद्य	-	रोगी से
मतवाली स्त्रियाँ	-	कामियों से,
पुरोहित	-	यजमानों से,
राजा	-	झगड़ने वालों से
विद्वान	-	मूर्खों से[6]

विदुर वचन और भारतीय संस्कृति का समागम -

विदुर जी अपने उपदेशों में कहते हैं-बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय निग्रह, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता-ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

जो विद्वान (आँख, कान आदि) नौ दरवाजे वाले, तीन (वात पित्त तथा कफ रूपी) खंभों वाले, पाँच (ज्ञानेन्द्रिय रूप) साक्षी वाले, आत्मा के निवास स्थान इस शरीर रूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

द्वितीय अध्याय में विदुर जी कहते है-"असत उपायों-का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगायें। इसी प्रकार अच्छे उपायों का उपयोग करके सावधानी से किया गया कोई कर्म आदि सफल न हो तो बुद्धिमान पुरुष को उसके लिए मन में ग्लानि नहीं करनी चाहिए।"[7]

"यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये। कोशे जनपदे दण्डे न स राण्येऽवतिष्ठते।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितत्यमसाम्प्रतम्। श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपनिवोत्तमम्।"

अर्थात जो राजा स्थिति लाभ, हानि, खजाना, देश तथा दण्ड आदि की मात्रा को नहीं जानता, वह राज्य स्थित नहीं रह सकता। 'अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया'-ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिए। उदण्डता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे सुन्दर रूप को बुढ़ापा।

विदुर जी के वचनों में भारतीय संस्कृति के गुण दया, प्रेम, सहानुभूति, क्षमा, त्याग सभी का मिश्रण देखने को मिलता है। वे राजा के कार्य बताते हुए कहते हैं कि-राजा को अपनी प्रजा को कष्ट दिये बिना ही धन लेना चाहिए, जिस प्रकार माली बाग से फूल तोड़ता है परन्तु जड़ को लगातार सींचता है, उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

प्रजाप्रिय राजा के विषय में विदुर जी कहते हैं -

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारूहः। अपक्कः पंसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्॥

चक्षुसा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्। प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥[9]

अभिप्राय यह है कि राजा वृक्ष की भाँति होता है यदि वह अच्छी तरह फूलने पर भी फल न दे या फिर अत्यन्त ऊँचाई पर फल लगे और उस पर चढ़कर उन्हें प्राप्त करना दुरूह हो। ऐसा वृक्ष रूपी राजा प्रजा के लिए हितकर नहीं होता। जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म इन चारों से प्रजा की सेवा करता है वही प्रजा का प्रिय होता है तथा सत्य और प्रेम का साम्राज्य व्याप्त होता है। भारतीय संस्कृति ऐसे ही साम्राज्य की आधारशिला रखती है।

संस्कृति से अभिप्राय मात्र भाषा, खान-पान, लोक व्यवहार, रिवाज आदि ही नहीं है अपितु हमारे जीवन मूल्य, आदर सत्कार, संयुक्त परिवार, अतिथि सत्कार, परोपकार, विश्वबन्धुत्व की भावना, भाईचारा, प्रेम, करुणा इत्यादि हैं। महात्मा विदुर अनी वाणी से भारतीय संस्कृति के गुणों की गंगा को प्रवाहित कर रहे हैं। संस्कृति का लक्ष्य आत्मा का उत्थान है, यह मानव की जीवन शक्ति है। संस्कृति वास्तव में स्वतंत्रता की वास्तविक प्रतिष्ठा है। राष्ट्र का अस्तित्व संस्कृति द्वारा निर्मित होता है। संस्कृति के उदय और अस्त, उत्थान और पतन पर राष्ट्र का विकास आधारित होता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं -

1. धर्म
2. दर्शन
3. इतिहास
4. वर्ण
5. रीति-रिवाज

हमारी संस्कृति सम्पूर्ण जगत की संस्कृति है। आनन्द व परमानन्द की संस्कृति है। मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति से मानव मन अपने जीवन में परमानन्द में यात्रा करता है-न कि रेल, वायुयान, रेडियो, कार आदि साधनों से। जीवन को आनन्द प्रदान करने का खजाना भारत वर्ष में ही है। अनन्त ज्ञान की इन मणियों को पहचानने की सामर्थ्य और किसी में नहीं। कोरोना महामारी के समय भारतीय योग ज्ञान ने विश्व में प्राचीन दर्शन का ज्ञान कराया। यह योग हमारी संस्कृति की पहचान है। प्राचीन काल से कवियों और ऋषि-मुनियों ने योग की महत्ता ही नहीं बतायी अपितु मानव शरीर में छः चक्रों व कुंडलिनी शक्ति के माध्यम से आनन्द प्राप्ति के मार्ग दिखाये परन्तु पश्चिम के आधुनिकीकरण की दौड़ में मानव इनसे दूर होने लगा, कोरोना महामारी ने भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को योग, अध्यात्म के आगे घुटने टेकने को मजबूर कर दिया, परिणामस्वरूप पुनः हम अपने दर्शन के निकट पहुँचे।

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को इसी संस्कृति से समागम कराते हैं तथा मोह-लोभ छोड़कर क्षमा व विश्वबन्धुत्व की शिक्षा देते हैं, जो हमारी संस्कृति की धरोहर है। वे कहते हैं -

''राजन! मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वश में करके सावधान रहने वाला चतुर और बुद्धिमान पुरुष काबू में किये हुए घोड़ों से रथ की भाँति सुखपूर्वक यात्रा करता है।''[10] अतः मन, बुद्धि और इन्द्रियों को नियंत्रित रखें।

आगे विदुर जी उदाहरण देते हुए समझाते हैं -

ईंधन से आग की, नदियों से समुद्र की, प्राणियों से मृत्यु की, पुरुषों से कुलटा स्त्री की कभी तृप्ति नहीं होती है। अतः विवेक का प्रयोग कर निर्णय लेना चाहिए तभी आप सच्चे धर्मात्मा, राजा, व मानव मात्र हो सकते हैं।

निष्कर्ष -

महात्मा विदुर आठवें अध्याय में राजा धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं -

''इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि, पुण्यं पदं तात महाविशिष्ट्म।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्म जह्याज्जीवितस्यापि हे तो:
नित्यों धर्मः सुख दु:खे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः
व्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये, संतुश्य त्व ंतोषपरों हि लाभः॥[11]

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक परिस्थिति में धर्म का पालन करें, कामना से, भय से, लोभ से, कभी भी धर्म का मार्ग न छोड़ें, धर्म नित्य है सुख-दु:ख, राज्य आदि अनित्य। अतः हे भरतश्रेष्ठ! धर्म का मार्ग अपनायें तभी आपको शान्ति प्राप्त होगी। आगे वे समझाते हैं कि यह जीवात्मा एक नदी के समान है, इसमें दया की लहरों में मनुष्य को विचरण करना चाहिए क्योंकि परमात्मा से इस जीवात्मा का उद्गम हुआ है अतः धैर्य से, प्रेम से, दया से, क्षमा से, परोपकार से इसी जीवात्मा रूपी नदी में स्नान करना चाहिए।

उपरोक्त वर्णित भारतीय संस्कृति की जो झाँकी विदुर जी ने अपने उपदेशों के माध्यम से इस संसार को प्रदान की है वह अमूल्य है। सच्ची जीवात्मा ही इस ज्ञान का प्रसार कर सकती है वास्तव में विदुर जैसे महात्मा, भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व हैं तथा उनके उपदेश ऐसी श्वासें हैं जिसमें मानव को सच्चा जीवन मिलता है, सच्चे आनन्द की प्राप्ति होती है तथा भारतीय संस्कृति के प्रत्येक प्रतिबिम्ब की झलक विश्व में गुंजायमान होती है।

वास्तविकता यह है कि विदुर जी के उपदेशों को पुरातन समय से समझा नहीं गया, परिणामस्वरूप महाभारत! विनाश! संग्राम।

अतः अब पुरातन काल से प्रेरणा लेकर वर्तमान में हिंसा, अनीति, महामारी, डकैती, रिश्वत, एकल परिवार, टूटता घर संसार आदि को संयमित व अनुशासित करने के लिए महात्मा विदुर जी के उपदेशों में अवगाहन करना है तभी एक आनन्दमय जीवन मानव को प्राप्त होगा।

संदर्भ :

1. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 03
2. संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, संपादक- जयदयाल गोयन्दका, संवत 2077, पृष्ठ संख्या 562
3. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 08
4. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 11
5. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 12
6. संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, संपादक-जयदयाल गोयन्दका, संवत 2077, पृष्ठ संख्या 565
7. संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, संपादक-जयदयाल गोयन्दका, संवत 2077, पृष्ठ संख्या 567
8. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 30
9. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 32
10. संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, संपादक-जयदयाल गोयन्दका, संवत 2077, पृष्ठ संख्या 569
11. विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व) आठवां अध्यायय, प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2059, पृ. सं. 123
12. हिन्दू संस्कृति-अंक चौबीसवें वर्ष का विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2077
13. संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खण्ड) प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर, संपादक-जयदयाल गोयन्दका, संवत 2077
14. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक-शारदा मन्दिर, वाराणासी, सप्तम संस्करण 1965
15. पत्र-पत्रिकायें

❑❑❑

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर, फोन : 9411952298

ई-मेल : dr.anju2479@rediffmail.com

साहित्य में व्यंग्य

—प्रो. (डॉ.) अनुसुइया अग्रवाल
—दीप्ति ठाकुर

वर्तमान में समाज के सभी विभागों में भ्रष्टाचार अपनी पैंठ बना चुकी है। सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। समाज में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा धार्मिक क्षेत्रों के सभी विभागों में फैले भ्रष्टाचार के फलस्वरूप मानवों में दयाभाव, नैतिकता, मानवता का धीरे-धीरे पतन हो रहा है। मनुष्य की ऐसी मानसिक विकृतियों को देखकर मन रो उठता है, तभी व्यंग्य रूपी पौधा सिंचित होकर बढ़ता है। व्यंग्य के विषय को सिर्फ हंसी-मजाक न समझा जाए यह गंभीर विषय भी होता है।

व्यंग्य का अर्थ है कटाक्ष करना, ताना, कसना। दूसरे शब्दों में व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति अथवा रचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अथवा समाज की विसंगतियों और विडंबनाओं अथवा उसके किसी पहलू को रोचक तथा हास्यपद तरीके से प्रस्तुत किया जाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''व्यंग्य वह है, जहाँ अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बनाना हो जाता है।''[1]

हरिशंकर परसाई ने व्यक्ति व समाज में उपस्थित विसंगतियों को लोगों के सामने लाने में व्यंग्य को सहायक माना है, उनके अनुसार ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।''[2]

व्यंग्य एक नश्तर की तरह कार्य करता है। जैसे शरीर के अंदर कोई अवांछनीय वस्तु चली गई हो तथा विकृति आ गई हो तो उसे शरीर से बाहर निकाल फेंकने के लिए नश्तर की आवश्यकता पड़ती है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नश्तर की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार समाज के स्वास्थ्य के लिए व्यंग्य आवश्यक है।

तलवार की धार या बंदूक की गोली से तो किसी को भी मारना आसान है किन्तु यदि निशाना चूक जाए तो वार बेकार हो जाता है। लेकिन मुखबाज से किया गया वार अचूक होता है। समाज में जैसी-जैसी विकृतियाँ आती गईं वैसे ही वैसे उसका इलाज भी आता गया है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कई समाज सुधारकों एवं संतों ने भी अपना संपूर्ण योगदान दिया, लेकिन फिर भी यह भ्रष्टाचार एक लाईलाज बीमारी की तरह ही हमारे समाज को खोखला कर रही है। समाज में ही समाज के कुछ बुद्धिजीवियों के व्यंग्य बाण के द्वारा समाज की विसंगतियों पर कटाक्ष किया जाता रहा है ताकि अप्रत्यक्ष रूप से किए गए वार से समाज में कुछ बदलाव आ सके, सुधार आ सके।

साहित्य की सभी विधाओं जैसे-कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रिपोर्ताज आदि की तरह ही व्यंग्य विधा भी अपना क्षेत्र बढ़ा रहा है। समाज की अव्यवस्था, अनैतिकता, संवेदनहीनता मुख्य रूप से भ्रष्टाचार ही इस विधा की जनक है।

वर्तमान में समाज के सभी विभागों में भ्रष्टाचार अपनी पैंठ बना चुकी है। सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। समाज में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा धार्मिक क्षेत्रों के सभी विभागों में फैले भ्रष्टाचार के फलस्वरूप मानवों में दयाभाव, नैतिकता, मानवता का धीरे-धीरे पतन हो रहा है। मनुष्य की ऐसी मानसिक विकृतियों को देखकर मन रो उठता है, तभी व्यंग्य रूपी पौधा सिंचित होकर बढ़ता है। व्यंग्य के विषय को सिर्फ हंसी-मजाक न समझा जाए यह गंभीर विषय भी होता है।

यदि विचार किया जाए तो प्राचीनकाल से ही व्यंग्य का पल्लवन प्रारंभ हो चुका था। आदिकाल में खुसरो की पहेलियों में व्यंग्य कविताओं तथा व्यंग्य दोहों के द्वारा नैतिक तथ्यों को समझाया जाता है। भक्तिकाल के सबसे प्रमुख समाज सुधारक संत शिरोमणी कबीरदास से कौन अनभिज्ञ है? कबीर के साहित्य में समाज की कुरीतियों, असंगतियों, अनैतिक कार्यों, धार्मिक मतभेद व अस्पृश्यता पर व्यंग्य बाणों के द्वारा करारा प्रहार किया गया है। कबीर सत्य, अहिंसा के पुजारी थे, वे मूर्तिपूजा, आडम्बर के विरोधी थे, केवल सत्कर्म और भाईचारा की विचारधारा का संदेश देते रहे। इनके विचारों को साखी, सबद, रमैनी में इनके शिष्य धर्मदास ने संजोया था। कबीर पंथ में भी इन्हीं की विचारधारा है। पथभ्रष्ट को मार्ग पर लाने के लिए उन्होंने दोहे बनाए यथा -

1. ''अपनी देखि करत नहिं अहमक, कहत हमारे बड़न किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया॥
बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल। जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल॥''[3]
2. ''है कोई गुरूज्ञानी जगत महँ उलटि बेद बुझै। पनी महँ पावक बरै, अंधहि आँखिन्ह सूझै।''[4]

सदाचार की शिक्षा -

3. ''बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥''[5]

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी ने भी जयपुर के राजा जयसिंह को एक दोहा लिखकर भिजवाया, जब राजा जयसिंह राजकाज से विरक्त हो अपनी नवविवाहिता रानी के प्रेम में महल के बाहर ही नहीं आ रहे थे। वह इस प्रकार है :-

''नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास इहिकाल।
अली कली ही सो बिंध्यों, आगे कौन हवाल॥''[6]

आधुनिक काल में तो अनेक विधाओं की रचनाएँ की गई थीं यह काल साहित्यिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ युग माना जाता है। कवियों, साहित्यकारों द्वारा लिखी गई व्यंग्य विधा की रचनाएँ इतनी अधिक हैं कि इनके उदाहरण देना गागर में सागर भरने जैसा कार्य प्रतीत होता है। भारतेन्दु युग में सितारे हिन्द की प्रमुख व्यंग्य पुस्तक ''आलसियों का कीड़ा'' इत्यादि द्विवेदी युग में व्यंग्य काव्य और गति दे रही थी। छायावाद के चारों मुख्य कवि तथा कवियत्री ने भी समाज सुधार कार्य हेतु रचनाएँ कीं। निराला ने तो पूँजीपतियों, भ्रष्टाचारियों पर तो काव्य तथा साहित्य के द्वारा करारा प्रहार किया ही है समाज में फैली कुरीतियों पर शब्द बाणों से दण्ड रूपी आघात भी किया है। निराला ने अपनी कविता ''कुकुरमुत्ते'' में शोषक वर्ग को खूब धिक्कारा है तथा शोषित वर्ग के प्रति दया भाव दिखाया है-

"अबे सुन बे गुलाब, भूल मत जो पायी खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट। डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाम, माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम॥''[7]

प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नई कविता आदि ये सभी साहित्यक युग आते गए जिसमें अनेक प्रसिद्ध कवियों ने समाज में हो रहे अत्याचार, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, संत्रास, कुण्ठा, घुटन एवं दर्द जैसे भावों को कविताओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है-

1. ''अपने यहां संसद- / तेली की वह घानी है / जिसमें आधा तेल है / और आधा पानी है / और यदि यह बचा नहीं है / तो वहां एक ईमानदार आदमी को / अपनी ईमानदारी का / मलाल क्यों है? / जिसने सत्य कह दिया है / उसका बुरा हाल क्यों है?''[8]
2. ''बड़ी से बड़ी कृति यहां तो, / कोई बड़ा ही कीमती इश्तहार है / आदमी कोई आधुनिक बाजार है। / जितना बड़ा आर्टिस्ट जो है / उतना ही बड़ा पत्रकार है।''[9]

उपरोक्त भावों में अनेक कवियों, साहित्यकारों ने समाज में हो रहे अनैतिकता, भ्रष्टाचारों पर व्यंग्य बाणों के द्वारा अपने शब्दों को लेखनी से कागज पर उतारा है। अनेक विषय में बता पाना समुद्र के कण-कण को गिनने के समान कार्य हो चला है, लेकिन समाज सुधार हेतु हमारे कवियों, साहित्यकारों का योगदान अवर्णनीय हैं।

अंत में यही कह सकते हैं कि मनुष्य में संवेदना होगी ही तो सही गलत का ज्ञान उचित-अनुचित होने पर पीड़ा होना एक सहज प्रवृत्ति है, लेकिन निःस्वार्थ भाव परहित-परोपकार, दया-भाव, मनुष्यता की भावना लेकर हमें समाज में एकरूपता, सदाचार, नैतिकता, न्यायप्रियता, एकता और अखण्डता के लिए हमेशा तत्पर होना चाहिए कि वह समाज के हित के प्रति जागरूक रहे। समाज की पीड़ा व्यथा को समझे। सहयोग की भावना रखे, स्वयं तथा समाज के सुधार हेतु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से योगदान देते रहें, चाहे अपनी लेखनी के सार्थक, परहित, व्यंग्य बाणों के द्वारा अथवा प्रत्यक्ष रूप से स्वयं को समाज कल्याण हेतु एक सच्चा नागरिक बनकर, समर्पित होकर। जय हिन्द!

संदर्भ :

1. सोशल मीडिया i - Publisher
2. सोशल मीडिया, द वायर
3. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.क्र. - 51
4. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.क्र. - 51
5. मिश्रा मनोज कुमार, हिन्दी साहित्य का सरल एवं संक्षिप्त इतिहास पृ. क्र. -47
6. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.सं. - 168
7. 'निराला' त्रिपाठी सूर्यकांत, आधुनिक कवि लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.क्र. -95
8. 'धूमिल' पांडे सुदामा, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.क्र. - 293
9. सिंह शमशेर बहादुर, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.क्र. - 184

❑❑❑

1. शोध-निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी), शा.म.व. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महासमुन्द (छ.ग.)
2. शोधार्थी, शा.म.व. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महासमुन्द (छ.ग.)

मानव समाज को सामाजिक समरसता का पाठ पढ़ाता नीलकंठ

—गिरजेश कुमार

नीलकंठ और राधा के मानवीकरण के माध्यम से नायक-नायिका, प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी आदि भावों को भी व्यक्त किया जा सकता है और उनमें शृंगारिकता की स्थिति को साफ देखा जा सकता है तथा शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, जिस प्रकार नीलकंठ और राधा नृत्य करते समय एक दूसरे के बायीं ओर और दायीं ओर से निकलकर अपने प्रेम को व्यक्त कर रहे हैं ठीक उसी प्रकार का भाव नायक-नायिका या प्रेमी-प्रेमिका में भी देखा जा सकता है।

नीलकंठ महादेवी वर्मा द्वारा रचित एक प्रसिद्ध रेखाचित्र है जो उनके रेखांचित संग्रह मेरा परिवार 1972 में संकलित है। इस संग्रह में महादेवी वर्मा जी ने विभिन्न पशु और पक्षियों को आधार बनाया, जैसे गौरा (गाय), गिल्लू (गिलहरी), सोना (हिरनी), दुर्मुख (खरगोश), नीलू (कुत्ता), निक्की (नेवला), रोजी (कुतिया), रानी (घोड़ी)। गौर करने वाली बात है कि महादेवी वर्मा का लेखन कार्य उस दौर में हो रहा था जब साहित्य के केन्द्र में छायावाद जैसी काव्यधारा अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त करता है, जिससे कल्याण, करुण प्रवणता, अतिशयता प्रकृति आदि को आधार बनाकर लेखन कार्य हो रहा था। प्रकृति का कल्पनामयी वर्णन तो इस छायावाद की प्रमुख विशेषता बनकर हमारे सामने उजागर होती है। इसीलिये रामकुमार वर्मा ने इसे प्रकृतिवाद तक की संज्ञा दिया है। इसी दौर में महादेवी वर्मा का भी लेखन कार्य हो रहा था। जब तक ये छायावाद के भीतर रहकर लेखन कार्य करती रहीं तब तक तो इनके साहित्य में दर्शन और रहस्यवाद की प्रधानता देखने को मिलती है। लेकिन जैसे ही छायावाद के उत्तरवर्ती समय में आती हैं तो महादेवी वर्मा जी काव्य से हटकर मानवेतर साहित्य को आधार बनाकर लेखन कार्य शुरू करती हैं और यह मानवेतर साहित्य एक लम्बी अवधि तक देखने को मिलता है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या महादेवी वर्मा के मन में यह मानवेतर साहित्य लिखने की प्रेरणा एकाएक आ गई, तो ऐसा नहीं, उनका मानवेतर जगत से लगाव बचपन से ही परिलक्षित होता है। जब वे क्रास्थवेट कॉलेज में पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थीं और वहीं बगीचे में आम की डाल पर बैठकर घण्टों मानव से इतर पशु पक्षियों को देखती रहतीं और यही विचार आगे चलकर इनके रेखाचित्रों में देखने को मिलता है। कहने के लिये तो महादेवी वर्मा अपने रेखाचित्रों में पशु-पक्षियों का वर्णन करती

हैं पर उन्हें पशु, पक्षी न कहकर मनुष्य और मानव समाज का आवरण या प्रतीकात्मक रूप कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी जो हमें और हमारे मानव समाज को भिन्न-भिन्न रूप से शिक्षित करने का कार्य करते हैं और हमारी सामाजिकता को दर्शाने का कार्य करते हैं। इसी प्रकार के रेखाचित्रों में एक है नीलकंठ जो एक मोर है और इसके साथ एक मोरनी है जिसे राधा नाम दिया गया है। अब जहाँ राधा और नीलकंठ मानवेतर है वहीं दूसरी ओर मानव जगत से भी जुड़े हैं।

मानव जगत में इन्हें प्रेमी-प्रमिका, नायक-नायिका के रूप में संबोधित किया जाये तो अनुचित न होगा।

इसमें महादेवी वर्मा ने नखासकोने नामक स्थान के माध्यम से मनुष्य के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दृष्टिकोणों को उजागर किया, पर हमें समाज को किस दृष्टिकोण से देखना है यह समाज पर नहीं हमारी दृष्टिकोण पर निर्भर है।

''पर नखासकोने के प्रति मेरे आकर्षण का कारण उपयुक्त विशेषतायें नहीं हैं वस्तुत: मेरे खरगोश, कबूतर, मोर, चकोर आदि जीव जन्तुओं की कारागार भी है।''[1]

नखासकोना वह स्थान है जहाँ एक ओर मत्स्य क्रय केन्द्र है, तेल फुलैल की दुकानें हैं, जिसमें दुर्गन्ध और सुगंध की समरसता है, वहीं दूसरी ओर जीव जंतु तथा उन पर अत्याचार करने वाले जेलर हैं।

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से हम महादेवी वर्मा के पशु पक्षी के प्रति संवेदनात्मक भाव को देख सकते हैं, फिर ऐसा क्यों है कि हम मानव होकर भी एक दूसरे के प्रति संवेदनहीन होते जा रहे हैं। महादेवी जी समाज को यह संदेश भी देना चाहती हैं कि समाज में हर व्यक्ति एक दूसरे के प्रति अजनबी बनता जा रहा है, एक दूसरे के दु:ख दर्दों से कोई लेना-देना नहीं है जिसे निम्न पंक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है-

''इन जीवों के कत्ल निवारण का कोई ख्याल न सूझ पाने पर भी किसी पिंजरे में पानी न देखकर उसमें पानी रखवा देती, दाने का अभाव हो तो दाना डलवा देती।''[2]

इन पंक्तियों में जीव और पिंजरे की जो बात की गई है वह केवल पक्षी के लिये ही नहीं बल्कि मानव समाज के लिये भी है। मानव समाज में पिंजरे का आशय आधुनिकता का मायाजाल है जिसमें मनुष्य एक दूसरे को पछाड़कर आगे निकलना चाहता है और जीव का प्रयोग उस आधुनिकता रूपी मायाजाल में फँसे प्राणी के लिये है जिसका कोई सहयोगी नहीं है, जिस प्रकार पिंजरे में पक्षी, सावक गोल फ्रेम में कसे-जड़े चित्र जैसे लग रहे थे ठीक उसी प्रकार वर्तमान समय का मानव भी दिखाई पड़ता है।

महादेवी वर्मा जी यह भी बताने का प्रयास करती हैं कि जब परिवार में कोई नया सदस्य आता है तो उसे कुछ दिनों तक अजीब लगता है, जिस प्रकार एक नई नवेली दुल्हन अपना घर परिवार छोड़कर आती है तो उसे ससुराल में कुछ समय तक अजनबीपन का भाव लगता है। इस उदाहरण को निम्न पंक्तियों के माध्यम से दर्शाया गया है-

''दो चार दिन वे इसी प्रकार इधर-उधर गुप्त बात करते और रात में रद्दी की टोकरी में प्रकट होते रहे फिर आश्वस्त हो जाने पर कभी मेज पर, कुर्सी पर और कभी मेरे सिर पर आविर्भाव होने लगे।''[3]

लेकिन जैसे-जैसे घर परिवार का माहौल समझ में आने लगता है तो नया आने वाला सदस्य भी इस परिवार में घुल मिल जाता है और वह उसे अपने घर परिवार जैसा प्रतीत होने लगता है-

''मुझे स्वयं ज्ञान नहीं कि नीलकंठ ने अपने आपको चिड़ियों/घर के निवासियों का सेनापति और संरक्षक नियुक्त कर लिया।[4]

जैसे ही कोई व्यक्ति किसी परिवार में घुल-मिल जाता है तो वह परिवार के सुख, दुःख को अपना समझने लगता है और उसे दूर करने का प्रयास भी करता है। समस्या चाहे परिवार के जिस व्यक्ति पर हो वह उसे अपनी समस्या समझने लगता है और हरसंभव मदद करता है। इस प्रसंग को भी मोर नीलकंठ के माध्यम से समझा जा सकता है।

''उसी के चौकन्ने कानों ने उस मंद स्वर की व्यथा पहचानी और वह पूँछ पंख समेट कर सर्र से एक छपट्टे में नीचे आ गया और चोच से साँप के फन पर इतने प्रहार किया कि वह अधमरा हो गया।''[5]

महादेवी जी ने नीलकंठ के माध्यम से मानव समाज को यह भी सामाजिक संदेश देना चाहा है कि मनुष्य कितना भी बलवान, धनवान क्यों न हो पर उसे अपने बल और धन का प्रयोग दूसरों के हित के लिए करना चाहिए न कि उन्हें परेशान करने के लिए और न ही उनका शोषण करने के लिए, यदि ऐसा है तो उन्हें क्रूर और हिंसावादियों में रखा जायेगा, लेकिन मानव को वीर होने के साथ-साथ कलाप्रिय होना चाहिए जिससे उन्हें क्रूरता की श्रेणी में न रखा जाये। इस प्रसंग को रेखांकित करते हुए महादेवी जी लिखती हैं-

''मयूर कलाप्रिय वीर पक्षी है हिंसक मात्र नहीं इसी से उसे चील आदि की श्रेणी में नहीं रखा जाता है जिनका जीवन ही क्रूर कर्म है।''[6]

इन पंक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है कि कैसे महादेवी वर्मा जी मानव समाज को सामाजिक समरसता स्थापित करने का संदेश नीलकंठ नामक मोर के माध्यम से दे रही हैं और मयूर को पक्षी के रूप में न चित्रित करके उसका मानवीकरण कर रही है। इतना ही नहीं उसके माध्यम से यह भी बताना चाहती हैं कि हमारा मानव समाज दिनों दिन निर्मम और निर्दयी होता जा रहा है जो पशु पक्षियों की तो क्या कहें एक दूसरे मानव मन को नहीं पहचान रहा है। जीवन की इस आपाधापी में वह कब अन्य से अलग निकल गया कि उसे दूसरों की परवाह ही नहीं रह गयी, जबकि हम इंसानों से अच्छे तो मानवेतर ही हैं जिनके पास जुबान नहीं है फिर भी वे पशु पक्षियों के साथ-साथ मानव समाज से भी जुड़े रहते हैं और उनका मनोरंजन करते हैं, इस पूरे प्रकरण को निम्न पंक्तियों में दर्शाया गया है-

''नीलकंठ ने कैसे समझ लिया कि उसका नृत्य मुझे बहुत भाता है यह तो नहीं बताया जा सकता।''[7]

नीलकंठ और राधा के मानवीकरण के माध्यम से नायक–नायिका, प्रेमी–प्रेमिका, पति–पत्नी आदि भावों को भी व्यक्त किया जा सकता है और उनमें शृंगारिकता की स्थिति को साफ देखा जा सकता है तथा शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, जिस प्रकार नीलकंठ और राधा नृत्य करते समय एक दूसरे के बायीं ओर और दायीं ओर से निकलकर अपने प्रेम को व्यक्त कर रहे हैं ठीक उसी प्रकार का भाव नायक–नायिका या प्रेमी–प्रेमिका में भी देखा जा सकता है। वही उपालम्भ के अलावा करुण भाव को दर्शाया गया है। कभी–कभी जब नीलकंठ को पहले छोड़ दिया जाता और राधा को कुछ देर बाद तब ऐसी स्थिति में नीलकंठ उपालम्भ भाव से खड़ा रहता है। ठीक उसी प्रकार का भाव नायक–नायिका में भी देखने को मिलता है। बिहारी ने तो न जाने कितने दोहे ही इस दशा को आधार बनाकर लिख डाले।

उपालम्भ के अलावा करुण भाव को भी दर्शाया गया है। जब नीलकंठ की मृत्यु हो जाती है तो उसकी मृत्यु से ''राधा निस्चेष्ट सी कई दिन कोने में बैठी रही और प्रतीक्षा के भाव से द्वार पर दृष्टि लगाये रहती।''[8]

इन पंक्तियों को पढ़कर कौन कहेगा कि इसका सम्बन्ध केवल मानवेतर ही है बल्कि यह तो हमें मानव समाज से जोड़ रहा है और नीलकंठ केवल मोर न होकर मानव समाज के हर व्यक्ति का रूपान्तरण दिखाई देता है और राधा केवल मयूरी (मोरनी) न होकर समस्त नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। राधा का विरह भाव केवल एक पक्षी की विरह–वेदना नहीं है बल्कि पूरी नारी समाज की विरह की सूचक है जो अपने पति, प्रेमी की मृत्यु से व्यथित है। राधा और नीलकंठ के माध्यम से महादेवी वर्मा अपने स्त्री और पुरुष विषयक विचारों को समाज के सामने स्थापित करती हैं। जिसमें यह कहा जा सकता है कि स्त्री और पुरुष की पूर्णता एक दूसरे के साथ रहकर ही है, एक दूसरे से अलग रहकर नहीं।

नीलकंठ और राधा के अलावा एक कुब्जा नाम की मयूरी भी है जिसका मानवीयकरण किया गया, जिसके माध्यम महादेवी वर्मा ने अपने प्रेम से सम्बन्धित विचारों को उजागर किया कि प्रेम हृदय से पाया जाता है जबरदस्ती से नहीं और अगर दो के बीच तीसरे का आगमन होता है तो कहीं न कहीं उन दोनों के आपसी सम्बन्धों में बिखराव आता है और पारिवारिक विघटन तथा प्रेम में त्रिशंकु की स्थिति भी पैदा हो जाती है। कुब्जा के माध्यम से इसे देखा जा सकता है–

''अब तक नीलकंठ और राधा साथ रहते थे पर कुब्जा उन्हें साथ देखते ही मारने दौड़ती, चोंच से मार–मार कर उसने राधा की कलगी और पंख नोच डाले।''[9]

इतना ही नहीं–कठिनाई यह थी कि नीलकंठ उससे दूर भागता था और वह उसके साथ रहना चाहती थी वह किसी को नीलकंठ के समीप भी नहीं आने देना चाहती थी।''[10]

इन पंक्तियों में छिपे मर्म को उजागर किया जाये तो देखने को मिलता है कि प्रेम एक ऐसा भाव है जो समर्पण माँगता है। जिस प्रेम में समर्पण का भाव है वही अच्छा है। अगर प्रेम में दबाव, जोर जबरदस्ती है तो वह प्रेम नहीं घुटन बनकर रह जायेगा।

कृष्णा की यह जबरदस्ती नीलकंठ के लिए घुटन ही है। जहाँ वह घुटन महसूस करता है वही दूसरी ओर राधा से दूर होने का डर भी है। प्रेम का यह स्वरूप मानव समाज में बहुतायत मात्रा में दिखायी देता है। महादेवी वर्मा जी प्रेम के जिस स्वरूप को मानव समाज में दर्शा रही हैं उसमें राधा, कुब्जा जैसे मानवेतर पात्र तो एक बहाना मात्र ही हैं।

कुब्जा के माध्यम से महादेवी वर्मा जी ने परिवार की स्त्रियों और उनके आपसी ईर्ष्या, द्वेष, कलह जैसी भावनाओं को उजागर करने का कार्य किया है। इतना ही नहीं एक दूसरे के संतानों के प्रति ईर्ष्या का भाव भी दर्शाया है। जिसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

''उसी बीच राधा ने दो अण्डे दिये जिनको वह पंखों में छिपाये बैठी रहती है। पता चलते ही कुब्जा ने चोंच मार–मार कर राधा को धकेल दिया और फिर अण्डे फोड़कर ठूँठ जैसे पैरों से छितरा दिया''[11]

इस पंक्ति में एक निर्मम और ममत्वहीन नारी को भी देखा जा सकता है जो दूसरों की संतानों को देखकर सुख के स्थान पर दुख को प्राप्त करती है और अंदर ही अंदर जलती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा जी ने जिन मानवेतर पात्रों को अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है वे केवल मानवेतर पात्र न होकर मानव समाज का रूपांतरण करते दिखाई देते हैं और उनके माध्यम से मानव समाज की सामाजिक दशा तथा उसके राग–द्वेष, लगाव, प्रेम, ईर्ष्या, कलह आदि भावों को दर्शाया गया है।

सन्दर्भ :

1. महादेवी वर्मा–मेरा परिवार, पृष्ठ संख्या– 21
2. वही, पृष्ठ संख्या– 22
3. वही, पृष्ठ संख्या– 24
4. वही, पृष्ठ संख्या– 25
5. वही, पृष्ठ संख्या– 26
6. वही, पृष्ठ संख्या– 27
7. वही, पृष्ठ संख्या– 27
8. वही, पृष्ठ संख्या– 28
9. वही, पृष्ठ संख्या– 29
10. वही, पृष्ठ संख्या– 29

❑❑❑

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गैरसैण चमोली, उत्तराखण्ड

स्त्री चेतना का सारगर्भित स्वरूप : ममता कालिया का नरक-दर-नरक

—रेणु देवी

एक योग्य और शिक्षित नारी भी समस्याओं का सामना किस प्रकार से करती हैं, इसको पूर्णतः अभिव्यक्ति के साथ लेखिका ने प्रस्तुत किया है। नैतिक नियमों का पालन और अपनी गृहस्थ जिम्मेदारियों का आर्थिक बोझ भी एक विशेष कारण होता है, स्त्री की प्रतिभा और काबिलियत को कुचल डालने का, 'नरक-दर-नरक' इन्हीं समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना है।

पिछले दो दशकों के दौरान स्त्रियाँ हर क्षेत्र में आगे आयी हैं। घर से बाहर निकल उनमें एक नया आत्मविश्वास आया हैं और उन्होंने हर काम को प्रायः एक चुनौती की तरह स्वीकार किया है। क्षेत्र चाहे उद्योगों के प्रबंधक का हो या होटल मैनेजमेंट का, डॉक्टरी इंजीनियरी का चाहे, प्रशासनिक पदों, पुलिस या वकालत का, पत्रकारिता या विज्ञापन का, एजेंसी, डाक-तार रेलवे, बसों कि कंडक्टरी का, बैंक कम्प्यूटरों का और टेक्नॉलाजी, लेखन जैसी कठिन विधाओं तथा ज्ञान विज्ञान के अन्य विभागों में, हर जगह अब महिलाएँ कामकाज करती हुई दिखाई पड़ती हैं।

ममता कालिया की कलम आज के युग की तलवार हैं, जो नारी जीवन के तमाम पहलुओं और उसके संघर्षों को विविधता से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। ''नरक-दर-नरक'' में जिस समस्या का अवलोकन मैंने किया वह है नारी, जिस परंपरा को झेलकर और कुछ बेड़ियों को उतारकर स्त्री ने अपना आगे का मार्ग प्रशस्त किया वह प्रमुख है। परंतु आज के युवाओं का जीवन जिस तरह से बेकारी के दलदल में फँसता जा रहा है, उसको उन्होंने सामाजिक कुरूपता का नवीन रूप देकर उकेरा हैं।

स्त्री-लेखन के वैकल्पिक मानदंडों के निर्माण की जब कोशिशें शुरू की गईं तो उन्हें 'खास' या 'विशिष्ट' या 'स्पेशल केस' के रूप में देखा गया। फलतः स्त्री लेखन हाशिए पर चला गया या 'स्त्री अध्ययन' से 'स्त्री लेखन' को जोड़कर विशेष पाठ्यक्रम बनाकर मुख्य धारा के साहित्य से अलग करके पेश किया गया। साहित्य में व्याप्त इस लिंगभेद को समाप्त करना आवश्यक है।

मूल शब्द-स्त्री, लेखन, उपन्यास, साहित्य, ममता, कालिया, नरक, अस्तित्व, परंपरागत।

भारतीय आदर्शों में रची-बसी सती नारी के स्थान पर उस नारी का चेहरा सामने आया जिसे अपनी महत्ता और अस्मिता पर गर्व था। महिला लेखन पुरुष की बँधी-बँधायी पूर्वाग्रह से संचित

दृष्टि को त्याग कर नारी को व्यक्ति रूप में देखने का पक्षधर है, जहाँ पुरुष सापेक्ष भूमिकाओं की सीमित परिधि से मुक्त होकर एक विशुद्ध नारी के रूप में उसकी पहचान सम्भव हो। वह नारी जिसके मन में अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दुर्बलताओं के प्रति दया का भाव नहीं उपजता, देह संस्कार, संवेदना और विवेक किसी भी स्तर पर वह अपना मूल्यांकन परम्परागत पुरुष निर्मित प्रतिमानों के आधार पर नहीं करती।

'नरक-दर-नरक' को ममता कालिया ने प्रेम विवाह में फंसी एक स्त्री और पुरुष का वह जीवन दिखाया है, जो प्रेम के समय और उस प्रेम को विवाहरूपी बंधन में बँधने के उपरान्त जो अवस्थाएँ होती हैं, उसका बेबाकी से प्रस्तुतीकरण दिया है।

सत्य तो यह है कि किसी भी परिस्थिति में सबसे अधिक स्त्री का जीवन ही बाधित हो जाता है, चाहे व वैयक्तिक हो या सामाजिक प्रेम-विवाह पर जितना आक्षेप और एक लड़की को उस बात की कठिन परश्रिम के साथ यातना भरा जीवन व्यतीत करने का ममता कालिया का 'नरक-दर-नरक' कहता है, वह हकीकत की परिधि को छूकर निकलता है।

स्वतन्त्रयोत्तर हिन्दी कथा जगत में अपनी धारदार कथा साहित्य के माध्यम से विशिष्ट पहचान बनाने वाली कथाकारा है ममता कालिया। समाजिक चेतना से लैस उनके पात्र समकालीन जटिल यथार्थ में अपनी जगह खुद बनाते हैं। यह ऐसी कलमकारा हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न वर्गों की नारी की जिन्दगी का चित्रण किया है। वह नारी जीवन के बहुविधीय पक्षों पर अपनी सूक्ष्म पैनी अन्तदृष्टि डालकर उसकी गहराई को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करने के लिए जानी जाती हैं।

उपन्यास विन्यास की जो अब तक परिभाषा विद्वानों ने दी है, वह काफी हद तक इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है, किन्तु यथार्थ की तस्वीर भी होती है-''उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं के द्वारा मानव के सत्य का रचनात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।''[1]

परिस्थिति चाहे जो भी हो इस उपन्यास के पात्र 'जगन' व 'उषा' जो कि पढ़े-लिखे नौजवान हैं, परन्तु उनके जीवन में बेरोजगारी का जो कठिन सैलाब रहा उसका उपन्यास के कथानक और अंत तक सामाजिक समस्याओं का सारगर्भित स्वरूप नजर आता है। ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में अधिकारों के प्रति सजग, सुशिक्षित स्वाभिमानी, व आत्मनिर्भर पात्रों का चयन तो किया है, पर साथ ही स्त्री की मानसिकता और समाज में उसके दर्जे को भी व्यवस्थित आकार दिया है। समय के साथ ही प्रेम का जो भाव उत्पन्न होता है, वह लड़कियों में अधिक प्रभावी होता है-''उनकी पहचान सिर्फ तीन महीने पुरानी थी। इतनी-सी बिना पर वह अपनी सब नावें जलाकर जगन के साथ चली आई थी।''[2] सफल और असफल प्रेम की दास्तान दोनों का प्रचलित विवेचन ममता के उपन्यास साहित्य में देखने को मिलता है। उषा और जगन ने जिस 'नरक' को भोगा वह बेरोजगारी और माहौल की बदहाली का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

एक योग्य और शिक्षित नारी भी समस्याओं का सामना किस प्रकार से करती हैं, इसको पूर्णत: अभिव्यक्ति के साथ लेखिका ने प्रस्तुत किया है। नैतिक नियमों का पालन और अपनी गृहस्थ जिम्मेदारियों का आर्थिक बोझ भी एक विशेष कारण होता है, स्त्री की प्रतिभा और

काबिलियत को कुचल डालने का, 'नरक-दर-नरक' इन्हीं समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना है। अनेक आलोचकों ने अपनी राय इस रचना के बारे में दी है-''नरक-दर-नरक में यह भी चित्रित है कि मध्यवर्गीय युवकों के सामने धनाभाव के कारण जितनी अधिक कठिनाइयाँ रहती हैं, उतनी ही महत्वकांक्षाएँ भी होती हैं। दोनों में कहीं संगति न होने पर अकसर संतुलन खो जाता है। वह अपने चारों ओर के वातारण से संघर्ष की राह को पकडता है।''

नारी की वर्तमान स्थिति को लेकर आज की लेखिका के मन में असंतोष एवं आक्रोश है। सामाजिक वैषम्य से जन्मी पीड़ा को लेकर छटपटाहट है और मुक्ति की उत्कंठा उसके रोम-रोम में परिव्याप्त है। सुधीश पचौरी का मत था कि ''साहित्य में भी स्त्रीवाद एक ग्लोबल आंदोलन है इसलिए यह लेखन से अधिक एक राजनीतिक संघर्ष है, निर्मल वर्मा ने कहा कि स्त्री संवेदना का होना एक बात है, पर नारीवाद का झंडा उठाए घूमना दूसरी बात।''[3]

केदारनाथ सिंह ने-''दूसरी भाषाओं के महिला लेखकों की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद के खराब स्तर पर दुख प्रकट किया।''[4]

डॉ. चमनलाल ने कहा कि ''जब तक समाज में असमानता है तब तक साहित्य में भी रहेगी।''[5]

हिन्दी की वरिष्ठ लेखिका कृष्णा सोबती ने सदा की तरह स्त्री लेखन शब्द पर एहसान जताते हुए कहा कि-''लेखन एक बड़ा अनुशासन है, इसे महिला लेखन के छोटे चौकटे में कैद नहीं किया जा सकता। महिला लेखन करने से हर कोई हमें दलित समझने लगता है। उन्होंने पूछा, आप यदि लेखक हैं तो मैं महिला लेखक क्यों हूँ, उन्होंने कहा कि हमारी दिलचस्पी शब्द संस्कृति को बचाने से अधिक साहित्य में राजनैतिक करोबार करने में है। कहते हैं साहित्य में रंग, वर्ण, जाति, सम्प्रदाय का भेद नहीं होता।''[6]

पर मैं कहती हूँ जो लिख रहा है उसे वर्षों से अपने संस्कार, इतिहास, परिवेश से जो सोच मिली है, जो मानसिकता मिली है वह सब उसके साहित्य में परिलक्षित होता है। इसलिए वही कथानक जब ममता कालिया के हाथ में आता है तो उसका ट्रीटमेंट बिल्कुल भिन्न होता है। वह समाज की अनकही अनदेखी दास्तान को प्रकट करने में विश्वास करती हैं-''उपन्यास में जगन, उषा के अतिरिक्त प्रेस मालिक मिश्रा तथा विनय गुप्ता का सजीव चरित्र स्पष्ट हुआ है। विनय गुप्ता का अपनी पत्नी से जो व्यवहार है, वह वैसा ही है, जैसा जगन का उषा के प्रति। नरक-दर-नरक संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से अछूती संभावनाओं को उजागर करता है, लेकिन अपने दूसरे सफल उपन्यास के लिए बधाई के पात्र है।''[7]

स्त्री चाहे अनपढ़ हो या शिक्षित उसका दर्जा हमेशा अपने घर में पतिता का परिचायक ही होता है। जिसका खुला रूप इस उपन्यास में ममता कालिया ने प्रस्तुत किया है। यह अनुमोदन वादी साहित्य लेखन रूढ़ियों के आस-पास ही घूमता है, दयनीय विद्रोह का भ्रम देता हुआ। ममता कालिया इस संदर्भ में स्त्री की अपनी भाषा का प्रश्न उठाती हैं-''क्योंकि किसी भी समुदाय का अनुभव जगत उस समुदाय के भाषायी अभ्यास द्वारा ही निर्मित होता है और उसके अभाव में उसे परम्परा से प्राप्त पुरुषों की भाषा में ही अपने अनुभवों को सम्प्रेषित करना पड़ता है। और शायद यही करण है कि प्रचलित वर्चस्ववादी भाषा स्त्री की वाणी नही बन पाती है और बहुत कम लेखिकाएँ स्त्री की निजी भाषा खोजने की चिंता करती है तो वस्तु से व्यक्ति के रूप में पहचान

बनाने को तत्पर स्त्री क्या इस पुरुष सत्तात्मक परिवेश में यह मानने को बाध्य हो जाए कि चिंतन की प्रक्रिया से उसका कोई सरोकार नहीं है, तर्क की भाषा उसे नहीं आती तथा बड़ी राष्ट्रीय, सामाजिक, समस्याओं से निपटने में वह सक्षम नहीं।''[8]

विनय और सीता दोनों दम्पति हैं लेकिन विनय एक बहुत ही शक्की मिजाज का आदमी है, जिसको सभी के आचरण में कुछ खटास नजर आती है–''आज मैंने तुम्हें फोन किया, तुम्हारी प्रिंसिपल ने बताया कि तुम कहीं गई हुई हो।''[9] साधारणत: लेखिका ने यह तथ्य भी उकेरा है कि नारी चाहे जितनी भी सुप्रसिद्ध और बेहतर बन जाए उसके साथ हमेशा ही दुर्व्यवहार होता आया है। 'नरक-दर-नरक' उपन्यास की दृष्टि से ममता कालिया की सार्थक रचना है।

उषा भले ही बचपन से एक बेहद होशियार एवं जिम्मेदार लड़की रहती है, पर प्रेम बिना सोचे-समझे करने के कारण वह अपने जीवन के कठिन मोड़ को भी काफी सहजता से व्यतीत करती है। आर्थिक समस्याओं से अधिकतर नारियों को ही जूझना पड़ता है, इसकी परिणति ममता कालिया ने उपन्यास में की है–''जब इंटरव्यू के लिए उसे बुलावा आया तो उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। उसकी माँ ने कहा कि जब शहर की शहर में निकली जगहों में उसे नहीं लिया गया तो बंबई तक रेल किराया नाहक खर्च करने से क्या फायदा।''[10]

ममता कालिया ने कई विधाओं में अपनी कलम चलायी है इसलिए उनके लिए कथा साहित्य में कथाकारा का नाम देना ही उचित होगा। इसके साथ ही वह अध्यापिका भी हैं। अत्यंत परिश्रमी होने के कारण ही ममता कालिया ने अब तक सफलता को अपने नाम करके रखा हुआ है।

वैवाहिक प्रक्रिया के बीच कुछ संघर्षों को तो झेलना पड़ा किन्तु हार न मानने की प्रवृत्ति ने इन्हें आज नया मुकाम दिलाया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नारी के विषय में जिस प्रकार से ममता कालिया ने विवरण दिया है, उसको संक्षिप्त अध्ययन करने के पश्चात ऐसा प्रतीत हुआ कि ममता कालिया ने अपनी कथा साहित्य प्रमुखत: नारी जीवन की दिनचर्या को विशेषत: प्रस्तुत किया। इसमें वह अपने वजूद को महसूस करती है।

एक सजग इकाई के रूप में वह तमाम यथार्थ स्थितियों से प्रतिकृत होती वर्तमान सामाजिक परिवेश के अन्तर्विरोधों व असंगतियों को स्त्री अस्मिता और मानवीय स्थिति के परिप्रेक्ष्य में जानना-समझना चाहती है, उनका विश्लेषण-विवेचन करने का प्रयास करती हैं।

हालाँकि आज भी और सदियों से यह बात होती आयी है–''स्त्रियों के चरित्र को तो उसका रचयिता भी नहीं समझ पाता, पुरुष का क्या? भारतीय नारी को अधिकार भाव किसने सिखाया? स्वतंत्रता संग्राम में अधिकार घोष किसने किया? पुरुष से आज की स्वतन्त्र नारी कहती है कि वह जीवन की कर्मस्थली में पुरुष की सहकर्मी भार्या हैं। वह भी जीवन भर पुरुष वह नीतियाँ बना रहा है, जो कि पुरुष हित में है। वे पुरुष प्रधानता को पोषित करती हैं। वह स्वार्थवश नारी को दबाकर रखना चाहता है।''[11]

निष्कर्ष–अपने शोध पत्र में 'नरक-दर-नरक' नामक उपन्यास में जिस प्रकार स्त्री जीवन को प्रतिष्ठापित किया है, वह मैंने अन्य लेखिकाओं के समकक्ष भी उनको रखकर उपस्थित किया है। वास्तव में भारतीय स्त्री का अस्त्वि इतिहास के द्वारा गढ़ंत एक ऐसा मिथक है जिसके रहस्यों को तो पुरुष द्वारा निर्मित रहस्यीकरण की कुचेष्टाओं, तिलस्मों का विगोपन आसान नहीं, और

भारतीय स्त्री का प्रतिरोध इन रूढ़ मानसिकता के खिलाफ उठ खड़े होने का ख्याल है, उसका प्रतिरोधी तेवर शारीरिक और मानसिक शोषण के खिलाफ लड़ने की चेतना है, और इसका प्रमुख कारण रहा पश्चिमी नारी आन्दोलन।

इसी परम्परा को एक नयी राह देने के लिए महिला कलमकरों ने अपनी कलम को प्रशस्त किया है, एवं उसके लिए ममता कालिया ने तो स्वयं की विचारधारा को, रचनाओं के माध्यम से समाज में नारी की गतिशीलता को दर्शाया है। ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में जहाँ परम्परा के भीतर दबी कुचली नारी को दिखाया है वहीं विशेषकर आजाद ख्यालातों से युक्त नारी की कहानी को अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया है। मानव सभ्यता के इतिहास में महिला की स्थिति प्रत्येक युग में बदलती रहती है। कभी उसे पुरुष ने दासता के बंधनों में पूरी तरफ जकड़कर उसके साथ पशु जैसा व्यवहार किया है तो कभी इतनी स्वतन्त्र हो उठी है कि उसने सभ्यता की दिशा ही बदल दी है। यह बदला हुआ स्वरूप ममता कालिया की कथा यात्रा में देखा गया है।

वह नारी जिसके मन में अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दुर्बलताओं के प्रति दया का भाव नहीं उपजता, देह, संस्कार, संवेदना और विवेक किसी भी स्तर पर वह अपना मूल्यांकन परम्परागत पुरुष निर्मित प्रतिमानों के आधार पर नहीं करती। ममता का कथा साहित्य नारी समस्याओं का यथार्थ विवरण प्रस्तुत करता है। वास्तव में बाजारवादी नारी अपनी स्वच्छन्दता के कारण अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित करना चाहती है।

संदर्भ :

1. ममता कालिया-नरक-दर-नरक, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनर्प्रकाशन संस्करण 2007
2. मेरे साक्षात्कार ममता कालिया- सं. विज्ञानभूषण, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन संस्करण 2008
3. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विवधि रूपों का चित्रण-डॉ. मोहम्मद अजहर ढेरीवाला, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन संस्करण 2001
4. ममता कालिया के उपन्यासों में नारी-डॉ. स्मिता जायसवाल, विकास प्रकाशन कानपुर, संस्करण 2017
5. समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-विमर्श-त्यागी मुक्ता, अमन प्रकाशन कानपुर-12 संस्करण 2012
6. अक्षरपर्व-सर्वमित्रा सुरंजन देशबंधु, प्रकाशन विभाग रायपुर
7. आजकल पत्रिका- मार्च 2022 अंक 11, वर्ष 77, संपादक फरहत परवीन, सी.जी.ओ. कॉम्लेक्स, लोधी रोड नई दिल्ली
8. उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री डॉ. शशिकला त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन संस्करण 2006
9. ममता कालिया के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ: विविध आयाम, डॉ. लहू रामराव मुंडे, पूजा पब्लिकेशन 6-बी. बौद्ध नगर नौबस्ता, कानपुर संस्करण 2016
10. हिन्दी उपन्यास युगचेतना और पठकीय संवेदना-द्विवेदी मुकुन्द लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1970
11. उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री-डॉ. शशिकला त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन संस्करण 2006

❑❑❑

शोधार्थी (हिन्दी), राजकीय स्नाातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (अल्मोड़ा) उत्तराखण्ड

मोबाइल : 7500194778, ई-मेल : drenu1216@gmail.com

लेखक-पत्नी की त्रासदी की गाथा 'एक कहानी यह भी'

—संदीप सो. लोटलीकर

दरअसल भारतीय स्त्री के भीतर सदियों से बसे रूढ़ पारंपरिक संस्कार इतने गहरे होते हैं कि पति द्वारा दिए गए तमाम शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न को झेलने के बावजूद उसे अपने पति के साथ रहने के लिये मजबूर कर देते हैं। इन संस्कारों तथा सामाजिक दबावों का बोझ इतना भारी है कि आज की आधुनिक कही जाने वाली स्त्री भी इन दबावों से मुक्त नहीं हो सकी है। स्त्री के भीतर बसा अंतर्द्वंद्व उसे दोनों ओर खींचता है।

मन्नू भंडारी हिंदी की उन चंद लेखिकाओं में हैं जिन्होंने आजादी के बाद महिला लेखन को नई दिशा देने में सार्थक भूमिका निभाई है। यही सच है, मैं हार गई, त्रिशंकु, सजा, नकली हीरे, रानी मां का चबूतरा, तीसरा आदमी, स्त्री सुबोधिनी, बंद दराजों का साथ, मजबूरी, अकेली, असामयिक मृत्यु, क्षय जैसी यादगार कहानियों एवं आपका बंटी, महाभोज जैसे उपन्यासों के कारण वे हिंदी कथा साहित्य में समादृत हैं। 'बिना दीवारों के घर' जैसे नाटक की वे लेखिका हैं। इसके अलावा उन्होंने हिंदी फिल्मों के लिए पटकथा लेखन भी किया है। रचनाकर्म से लंबे अंतराल तक दूर रहने के बाद वे 'एक कहानी यह भी' जैसी आत्मकथा लेकर पाठकों के समक्ष उपस्थित होती हैं। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य में मन्नू भंडारी की आत्मकथा अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है।

बहरहाल मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' हिंदी आत्मकथा साहित्य में अपनी अलग पहचान रखती है। इस आत्मकथ्य से गुजरना एक ऐसी रचना से रूबरू होना है जिसमें नारी संवेदना के विभिन्न आयामों को बड़ी बारीकी से व्यक्त किया गया है। प्रस्तुत आत्मकथा में मन्नू भंडारी ने बहुतेरे समकालीन साहित्यकारों को स्मरण किया है। इन साहित्यकारों के संबंध में दी गई उनकी टिप्पणियाँ अत्यंत रोचक बन पड़ी हैं। खास कर मोहन राकेश, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती जैसे जाने-माने रचनाकारों के अंतर्विरोधों की जाँच-पड़ताल इस आत्मकथा में हुई है। लेखक-रचनाकारों के रचनात्मक अवदान से तो पाठक परिचित होते हैं लेकिन उनकी जिंदगी की असलियत के बारे में आखिर हम कितना जानते हैं? विवेच्य आत्मकथा में मन्नू भंडारी ने अपने जीवन में आए अनेक लोगों को याद किया है। एक तरह से वे इन लोगों के प्रति बेहद आत्मीय भाव से कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई नजर आती हैं और समूची रचना में यह क्रम जारी रहता है। कहीं-कहीं तो कृतज्ञता का भाव लगभग धन्यवाद ज्ञापन जैसा प्रतीत होने लगता है। इसके

अलावा इंदिरा गांधी द्वारा की गई आपातकाल की घोषणा और इस कारण उपजी विद्रूप परिस्थितियाँ, इंदिरा गांधी की हत्या के बाद 1984 में सिखों के विरोध में हुए दंगों का वर्णन आत्मकथा को अधिक पठनीय बना देते हैं। आत्मकथ्य की एक विशेषता यह भी है कि पाठक उनकी कहानियों एवं उनके द्वारा लिखित दो उपन्यास 'आपका बंटी' एवं 'महाभोज' की रचना प्रक्रिया से अवगत होते हैं। इस रचना प्रक्रिया से अवगत होना लेखिका के सर्जनात्मकता की पहचान कराता है। लेकिन इस रचना को विशेष बनाता है हिंदी के जाने-माने लेखक और हंस पत्रिका के संपादक रहे, मन्नू भंडारी के पति राजेंद्र यादव का किया गया व्यक्तित्व विश्लेषण।

दरअसल मन्नू जी का आत्मकथा लिखने का मूल प्रयोजन उनके और उनके पति राजेंद्र यादव के जटिल और तनावपूर्ण वैवाहिक संबंधों को उद्घाटित करना है। एक भारतीय स्त्री वैवाहिक जीवन में संवेदना के स्तर पर जिन उबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते हुए अपनी जिंदगी जीती है, इसका हलफनामा है मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी'। मन्नू जी को अपने बचपन, युवावस्था और फिर वृद्धावस्था की ओर झुकते हुए जिन मानसिक पीड़ाओं को झेलना पड़ा, तथा अपने पति राजेंद्र यादव के साथ रहते हुए वैवाहिक जीवन में उन्होंने जिन मानसिक यंत्रणाओं को भोगा, एक यशप्राप्त लेखक की पत्नी होने के कारण जिन कांटों भरी राहों से वे गुजरीं, इन सारी बातों का लेखा-जोखा वे अपने आत्मकथ्य में बड़ी ही बेबाक शैली में देती हैं।

आत्मकथा के शुरू में मन्नू जी ने अपने जन्म स्थान तथा बाल्यावस्था के संबंध में लिखा है। अपने घर के आर्यसमाजी माहौल का विवरण वे बड़े ही मार्मिक रूप में देती हैं। उन्होंने अपने आर्यसमाजी पिता का व्यक्तित्व-विश्लेषण जिस रूप में किया है उसे पढ़ना एक अलग अनुभव से होकर गुजरना है। यथा-"यशकामना बल्कि कहूँ कि यश लिप्सा पिताजी की सबसे बड़ी दुर्बलता थी और उनके जीवन की धुरी था यह सिद्धांत कि व्यक्ति को कुछ विशिष्ट बनकर जीना चाहिए...कुछ ऐसे काम करने चाहिए कि समाज में उसका नाम हो, सम्मान हो, प्रतिष्ठा हो, वर्चस्व हो।...पर पिताजी! कितनी तरह के अंतर्विरोधों के बीच जीते थे वे! एक ओर 'विशिष्ट' बनने और बनाने की प्रबल लालसा तो दूसरी ओर अपनी सामाजिक छवि के प्रति भी उतनी ही सजगता। पर क्या यह संभव है? क्या पिताजी को इस बात का बिल्कुल भी एहसास नहीं था कि इन दोनों का तो रास्ता ही टकराहट का है?"[1]

मन्नू भंडारी स्वयं के व्यक्तित्व की खामियों को लेकर भी खुलकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुई हैं। एक जगह वे लिखती हैं-"मैं काली हूं। बचपन में दुबली और मरियल भी थी। गोरा रंग पिताजी की कमजोरी थी सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी खूब गोरी स्वस्थ और हंसमुख बहिन सुशीला से हर बात में तुलना और फिर उसकी प्रशंसा ने ही क्या मेरे भीतर ऐसे गहरे हीन भाव की ग्रंथि पैदा नहीं कर दी कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उबर नहीं पाई? शायद अचेतन की किसी पर्त के नीचे दबी इसी हीन भावना के चलते ही मैं अपनी किसी भी उपलब्धि पर भरोसा नहीं कर पाती।"[2] लेखिका की इन बातों से साफ पता चलता है कि बचपन से ही वे एक प्रकार की हीनता ग्रंथि से ग्रस्त रही हैं। लगता है कि अपने रंग-रूप तथा व्यक्तित्व को लेकर हीनता के बीज उनमें बचपन से ही बोए गये थे। इस संदर्भ में यह बात सहज ही जहन में आती है कि कहीं इसी हीनता ग्रंथि के चलते उन्होंने राजेंद्र यादव से विवाह करने का

फैसला तो नहीं किया होगा? उनके शारीरिक व्यंग को देखते हुए बस दो-तीन मुलाकातों में वे राजेंद्र यादव को अपना दिल दे बैठी थीं। क्या उनका यह जल्दी में लिया गया फैसला उनके किसी हीनता बोध का तो परिणाम नहीं था? शायद राजेंद्र यादव के व्यक्तित्व में भी जरूर कुछ ऐसी बात देखी होगी उन्होंने जिससे वे उनसे इस कदर आकर्षित हो गई थीं। राजेंद्र यादव के साथ वैवाहिक जीवन के शुरुआती दिनों के सुनहरे पलों के गुजरने के बाद मन्नू भंडारी के लिए वैवाहिक जीवन काँटों भरी राह से कम नहीं रहा है। एक दिन निर्मला जैन ने जब दो टूक शब्दों में मन्नू जी से पूछा कि "राजेंद्र ने तो जो किया सो किया पर आप क्यों नहीं अलग हो गईं? हो सकता है कि आप भी एक यशस्वी प्रतिभाशाली लेखक के मोह से मुक्त नहीं हो पाई हों? सुनकर कतई धक्का न लगा क्योंकि इस संदर्भ में भी मैं भीतर तक अपना मन खंगाल चुकी हूँ और इसे स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं कि यह मेरा मोह ही था...एक गहरा लगाव पर व्यक्ति राजेंद्र के प्रति जिसमें उनका लेखक होना शुमार था पर यशस्वी होना कतई नहीं"[3] इस संदर्भ में इतना ही कहना पड़ेगा कि एक यशस्वी लेखक की पत्नी होने का मोह उनके अवचेतन मन में कहीं न कहीं व्याप्त रहा है। शायद यह उनके भीतर उपजे हीनता ग्रंथि और राजेंद्र यादव के प्रति गहरे लगाव के कारण भी हो सकता है, नहीं तो मन्नू भंडारी जैसी स्वतंत्र विचारों वाली विवेकवान, संवेदनशील लेखिका के लिए ऐसी कौन सी मजबूरी रही होगी कि इतनी कुंठाओं और लगातार मानसिक तनावों में रहते हुए भी वे राजेंद्र यादव के साथ पैंतीस वर्षों तक एक ही छत के नीचे रहने के लिए विवश हो जाती हैं।

दरअसल भारतीय स्त्री के भीतर सदियों से बसे रूढ़ पारंपरिक संस्कार इतने गहरे होते हैं कि पति द्वारा दिए गए तमाम शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न को झेलने के बावजूद उसे अपने पति के साथ रहने के लिये मजबूर कर देते हैं। इन संस्कारों तथा सामाजिक दबावों का बोझ इतना भारी है कि आज की आधुनिक कही जाने वाली स्त्री भी इन दबावों से मुक्त नहीं हो सकी है। स्त्री के भीतर बसा अंतर्द्वंद्व उसे दोनों ओर खींचता है। एक ओर वैवाहिक जीवन के कारण प्राप्त मानसिक पीड़ा है जिसके कारण वह इस जंजाल से मुक्त होना चाहती है तो दूसरी ओर विरासत में मिले रूढ़-पारिवारिक संस्कार तथा सामाजिक असुरक्षितता का बोध है जो उसे अपने पति से अलग नहीं होने देता। इस विशालकाय समुद्ररूपी समाज में अकेले पड़ जाने का भय उसे भीतर तक दहशत में डुबो देता है। इसके चलते वह वैवाहिक जीवन से जुड़ी मानसिक यातनाओं को झेलकर भी इस बंधन के रथ पर सवार होकर दौड़ती रहती हैं।

राजेंद्र यादव को हम नई कहानी के कहानीकार, उपन्यासकार तथा एक चिंतक के रूप में जानते हैं। कहानियाँ, उपन्यास, समीक्षाएँ एवं हंस में लिखीं वैचारिक संपादकीय के लिए राजेन्द्र यादव हिंदी साहित्यिक समाज में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। अपने आत्मकथ्य 'मुड़ मुड़ के देखता हूँ'—के जरिए भी वे पाठकों के समक्ष उपस्थित हुए हैं। हम राजेंद्र यादव को उनकी रचनाओं एवं आत्मकथ्य के माध्यम से जानने-समझने की कोशिश करते हैं। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' एक तरह से 'मुड़ मुड़ के देखता हूँ' को प्रत्युत्तर देने की कोशिश भी कही जा सकती है। मन्नू भंडारी का आत्मकथ्य पढ़ने के बाद लगता है कि राजेंद्र यादव का व्यक्तित्व मानों एक अबूझ पहेली जैसे है। ऐसे व्यक्तित्व को जानने-समझने की कोशिश बड़ी दूर की कौड़ी पकड़ने जैसा है क्योंकि उनके करीब से करीब लोग भी उनको ठीक

से नहीं समझ पाए तो आम पाठक इस अबूझ पहेली को कैसे समझ पाएँगे? राजेंद्र यादव के व्यक्तित्व को लेकर मन्नू जी ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। मन्नू जी लिखती हैं "यूं तो हर व्यक्ति के भीतरी और बाहरी दो रूप होते हैं फिर वह चाहे लेखक हो या सामान्य व्यक्ति। हाँ, यह जरूर होता है कि किसी के व्यक्तित्व के इन दो रूपों में बहुत-बहुत फासला होता है। इतना कि यदि दोनों को सामने रखा जाए तो आप पहचान भी न सकें कि यह एक ही व्यक्ति के दो रूप हैं। और किसी के यहां बिल्कुल नामालूम-सा फर्क होता है। मैं नहीं जानती कि कितने लोग अपने इन दो रूपों के प्रति सचेत होते हैं। और होते भी हैं तो किस सीमा तक होते हैं। लेकिन राजेंद्र को तो जैसे इसका ऑब्सेशन जैसा है कारण भी साफ है क्योंकि इनके दोनों रूपों में इतना अंतर है कि इनके बाहरी रूप को जानने वाले कभी विश्वास ही नहीं करेंगे कि इनके बहुत-बहुत भीतरी व्यक्तित्व का एक ऐसा भी हिस्सा है जो बहुत निर्मम, कठोर और अमानवीयता की सीमाओं को छूने की हद तक क्रूर भी रहा है।"[4] मन्नू भंडारी ने राजेंद्र यादव के संदर्भ में जो लिखा है इसे पढ़कर पाठक का मन एक अतिरिक्त क्रोध से भर जाता है। यह क्रोध इसलिए नहीं है कि विवाह के बाद उन्होंने लेखकीय अनिवार्यता के नाम पर अपनी पत्नी को एक समानांतर जिंदगी का पैटर्न थमा दिया था, बल्कि यह इसलिए है कि एक रचनाकार जो अपनी रचनाओं में इतना संवेदनशील और मानवीय नजर आता है, वह अपनी वास्तविक जिन्दगी में इस कदर असंवेदनशील और अमानवीय भी हो सकता है। राजेन्द्र यादव के इस रूप को देखकर मन विक्षोभ से भर जाता है। विवेच्य आत्मकथा में ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग आए हैं जिन्हें पढ़कर राजेंद्र यादव पर बड़ी कोफ्त होती है। प्रसंगवश मन्नू जी के मुँह में जब घाव हुआ और उनके लिए पानी पीना भी मुश्किल हो गया था तब उन्हें डॉक्टर को दिखाने के बजाय राजेंद्र यादव को कॉफी हाउस में जाना ज्यादा ज़रूरी लगता है और तो और जब उनकी बेटी बीमार हो गई थी तब उसके लिए डॉक्टर से दवाई लाने के बजाय उन्हें साहित्य अकादमी की मीटिंग में जाना और उसके बाद उषा प्रियंवदा से मिलना ज्यादा ज़रूरी लगा था। कहना न होगा कि लेखकीय अनिवार्यता के नाम पर वे निरंतर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से भागते रहे हैं। इन प्रसंगों को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि राजेंद्र यादव एक अलग किस्म की मानसिकता के शिकार रहे हैं, जिसमें अपने करीबी लोगों को मानसिक रूप में प्रताड़ना देकर एक खास तरह के अहम् को संतुष्ट किया जाता है। धीरे-धीरे इस अहं रूपी खेल को खेलने में एक अलग ही प्रकार का मज़ा आने लगता है। समय का संबल पाकर व्यक्ति का यह अहं इतना बड़ा हो जाता है कि इससे छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है। शायद इस क्रूर अंहकार को संतुष्ट करने की राजेंद्र यादव को लत-सी लग गई थी। ऐसे में अपनी रचनाओं में संवेदनशीलता, मानवीयता का ढोल पिटने वाले लेखकों की सारी बातें केवल बौद्धिक ऐय्याशी लगने लगती हैं।

दूसरा प्रसंग वह है जब मन्नू जी ने राजेंद्र यादव को घर से बाहर निकाल दिया था तब कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमने के बाद वे फिर से मन्नू जी के घर आने लगते हैं। इस बीच जब मन्नू जी गंभीर रूप से बीमार हुईं तो वे साहित्यिक गोष्ठी में जाने के लिए तैयार बैठे थे। सुशीला ने उनसे कहा कि राजेंद्र जी आप चले जाएँगे तो मन्नू को देखेगा कौन, उसकी हालत देख रहे हैं। तब वे फोन पर जोर-जोर से बोल रहे हैं कि "अरे मन्नू जी नहीं जा रही है तो क्या हुआ, मैं देखिए तो क्या मौज करवाता हूँ, अरे खूब मस्ती मारेंगे"[5] राजेंद्र यादव जैसे बुद्धिजीवी

लेखक भली-भाँति जानते हैं कि किसी स्त्री के लिए सबसे बड़ी सजा यह है कि एक छत के नीचे रहते हुए उससे संवाद बंद कर दिया जाए। तनावग्रस्त चुप्पी से बड़ी तकलीफदेह बात और क्या हो सकती थी मन्नू जी के लिए?

अब कुछ बातें राजेंद्र यादव तथा उनकी प्रेमिका मीता के संदर्भ में करना आवश्यक प्रतीत होता है। मीता के साथ प्रेम प्रसंग को लेकर यह प्रश्न उठता है कि अगर मन्नू जी राजेंद्र यादव को घर से बाहर जाने के लिए न कहती, भले ही उनके और मन्नू जी के संबंधों में खिंचाव था, एक प्रकार के संवादहीनता से गुजर रहे थे वे तथा परिवार भी उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बहुत बड़ी रुकावट की तरह लग रहा था। राजेंद्र यादव जिस प्रकार की व्यक्तिगत आज़ादी के इच्छुक रहे हैं तथा उन्होंने जिंदगी जीने को लेकर जो पैटर्न अख़्तियार किया था ऐसी परिस्थितियों में मन्नू जी की उनके जीवन में उपस्थिति एक प्रकार से बाधक ही कही जा सकती है। लेकिन अगर वे मन्नू जी के साथ नहीं रहते, उनसे अलग हो जाते तो क्या 'मुड़ मुड़ के देखता हूं' जैसा आत्मकथ्य लिखते? लिखते भी तो क्या इसमें अपनी प्रेमिका और अपने प्रेम संबंधों की चर्चा इस तरह खुले रूप में कर सकते थे? मन्नू जी तो इतने वर्षों तक इन बातों को जानती ही थीं। यह सब जानने के बावजूद उन्होंने राजेंद्र यादव का साथ इतने वर्षों तक निभाया। अपने बेहद निजी प्रेम संबंधों को इस तरह सार्वजनिक करने का अब क्या मतलब था? शायद यह सब इसलिए है कि इन बातों को खुले रूप में जाहिर कर कहीं न कहीं वे मन्नू जी को नीचा दिखाना चाहते हो। शायद उन्हें आहत करने में एक प्रकार के सुख की अनुभूति होती रही है उन्हें। ऐसा क्या कारण रहा होगा कि राजेंद्र यादव मीता जैसी दबंग और दुस्साहसी लड़की से आकर्षित हुए? लगता है कि उनका शारीरिक व्यंग भी उनके मानसिक बनावट को आकार दे रहा था। भीतर कहीं गहरे चेतन-अवचेतन मन में यह हीनता ग्रंथि घर कर गयी होगी कि उनमें शारीरिक रूप में कुछ कमी है।

बहरहाल, राजेंद्र जी ने शादी के सात फेरे तो मन्नू जी के साथ लिये लेकिन अपनी प्रेमिका को दिल-दिमाग से निकाल नहीं पाए। विवाह के संदर्भ में राजेंद्र यादव के ही वाक्य जो उन्होंने अपने विवादित लेख 'होना/सोना एक खूबसूरत दुश्मन के साथ' में लिखा है कि "संबंधों का तो मतलब ही है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे का भावनात्मक या भौतिक इस्तेमाल करें। चाहो तो कह लो कि एक दूसरे को बेवकूफ बनाकर अपना काम निकालते हैं।"[6] इस कथन का सहारा लेते हुए कहना पड़ेगा कि राजेंद्र यादव मन्नू जी का भौतिक और भावनात्मक इस्तेमाल तो करते रहे हैं, लेकिन क्या मन्नू जी भी राजेंद्र यादव का भावनात्मक इस्तेमाल नहीं कर रही थीं? अगर ऐसा न होता तो वे राजेंद्र यादव के साथ इतने वर्षों तक कैसे निभा सकती थीं? शायद मन्नू जी भी एक लत की शिकार हुई थी, स्वयं का भावनात्मक स्तर पर इस्तेमाल करवाने की। इन अर्थों में वे भी एक बेहद कमजोर व्यक्तित्व के रूप में इस आत्मकथा में अभिव्यक्त हुई हैं।

एक सवाल यह भी है कि मीता जैसी आज़ाद ख्यालों वाली स्त्री अगर राजेंद्र यादव के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाती तो क्या वे मन्नू जी से अलग हो जाते? हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि अगर मीता विवाह के लिए अपनी रजामंदी दे देती तो उनके सामने एक बहुत बड़ा संकट खड़ा हो जाता। चाहते तो यही होंगे कि मीता विवाह के लिए कभी तैयार ही न हो क्योंकि इतना तो वे अच्छी तरह जानते होंगे कि मीता जैसी महिलाओं से इश्क तो लड़ाया जा सकता है लेकिन

विवाह के बंधन में बँधा नहीं जा सकता। क्योंकि जैसे ही प्रेमिका पत्नी का रूप धारण कर लेती है, अधिकारों की बेड़ियाँ व्यक्ति को जकड़ने लगती हैं। व्यक्ति के भीतर अधिकार की भावना पैदा होते ही वह ढेर सारी अपेक्षाएँ पालना शुरू कर देता है और इन्हीं अपेक्षाओं के बोझ तले दब कर अक्सर दुख पाता है। मीता लंबे समय तक राजेंद्र यादव से प्रेम की रास लीला में मगन रही मगर विवाह के बंधन में बँधना नहीं चाहती थी। मीता जैसी स्त्रियाँ इतना तो जरूर जानती हैं कि प्रेमिका जितनी स्वतंत्र होती है उतनी किसी की पत्नी बन कर नहीं हो सकती। प्रेमिका जब पत्नी बन जाती है तब वह अपने आज़ादी के मौलिक अधिकार को खो देती है। भारतीय समाज में विवाह के बाद अधिकार का जन्तु दिल-दिमाग में प्रवेश कर जाता है। यही अधिकार का भाव आगे चलकर अपेक्षाओं की ऐसी ऊँची इमारत खड़ी कर देता है कि इससे पार करने की हिम्मत बिरले ही दिखा पाते हैं।

मन्नू जी ने अपनी आत्मकथा में राजेंद्र यादव को कटघरे में खड़ा तो कर दिया है लेकिन एक सवाल पाठक के मन में उभरता है कि ऐसी कौन सी बात होगी मन्नू जी को लेकर जो राजेंद्र यादव को परेशान करती होगी। राजेंद्र यादव अब हमारे बीच नहीं हैं और अगर होते भी तो क्या वे अपने आप को पूरी तरह से अभिव्यक्त कर पाते? लंबे समय तक किसी व्यक्ति का सान्निध्य जहाँ आत्मीयता-स्नेह बढ़ाता है, वहीं एक ढर्रे पर चलने वाला दांपत्य जीवन बोरियत भी पैदा करता है। सतत की निकटता उलझनें भी पैदा करती हैं, वैवाहिक जीवन में तो और भी ज्यादा। व्यक्ति के गुण भी अवगुण लगने लगते हैं। यह स्थितियाँ पारिवारिक जीवन में एक प्रकार के तनावपूर्ण माहौल का निर्माण करती हैं। किसी व्यक्ति पर किया गया प्रेम सार्वकालिक नहीं होता और न तो शाश्वत होता है। प्रेम का भाव भी समय सापेक्ष होता है। प्रेम का आवेग हर समय एक समान नहीं रहता।

अंत में बस इतना कि ऐसी कौन-सी भारतीय स्त्री होगी जो अपने पति को अन्य स्त्रियों के साथ नाजायज संबंध रखने के लिए अनुमति देगी। भारतीय स्त्री के संस्कार, उसकी मानसिकता उसे इस बात की अनुमति नहीं देते कि उसका पति खुलेआम किसी गैर औरत से शारीरिक संबंध रखे और वह सब कुछ चुपचाप सहती रहे। सामंती युग में जहाँ उसे सब कुछ सहना पड़ता था वहीं आज वह अपना मुँह खोल सकती है, प्रतिरोध के स्वर को बुलंद कर सकती है, बिना संकोच अपनी बात कह सकती है। इसी सोच का नतीजा है मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी'।

संदर्भ :

1. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ क्रमांक : 25
2. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ क्रमांक : 18
3. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ क्रमांक : 221
4. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ क्रमांक : 214
5. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ क्रमांक : 176
6. राजेंद्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृष्ठ क्रमांक : 98

❏❏❏

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी.ई.एस. महाविद्यालय, फर्मागुडी, फोंडा-गोआ ई-मेल : sandeepslotlikar@gmail.com

हिन्दी यात्रा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

—डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

यात्रा-साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। हिन्दी गद्य साहित्य में यात्रा-साहित्य साहित्यकारों एवं पाठकों के आकर्षण का विषय है। यद्यपि यात्रा-साहित्य गद्य विधाओं में प्राचीन साहित्यिक विधा है। आदिकालीन ग्रंथ रामायण, महाभारत, हर्षचरित्र, कादम्बरी में कहानी का मूल सार यात्रा वृत्तांत ही है। भारतीय राजनैतिक अस्थिरता के कारण हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का जन्म हुआ। साहित्यकारों ने तत्कालीन प्रचलित भाषा शैली में अपनी अनुभूति, संस्मरण कल्पना आदि को मिलाते हुए नित्य नई साहित्यिक शैली का निर्माण किया।

यात्रा-साहित्य मानवीय जीवन की यायावर प्रवृत्ति का प्रतीक है। मनुष्य अपने जीवन में अनेक यात्रायें करता है। यात्रा करना मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग है। यात्रा करना मानव जाति की सहज प्रवृत्ति है, घुमन्तू प्रवृत्ति मानव के विकास की कहानी है। भारतीय इतिहास में काव्यों, कथा, साहित्य, लेख में यात्रा वृत्तान्त का उल्लेख प्राप्त होता है। हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में भी मनुष्य से यात्रा करने सम्बंधी प्रार्थना का उल्लेख है। यात्रा करने वाले लोग अपने यात्रानुभवों को लिखने का कार्य भी करते रहे और यही से यात्रावृत्तों की शुरुआत हुई। प्राचीन समय से ही मनुष्य यात्रा करता आ रहा है यथा युद्ध, धर्म प्रचार, तीर्थ, व्यापार, खोज, आदि विषयों के लिए मनुष्य यात्रा करता रहा है और वर्तमान में सुगम परिवहन माध्यमों से इन यात्राओं में वृद्धि हो गई है।

अगस्त्य ऋषि की दक्षिण यात्रा, जातक कथाएँ, विनय वस्तु (बुद्ध की यात्राएँ) कौटिल्य के अर्थशास्त्र (300 ई.पू.) में सामूहिक सुरक्षा, मेगस्थनीज, अलबरूनी (1000 ई.) आदि यात्रियों के यात्रावृत्तान्तों में अनेक रोचक तथा उपयोगी जानकारी मिलती है। धर्मप्रचार के लिए संघमित्रा (200 ई.पू.) का श्रीलंका जाना, कश्यप मांतग एवं धर्मरत्न (70 ई.) बौद्ध भिक्षु का चीन जाना, आचार्य पद्मसंभव (747 ई.) की हिमाचल तथा तिब्बत की यात्रा, आदि ऐसे यात्रा-साहित्य हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने का कार्य किया है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और यायावरी उसकी सहज प्रवृत्ति है। यात्रा करना, ज्ञान बटोरना, अन्वेषण करना मानवीय वृत्ति का ही परिणाम है। विश्व में अनेक ऐसे लोग हैं जिन्होंने जिंदगी भर यात्रायें ही की हैं और इन यात्रा वृत्तांतों को साहित्य के रूप में लिखकर रखा है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो मानवीय विकास को प्रेरित करता है। कई भारतीय राजाओं ने राजपाठ छोड़कर धर्म के प्रचार के लिए यात्रायें की हैं।

लेकिन सभी यात्रायें यात्रा-साहित्य नहीं होती हैं किन्तु यात्राओं के दिशा से यात्रा-साहित्य का विकास अवश्य होता रहा है।

ह्वेनसांग एक ऐसा ही चीनी यात्री हुआ है जो हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया और सत्रह वर्षों तक यहाँ रहा। ह्वेनसांग ने भारत यात्रा का वर्णन अपनी पुस्तक 'सी-यू-की' में किया है। इस पुस्तक में राजा हर्ष के समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन मिलता है। ह्वेनसांग बौद्ध भिक्षु था। भारत में आकर उसने यहाँ के विभिन्न बौद्ध मठों का अध्ययन किया। ह्वेनसांग एक विलक्षण प्रतिभा का व्यक्ति था, वह मात्र 13 वर्ष की आयु में ही मठाधीश बन गया था। किन्तु 20 वर्ष की आयु में उसके बौद्ध धर्मालंबियों से मतभेद उभर गये तभी उसने निश्चय किया वह भारत जाकर बौद्ध धर्म का मूलपाठ का अध्ययन करेगा। 626 ई.पू. में वह संस्कृत का पाठ कर पारंगत हुआ। कई वर्षों की यात्रा के बाद वह 630 में भारत पहुँचा। भारत में आकर वह लगातार यात्रा ही करता रहा। सिंधु नदी, तक्षशिला, कश्मीर, हीनयान, महायन के मठ, मेरठ, मथुरा, अयोध्या, हर्ष वर्धन की राजधानी (कान्यकुब्ज) कन्नौज, कपिलवस्तु, लुम्बनी, सारनाथ, वाराणसी, नालंदा, अमरावती व कांची को करीब से देखा।

यात्रा-साहित्य परम्परा का प्रारंभ आदि काल से हो गया था किन्तु भाषा साहित्य में लिखने की परम्परा का विकास आरंभिक हिन्दी भाषा में देखने को मिलता है। यात्रा वृतांत किसी न किसी से प्रेरित होकर लिखे जाते हैं। बद्रीनाथ सुगम यात्रा एक भक्ति भावना से प्रेरित होकर लिखा गया यात्रावृत्त है। समय के परिवर्तन के साथ ही इस दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। जब तीर्थयात्रा के स्थान पर आत्मकथानात्मक शैली में यात्रा-साहित्य लिखे जाने लगे। "सन् 641 में जैन कवि बनारसीदास लिखित आत्मकथा 'अर्थकथानक' ग्रंथ मिलता है। यह यद्यपि है तो आत्मजीवनी किन्तु जैन कवि बनारसी दास कर्म तथा धर्म से यायावर थे। अतएव हिन्दी में इस आत्मकथा ग्रंथ को हिन्दी का प्रथम (तीर्थयात्रा के अलावा) यात्रा-साहित्य भी माना जा सकता है। कवि बनारसीदास का अर्थकथानक मुगलकालीन जीवन का प्रामाणिक तथा रोचक वर्णन करता है। उनके इस यात्रा-साहित्य के अधिकांश घटनाओं से तत्कालीन मुगल राज्य में शासन और व्यवस्था, समाज के विभिन्न अंगों के संबंध, मार्गों की तथा व्यापार की दशा इत्यादि की रोचक तथा प्रमाणिक जानकारी मिलती है। अर्धकथानक आज के अनेक यात्रावृत्तों से अधिक रोचक एवं समृद्ध है।

अज्ञेय यात्रा-साहित्य के जाने माने साहित्यकार हैं किन्तु वे अपने यात्रा-साहित्य को यात्रा संस्मरण कहना पसंद करते हैं। अज्ञेय जी की 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) उनकी प्रसिद्ध यात्रा साहित्य कृति है। हिन्दी यात्रा-साहित्य के संदर्भ में निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, यशपाल, भगवतशरण उपाध्याय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश की यात्रा कृति आखिरी चट्टान तक (1953) में दक्षिण भारतीय परिवेश का विस्तृत वर्णन किया गया है। निर्मल वर्मा के यात्रा-साहित्य 'चीड़ो पर चाँदनी' (1964) में यूरोप के जीवन दर्शन को गहराई से उतारा गया है। राहुल जी ने यात्री के रूप में अपना सारा जीवन गुजार दिया। वे हिन्दी साहित्य में सदैव के लिये अस्मरणीय रहेंगे। हिन्दी के विषय को लेकर एक बार उन्होंने कहा था कि मैंने नाम बदला, वेशभूषा बदली, खान-पान बदला, सम्प्रदाय बदला लेकिन हिन्दी के सम्बंध

में मैंने विचारों में कोई परिवर्तन नही किया। यही कारण है कि राहुल जी का यात्रा-साहित्य हिन्दी के विकास में अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। राहुल जी ने अपना साहित्य विभिन्न विधाओं में लिखा है—कथाकार अन्वेषक, यायावर आलोचक निबंध आदि। राहुल जी ने कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, जीवनियाँ लिखी हैं, यात्रा-साहित्य के रूप में लंका, जापान, ईरान, चीन में क्या देखा प्रमुख है। यात्रा-साहित्य विभिन्न शैली के पाये जाते हैं, कुछ यात्रा-साहित्य परिचयात्मक प्रकार के होते है जिसमें लेखक किसी देश या स्थान के स्वप्न लोक में खो जाता है। ऐसे यात्रा-साहित्य में रचनाकार स्थान विशेष का वर्णन करता है और स्थान-स्थान पर उल्लास, आत्मीयता, मनोवेग का समावेश करता है जिससे यात्रा-साहित्य में सजीवता आ जाती है। यात्रा-साहित्य सम्राट राहुल सांकृत्यायन, शिवनन्दन सहाय आदि का यात्रा-साहित्य इसी श्रेणी में आता है। कुछ यात्रा-साहित्य का उद्देश्य जीवन की व्यापकता को दर्शाना होता है जिसमें किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण होता है। प्राय: उद्देश्यपरक साहित्यकार अपने यात्रा वृत्तांतों में स्थानों, नगरों, दृश्यों, प्राकृतिक रूपों का चित्रण करते चलते हैं। ये यात्रा-साहित्य यथार्थ के करीब होते हैं, किन्तु लेखक इनमें अपने प्रभावों और भावनाओं का समावेश करता है। राजवल्लभ ओझा, जगदीशचन्द्र जैन, गोविन्द दास एवं यशपाल ऐसे ही यात्रा-साहित्यकार हैं, जो प्राकृतिक और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण अपने यात्रा-साहित्य में करते हैं। रांगेय राघव, अमृत राय जैसे साहित्यकार अपने यात्रा-साहित्य में अपने प्रभावों, प्रतिक्रियाओं और संवेदनाओं को अधिक महत्व देते हैं। इनके यात्रा-साहित्य संस्मरणात्मक तरह के होते हैं जिसमें राग रस, दृष्टि, प्रतिक्रिया, संवेदनशीलता, जीवन आदि, साहित्यकार अपने अनुरूप प्रदर्शित करता है जो यात्रा साहित्य को नवीन रोचकता प्रदान करती है।

यात्रा-साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। हिन्दी गद्य साहित्य में यात्रा-साहित्य साहित्यकारों एवं पाठकों के आकर्षण का विषय है। यद्यपि यात्रा-साहित्य गद्य विधाओं में प्राचीन साहित्यिक विधा है। आदिकालीन ग्रंथ रामायण, महाभारत, हर्षचरित्र, कादम्बरी में कहानी का मूल सार यात्रा वृत्तांत ही है। भारतीय राजनैतिक अस्थिरता के कारण हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का जन्म हुआ। साहित्यकारों ने तत्कालीन प्रचलित भाषा शैली में अपनी अनुभूति, संस्मरण कल्पना आदि को मिलाते हुए नित्य नई साहित्यिक शैली का निर्माण किया। हमारे देश में यात्रा करने का अनुभव सदियों पुराना है। जैसे कि इतिहास में मिलता है कि, आवागमन के आधुनिक साधनों के समान प्राचीन काल में साधन न तो अधिक विकसित थे और न ही अधिक तीव्र थे। अन्यत्र व्यापार करने के इच्छुक व्यापारियों को सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। साथ ही आवागमन के मार्ग भी पूर्णत सुरक्षित नहीं थे इसलिये व्यापारी सामान्यत: समूहों में ही सामान सहित यात्रा करते थे। याज्ञवल्क्य और विष्णु स्मृति में उल्लेखित है कि वाणिज्य और व्यापार के लिये लोग विदेशों की यात्रा करते रहे थे। ''शूद्रक के नाटक 'मृच्छकटिकम्' में स्त्रियों द्वारा जहाज व्यापार के अस्पष्ट संकेत मिलते हैं।''

स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन साहित्य में यात्रा वृत्तांत का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु ये यात्रा वृत्तांत केवल धर्म, व्यापार या किसी विशेष कार्य के लिये ही किये जाते थे। उनका उद्देश्य यात्रा-साहित्य नहीं होता था। किन्तु समयान्तर में इसमें परिवर्तन होने लगा।

इब्नबतूता (1304–1377 ई.) ने लगभग 75000 किमी की यात्रा की थी और अपनी यात्रा के दौरान भारत भी आया। एक बार जब इब्नबतूता मक्का के सफर (यात्रा में था तब उसे दो साधु मिले जिन्होंने पूर्वी देशों के सुख सौंदर्य का वर्णन किया। साधुओं से प्रभावित होकर उसने पूर्वी देशों की यात्रा का संकल्प लिया। वह खीवा, बुखारा होता हुआ सीधे दिल्ली दरबार पहुँचा जहाँ उसकी मुलाकात मुहम्मद बिन तुगलक से हुई। अपने सफरनामा में इब्नबतूता ने अपने लम्बे यात्रा–वृत्तांतों का वर्णन किया है। इब्नबतूता द्वारा अरबी भाषा में लिखा गया उसका यात्रा वृत्तांत जिसे रिहाला कहा जाता है।) 14 शताब्दी के भारतीय महाद्वीप के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विषय में यथार्थ जानकारी प्रस्तुत करती है। यात्रा वृत्तांतों के संदर्भ में यह सबसे बड़ा तथ्य है कि इब्नबतूता के भ्रमणवृत्तांत को ''तुहफतअल नज्जार की गरायब अल अमसार व अजायब अल अफसार का नाम दिया गया है। उसके यात्रा वृत्तांत में तत्कालीन भारतीय परिवेश की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। कुछ भौगोलिक एवं तिथि सम्बन्धी भूलों को छोड़ दें तो इब्नबतूता का विवरण उस समय के भारत और उसके आस–पास के देशों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा को समझने के लिए एक उपयोगी साधन है। मार्कोपोलो के यात्रा विवरण में भी कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं।

अज्ञेय के यात्रा–साहित्य कविता, निबंध, उपन्यास सभी से होकर गुजरते हैं। खास बात इनकी रचनाओं में पूर्व वर्तमान और भविष्य के दर्शन होते हैं। भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में राहुल जी कहते हैं—भाषा और साहित्य धारा के रूप में चलता है, फर्क इतना ही है कि नदी को हम देश की पृष्ठभूमि में देखते हैं जबकि भाषा देश और भूमि दोनों की पृष्ठभूमि को लिए आगे बढ़ती है। कालक्रम के अनुसार देखने पर ही हमें उसका विकास अधिक सुस्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद से लेकर 19वीं सदी के अन्त तक की गद्य धारा और काव्य धारा के संग्रहों की आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. अथर्ववेद द्वादश काण्डम्, सूक्त–1 मंत्र–47
2. अरे यायावर रहेगा याद, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, बनारस एक जुलाई 1954 ई.
3. अलकनंदा, मंदाकिनी के दो तीर्थ, डा. सम्पूर्णानन्द, सूचना विभाग उ.प्र. सन् 1959 ई.
4. आवारे की योरोप यात्रा, डॉ. सत्यनारायण
5. अज्ञेय काव्य स्तवक, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, रमेशचन्द्र शाह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1995 ई.
6. इत्सिंग की भारत यात्रा, श्री संतराम, इण्डियन प्रेस प्रयाग, 1925 ई.
7. ऋग्वेद 7/88/3 विश्वबन्धु संस्करण, होशियारपुर
8. कश्मीर की वह यात्रा, श्री जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्र. दिल्ली, 1973 ई.
9. काव्य भाषा और काव्येतर भाषा, डॉ. नामवर सिंह
10. काव्य और सौंदर्य, राधाकृष्ण शुक्ल
11. जीवनी साहित्य, हिन्दी साहित्य कोश, अजित कुमार, नंदन प्र. रानी कटरा लखनऊ, सन् 1970 ई.
12. दुनिया की सैर अस्सी दिन में, श्री परमेश्वर दीन शुक्ल, सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली, 1967 ई.

❑❑❑

अतिथि प्रवक्ता, वैष्णो देवी शिक्षण व प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोदही, नरई कुंडा, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)
ईमेल : virendraskd1339@gmail.com

भारतीय रंगमंच में मंच की शास्त्रीय परिकल्पना

—डॉ. मधु कौशिक

भारत में जो मंच-व्यवस्था थी, उसका विवरण भरत के 'नाट्यशास्त्र' में विस्तार से मिलता है। भरत मुनि ने मंच निर्माण की पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण कथा का उल्लेख किया है। दानवों पर इंद्र की विजय के उपलक्ष में भरत ने 'महेंद्र विजयोत्सव' नामक नाट्य का अभिनय किया, जिसमें असुरों की निंदा की। इस पर दानवों ने अत्यंत क्रुद्ध होकर उसका भयंकर विध्वंस किया। इस पर ब्रह्मा ने दानवों को शांत करने के लिए नाट्य के महत्व का उपदेश दिया। नाट्य में सभी लोकों के सुख-दुखात्मक भावों का अनुकरण होगा जिसे देखने से दुखी और परिश्रांत व्यक्तियों का विनोद होगा।

'मंच' से तात्पर्य वह स्थल विशेष है जहाँ नाटक खेला जाता है अर्थात मंच में स्थान विशेष या नाट्यमंडप या अधिक से अधिक रंगशाला ही है जो अपने रूप और आकार में दिखाई देता है। मंच का अंग्रेजी रूपांतरण 'स्टेज' है। मंच का स्थल विशेष नाटक के अभिनय के लिए एक अनिवार्य तत्व है। एक ओर जहाँ हमारी दृष्टि रंगमंच की कला, नाट्य तथा रंगकार्य के विविध पक्षों की ओर आकर्षित होती है। वहीं उसके रूप, आकार-प्रकार की ओर भी जाना स्वाभाविक है। आदिम युग की बात की जाए तो वहाँ मंच के नाम पर एक 'स्पेस' है जी गोल घेरे का आकार लिए हुए है। आदिम युग के नाटकों की प्रस्तुति को लेकर देवेंद्रराज अंकुर लिखते हैं—"इसमें वह सब कुछ है जो आज हम नाटक में तलाश करते रहते हैं-एक सशक्त और जीवंत कहानी, उस कहानी को आगे लेकर चलने वाले श्रेष्ठ अभिनेता, एक प्रदर्शन स्थल जो पहले एक घेरे के रूप में आया और फिर घेरा टूटकर दो भागों में बंट गया, जैसा कि हम बाद में ग्रीक, रोमन, यहाँ तक कि शेक्सपीयर के रंगमंच में भी देखते हैं।"[1] इस प्रकार यदि हम मंच के प्रारंभिक स्वरूप की बात करें तो उस समय मंच अर्थात रंगस्थल का कोई स्वरूप नहीं रहा होगा। धीरे-धीरे जब उसने कोई स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ किया होगा तो वह संभवत: वृत्ताकार होता गया होगा क्योंकि प्रेक्षकों के लिए बैठने को वही सुविधाजनक होता है। भीड़ का चारों तरफ घिर जाना आज भी सामान्य-सी बात है। ऐसे में खुले स्थान का प्रयोग ही अधिक होता होगा।

प्रदर्शन की प्रक्रिया में अभिनय का कार्य उन स्थानों पर होता रहा होगा जहाँ लोग रात को गपशप या आमोद-प्रमोद के लिए एकत्र होते रहे होंगे-जैसे आंगन, चौपाल, पूजा स्थान, देव-यात्राओं में और सड़कों पर भी। मंच के इस स्वरूप से सहज स्वाभाविक स्थिति उभरी और मंच की एक स्वस्थ

परंपरा विकसित हुई जिसमें रंगस्थल/नाट्यमंडप की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। तब मंच के लिए कुछ अपेक्षाएँ निर्धारित की गइ‍ँ, जैसे-प्रवेश द्वार, पृष्ठभूमि, ऊँचा मंडप और कुछ मंच सामग्री आदि। इसी के साथ मंच का रंगभवन रूप-देवालय राजगृह आदि का भी निर्धारण हुआ।

अत: नाट्यगृहों की कल्पना भारतीय नाट्य शास्त्र की स्वस्थ परंपरा से पृथक नहीं है। संभवत: वह इसमें पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में जिस स्तर पर नाट्य कला की प्रतिष्ठा हुई है उसी के अनुरूप मंच के रूप, आकार प्रकार का भी विवेचन किया गया है। इसके आधार पर यह बताना तो कठिन है कि लोक में प्रचलित परंपरा में नाट्यगृहों की वास्तविक स्थिति किस रूप में थी? पर उसमें जिस लोकधर्मी परंपरा का उल्लेख किया गया है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में साधारण लोक समाज के लिए खुली नाट्यशालाओं (ओपन एयर थिएटर) का प्रबंध रहा होगा।

भारत में जो मंच-व्यवस्था थी, उसका विवरण भरत के 'नाट्यशास्त्र' में विस्तार से मिलता है। भरत मुनि ने मंच निर्माण की पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण कथा का उल्लेख किया है। दानवों पर इंद्र की विजय के उपलक्ष में भरत ने 'महेंद्र विजयोत्सव' नामक नाट्य का अभिनय किया, जिसमें असुरों की निंदा की। इस पर दानवों ने अत्यंत क्रुद्ध होकर उसका भयंकर विध्वंस किया। इस पर ब्रह्मा ने दानवों को शांत करने के लिए नाट्य के महत्व का उपदेश दिया। नाट्य में सभी लोकों के सुख-दुखात्मक भावों का अनुकरण होगा जिसे देखने से दुखी और परिश्रांत व्यक्तियों का विनोद होगा। साथ ही जीवन-हित धर्म, यश और बुद्धि का अभ्युदय होगा। इतना ही नहीं नाट्य में विश्व की समस्त विधा, कला तथा शिल्प का एकत्र समन्वय होगा। मुनियों ने भरत से नाट्यवेश्म/मंच के विषय में पूछा, क्योंकि नाट्य में सर्वप्रथम इसी की आवश्यकता होती है। ब्रह्मा की आज्ञा से ही विश्वकर्मा ने नाट्यवेश्म का निर्माण किया। भरत ने उसी नाट्यवेश्म या नाट्यमंडप के निर्माण का वर्णन नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में किया है। केवल दर्शकों द्वारा व्यवधान उत्पन्न न हो इस कारण ही मंच का निर्माण हुआ हैं, ऐसा नहीं है। बल्कि इसके पीछे अनेक कार्न रहे होंगे जैसे बदलता मौसम, संवादों का दर्शकों तक ठीक प्रकार से न पहुँचना। इस दृष्टि से "भरत ने नाट्यशास्त्र के दूसरे अध्याय में ही एक विधिवत बंद प्रेक्षागृह अथवा नाट्य-मंडप की परिकल्पना का सम्पूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।"[2]

मंच के भेदों और उपभेदों की बात की जाए तो कहा जाता है कि विश्वकर्मा ने तीन प्रकार के मंच/नाट्यवेश्म का निर्माण किया। विकृष्ट (आयत), चतुरस्र (वर्ग), त्रयस्र (त्रिकोण)। 'विकृष्ट' देवताओं के लिए, 'चतुरस्र' भूलोक के लिए तथा 'त्रयस्र' निम्न कोटि के दर्शकों के लिए है। देवताओं के बड़े रंगमंच के विषय में भरत ने कहा है कि हमें देवताओं से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए क्योंकि जहाँ हमें परिश्रम करके बनाना होगा वहाँ देवता इच्छा मात्र से ही बना सकते हैं। विकृष्ट नाट्यगृह 108 हाथ लंबा होता है और अपनी अत्यधिक लंबाई के कारण मनुष्य के लिए अनुपयोगी है अत: भरत ने चतुरस्र मध्यम मंच को ही मनुष्यों के लिए उत्तम माना है। इस

संदर्भ में "अभिनवगुप्त का कथन है कि भरत ने सबसे बड़ा मंच देवताओं को दिया है।"[3] इसका अर्थ यह है यदि 'डिम' आदि रूपकों का अभिनय करना हो, जिसमें देवताओं और असुरों का संग्राम दिखाया जाता है तो सबसे बड़े मंच का उपयोग करना चाहिए। जिसमें संग्राम आदि के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके। यदि राजाओं के प्रणय-व्यापार आदि का प्रदर्शन करना हो तो मध्यम कोटि का मंच हमारे उद्देश्य के लिए पर्याप्त हो जाएगा। यदि साधारण लौकिक जीवन की विकृतियों को प्रदर्शित करने वाले 'प्रहसन' और 'भाण' जैसे रूपकों का अभिनय करना हो जिसमें सामान्य नर-नारी पात्र होते हैं तो छोटे मंच का उपयोग कर सकते हैं।

विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र मंच के ये तीनों भेद आकार की दृष्टि से किए गए हैं। परिमाण की दृष्टि से इन तीनों के तीन-तीन भेद—ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ या अवर (बड़ा, मध्यम और छोटा) है। इन मंडपों का हस्त (लगभग 18 इंच) निश्चित किया गया है। अतः आकार एवं परिमाण की दृष्टि से तीनों भेदों के तीन-तीन उपभेद हो जाने पर नौ भेद हो जाते हैं। इन भेदों एवं उपभेदों को निम्न सारणी के माध्यम से दिखाया जा सकता है।

आकार	प्रकार	परिमाण	उपयोग
विकृष्ट	ज्येष्ठ	108 हाथ लंबा, 64 हाथ चौड़ा	देवतार्थ
विकृष्ट	मध्यम	64 हाथ लंबा, 32 हाथ चौड़ा	नृपार्थ
विकृष्ट	कनिष्ठ/अवर	32 हाथ लंबा, 16 हाथ चौड़ा	लोकार्थ

आकार	प्रकार	परिमाण	उपयोग
चतुरस्र	ज्येष्ठ	108 हाथ लंबा, 108 हाथ चौड़ा	देवतार्थ
चतुरस्र	मध्यम	64 हाथ लंबा, 64 हाथ चौड़ा	नृपार्थ
चतुरस्र	कनिष्ठ/अवर	32 हाथ लंबा, 32 हाथ चौड़ा	लोकार्थ

आकार	प्रकार	परिमाण	उपयोग
त्रयस्र	ज्येष्ठ	108 हाथ समिस्रबाहु	देवतार्थ
त्रयस्र	मध्यम	64 हाथ समिस्रबाहु	नृपार्थ
त्रयस्र	कनिष्ठ/अवर	32 हाथ समिस्रबाहु	लोकार्थ

उपर्युक्त माप विश्वकर्मा द्वारा प्रस्तावित है परंतु एक व्यावहारिक रंगकर्मी होने के नाते भरत ने पहले तीनों भेदों के मध्यम परिमाण को स्वीकार करने के बावजूद इस कारण बड़े आकारों को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इससे दृश्यता और ध्वनिकी दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता था। इसलिए भरत विकृष्ट के मध्यम तथा चतुरस्र और त्रयस्र में अवर परिमाणों को स्वीकार करते हैं।

विकृष्ट मध्यम का व्यावहारिक विभाजन–भरत ने विकृष्ट मध्यम के व्यावहारिक विभाजन का विस्तार से वर्णन किया है। आयताकार वाले विकृष्ट मध्यम की लंबाई 64 हाथ को पहले 32–32 हाथ के दो वर्गों में विभाजित करना चाहिए–एक पश्चिमी वर्ग और दूसरा पूर्वी वर्ग। पश्चिमी वर्ग को मंच के लिए तथा पूर्वी भाग प्रेक्षक गृह के लिए प्रयुक्त होना चाहिए।

पश्चिमी वर्ग जो मंच के लिए होता है उसे उन्हें 16x32 हाथ के दो आयतों में विभाजित करना चाहिए। इनमें पश्चिमी भाग में नेपथ्य तथा पूर्वी भाग रंग या अभिनय क्षेत्र बनते हैं। फिर अभिनय क्षेत्र को 8x32 हाथ के दो आयतो में विभाजित करना चाहिए। इनमें पश्चिमी भाग 'रंगशीर्ष' और पूर्वी भाग 'रंगपीठ' कहलाते हैं। नेपथ्य और रंगशीर्ष के बीच एक दीवार होती है। इस दीवार के साथ–साथ बीचोंबीच एक वर्गाकार चबूतरा बनाना चाहिए जिसे 'वेदिका' कहते हैं। वेदिका की लंबाई–चौड़ाई 8x8 तथा ऊँचाई रंगशीर्ष के धरातल से एक हस्त होनी चाहिए। रंगपीठ के दोनों सिरों पर भी इसी प्रकार के चबूतरे बनाने चाहिए, इन्हें मत्तावारिणी कहते हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि मत्तावारिणी का यह स्थान सही है या नहीं। विद्वान इस विषय में एकमत नहीं है। वेदिका की पिछली दीवार में दाएँ–बाएँ दो द्वार होने चाहिए। ये द्वार नेपथ्य से अभिनय स्थल पर अभिनेताओं के आने जाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। इन दीवारों पर पर्दे होनी चाहिए जिन्हें 'पटि' कहते हैं। वेदिका और मत्तावारिणी को चार चार स्तंभों और उन पर टिकी छतरी से सुसज्जित करना चाहिए।

भरतमुनि ने चतुरस्र और त्रयस्र के मध्यम मंडप छोड़कर अवर/कनिष्ठ मंडपों का वर्णन क्यों किया? इसका कारण है कि विकृष्ट मध्यम का विशेष वर्णन करते समय भरतमुनि ने 64 हाथ लंबा 32 हाथ चौड़ा के मध्यम मंडप का ही वर्णन प्रस्तुत किया है। जिस स्थल पर यह परिमाण बताया गया है उसके अगले ही श्लोक में भरत ने इससे बड़े आकार का मंडप बनाने का स्पष्ट निषेध किया है। निर्देश के अनुसार 64 हाथ लंबा और 32 हाथ चौड़े से बड़े मंडप का निर्माण नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए चतुरस्र मध्यम (64 हाथ लंबा 64 हाथ चौड़ा) आकार को छोड़कर चतुरस्र अवर (32 हाथ लंबा 32 हाथ चौड़ा) आकार वाले मंडप के निर्माण पर इतना बल दिया गया। यही वस्तुस्थिति त्रयस्र के संदर्भ में भी लागू होती है क्योंकि त्रयस्र मध्यम 64 हाथ समिस्रबाहु है जो कि विकृष्ट मध्यम के आकार से बड़ा है अत: इसका भी निषेध कर त्रयस्र अवर मंडप (32 हाथ समिस्रबाहु) को ही स्वीकार किया गया है।

ज्येष्ठ परिमाण वाले मंडपों के कारण प्रेक्षागृह में ध्वनि का यथार्थ अनुमान लगाना कठिन है। साथ ही साथ दूरवर्तियों के लिए पाठ्य अभिनय विगत स्वर हो जाता है और समुचित रूप से सुना नहीं जा सकता। इसके विपरीत अत्यंत छोटे प्रेक्षागृह में उच्च स्वर उच्चरित पाठ्य अपना माधुर्य खो देता है। साथ ही गीत–वाद्य के प्रयोग में भी स्वर हीनता आ जाती है। अत: अतिविस्तीर्ण एवं छोटे मंडपों को भवाभिव्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त नहीं माना गया। नाट्यशास्त्र में भी उल्लेख किया गया है–

"अत ऊर्ध्वम, न कर्तव्यम कर्तृभि: नाट्यमंडप:।
स वेशमन: प्रकृष्टवात वज्रेद्व्यक्तताम परं॥"[4]

एक ओर जहां भरतमुनि ने "प्रेक्षागृहाणाम सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते"[5] कहा है। चतुरस्र के मध्यम मंडप को स्वीकारा है। वहीं 'नाट्यशास्त्र' में 86 से 101 संख्या के श्लोक में चतुरस्र मंडप का परिमाण चारों ओर 32 हाथ का बताया है। अत: परिमाण की दृष्टि से भरतमुनि ने चतुरस्र और त्रयस्र वर्ग के अवर मंडपों को ही स्वीकार किया है।

यद्यपि 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य (रंगमचीय कला) के सभी पक्षों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है परंतु इसका दूसरा अध्याय शास्त्रीय भारतीय रंगमंच की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है "जिसमें संस्कृत काल के शास्त्रीय भारतीय रंगमंच का विवेचन किया गया है। भारतीय रंगमंच के वर्णन और हाल ही के विद्वानों के कुछ चित्रणों के अतिरिक्त हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है, जिस पर हम निर्भर कर सकें। क्योंकि ये चित्रण दूसरे अध्याय के श्लोकों की व्याख्या करते हैं।"[6]

चतुरस्र अवर का विभाजन व्यावहारिक संभागों में होना चाहिए। चतुरस्र अवर के क्षेत्रफल एवं निर्माण के नियम निर्धारित करते समय भरत यह बात स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इस नाट्यमंडप में दर्शकों के बैठने का स्थान सोपाना ति में होना चाहिए अर्थात बैठने का स्थान सीढ़ीदार पंक्तियों में होना चाहिए। इसमें पाँच से अधिक सीढ़ियाँ नहीं बनाई जा सकती। एक अन्य निर्देश से स्पष्ट होता है कि चतुरस्र में रंगशीर्ष और रंगपीठ एक ही धरातल पर होने चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि इसमें वेदिका और मत्तावारिणी भी वर्गाकार नहीं हैं बल्कि आयताकार हो जाती हैं। इनका आकार भी विकृष्ट मध्यम की वेदिका और मत्तवारिणी से आधा रह जाता है। ये कमियाँ दो प्रकार के नाट्यमंडपों में व्यावहारिक विभाजन के एक ही सिद्धान्त के पालन के कारण उत्पन्न होती हैं। जबकि दोनों के आकारों और परिमाणों में अंतर है।

त्रयस्र अवर नाट्यमंडप (32 हाथ समिस्रबाहु) के व्यावहारिक विभाजन पर वास्तव में यह सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता। इसलिए इसकी समीक्षा असंभव है। भरतमुनि ने स्वयं अपने 'नाट्यशास्त्र' में त्रयस्र अवर के विषय में बहुत कम लिखा है। अत: यत्न अपेक्षित नहीं है। देवेंद्र राज अंकुर जी के शब्दों में कहें तो यदि हम "मतवारिणी के इस विवाद को छोड़ दें तो विकृष्ट नाट्यमंडप का प्रस्तुत स्थापत्य नाट्य रचना के साथ अपनी एकरूपता को स्वयमेव ही स्थापित कर लेता है।"[7] नाट्यमंडप के विषय में डॉ० मनमोहन घोष के लेख जो कि 'इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली' (Indian Historical quarterly) में सन 1933 में लिखा था उसकी चर्चा आवश्यक हो। डॉ० घोष ने यह लेख डॉ० मनकद के लेख (सन 1932 में प्रकाशित) 'नाट्यमंडप का निर्माण' (भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' और अभिनवभारती के आधार पर लिखा था) की आलोचना स्वरूप था। डॉ० घोष के लेख से जो बातें स्पष्ट होकर सामने आईं—

1. रंगपीठ और रंगशीर्ष डॉ अलग-अलग स्थान नहीं हैं, बल्कि एक ही स्थान के डॉ नाम हैं। दोनों को पर्यायवाची शब्द माना।

2. नाट्यमंडप का तीन चौथाई भाग प्रेक्षकों के बैठने के रहना चाहिए और एक चौथाई भाग में रंगपीठ तथा नेपथ्य गृह केवल दो भाग रहने चाहिए।
3. नेपथ्य गृह के द्वारों पर पड़े पर्दों को ही यवनिका, पटी आदि कहते हैं।

डॉ० घोष के उपर्युक्त सिद्धांतों की आलोचना डॉ० मनकद, डॉ० राघवन और आचार्य विश्वेश्वर ने अपने लेखों में की है। निष्कर्ष रूप में इन्होंने डॉ० घोष के तीनों ही सिद्धांतों को मिथ्या तथा भ्रमपूर्ण बताया है। अभिनवगुप्त के ही उदाहरणों और भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के श्लोकों से यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि 'रंगशीर्ष' और 'रंगपीठ' नाट्यमंडप में दो भिन्न स्थान हैं। यह मान लेने पर डॉ० घोष की यह स्थापना भी निराधार हो जाती है कि 'यवनिका' नेपथ्य के द्वार पर लगा पर्दा नहीं हैं प्रत्युत 'रंगपीठ' और 'रंगशीर्ष' के बीच में लगी रहती है।

भारतीय शास्त्रीय दृष्टि से उल्लेख किए गए मंचों में आए कुछ शब्दों का विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। उस दृष्टि से नेपथ्य गृह, रंगशीर्ष, रंगपीठ, मतवारिणी आदि शब्दों का आगे विस्तृत विवेचन अपेक्षित है।

नेपथ्य गृह नेपथ्य गृह में भी माप की दृष्टि से मत वैभिन्न्य है। वस्तुत: नेपथ्य में दो द्वार होते हैं, एक उत्तर की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर। ये द्वार अभिनय के बाद पात्रों के विश्राम के लिए तथा रंगमंच पर स्थित पात्रों पर समाजियों की एकाएक दृष्टि बचाने के लिए होते हैं।

रंगशीर्ष—रंगशीर्ष की स्थिति नेपथ्य गृह और रंगपीठ के बीच में मानी गई है। विकृष्ट मध्य मंडप (64 हाथ लंबा और 32 हाथ चौड़ा) में यह 8 हाथ लंबा 32 हाथ चौड़ा के परिमाण का होता है। यह थोड़ा ऊंचा होता है। जैसा कि इसके अर्थ से स्पष्ट होता है। रंगशीर्ष अर्थात 'रंगमंच का सिर'। 'रंगशीर्ष' पर अभिनेता के द्वारा नाटक के आरंभ होने के पूर्व पूजा आदि का विस्तृत विधान है। यही वे वस्त्र आदि से सज्जित होकर आगे के दृश्यों के लिए तैयारी करते हैं। रंगशीर्ष और रंगपीठ के बीच व्यवधान स्वरूप एक पर्दा होता है जिसे 'यवनिका' कहा जाता है। अभिनव ने कहा है कि यदि नाट्य मंडप उत्तान सोए हुए मनुष्य के रूप में माना जाए तो यह स्थान उसके सिर के समान लगेगा। रंगशीर्ष से नेपथ्य में आने जाने के लिए दो द्वारों का भी विधान है। रंगशीर्ष का धरातल कछुए या मछली की पीठ के समान नहीं बनाना चाहिए, वरन शुद्ध दर्पण के तल के समान एक-सा समतल होना चाहिए। समतल रंगशीर्ष ही अच्छा समझा जाता है। रंगशीर्ष में कास्ठ की कला भी आवश्यक है। विकृष्ट मध्यम नाट्य मंडप में रंगशीर्ष, रंगपीठ से एक हस्त ऊँचा होना चाहिए तथा चतुरस्र में रंगशीर्ष-रंगपीठ एक ही धरातल पर होने चाहिए। क्योंकि चतुरस्र का रंगशीर्ष दशकों से उतना दूर नहीं होगा जितना विकृष्ट मध्यम में होगा। चतुरस्र नाट्यमंडप में दर्शकों के लिए सीढ़ियाँ होती हैं। जहाँ से पूरा रंगशीर्ष दिखाई देता है। इसलिए उसे ऊँचा उठाने की आवश्यकता नहीं है।

रंगपीठ—नाट्य मंडप या मंच की रचना में रंगपीठ का स्थान सबसे प्रधान है। रंगपीठ वह स्थान है जहाँ नाट्य का अभिनय होता है। इस दृष्टि से भी इसका महत्व अवलोकनीय है। सारे

नाट्यमंडप की रचना का उद्देश्य अभिनय करना ही होता है। अतः अभिनय करने का स्थान रंगपीठ सभी प्रेक्षकों की दृष्टि का केंद्र बना रहता है। इसकी रचना दो प्रकार से की जा सकती है। (1) इसे परीक्षकों के बैठने के स्थान से ऊँचा बनाया जाए। (2) इसे प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से नीचा बनाया जाए। जहाँ डॉ. मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र के अपने अंग्रेजी अनुवाद में रंगपीठ को प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से नीचा बनाना उचित माना है, वहीं भरत तथा अभिनव गुप्त के मतानुसार रंगपीठ को प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ ऊँचा बनाना चाहिए। इसका सामान्य कारण है कि रंगपीठ तथा रंगशीर्ष में पीठ तथा शीर्ष शब्द ऊँचे स्थान के ही द्योतक हैं। इन दोनों शब्दों से सूचना मिलती है कि प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से अभिनय करने का स्थान अधिक ऊँचा होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि रंगपीठ नीचा बनाया जाएगा तो प्रकाश आदि की रुकावट से अभिनय ठीक से दिखाई ही नहीं देगा। अतः उसको ऊँचा रखने वाला ही पक्ष युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

प्रेक्षक भूमि—भरत ने प्रेक्षकों के बैठने के स्थान का भी सुंदर निर्देश दिया है। प्रेक्षकों का यह स्थान सोपानाकृति में होना चाहिए। आसन लकड़ी या ईंटों के बने रहने चाहिए। दीवारों पर अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ होनी चाहिए। जिनमें विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों तथा लताओं की आकृतियाँ बनी रहनी चाहिए। प्रेक्षकों के बैठने का स्थान ऐसा होना चाहिए कि बीच में एक भी स्तंभ नहीं हो। बैठने का यह स्थान सीढ़ी के समान 1-1 हाथ भूमि से क्रमशः ऊँचा होता जाए, जिससे दर्शक रंगपीठ के सब दृश्यों को अच्छी तरह देख सकें।

मत्तावारणी—मत्तवारणी के नाम, अर्थ, संख्या, आकार तथा स्थान को लेकर विद्वानों में विचार वैभिन्य है। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में मत्तवारणी के विषय में कहा है कि रंगपीठ के दोनों ओर रंग पीठ की ही माप की और चार स्तंभों से युक्त मत्तवारणी की रचना करनी चाहिए। इसके आकार के विषय में दो मत दिए गए हैं। पहले मत के अनुसार मत्तवारणी वर्गाकार होती है। इसकी लंबाई-चौड़ाई 8-8 हाथ होती है। अभिनव गुप्त का अपना मत यही है। किंतु दूसरे लोगों के मत से मत्तवारणी भी रंग पीठ के समान आयताकार बननी चाहिए। उनके मतानुसार इसकी लंबाई 16 हाथ तथा चौड़ाई 8 हाथ की होनी चाहिए। नाट्यशास्त्र में 'मत्तवारणी' शब्द छपा है। परंतु कोश, साहित्य, सुबंधु की वासवदत्ता आदि में 'मत्तवारण' शब्द मिलता है। साहित्य और कोश के प्रमाणों के आधार पर मत्तवारणी या मत्तवारण शब्द का अर्थ 'बरामदा' है। परंतु कुछ आधुनिक विद्वानों ने मत्तवारणी के भिन्न-भिन्न अर्थ दिए हैं। प्रोफेसर सुब्बाराव का नाट्यशास्त्र के द्वितीय संस्करण के परिणामस्वरुप प्रेक्षागृह की रचना के संबंध में एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें मत्तवारणी के संबंध में उन्होंने सर्वथा नवीन कल्पना सामने रखी। इस कल्पना का आधार नाट्यशास्त्र ही है जहाँ मत्तवारणी का प्रयोग एकवचन के रूप में मिलता है। अतः एक ही मत्तवारणी स्वीकार करते हुए प्रो० सुब्बाराव ने रंगपीठ के सामने के धरातल से डेढ़ हाथ उठे हुए भाग की दीवार पर जो पलस्तर पर मत्त हाथियों के चित्रों की श्रेणी को ही 'मत्तवारणी' कहा है।

नाट्यशास्त्र का मराठी में अनुवाद करने वाले महाराष्ट्र के विद्वान प्रो० भानु ने मत्तवारणी का अर्थ किया है जो मत्तों का वारण करे। वे कहते हैं कि कुछ प्रेक्षक नाटक के भावपूर्ण दृश्य देखकर भावावेश में अभिनय करने वाले अभिनेताओं के निकट पहुँचने का प्रयास करते हैं। ये मत्त प्रेक्षक यदि मंच के निकट पहुँच जाएँ तो नाटक में व्यवधान उपस्थित होगा। इसलिए ऐसे प्रेक्षकों को रोकने के लिए रंगपीठ के सामने की ओर छोटी सी दीवार या कटघरा आदि लगाना चाहिए। अतः इस रुकावट को ही मत्तवारणी कहा जाता है।

प्रो० भानु की मत्तवारणी संबंधी व्याख्या को ध्यान में रखते हुए यदि रंगपीठ के सामने मत्तवारणी बना दी जाएगी तो प्रेक्षकों को अभिनय देखने में बाधा उत्पन्न होगी। अतः इस प्रकार की मत्तवारणी का प्रश्न उठाना असंगत होगा। प्रो० भानु द्वारा ग्रहण किए गए मत्तवारणी के अर्थ को हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो ग्रहण किया है जबकि भरतमुनि और अभिनवगुप्त को यह अर्थ अभीष्ट नहीं जान पड़ा। देवेंद्र राज अंकुर जी भी लिखते हैं—"रंगपीठ के दोनों छोरों पर चार-चार स्तंभों से घिरे मत्तवारणी नामक दो अन्य क्षेत्र, जिनकी सही-सही परिकल्पना को लेकर आज तक विवाद है।"[8] नाट्यमंडप में मत्तवारणी के स्थान निर्धारण की समस्या भी सामने आती है। आधुनिक विद्वानों ने मत्तवारणी के जिस स्थान को निश्चित किया है, वह अभिनव गुप्त के मत के विरुद्ध पड़ता है। अभिनव गुप्त के अनुसार मत्तवारणी रंगपीठ के दोनों और होनी चाहिए। जब यह ज्ञात हो जाता है मत्तवारण का अर्थ 'बरामदा' है तब बहुत सरलता से यह बात समझ में आ जाती है कि इसकी रचना मंडप के बाहर होनी चाहिए। बरामदा मुख्य भवन के सदा बाहर ही बनता है, भीतर नहीं। अतः मत्तवारणी की रचना मंडप के बाहर ही करने का विधान किया गया है। चूँकि शास्त्रीय मंच अपने आकार, प्रकार, परिमाण और उपयोग की दृष्टि से अनेक विकल्पों के रूप में हमारे सामने आता है। अतः निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय रंगमंच में शास्त्रीय मंच का स्थापत्य किसी भी नाट्य रचना के अनुरूप एकरूपता स्थापित कर लेता है।

संदर्भ :

1. रंगमंच की कहानी, देवेंद्रराज अंकुर, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्कारण-2021, पृ० 22
2. वही, पृ० 44
3. भारतीय नाट्य सिद्धान्त : उद्‌भव और विकास, डॉ० रामजी पांडेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, प्रथम संस्करण-2000, पृ० 401
4. नाट्यशास्त्र, अध्याय 2, काव्यमाला 21
5. वही, काव्यमाला 12
6. रंग स्थापत्य, कुछ टिप्पणियाँ, एच०वी० शर्मा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, प्रथम संस्कारण, 2004, पृ० 24
7. रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, देवेंद्र राज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्कारण 2006, पृ० 103
8. वही, पृ० 103

❑❑❑

रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, कालका जी मोबाइल : 9717715924, 8130370263

ई-मेल : madhukaushik22@gmail.com

A case study: Anti-India Activities of ISI

–Amandeep Kumar

According to authorities, several recent distress migrations of northern Indians have been attributed to electronic contacts from Pakistan. First indicators of pogrom-style fatalities came on Pakistani online forums, and as part of a synchronized psyops campaign, the probe quickly extended to India. Doctored images and caustic language inundated telecommunications networks, fast gaining trust before law enforcement authorities could intervene. As reported by news outlets, the goal was to stir up widespread public outrage in a divided society and create the political circumstances necessary for an outbreak of communal violence to erupt.

According to reports, an espionage network reportedly operated by Pakistan's external intelligence agency, the Inter-Agencies Intelligence (ISI), has been investigated by India's intelligence services. The ISI has expanded its reach using lawful government facilities, such as the Pakistani High Commission and Consulate in Colombo and Kandy, respectively, to establish staging grounds for anti-India activities. History shows that Pakistan has traditionally used South Asian neighbours such as Nepal, Bangladesh, and the Maldives as bases from which to watch or, in some cases, launch covert operations against India in the past. Following recent allegations, it seems that Pakistan's Inter-Services Intelligence (ISI) has increased its network among Sri Lanka's Muslim minority and disenfranchised Tamil community by relying on the existing trust between the Sri Lankan and Pakistani governments. The extradition of Muhammad Suleiman from Malaysia is also being sought by Indian authorities, who want him to be sent back to India to destroy the ISI's anti-India espionage network, which has spread to Sri Lanka Nepal, the Maldives, and Bangladesh. This paper delves into the ISI's anti-Indian activities in detail.

Keywords: Inter-Services Intelligence, Intelligence, Terrorism, India, Pakistan.

Introduction:

The ISI was established during the 1947 Indo-Pakistani War due to Pakistan's Military Intelligence's poor performance [1]. "When Zia-ul-Haq took power in July 1977, he began implementing his K2 (Kashmir and Khalistan) policy by beginning Operation Tupac" [1]."He tasked ISI with annexing Jammu & Kashmir and sending terrorists to Punjab [1]. According to arrested ISI agents:""the intelligence agency's goal is

to confuse Indian Muslims by using Kashmiri Muslims, to expand the ISI network in India, to cultivate terrorists and terrorist groups, to perpetrate attacks similar to the 1993 Bombay bombings in other cities, and to instil a state of insurgency in Muslim-majority regions" [2]. The ISI is reported to have established bases in Nepal and Bangladesh to conduct operations in North-East India [2].

Spoiler actions hinder grassroots peace attempts and prevent them from gaining a self-sustaining forward momentum that Islamabad may later be unable to control [3]. Thus, civil activity in favour of cordial bilateral relations is rained down. Additionally, these efforts create a political schism between India and its primary security allies [3]. Specified operations, like those carried out in Mumbai in 2008, are also meant to achieve particular objectives, such as channelling domestic "Islamist militancy" onto a foreign target [4].

In response to claims [5], Pakistani officials have accused Indian authorities of avoiding responsibility for the situation in Assam. They argue that India should solve its internal issues rather than blaming Pakistan. Such demands might be plausible if not for "Kargil 1999 and Mumbai 2008" [5]. Pakistani officials first rejected allegations of cross-border participation and accused India of undermining bilateral ties on both instances [6]. However, as the immediate crisis faded and world focus shifted elsewhere, Islamabad determined it was more prudent to disclose its role discreetly. It did so to claim ownership of a sabotaging effort that had harmed bilateral relations and raised the costs of future engagement [5,6].

According to Pakistani authorities, in each of the incidents described above, terrorist acts in India resulted from internal conflicts inside their nation [7]. This constancy in highlighting India's internal divisions is instructive: it shows that Pakistan regards India as a fictitious state plagued by identity-based disputes at the governmental level. If such attitudes dominate official Pakistani thought, they will constitute "a colonial legacy from the British Raj" [7Although this forecast has been proved false so far, persisting societal schisms give some ISI officials optimism that it may eventually come true [8].

According to authorities, several recent distress migrations of northern Indians have been attributed to electronic contacts from Pakistan. [9] First indicators of pogrom-style fatalities came on Pakistani online forums, and as part of a synchronized psyops campaign, the probe quickly extended to India [9]. Doctored images and caustic language inundated telecommunications networks, fast gaining trust before law enforcement authorities could intervene [8,9]. As reported by news outlets, the goal was to stir up widespread public outrage in a divided society and create the political circumstances necessary for an outbreak of communal violence to erupt. When anti-communist riots in Eastern Europe were shown on Pakistani television in 1989, the country utilized a similar strategy to organize Kashmiri Muslims against New Delhi [8,9].

Intelligence agencies must assess if their Pakistani counterparts were only attempting to embarrass India or whether the scare campaign served an essential purpose [10] before proceeding. The Inter-Services Intelligence probably has no strategic objectives about the current conflicts between Bangladeshi immigrants and members of the Bodo tribe [10]. A combination of continual low-visibility subversion and occasional high-visibility operations carried out surreptitiously utilizing local assets, or disposable mercenaries [11] is the favoured approach of the group.

Participation in terrorist attacks

At least three times, the ISI has combined psychological and paramilitary operations [11]. The first incident occurred "in late 1983," in which masked turban-wearing gunmen kidnapped buses in Punjab and slaughtered Hindu passengers on an as-needed basis. Because the assaults that happened during deteriorating Hindu-Sikh tensions were carried out by Sikh separatist militants [12], on the other hand, Eyewitness statements doubt this idea since the assassins' language and demeanour showed a military experience. Additionally, local intelligence could not identify them, indicating that they were not located in Punjab. Similar assaults persisted until early 1984; theories circulated that the masked shooters were "Pakistani Punjabi mercenaries acting as agent provocateurs in a false-flag operation" [12].Whether "the hijackers were Indian or Pakistani", one thing is sure: their actions were intended to increase existing tensions between "Hindus and Sikhs" [13]. The second instance of (suspected) ISI subversion being used to conceal (well established) paramilitary activity happened "in 1993 in Mumbai". A wave of violence in the city sent Hindu-Muslim relations into a tailspin [14]. Some of their co-religionists in the criminal underground plotted retaliation against innocent Muslims, and as a result, they have been subjected to excessive hardship. They planned eleven coordinated explosives around the city in March 1993, targeting districts with a Hindu population led by Dawood Ibrahim. The explosive substance used was classified as military-grade, implying a state source. Indian investigators tracked a detonator seized from one of the bomb locations to Pakistani army ordnance stockpiles [13,14].

Contrary to popular belief, the rioting that preceded the explosion occurred in two distinct waves before the outbreak. It was intended to hold a first spontaneous manifestation of the country's religious differences following the fall of the Babri Masjid [15] in December 1992, followed by a second demonstration in December 1993. Contrary to the difficulties in proving a direct link, circumstantial evidence suggested that Ibrahim's men were responsible for the second wave of disturbances in the city. Ibrahim is said to have fallen under the ISI's sway at this point. In later years, defections from his gang indicated that the Pakistani government had taken control of his shipping fleet, so gaining control over him [16]. Mumbai 2008

is the third instance. The ISI was aware of "Lashkar-e-plot Toiba's strike in Mumbai" [8]. According to testimony from one of the "planners, Zabiuddin Ansari", ISI personnel physically monitored the operation's execution from a control centre in Karachi. The organization even provided the rifles and ammunition used during the procedure[16]."Indian Prime Minister NarendraModi and his national security adviser have maintained that the Mumbai 26/11 attacks were state-sponsored. Even if the Pakistani government was not engaged, it seems that powerful groups inside it were" [16].

This clarifies the context of the assaults. In the autumn of 2008, India became more concerned about a probable terrorist threat posed by Hindu radicals [17]. According to an Indian assessment summarizing evidence obtained during India's questioning of David Headley, the ISI allegedly aided the assaults Lashkar-e-Taiba terrorist charged with complicity in the 2008 Mumbai attacks, said that officials from the ISI and Pakistani Army were engaged in planning the attacks and attended meetings" [18]. It is critical to note that Islamabad's immediate response was to rule out any chance of Pakistani participation [19]. Indian security personnel must now brace themselves for the prospect that this is not the end [20]. As has already occurred in Punjab, there is a risk that ISI agents would use agent provocateurs to create a sectarian flashpoint in the future [20]. It has been reported [20] that Pakistan's intelligence agency is trying to wipe international memories of the 2008 Mumbai terrorist attack. A significant act of internal terrorism in India [21], carried out entirely with indigenous resources, is what it aims to use to accomplish this. Islamabad may therefore argue, sensibly, that even if Pakistan was complicit in the Mumbai attack, India still has a responsibility to clean up its mess [21]. ISI personnel had already met with Maoist leaders in Dubai to discuss the possibility of future collaboration [21]. According to reports, the Maoists demanded military-grade explosives. The ISI has asked that these explosives be deployed on economic targets such as oil refineries to do the possible strategic damage [21].

Even if the ISI backed the Maoists [22], It was decided that the ISI's psyops would continue to focus on identity-based issues rather than ideological-based arguments [22]. The group has exceptional ability in capitalizing on ethnic and linguistic fault lines. A case in point happened when, during the East Pakistan civil war of 1971, the ISI recruited Bihari Muslims [22] into vigilante squads to fight Bengali militants [22], which was a case in point. As another example, during the 1980s [18], it provided covert assistance to Mohajir insurgents in Karachi, a strategy intended to hold Sindhi and Pashtun nationalist movements at bay [18]. However, the agency lacks insight into ultra-leftist rhetoric due to its experience with communist insurgents [18]. Its capacity to connect to central India's peasant and tribal revolutions is likely to be reasonably limited [18]. Following the 2008

Mumbai assault [23], the then-ISI head informed US diplomats that the agency's rogue personnel maybe played a role [23]. The same argument had previously worked effectively for "Pakistan in 1993" [23] when American enquiries regarding the ISI's involvement with Dawood Ibrahim surfaced [23]. The idea of the 'rogue operative' takes advantage of Western listeners' inclination to identify such operators with state adversaries' [23] [23, 24]. The Pakistan army and ISI will use a spoiler operation to underscore their right to veto any democratic procedure that does not include them [23]. Given India's continuous instability due to bad governance and sectarian strife, they will undoubtedly have several chances to combine psychological and paramilitary operations. The Bodo-Bangladeshi dispute will very certainly be one of these [22]."Terrorist modules supported by Pakistan's Inter-Services Intelligence (ISI) have ramped up their operations against India in Nepal" [23]. "Nepal is one of Pakistan's fronts against India. In its efforts, the ISI is collaborating with the Nepalese Army",According to a source [24].Several Pakistani citizens were detained recently by the Nepal Police for reportedly living unlawfully in Nepal [20] and having ties to "Pakistan-based terrorist organizations" [20]. Numerous of them are discovered to be involved in the racket for counterfeiting money. According to sources, counterfeit Indian currency notes are smuggled into India through four routes: "Karachi-Doha-Kathmandu, Pakistan-Oman-Kathmandu, Bangkok-Kathmandu, and Singapore-Kathmandu. For years, Nepal has been a refuge for ISI activities. Nepal has been a haven for radicals and jihadis fleeing India" [20].

On the other side, terrorists funded by the ISI have infiltrated India through Nepal's porous borders [5]. The Pakistani government has also used its missions diplomatic in Nepal [5] to further its anti-Indian agenda, primarily via the trafficking of counterfeit rupee notes [6]. The notable point is that around 97 per cent of Nepal's Muslim population [6] resides in the Terai region, with the remaining 3 per cent concentrated primarily on 'Kathmandu and the western hills" [6]. While "Pakistan's ISI" has stepped up its campaign against India, China-allied vested interests attempt to separate India and Nepal on various problems, particularly the border [25]. However, bilateral commerce between the nations continues to operate normally. Despite the "trouble" in the ties, bilateral trade is intact and expanding [25]. MEA Spokesperson "AnuragSrivastava" [25] said that bilateral commerce between the two nations exceeded $300 million in May [25].

India is Nepal's most significant commercial partner, according to government statistics. "In 2018-19, the bilateral trade reached $8.27 billion. Nepal's exports to India amounted to $508 million that year, whereas India's exports to Nepal were $7.76 billion" [23]. Indian companies are among the country's major investors, accounting for more than 30% [23] of total permitted foreign direct investment. "Around 150 Indian companies operate in Nepal, primarily in

manufacturing, services, and the electricity sector. ITC, Dabur India, Hindustan Unilever, State Bank of India, Manipal Group, and Tata Power are just a few of the significant Indian investors" [24].ZakirNaik and Syed Ali Shah Geelani, the late Kashmiri extreme leader, have previously received information from Turkey on Turkey's founding, which has also been studied [24].

India borders Nepal to the east, west, and south, and China to the north. Nepal has 1808 km of Indian and 1415 km of the Chinese border. Nepal and China have restricted borders, while Nepal and India have free borders. Nepal and India have a 1213 km land border and a 595 km river border [25]. This border connects 20 districts in India and 26 districts in Nepal [25].The Sugauli Treaty of 1816 prohibited Nepal from claiming or relating to the nations west of the Kali. From the Acting Chief Secretary of India to the Commissioner of Kumaon in March 1817, it was decided that the six villages east of the Kali River belonged to Nepal. The Surveyor General of India identified the river coming from the Limpiyadhura mountain as the Kalee (Kali) River in 1856 [26]. However, the Survey of India named the Lipu rivulet (originating from Lipulekh) the Kali River (1865-1869 and 1871-1877). The river was named KutiYangdi on the map. As promised in the Sugauli treaty, Nepal's boundary was redirected south then east, following the watershed ridge to Omparbat[26].

Conclusion:

According to the study, during the 2020 conflict between Azerbaijan and Armenia, some Islamic extremist groups in India spoke out in support of Azerbaijan and addressed a petition to the United Nations [6]. Turkey and Pakistan, it should be mentioned, are pro-Azerbaijan. India does not publicly support Armenia, but in September 2019, Prime Minister Modi demonstrated his commitment to the country by meeting with President Nicole Pashian on his visit to the United States [6]. According to reports, since Erdogan's administration took office in Turkey, the country's position has been chiefly anti-Indian [6].The long-running border conflicts between India and Nepal have enraged Nepalese nationalists and alienated India. Under the Mutual Legal Aid Treaty, India's security forces work with their Malaysian and Sri Lankan counterparts to fight against ISI's harmful intelligence efforts. This helps them investigate, prosecute, and prevent crime together. Reports of Muslim radicalization in northern and eastern Sri Lanka, on the other hand, make it simple for Pakistan's intelligence service to discover persons who would assist it in espionage against India [8]. Pakistani people go to Sri Lanka more often because it is easy to travel between them. However, India's security agencies are worried about people overstaying their visas, trying to get asylum, and becoming permanent residents through marriage to people from other countries, so this research paper discusses a case study of the anti-Indian activity of ISI.

References:

1. Jessica Stern, 'Pakistan's Jihad Culture, *Foreign Affairs*, November/December 2000, accessed online at http://www.hks.harvard.edu/fs/jstern/pakistan.htm, on August 20 2012.
2. See also, "Pakistan recalls ISI handler from its Colombo mission," The Island, October 15, 2012, http://www.island.lk/index.php?page_cat=article-details&page=article-details&code_title=63883.
3. https://www.ndtv.com/world-news/isi-used-let-for-anti-india-activities-un-report-415505.
4. https://www.sundayguardianlive.com/news/isi-backed-groups-nepal-intensify-anti-india-activities
5. https://news24online.com/news/world/turkey-helping-pakistans-isi-conduct-anti-india-activities-warn-intelligence-agencies-b7c18049/
6. Pike, John (July 25 2002). "Directorate for Inter-Services Intelligence". Federation of American Scientists. Retrieved June 25 2012.
7. "Daily Describes Activities of ISI in India". *The Pioneer*. Federation of American Scientists. June 30 1999. Retrieved June 25 2012.
8. Raman, B. "PAKISTAN'S INTER-SERVICES INTELLIGENCE (ISI)". Retrieved June 25 2012.
9. "International Sikh Youth Federation (ISYF) South Asia Terrorism Portal article". The Institute for Conflict Management. Retrieved June 25 2012.
10. Mehtab Ali Shah (1997). *The foreign policy of Pakistan: ethnic impacts on diplomacy, 1971-1994*. I.B.Tauris. pp. 149–. ISBN 978-1-86064-169-5.
11. Nanjappa, Vicky (June 10 2008). "200 Pak organizations raise funds for terror: IB" (in English). Rediff.com. Retrieved June 25 2012.
12. M. G. Chitkara (January 1 2003). *Combating Terrorism*. APH Publishing. p. 296. ISBN 978-81-7648-415-2. Retrieved June 25 2012.
13. "Directorate for Inter-Services Intelligence". GlobalSecurity.org. Retrieved June 28 2012.
14. Jump up to:9.0 9.1 Ghosh 2000 pg.3
15. Jump up to:10.0 10.1 Ghosh 2000 pg.8
16. Does Obama understand his biggest foreign-policy challenge?, Salon.com, 2008-12-12
17. Jump up to:12.0 12.1 Pakistani Militants Admit Role in Siege, Official Says, The New York Times, 2009-01-01
18. Ashley J. Tellis (March 11 2010). "Bad Company – Lashkar-e-Tayyiba and the Growing Ambition of Islamist Militancy in Pakistan" (PDF). Carnegie Endowment for International Peace.
19. Curtis, Lisa (2010-03-11). "Testimony to US Congress Committee on Foreign Affairs".
20. Lashkar-e-Taiba, *Eyespymag*
21. "Saudis helped India nab 26/11 handler Abu Jundal". June 25 2012. Archived from the original on 2012-06-25. It was retrieved on June 25 2012.
22. Jump up to:17.0 17.1 "Indian gov't: Pakistan spies tied to Mumbai siege". *news.yahoo.com*. October 19 2010. Archived from the original on October 21 2010. It was retrieved on October 20 2010.
23. Jump up to:18.0 18.1 "Report: Pakistan Spies Tied to Mumbai Siege". Fox News. October 19 2010. Archived from the original on November 22 2010. They were retrieved on October 20 2010.
24. CNN (September 30 2006). "Pakistan spy agency behind Mumbai bombings". CNN. Retrieved September 30 2006.
25. Ghosh 2000 pg.101
26. Jump up to:21.0 21.1 Ghosh 2000 pg.102

❒❒❒

Research Scholar, Defence& Strategic studies, MDU Rohtak, amandeep4119@gmail.com

Research Article

Drug Patent Issues In IPR vis-a-vis Public Health

–Dr. Vibha Srivastava

The Indian Patents Act 1970 and its various amendments of 2002 and 2005 made in compliance with international obligations is a robust and advanced patent law in the world. The Patents Act, 1970 came into force in the year 1972, amending and incorporating the existing laws relating to Patents and Designs act 1911 in India. The Patent (amendment) Act 2005 came into force from 1stJanuary 2005, which brought changes in the previous patent system of India wherein product patent was extended to all subjects of technology consisting of food, drugs, chemicals and micro organisms.

Health means to carry on with an existence without sickness or torment and furthermore a state with complete prosperity actually as well as intellectually and socially. Medical care as indicated by WHO, on the other hand, is defined to prevent, treat, or deal with any illness through the goods and services planned and advertised. Different international conventions like UDHR in Article 27(2) and ICESCR in Article 15 (1)(c) connect IPR's and human rights and gives the premise to basic freedoms for patent privileges or different types of IPR's

All medicines in India were generics before 2005 because there were no product patents for pharmaceuticals. India became fully TRIPS compliant in 2005 through the introduction of pharmaceutical patents, with legislation that included safeguards to protect public health. "Section 3(d) **India's Patent Act** is India's own specialty; it was included to prevent the extension of patent protection through minor product modifications, unless a 'significant enhancement of efficacy' can be demonstrated. Marred by expensive medicines, disparity with government and the pharmaceutical companies, increased tax slabs, more import duty, threat to pull out of business and growing escalation of unrealistic demands while not bridging the supply chain of essential and affordable drugs is making our mortality rate a number that cannot be ignored or misrepresented for the sake of public relations. This manuscript tries to study gravely at the worldwide and countrywide stage two bodies of law, human right to health and IPRs with a purpose to take a look to positive center troubles along with how in spite of the interactions concluded among each the our

bodies of regulation on the global stage. The monopoly right conferred via intellectual property legislations transgresses the right to health particularly right to access to drug through the practice of ever-greening and threat of trade sanctions or corporate litigation from both pharmaceutical companies and developed countries.

Key Words: TRIPS agreement, Public heath, Intellectual property rights, drug patent, Doha declaration.

Introduction

As the developed and industrialized nations and it is media houses blames in its various propaganda attempt that India don't respects International Conventions on intellectual property laws particularly in reference to denial of grant of patents to pharmaceutical formulations, and subsequent action of compulsory license to domestic manufacturers, the discussion on India's drug patenting vis-à-vis public health assumes serious attention. It is noted that a certain members of developed nations is attribute to the lawful refusal of patent rights by Indian regulator to improved drug combinations and formulations is an act of stealing with the primary intention benefitting large Indian pharmaceutical manufacturers of cheap generic medicines to cater to the needs of millions of people who has no access to medicines manufactured by patent holders. Therefore, in this work, the nature of drug patents, the law of compulsory licensing in public health and interest is being discussed hereunder with reference to leading case laws of Novarties and Bayer Corporation.

Meaning of Intellectual Property

An intellectual is a person who uses his or her intellect to work, study, reflect, speculate on, or ask and answer questions with regard to a variety of different ideas. Cultural "intellectuals" are persons with notable expertise in culture and the arts, expertise which allows them some cultural authority, and who then use that authority to speak in public on other such matters.

Classification of Intellectual Properties

Properties are of two types one is tangible property and the other is intangible property i.e. one that is physically present and the other which is not in any physical form. Building, land, house, cash, jewellery are few examples of tangible properties which can be seen and felt physically. On the other hand there is a kind of valuable property that cannot be felt physically as it does not have a physical form. Intellectual property is one of the forms of intangible property, which commands a material value that can also be higher than the value of a tangible asset or property.

India is a signatory to the agreement establishing the World Trade Organization (WTO), which came into force on 1.1.95. The WTO Agreement, inter alia, contains an Agreement on Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPS), which prescribes the minimum standards to be adopted within stipulated time frame by the member countries in respect of the following seven areas of intellectual property:

Rights Protected Under Intellectual Property

Intellectual property rights is a collective term used for following independent IP rights which can be collectively used for protecting different aspects of an inventive work and are classified as :-

1. Patents
2. Copyrights
3. Trademarks
4. Industrial design
5. Protection of Integrated Circuits
6. layout design,
7. Geographical indications, and
8. Biodiversity
9. Plant varieties

Intellectual property is a creation of mind and intellect, such creation which has the capability of commercial exploitation. Intellectual property refers to creations of the mind: inventions, literary and artistic works, and symbols, names, images, and designs used in commerce. Intellectual property relates to knowledge and information which can be incorporated in tangible objects and can be commercially exploited by giving a right of usage by the holder of the right over such property.

The Law of Drug Patent

The Indian Patents Act 1970 and its various amendments of 2002 and 2005 made in compliance with international obligations is a robust and advanced patent law in the world. The Patents Act, 1970 came into force in the year 1972, amending and incorporating the existing laws relating to Patents and Designs act 1911 in India. The Patent (amendment) Act 2005 came into force from 1stJanuary 2005, which brought changes in the previous patent system of India wherein product patent was extended to all subjects of technology consisting of food, drugs, chemicals and micro organisms.

Moreover, Section 3(d) introduced in to the said amendment act 2005 and introduces pharmaceutical product patents in India for the first time. The Patent (amendment) Act 2005 defines what invention is and makes it clear that any existing knowledge or thing cannot be patented. The provision defines that a 'novelty' standard - which, along with 'non-obviousness' or 'inventive step' and industrial applicability, are the three prerequisites for 'patentability'. "Discovery" essentially refers to finding out something which already existed in nature but was unknown or unrecognized. Therefore, discoveries are excluded from patent protection under section 3 of the Indian Patent Act 1970.

The revolution in Indian Pharmaceutical Sector

The patent policy pursued by India enabled it to become a big international player in the generic drug market. The patent policy of 1970 dramatically changed

India's condition. This legislation implemented in 1972 made pharmaceutical product innovations, as well as those for food and agrochemicals, un patentable in India thus greatly weakening IPR protection. It allowed innovations patented elsewhere to be freely copied and marketed in India. Therefore foreign firms did not find patenting in India worthwhile. This act further restricted import of finished formulations, imposed high tariff rates and introduced strict price control regulation with the 1970. Drugs Price Control Order. This gave a boost to the Indian pharmaceutical industry. In 30 years, the Indian pharmaceutical industry is valued at USD 70 billion compared to a mere USD 2.1 million before 1970. Currently 24000 pharmaceutical companies are licensed in India. Of the 465 bulk drugs used in India, approximately 425 are manufactured within the country. Indian industry has emerged as a world leader in the production of several bulk drugs. Indian industry has emerged as a leader for the production of bulk drugs like sulpha methoxazole and ethambutol. Indian production accounts for nearly 50% of the world production.

TRIPS patent policy requires developing countries to only award product patents. Novel processes will not be patentable in developing countries since these countries do not use process by product claims. Consequentially, inventions patentable in developed nations by use of process by product claim will fall outside TRIPS compliant patent legislation of developing nations. Some generic drugs patentable in developed nation using process by product claim will be unprotected in developing nations. TRIPS, the intellectual property component of the Uruguay round of the GATT Treaty, have given rise to an acrimonious debate between the developed countries and less developed countries (LDCs). Business interests in the developed world claimed large losses from the imitation and use of their innovations in LDCs. They also asserted that IPRs would benefit the developing countries like India by encouraging foreign investment, by enabling transfer of technology and greater domestic research and development (R&D). On the other side, LDC governments were worried about the higher prices that stronger IPRs would entail and about the harm that their introduction might cause to infant high tech industries.

Indian drug manufacturers believed exclusive marketing rights (EMR) would lead to the destruction of the local drug industry and that it was more restrictive than even the product patent regime. They argued that foreign drug companies would get the right for exclusive marketing in India before going through an examination in India. Indian manufacturers also felt that EMRs did not foreign multinationals to take over the market. However, the biggest impediment to the implementation of the EMR legislation was the fear that the cost of medicines would increase substantially. It was also feared that the Indian drug companies would be driven out of business.

Growth of Indian Pharmaceutical Industry

India's drugs and pharmaceuticals industry is likely to post total sales of Rs.2.91 trillion ($47.88 billion) by 2018, with an average yearly growth of at least 14%, aided by a rapidly growing domestic market and the newly emerging export opportunity as patents of at least a dozen blockbuster drugs in the US expire in the next three years. "During 20142016, about $92 billion worth patented drugs are expected to go off patent in the US as compared with $65 billion during 201012," says an industry analysis report released on Wednesday by Care Ratings, India's second largest credit rating agency. The domestic drugs industry, which is valued at Rs. 1.6 trillion at present, according to Care Ratings, is also expected to grow in the local market with aggressive rural penetration by drug makers, increased government spending on health and growing health awareness among people.

large number of drugs going off patent in the US presents opportunities for local generic drug makers including Sun Pharmaceutical Industries Ltd, Lupin Ltd, Dr Reddy's Laboratories Ltd and Cipla Ltd among others. Some of the important drugs whose patent will expire this year include Teva Pharmaceutical industries Ltd's multiple sclerosis brand Capaxone, which had sales of $4.3 billion in 2013, AstraZeneca SA's hyperacidity drug Nexium, which had sales of $3.9 billion, and Boehringer Ingelheim's cardiac drug Micardis, which had sales of $2.2 billion.3 The Indian pharmaceutical market size is expected to grow to US$ 100 billion by 2025, driven by increasing consumer spending, rapid urbanization, and raising healthcare insurance among others. Going forward, better growth in domestic sales would also depend on the ability of companies to align their product portfolio towards chronic therapies for diseases such as such as cardiovascular, anti-diabetes, anti-depressants and anti-cancers that are on the rise.4

The Concept of Generic Drugs

Once the patent on a drug expires, it is termed a "generic". Till now Indian firms enjoyed tremendous advantage in the generics market, which might be somewhat eroded post 2004. However India enjoys the advantage of lower manufacturing costs and capital costs. Moreover it is a significant player in the bulk drugs business and Indian firms are leveraging this fact to become important players) in the formulations market, regardless of whether they will continue to enjoy the first mover advantage. Other than developing indigenous pharmaceuticals, India has grown as a major player in the international generic drugs market. The U.S during the Anthrax scare considered importing cheap generic drugs from India. India emerged as a reliable exporter of the generic AIDS drugs in South African AIDS crises. Some other examples, the cost of ciprofloxacin were Rs. 27 (60 cents) per tablet eight year ago in India. The cost of ciprofloxacin currently is Rs. 1.50 (4 cents). Indian drug makers export the generic version of ciprofloxacin

to Russia, Brazil, Southeast Asia and Middle East at highly competitive prices.

The Doctrine of Evergreening:

"Evergreening" is a term used to label practices that have developed in certain jurisdictions wherein a trifling change is made to an existing product, and claimed as a new invention. The coverage/protection afforded by the alleged new invention is then used to extend the patentee's exclusive rights over the product, preventing competition. Hence, any slight modification in the chemical composition may present an everlasting opportunity to the patent holder of an drug to hold patents continuously beyond its term of exclusive rights otherwise afforded to him by the original and novel drug. This clearly demonstrated in quantifying his profits and does not any way encourages original research in new discoveries or breakthroughs.

Effect on pharmaceutical production in India

If India bows to the international pressures, against the non-patentability of slightly improved drugs and grants patent protection, patent owning firms may choose either to export their patented drugs to India, thereby replacing domestic production, or they may choose to produce in India through a subsidiary or under license to Indian firms creating monopolies and huge prices which will be detrimental to the public health policy. Even the Drug Price Control Order may not act as a hindrance. Ceiling prices are determined as a markup on input costs. This means that there is a 'transfer price loophole'. An MNC may export the patented active ingredient to its Indian subsidiary at an artificially high transfer price and thereby attain a higher controlled price for its formulations besides hindering competition and further original research in drug discovery. This would give patent owning MNCs an incentive to produce bulk drug inputs elsewhere and then import them into India. While the availability of strong intellectual property protection is necessary, other considerations, like tax advantages, are also important in choosing a manufacturing location for on patent drugs. Further, unlike generic drugs, manufacturing costs are a small component of the price of patented drugs and therefore India's advantages as a low cost manufacturer would not be particularly useful in attracting investment in local production facilities. So, while the largest part of pharmaceutical production should be unaffected, only some part of the local production of on patent drugs will be replaced by imports. Nevertheless, import of life saving drugs would cost huge and most population of the country could not afford such medicines.

Public Health Policy And IPR

Since India being second most populous country in the world and houses more number of people of old age, the health concerns assumes serious attention form the Government of India. Therefore, a well balancing of protection of drugs as per patent laws and promotion of public health has to be done in a reasonable manner.

Public Health Concerns

In spite of such aggressive development of the indigenous pharmaceutical industry, only a mere 30% of Indian population has secured access to modern medications. Until the entire population has access to drugs India has to follow the pre-TRIPS patent policy.

The Doctrine of Compulsory License

Compulsory licensing is when a government allows someone else to produce the patented product or process without the consent of the patent owner. It is one of the flexibilities on patent protection included in the WTO's agreement on intellectual property — the TRIPS (Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights) Agreement. Section 84 of Patents Act, 1970 provides compulsory license in its Chapter XVI under the heading of working of Patents, Compulsory Licenses, and Revocation.

Doha Declaration on TRIPS and Public Health

Doha declaration of 2001 has two provisions to do with least-developed countries and countries that do not have production capacity directly involved changes to the rules of the TRIPS Agreement. For the main part the declaration was important for clarifying the TRIPS Agreement's flexibilities and assuring governments that they can use the flexibilities, because some governments were unsure about how the flexibilities would be interpreted. Let's focus on the general case first. As for as compulsory licensing is concerned, it stipulated a condition that the generic copy is produced mainly for the domestic market, not for export. However, the patent owner still has rights over the patent, including a right to be paid for the authorized copies of the products.

Further, the TRIPS Agreement does not specifically list the reasons that might be used to justify compulsory licensing. However, the Doha Declaration on TRIPS and Public Health confirms that countries are free to determine the grounds for granting compulsory licences.

The TRIPS Agreement does list a number of conditions for issuing compulsory licences, in Article 31. Compulsory licensing must meet certain additional requirements: it cannot be given exclusively to licensees (e.g. the patent-holder can continue to produce), and it should be subject to legal review in the country. For "national emergencies", "other circumstances of extreme urgency" or "public non-commercial use" (or "government use") or anti-competitive practices, there is no need to try first for a voluntary licence. It's the only instance when the TRIPS Agreement specifically links emergencies to compulsory licensing: the purpose is to say that the first step of negotiating a voluntary licence can be bypassed in order to save time. But the patent owner still has to be paid. The TRIPS Agreement says the patent owner must be given the right to appeal in that country as well.

The Waiver Doctrine

The compulsory licences must be granted mainly to supply the domestic market (paragraph (f) of Article 31). The 2001 Doha Ministerial Conference decided that this should be changed so that countries unable to manufacture the pharmaceuticals could obtain cheaper copies elsewhere if necessary. The legal means of making the change was agreed on 30 August 2003 when the General Council decided to waive the provision, allowing generic copies made under compulsory licences to be exported to countries that lack production capacity, provided certain conditions and procedures are followed.

All WTO member countries are eligible to import under this decision, but 23 developed countries are listed in the decision as announcing that they will not use the system to import: Australia, Austria, Belgium, Canada, Denmark, Finland, France, Germany, Greece, Iceland, Ireland, Italy, Japan, Luxembourg, Netherlands, New Zealand, Norway, Portugal, Spain, Sweden, Switzerland, United Kingdom and the US. Since they joined the EU, the list now includes 10 more: Czech Republic, Cyprus, Estonia, Hungary, Latvia, Lithuania, Malta, Poland, Slovak Republic and Slovenia.

As recorded in a separate statement that is not part of the waiver, 11 other members announced voluntarily that they would only use the system as importers in situations of national emergency or other circumstances of extreme urgency: Hong Kong China, Israel, Korea, Kuwait, Macao China, Mexico, Qatar, Singapore, Chinese Taipei, Turkey, and United Arab Emirates.

The WTO waiver on its own is not enough. To use the system, potential exporting countries probably have to change their laws too. This is where their laws complied with the original TRIPS provision by requiring production under compulsory licensing to be predominantly for the domestic market. So far Norway, Canada, India and the EU have formally informed the TRIPS Council that they have done so.

Effect on Least-Developed Countries

LDC's can now delay protecting pharmaceutical patents until 2016. So long as a medicine is not patented in a least-developed country, the government does not need to issue a compulsory licence to import. But the supplying country would have to issue a compulsory licence to export a generic copy of a medicine that is patented in that country.

If a compulsory licence is issued it could be only under the original TRIPS Agreement and not under the newer 2003 decision. The 2003 decision (sometimes called the "Paragraph 6" decision because it refers to that that paragraph of the Doha declaration) only deals with compulsory licences to produce for export. Many news stories are about the possibility of issuing compulsory licences to supply domestic markets

Conclusion

Though India started registering pharmaceutical drugs for patents in compliance with WTO-TRIPS agreements, it has showcased its public accountability and responsibility in answering the public health concern of large population in awarding first compulsory license to NATCO to produce the generic equivalent of Nexaver - a sorafenib tosylate composition at much a cheaper rate to help the cancer patients.

However, there is indication that India in private accepted the condition of multinationals particularly USA that compulsory license should not be issued any further7. Médecins Sans Frontières' (MSF) and civil society organizations has continuing its efforts to strengthen the compulsory license regime to answer public health issues in the name of humanity and the GoI expected to honor its bounding duty towards public health by awarding compulsory license for life saving diseases.

Referances :

1. Emmanuel Kolawole Oke, Incorporating a right to health perspective into the resolution of patent law disputes, Health and Human Rights Journal 2013, Vol 2, p. 23
2. AIR 2013 SC 1311
3. Agreement on Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPS), Annex 1C of the Marrakesh Agreement Establishing the World Trade Organization (WTO) (1994), 1869 U.N.T.S. 299, 33 I.L.M. 1197 (1994).
4. G. Dutfield, Intellectual property rights and the life science industries: Past, present and future, 2nd ed. (Singapore: World Scientific Publishing, 2009), pp. 315–316.
5. G. Dutfield, Supra Note 4.
6. E. Schiff, Industrialization without national patents: The Netherlands, 1869–1912, Switzerland, 1850–1907 (Princeton, NJ: Princeton University Press, 1971).
7. B. Lindstrom, "Scaling back TRIPS-plus: An analysis of intellectual property provisions in trade agreements and implications for Asia and the Pacific," *New York University Journal of International Law and Politics* 42 (2010), p. 917.
8. E. M. Anderson, "Unnecessary deaths and unnecessary costs: Getting patented drugs to patients most in need,"*Boston College Third World Law Journal* 29/1 (2009), p. 85.
9. WTO General Council, "Amendment of the TRIPS Agreement," Decision of 6 December 2005, WT/L/641.
10. Justice V R Krishna Iyer, Human health and patent law, Frontline, Volume 17 – Issue 21, Oct. 14 – 27, 2000
11. M. V. Hristova, "Are intellectual property rights human rights? Patent protection and the right to health," *Journal of the Patent & Trademark Office Society* 93/3 (2011), p. 356
12. M. V. Hristova, "Are intellectual property rights human rights? Patent protection and the right to health," *Journal of the Patent & Trademark Office Society* 93/3 (2011), p. 356
13. Novartis AG vs Union of India, AIR 2013 SC 1311

❒❒❒

Associate Professor, H.R Institute of Law, Ghaziabad

Impinging and Enslavement in Kamala Markandaya's novels *Nectar in a Sieve* and *The Coffer Dams*

–Dr. M.N.V. Preya

Later on when the natives face problems of survival they feel disgusted at the construction project. When their land is encroached they are shocked. They work day and night like animals but the British officers have no sympathy for the tribals. They treat them like bonded labourers and often they are wage less.The simple tribals look with awe and amazemeatnt the hovering of helicopters and the constant operation of cranes in the jungle. They are too primitive to understand the need for the construction project in their hilly region.

As the Western culture is predominantly present in the psyche of Kamala Markandaya due to her exposure to the West for quite a long time, she realistically portrays the conflicting relationship between the East and West. Though the efficiency of the West and the Spirituality of the East confront each other, the novelist underscores the compromise between the two in several occasions.

Key words : Turmoils, encroachment, suppression, oppression, industrialization

The two organic evils inherent in any social order are impinging and enslavement. "Trespass upon the property, domain rights of another, especially stealthily or by gradual advances is encroachment" according to Webster's Encyclopedia. An individual is exploited whenever advantage is taken of his ignorance or tolerance, his weakness or weariness or to seize his goods compulsorily or demand his services at less cost. It is common factor that the rich rob the poor of their land or property. Moreover, the landlords draw their resources from the fertile and cultivated fields and swallow their wealth while the farmers or cultivators die of hunger and are never allowed to enjoy their booty.

Kamala Markandaya has first-hand knowledge of the troubles and turmoils of the Indian lower rung because of encroachment and exploitation. Her novels Nectar in a Sieve and The Coffer Dams are records of the suppression and oppression of the farmers and tribals because of the advent of industrialization and the introduction of western technology.

Kamala Markandaya's *Nectar in a Sieve* is a realistic portrayal of the impact of industrialization on a farming community in a remote village in South India.

Joseph remarks that," Kamala Markandaya's Nectar in a Sieve is an artistic and realistic depiction of the exodus caused by the infringement of modern industry on the traditional village community and the age-old rural way of life and consequent rootlessness"(38). The tannery encroaches the village and most of the land is acquired for a high price by the White Sahib. The village land owners, tempted by the lure of money sell their landto the tannery. By seeing this Rukmanisays, "they had invaded our village with clatter and din, had taken from us the maidan where our children played, and had made the bazaar prices too high for us" (NS 27-28).

The tannery owners laid the foundations of an industrialized society based on the principles of exploitation of labour. The villagers led a happy and healthy life before the tannery encroached their soil. The atmosphere of the village is turned to be noisy, stinking and over crowded because of the tannery. It not only breaks the ecology but also the economy of the village in a rough manner. This makes Rukmani rage against the installation of the tannery in the village. Nathan angrily says to Rukmani "Foolish woman, there is no going back. Bend like the grass that you do not break" (NS 28).Due to the establishment of the tannery, the whole structure of the village collapses. As a result, there is a price hike and the poor villagers are unable to buy things. According to Rukmani, the tannery exemplifies modernization, exploitation of the poor labourers, and destruction of the whole village community.

Just as the tannery is the cause of dispossession of the villagers in *Nectar in a Sieve,* and the tribals of a remote village in *The Coffer Dams* become dispossessed due to dam-buildingding project.Katamble points out:"The Coffer Dam, one of the latest novels on the theme of the 'technological Invasion' coupled with the East-West encounter, we find a depiction of the conflict and reconciliation between man and machine with reference to the construction of a dam on a river near a tribal village in south India" (54). The rustics are forced to vacate their familiar abode because the construction engineers require the place for building their sophisticated bungalows. As the tribal colonya the suitable place to construct the English dwelling the tribals are forced to quit. They find that no other arrangement is made for their accommodation. They become passive victims and the aliens exploit them endlessly.

Kamala Markandaya makes the encroachment of the westerners in the tribal village explicit when they construct a dam across the river. Thetribalsare asked to leave the place where they livid. The tribals are dislodged from the site of the dam. In this context Bashiam remarks, 'when they were told to go, they went without protest. Just got up and walked away, like animals. They didn't want to leave it; they were persuaded" (CD 56-57).The innocent natives look upon Clinton as a man of wealth and sophistication. But he is a typical English "builder".

For him concrete and steel are matters of concern rather than human beings with flesh and blood. Afzal Khan shows Clinton as “an arch realist and pragmatist, who has no sympathy for the mythic, spiritual propensities of local people” (124). In the beginning, the villagers and tribals welcome the construction of the dam very warmly. They say that it is a boon of technology. Bashim one of the tribals tells happily to Helen” Machines are to me what they are to your husband. They have given me another way of life” (CD 54).

Later on when the natives face problems of survival they feel disgusted at the construction project. When their land is encroached they are shocked. They work day and night like animals but the British officers have no sympathy for the tribals. They treat them like bonded labourers and often they are wage less.The simple tribals look with awe and amazemeatnt the hovering of helicopters and the constant operation of cranes in the jungle. They are too primitive to understand the need for the construction project in their hilly region. The plan for constructing a dam across the river gets finalized. “A year for the diversion channel to take the altered course of the river. A concurrent year for the coffer dams to stem its flow. Two years for the main dam to rise between the coffers” (CD 20). The tribals are too passive even to protest against the scheme of the west. They are exploited unawares.

The sinister consequences of industrialization and modernization, fall with a bang on the farming community in Nectar in a Sieve and the tribal flocks in The Coffer Dams. Both the groups are exploited ruthlessly by the west and they are silent sufferers. Like a herd of cattle, they swallow their sorrow in secret. They cannot raise their voice to question the white men who are in possession of their land. They raise their brow in suspense without knowing the course of action.In Nectar in a Sieve, Rukmani and Nathan, the farmer couple, and many families in the village are affected by the tannery. Industrialization not only upsets the agrarian economy of the villagers but also has a great impact on the lives of the villagers. The Victorian writers were opposed to industrialization when it was introduced in England.William Morris hated the advent of industrialization because it destroyed the harmony of the countryside and John Ruskin simply stood for rural society. Kamala Markandaya also shares this aversion to industrialization because it is an agent of exploitation. She projects her view through Rukmani when the tannery causes the disintegration of families in the village. Rukmani ruminates: “My sons had left because it frowned on them; one of them had been destroyedby its ruthlessness. And there were others its touch had scathed. Janaki, and her family, the hapless Chakkli Kannan, Kunthieven” (NS 134).

Nathan and Rukmani suffer the pangs of hunger due to poverty. Rukmani has little rice in her store and hopes that times will be better. Kenny shouts at her, “Times are better, times are better. Times will not be better for many

months.Meanwhile you will suffer and die” (NS4).The crops in the field are completely destroyed and their barn is empty. They have to wait in suspense until the next harvest. They have to live on salted fish, roots and leaves, the fruits of the prickly pear and plantains. Another evil effect of industrialization is that the young men of the village are weaned away from the land and they seek employment in the tannery in spite of their mother’s strong opposition. When the children starve without food Arjun, Rukmani’s eldest son makes a quick decision not to work as a tenant farmer and join in the tannery. To his mother he replies, “I am tired of seeing my brothers hungry. I do not care; the important thing is to eat” (NS 51).

The tannery remains closed for two days due to the conflict between the labourers and the management. Arjun and Thambi join many meetings that take place against the officials of the tannery because they realize that they are exploited by the west. Thambi says that, “We shall not go back until our demands are met. We do not ask for charity, but for that which is our due”(NS 65). They understand that it is capitalistic exploitation and oppression of the common labourer. Rukmani tells Nathan, “Did I not say no good would come to it? Now look into what mess your sons have led us!”(NS 66). Due to poverty both Arjun and Thambi decide to go to Ceylon, a distant land to be lost forever. The third son Murugan goes to the city to search for his livelihood. Their pangs of hunger are so great that they eat grass. Among all the members of the family, Kuti, the youngest son suffers intensely.Unable to bear the suffering of Kuti, Ira sells her flesh to feed him. Ira is an image of human degradation that hunger brings because of industrialization. Rukmani, the mother is pained because of the moral lapse of Ira and she utters sadly,” Ira had ruined herself at the hands of the throngs that the tannery attracted.”(NS 134).Though her parents try to persuade her against her sinful way of earning money, she clings to it, for she must save her starving brother and hungry parents.Rukmani’s son Raja is an employee in the tannery and he is accused of stealing a calf- skin. The tannery officials are so cruel and hard- hearted, that he is beaten to death. Rukmani cannot believe that her Raja is a thief. She utters painfully,”You cannot blame my son, we live from hand to mouth, as you can see […] there is no wealth here, such as your goods might have brought”(NS 91).The tannery not only shatters Rukmani’s family but also destroys other families in the village. Janaki’s family has to quit the village in order to earn their livelihood. The village cobbler is left jobless and he leaves his native abode to find pastures new. Old granny dies at the street due to starvation.

Kunti welcomes industrialization at first and later she herself becomes a victim of its destructive forces. Kamala Markandaya reveals how man is exploited by modern industrialization. She strikes both at nature and the landlordism in rural India.Nectar in a sieve is the fictional epic on Indian life, which reveals thehavoc

of hunger, the evils of industrialization, the tension between tradition and modernity and nature both in its pink petals and red claws, from the matrix of human existence in rural India.Nathan and Rukmani suffer in their village and later they are forced to leave their native soil. Rukmani's observation is heart-rending. Nathan is an average man, a simple son of the soil and he draws all his sustenance from his own land. When the agent of the landlord demands the dues that he has to pay Nathan stands as a helpless man. When he is asked to quit the land he is baffled. He is forced to forfeit his role as a farmer and its simple dignity. He cannot think of a life away from his beloved land in which he has been sweating for nearly thirty years.Rukmani and Nathan sojourn to the city to trace their son in vain. They are reduced to the state of beggars. They work in a stone-quarry as stone breakers, an unfamiliar job which tests their nerves. Nathan is completely broken because of the mental and physical stress. He thinks that it is better to go to the village than to suffer in a new place. He tells Rukmani, "Better to starve, where we were bred than live here" (NS 167). Nathan passes away due to starvation and sufferings.

Similarly, in *The Coffer Dams,*the tribals suffer intensely. Clinton, the chief engineer wants to complete the dam construction according to the agreed schedule before the monsoon. He is least bothered about the tribes. Clinton is not at all drawn to the emotional and mythic suffering of the Indians, but only to the emotional and mythic suffering of the Indians, but only to the rational and scientific work mode. "In his system of business one cannot stop work even if dead human bodies have to be rescued" (Menon 165). When Helen tells him to go slow he replies adamantly, "My work, he said, from mounting conviction which loomed tall as a mountain now; my dam my business" (CD 142).Clinton as a workaholic does not allow the workers to rest for a while. Aithal aptly remarks, "he pushes them like a slave driver" (55). Though the workers are enraged they never utter a wood of protest against their white masters. Whenever Clinton hears the labour problem on the project site, he roars with anger, "Dock their pay and you will have them wrapping themselves rounded your feet-you know what these people are live from hand to mouth" (CD 62-63). In spite of Clinton's harsh treatment, groups of unemployed Indian labours hoard at the door of the British engineers offering their humble service to them.

During the construction of the dam, there were two accidents in which many tribals lost their lives. In the first accident, two labourers Bailey and Wilkins died. In the second accident,forty-two men fell into the river. Two bodies of the dead Indians could not be recovered because the rock had jammed them. When Mackendrick finds possibilities of the recovery of the bodies Clinton retorts, rather than delay the work, "their bodies can be incorporated. Into the structure" (CD 188) exhibiting his nature of exploiting the Indians.When Krishnan and his

companions strike work for the recovery of the dead bodies, Clinton is indifferent. Even after their death, they are not given a proper burial. Instead of uttering a word of sympathy, he urges the technicians and other workers to continue the work without any kind of disruption. Clinton uses two different scales, one for the English and other for the Indians, to measure the tragedy at the construction site. This incident explains the nature of the white boss and how the East is exploited by the West.

Bashiam, a tribal also suffers a lot after entering into the world of western technology. At first he welcomes machines and the construction project. He willingly offers himself to work in the construction of a dam. He becomes a crane operator, rather a dangerous job. He himself has chosen to cut off from his tribe and their mythic spiritual base. Later he is doubly an outcast both from his tribe and from British for whom he has worked.

When the crane collapses Bashiam escapes with some injuries. But both the British and the Indian officers show no sympathy to him. They also shun the presence of Bashiam and call him 'JunglyWallah'.The farming community in *Nectar in a sieve* and the tribal folks in *The CofferDams* suffer because of encroachment and exploitation.Industrialization and modernization degrade and deteriorate the human values. Through these two novels, Nectar in a Sieve and The Coffer Dams Kamala Markandaya shows how the tradition-bound peasant and tribal culture disintegrates on the physical, emotional, and moral plane.

Reference :

Afzal Khan, Fawzia. "Kamala Markandaya: Myth Versus Realism or East Versus West". *Cultural Imperialism and the Indo-English Novel*.Pennsylvania:Pennsylvania State U, 1958.

Aithal, S.K. "Indo-British Encounter in Kamala Markandaya's Novels". *Journal of South Asian Literature* 22.2 (1987).

Joseph, Margaret, P. *Kamala Markandaya*. New Delhi:Arnold Heinemann, 1980.

Kattamble, V.D."Kamala Markandaya's The Coffer Dams: An Apology for Techno Industrialization of Rural India". Littcrit 11.1-2 June-Dec. 1985.

Menon, K. Madhavi and A.V. Krishna Rao."The Coffer Dams: A Critical Study". *Perspectives on Kamala Markandaya*. Ed. Madhusudan Prasad. Ghaziabad: Vimal Prakashan, 1984.

Markandaya, Kamala. *Nectar in a Sieve*. Mumbai : Jaico, 1956.

The Coffer Dams. New York: John Day, 1969.

Singh, R.S. *Indian Novel in English* New Delhi: Arnold Heinemann, 1977.

Webster's Encyclopedic Unabridged Dictionary of the English Language. New York: Gramercy, 1996.

❒❒❒

Assistant Professor, PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli -1

Research Article

Estrangement of Psyche in Anita Desai's *Cry, the Peacock* and *Fire on the Mountain*

–Aiswarya B
–Dr. T.S. Ramesh

Maya is a hostage of the old days, living almost permanently in the parallel world of memories that overwhelm her; Gautama lives in the present and confronts truth and facts, no matter how disgusting they are. Maya, on the other hand, refuses to accept reality and prefers to live in her own fairyland. She keeps recalling her upbringing or the torture she received from her father. She is a father-obsessed youngster, believing that no one else loves her as much as her father does. In her spouse, she finds another father figure. However, he does not reply appropriately to her.

Alienation is the feeling of helplessness, loneliness, and emptiness that people feel when exposed to societal structures and situations that they cannot regulate and perceive oppression. The article seeks to elicit Anita Desai's expression of alienation with the modern archetype of constructing the society which is free from male dominance in her works *Cry, the Peacock* and *Fire on the Mountain*. The article also investigates the feminine consciousness with regards to women's pain and sorrow along with psychological and familial issues that dealt with the characters of both the novels. The study explores the feminist consciousness with intention of emphasizing the role and sufferings of women in patriarchal environment.

Keywords: Feminism, Patriarchy, Alienation, Sufferings, Consciousness

The prototypical explanation of alienation integrates philosophy and social theory. According to Karl Marx, the cornerstone of alienation is the rising desire for economic requirements. The capitalist method of production is emphasized in this classic view of alienation, and alienation develops only when the individual wage worker is involved in a capitalist mode of production. As a result, the concept of alienation leads to that of dehumanization as,

Marx was of the opinion that alienation would lead to dehumanisation and devaluation of human beings. The worker is a victim of exploitation in the world of capitalism. "The more wealth the

worker produces, the poorer he becomes.Just as labour produces the world of things it also creates the devaluation of the world of men. This devaluation increases in direct proportion to the increase in the production of commodities”(Dua)

However, socialist feminism exposes that capitalism oppresses women as workers, while patriarchy further enslaves women in modern society. The Indian authors took on the burden of artistically articulating the difficulties that afflicted the ordinary people, as well as their modest joys and huge sorrows, a fight against the tyranny of poverty, illiteracy, misery, sickness, superstition, caste, and sex. As a result, the protagonist of a lot of stories is a farmer, a peasant, a construction worker, a patient, or a virtuous woman opposed against a village community, a landlord, or a harsh, cynical, hardhearted guy. It is reasonable to presuppose that Indian English authors have done a good job of portraying the concerns of the day in an unsullied and realistic manner.

Anita Desai is a well-known Indian author. She is widely regarded as the mother of the Indian psychological fiction. Her painstaking portrayals of contemporary Indian lives have earned her a position in the canon of Indian literature. Desai, a Sahitya Academy Award winner, has written sixteen works of fiction. Desai has been using methods to free an Indian lady from the bog of her lost identity, but with different peculiarities and characteristics. Women authors first appeared in Indian English literature in the final part of the nineteenth century. However, it was the post-independence period that brought to the fore a number of notable female novelists who have enriched Indian English fiction through the creative publication of feminine discernment and who have inspired Indian women to reclaim their lost battles of equity, togetherness, and self-identity. The majority of Desai’s protagonists are estranged individuals. She describes her characters as persons standing the harsh assaults of reality on their own. As a result, the protagonists in her works are often melancholic ladies who are very sensitive and preoccupied with their thoughts and imagination, as well as detached from their surroundings. They frequently disagree with others and go on long journeys of introspection in try to discover the purpose of their life. Thus, it serves to be the reason for them to suffer more than others from their relationships. In other words, as a result of the terrible post-marriage connection between husband and wife, love encounters in Desai’s novels burst into marital fights.

In the novel *Cry, the Peacock,* Maya and Gautama are depicted as living in stark contrast. Maya, the dominant character, is awake through all her senses and lives each moment to the full potential. Her husband, Gautama, is distant, aloof, intelligent, and perplexed by his wife's hypersensitivity. In reality, their personalities are diametrically opposed. Maya is romantic, sensitive, and emotional, whereas Gautama is pragmatic, insensitive, and logical. Maya is lyrical and high-spirited, but Gautama is dispassionate, philosophical, and distant. Maya is gentle, soft, and warm, whereas Gautama is rigid and cold. As a result of their incompatible temperaments, they are infected with the disease of strained relationships.

Maya is a hostage of the old days, living almost permanently in the parallel world of memories that overwhelm her; Gautama lives in the present and confronts truth and facts, no matter how disgusting they are.Maya, on the other hand, refuses to accept reality and prefers to live in her own fairyland. She keeps recalling her upbringing or the torture she received from her father. She is a father-obsessed youngster, believing that no one else loves her as much as her father does. In her spouse, she finds another father figure. However, he does not reply appropriately to her. Sensitive Maya is so distraught about her dog's death that she loses her mental stability, and Gautama dismisses her. Desai proposes such insensitive behaviors as, how little he knows of my misery, or how to comfort me. But then, he knew nothing that concerned me. Giving me an opal ring to wear on my finger, he did not notice the translucent skin beneath, the blue flashing veins that ran under and out of the bridge gold... telling me to go to sleep while he worked at his papers, he did not give another thought to me...it is his hardness – no, no, not hardness, but the distance he coldly keeps from me. (Desai 9)

Maya, Gautama, Rai Shahib, and Arjuna are the novel's main characters, although the fundamental topic revolves on Maya and Gautama. Gautama is realistic, unsentimental, and unromantic, and he believes in 'detachment' on all aspects. Maya is a very sensitive individual with a creative imagination and a neurotic personality. Throughout the narrative, it is thus evident that there is a communication chasm between the husband and wife. Maya is helpless and indifferent throughout the plot spending her life in a lonely way. Thus Desai witnesses Maya as a victim of human relationship inadequacies. The writer thus skillfully conveys Maya's claustrophobia, loneliness, and resentment.

Anita Desai's concern for psychological truth is evident in one of her masterpieces, *Fire on the Mountain*. The work primarily deals with an old widow's loneliness and solitude, as well as the resulting misery and agony.The novelshows reclusion, seclusion, and abandonment as a result of the tragic miseries of the female character Nanda Kaul's marital existence. Her estrangement from her spouse is the most difficult aspect of her life that she has purposefully suppressed in her subconscious thoughts. Mr. Kaul was desperately in love with a Christian woman he couldn't marry, and in his anguish, he treated his wife as if she were a cipher. Desai expresses the labor that has been undergone by the characters as she mentions, "Isn't it absurd...how helpless our upbringing made us, Nanda". (Desai 127) Ila Das expresses to Nanda Kaul over tea as they discuss their future plans. Both ladies were reared in splendor and were abandoned by the patriarchy after being run down. Nanda Kaul must seek refuge in Kasauli, and Ila Das must seek employment with limited qualifications. Both women have outlived their usefulness to society and are pushed to the periphery; Nanda Kaul is slightly better off because she still has some money, but Ila Das must continue to work in a society that objects to her because of her age, visual appeal, relationship status, and prevalent use of her own voice.

The novel thus clearly depicts the tension between the urge to withdraw in order to maintain one's completeness and sanity and the need to be active in the painful process of life. This vacillation between connection and detachment indicates the need for a meaningful existence. Nanda Kaul achieves some success until she is taken out of herself by Raka's effortless retreat, which appears to be wholly immersed in her own world and completely overlooks Nanda Kaul when compared to the latter's failed experiment. As a result, it is clear that Nanda's feminism is theoretical. Raka's feminism is dynamic. Nanda Kaul intended to live a lonely and solitary existence away from civilization, which gave her practice a sense of calm. This stillness, Desai says:

It was an art not easily acquired. She should be a charred tree trunk in the forest, a broken pi1ler of marble in the desert, a lizard on a stone wall. A tree trunk could not harbour irritation nor a pillar annoyance. She would imitate death, like a lizard, no one would rouse her. (Desai 23)

The characters in Anita Desai's novels *Cry, the Peacock* and *Fire on the Mountain* are thus viewed as studies of women in solitude. They carry a sense of loneliness and isolation with them. They are emotionally ill and

socially alienated. Desai has an innate ability to see into the internal dynamics of her characters' minds rather than the surface scene of action. She has made significant contributions to the development of Indian literature in English by adding psychiatric characteristics of her female heroines who have faced difficulty and shame, abandonment and isolation, remoteness and alienation.Desai always attempts to express the underlying desires of her female characters through her writing and description of situations in a way that resonates with everybody. This traitenables her to peer into the inner lives of the women and delineate their entire reality. She has always behaved independently and strives to represent feminism in her own distinct way. The most significant contribution she has made to India is her feminist concern.The technique which she uses to express ideas is predominant. Her entire work of literature is centered on men and women who are anomalies, incompatible couples who have always attempted to work together to investigate feminism in various ways. She has always covered female characters of different ages and sorts, such asyoung, the elderly, intellectuals, and apatheticwhich makes her one of the great feminists of her time.

References:

Chen, Y., & Department, E. (n.d.). *School of languages and media studies*. Diva-Portal.Org. Retrieved March 17, 2022, from http://www.diva-portal.org/smash/get/diva2:788167/FULLTEXT01.pdf

Desai, A. (1984). *Cry, the peacock*. Vision Books.

Dua, P. (2012, May 24). *Essay on Marx's concept of alienation*. World's Largest Collection of Essays! Published by Experts. https://www.shareyouressays.com/essays/essay-on-marxs-concept-of-alienation/85937

Kundu, R. (2005). *Anita Desai'S fire on the mountain*. Atlantic Publishers & Distributors.

Nawale, A. (2010). Alienation in Anita Desai's Fire on the Mountain. *Vishwabharati A Multi-Disciplinary National Refereed Journal*, *I*(2), 29–32.

Sharma, S. (n.d.). *Feminism in the novels of Anita Desai*. Jetir.Org. Retrieved March 17, 2022, from https://www.jetir.org/papers/JETIR1701202.pdf

Udhayakumar, S. (n.d.). *Feminism and Marriage in the novels of Anita Desai*. Shanlaxjournals.In. Retrieved March 17, 2022, from http://www.shanlaxjournals.in/pdf/ENG/V1N1/ENG_V1_N1_006.pdf

❒❒❒

1. PhD Research Scholar (FT), PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN
Email : aiswaryabalusweety@gmail.com

2. Associate Professor and Research Supervisor, PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN
Email : drtsramesh@gmail.com

Intersecting Identities in Bama's *Karukku*

–Ms. Swati Hooda
–Dr. Mayur Chhikara

The challenges are way more for those trying to not only hit at the gender discrimination but also the subjugation due to caste. The confrontation is rather murky as it expands beyond an individual and exposes an entire community/ society in general. The oppositions are felt from all around, i.e., both from within and outside of the community of which one is an integral part. This is what Dalit feminism talks about, a marginalization that is not only internal but external too, the one, which is not only casteist but patriarchal too. Dalit women can well be labelled as 'Dalit of the Dalits of India'. The Dalit Indian women writings bring forth this dual-marginalization and try to make a case for its poor subjugated victims.

"Caste is not just a division of labour, it is a division of labourers" said B.R. Ambedkar. The present paper is a study of Dalit women's marginalization, isolation, and humiliation in Indian society. The marginalization of a Dalit woman is primarily twofold – first, by the very virtue of her gender, and second, by caste with which she is associated. As a proponent of Dalit feminism, Bama in her seminal work *Karukku* has explored the marginalization of Dalit women, who is always at a juncture of an identity crisis due to her depersonalization. *Karukku* raises pertinent questions on gender, caste, and religion; while also delineating the issues of violence on Dalit women both within and outside the caste boundaries. The paper shall stretch the ending and compare it with the 21st century status of the Dalits. Besides, there shall be a focus on how identities intersect to create newer and more nuanced meanings for the marginalized.

Keywords: Autobiography, Dalit-Feminism, Patriarchy, Gender, Bama

Dalits have been marginalized from the regular Indian society for centuries. The Dalits occupy the lowest strata of society and are rated as 'outcastes' in the caste system and obviously suffer blows from all spheres of social, political, economic, and cultural systems. One of the finest definitions of Dalit is given by Gangadhar Pantawane, quoted in Brijesh Kumar's study called "Dalit Aesthetics":

Dalit is not a caste. He is a man exploited by the social and economic tradition of the country. He does not believe in God, rebirth, soul, holy books, teaching separation, fate, and heaven because they have made him a slave. He does believe in humanism. Dalit is a symbol of change and revolution. (89)

All the Dalit narratives speak of the hegemonic containment and subjection of the caste system. Arjun Dangle, one of the prominent Dalit writers, opines:

Dalit Literature is one, which acquaints people with the caste system and untouchability in India, it's appalling nature and its system of exploitation. In other words, Dalit is not a caste but a realisation and is related to the experiences, joys and sorrows, and struggles of those in the lowest stratum of society. It matures with a sociological point of view and is related to the principle of negativity, rebellion and loyalty to science, thus finally ending as revolutionary... 'Dalit' means masses exploited and oppressed economically, socially, culturally, in the name of religion and other factors. Dalit writers hope that this exploited group of people will bring about a revolution in this country. (Dangle 2-3)

Dalit feminists aggress the structural domination of the caste system and also the gender because these women suffer dual blows. They are hit at the social level and at the phallocentric level. For the longest time in history, women have lacked the opportunity to voice themselves. They have been the silent sufferers of patriarchal/communal/casteist institutions and have often been brutally suppressed if at all they dared to express themselves.

The challenges are way more for those trying to not only hit at the gender discrimination but also the subjugation due to caste. The confrontation is rather murky as it expands beyond an individual and exposes an entire community/society in general. The oppositions are felt from all around, i.e., both from within and outside of the community of which one is an integral part. This is what Dalit feminism talks about, a marginalization that is not only internal but external too, the one, which is not only casteist but patriarchal too. Dalit women can well be labelled as 'Dalit of the Dalits of India'. The Dalit Indian women writings bring forth this dual-marginalization and try to make a case for its poor subjugated victims. The present text under discussion showcases how Bama's identity of being born a Dalit, woman, Christian, and being poor intersect and has a direct relation to her oppressive state.

With the advent of writing and especially with the coming of women writers, a paradigm shift in the system has been observed. The voices of downtrodden, which were muted for long and were nowhere to be heard in the popular literature, started sprouting. However, it was only the marginalized themselves who braved to put forth their voices and their identities. Earlier, the most favored form of expression was the powerful and hard-hitting poetry, which then led way to the genre of autobiography.

In the introduction of the English translation of Omprakash Valmiki's monumental work *Joothan*, Arun Prabha Mukherjee claims, "Autobiography has been a favourite genre of Dalit writers" (25). In autobiographies, the writers usually narrate important events of their lives that impact them indomitably, leading to

a strong connection with the people reading their work. A connection is also developed by the readers who know it not as fiction, but as a real-life event. According to Philippe Lejeune, “an autobiography is a retrospective prose narrative produced by a real person concerning his own experiencing his own existence, focusing on his individual life, in particular on the development of his personality” (4). These experiences and life stories work as a revelation for those oblivious to it and cognizant for those in similar scenes.

Through their writings, a social awakening towards the Dalit community has been established by writers like Bama, Urmila Pawar, Shantabai Kamble, and many more. Their works have fortunately been able to highlight the socio-economic conditions of Dalits. Courtesy to such courageous writers and their works that questions are being raised and there are debates all around on the Dalit issues.

Kimberle Williams Crenshaw in her 1991 article “Mapping the Margins: Intersectionality, Identity Politics, and Violence against Women of Color”, propounded the term intersectionality. She has explained how both women and people of color are marginalized by “discourses that are shaped to respond to one [identity] *or* the other,” rather than both (1244). In “Demarginalizing the Intersection of Race and Sex: A Black Feminist Critique of Antidiscrimination Doctrine, Feminist Theory and Antiracist Politics “(1989), Kimberle writes:

One of the very few Black women’s studies books is entitled *All the Women Are White; All the Blacks Are Men, But Some of Us are Brave.*I have chosen this title as a point of departure in my efforts to develop a Black feminist criticism because it sets forth a problematic consequence of the tendency to treat race and gender as mutually exclusive categories of experience and analysis. In this talk, I want to examine how this tendency is perpetuated by a single-axis framework that is dominant in antidiscrimination law and that is also reflected in feminist theory and antiracist politics (139).

The concept talks about the interconnection of various categorizations in the social system and can be very well applied to the text in discussion. In order to objectively understand discrimination faced by anyone, it is very important not to look at it through a single lens. A person’s identity is defined by various factors, such as gender, race, class, caste, and ethnicity. The identities and experiences overlap resulting in disadvantages and advantages for some people. Some might benefit just by the virtue of being born in a certain community or class and others might have to suffer because of the same.

Bama is a Tamil, Dalit, feminist writer who rose to fame with her autobiographical novel Karukku (1992). The main idea of the text as explained in the “Introduction” is, “The argument of the book is to do with the arc of the narrator’s spiritual development both through the nurturing of her belief as a Catholic, and her gradual realization of herself as a Dalit” (xvi). The story does not follow

a linear pattern. The broken progression of the story mirrors her broken world due to the hegemonized and oppressive structures of the society. She is a woman, a Dalit, Christian, and poor and is therefore marginalized on multiple levels. Born and brought up in a Pariah community, Bama's ancestors belonged to the Dalit community who had converted to Christianity as a way to get away from the caste system as the missionaries promised to liberate them from the oppression and in the end failed to deliver. They were not protected as castes by the government. And this conversion failed to get them out of their current situation. As it can be seen in the autobiography that even the convent was not without discrimination or politics. They would not admit Harijans and did not even consider Dalits as human beings. There was also discrimination as far as services are concerned on the part of the church for the poor. Even the Church made people do things that were hard for them, be it offering expensive fruits, other items that they could not afford to buy for themselves, and going to the Church affairs, but they still tried to follow all the customs. She thought that by becoming a nun she would be able to contribute towards a larger cause but the reality hits her hard. She talks about her life-changing experience at the convent and stresses the fact that she came out of the situation as a completely shattered and changed person. It has a major impact on her identity. Bama recounts her torment as a Dalit wanting to become a nun in *Karukku*:

In a particular class, a sister told us that in certain orders they would not accept Harijan women as prospective nuns and that there was even a separate order from them somewhere. I was thunderstruck … and so at last I became a nun and was sent to a convent elsewhere … I was filled with anger towards them, yet I did not have the courage to retort sharply that I too was a low-caste woman. (25)

In her society women were made to do household chores, even if the work done was equal to men, but still, they were not given equal wages at par with males, were discriminated against, badly beaten by their husbands, and also were not allowed to get formal education. She recounts an incident related to Uudan (a character in *Karukku*), who would beat up her wife like an animal and she asks if Dalits were not humans or did not have any self-respect. Being born as a woman in a lower caste makes it really difficult because the caste and gender act as a double-edged sword that cuts you through. Bama says that even the children had made games around the fact that it is "normal" for a husband to beat his wife- "then we played at being married and setting off on a bus journey; the husband coming home drunk and hitting his wife" (57).

Even when they are young, these injustices are visible in various forms. Although they made no distinction as such between boys and girls while playing. They all played together. But mostly boys would take up the powerful roles. This speaks volumes about how these innocents are shaped by what they experience. Women

of her community were not allowed to go to the cinema because the people with authority felt that men from other communities might misbehave with them and that would result in unnecessary fights. Bama says that "rules of the village ensured that none of the women from our community went to the cinema" because of the fear of molestation and even violence, "the boys of all the other communities would pull our women about if they were seen in the cinema hall" (58). Due to the everyday struggles that they have to go through and the lack of money, getting an education is not the priority. She, therefore, had a first-hand experience on the issues of caste and gender discrimination.

Bama raises the concerns of the individual and the communal. *Karukku* is a result of all the hardships and miseries Bama had to suffer from her childhood. It is a voice for the voiceless, the oppressed, and the subalterns, waiting to be heard. It is a mode for her to understand her multiple identities - as a Dalit, as a woman, and as a Christian. She, in the novel, shares the reason that inspired her to write this book: "That book was written as a means of healing my inward wounds; I had no other motive. Yes, it had unexpected results. It influenced people in many different ways" (ix).

Bama, in the preface of the novel, draws attention to the symbolic meaning of the word Karukku whereas at one place it means the palmyra leaves with its sharp edges, on the other hand, it also means freshness and newness. Just like the title has many meanings, similarly, the text also works in multiple layers. It showcases how the caste system pierces the mind, body and soul of the Dalits and how they can use their voice to create a new world for themselves. Bama groups her life events in her novel under different categories- Work, Games and Recreation, Education, Belief, etc. From mentioning some humorous incidents of her childhood, the cheerful times spent with her friends, family time, the discrimination done by the police authorities and upper caste people towards them, to the influence of Christianity on their marginalised community, she mentions it all in her novel in different ways and perspectives.

Most of *Karukku* narrates the collective experiences of Dalits in India. As Raj Kumar points out in *Dalit Literature and Criticism* that from the moment they are born into the world, they face caste humiliations. Even after their death, the 'untouchable' ghost continues to haunt them. Therefore, when they are alive, they write poetry and autobiographies to record their lived experiences. But their writings must be read in a larger context because they are nothing but a cry for freedom. When the story begins, in Chapter 1, Bama gives a community introduction to the readers, with nicknames of boys and girls like Bondan- Maama, Kaaman, Manacchi, etc. She narrates of the toils on the fields and illustrates the topography of the fields. Bama, in one of the chapters, watches some elder of her street carry some food for the Naickers (upper class) and how he just held the tip of the

packet not to pollute the food. The system that is supposed to protect them, be it police or government, fails to do so. Bama cites one incidence where lack of money puts them at the receiving end:

They've taken an oath to destroy our boys, they say, so without counting the cost they are slaughtering sheep at the rate of two a day and feasting the police. Do we have such means? Here we are, struggling just for this watery gruel. So how will the police or the government be on our side? (36)

She is publicly shamed for her body and later finds abhorable discrimination when an upper class would not even sit next to her thinking like the Dalits were someone suffering from a repulsive disease. This makes her question what is it about her and her community that they are not even considered worthy enough to be sitting next to. Consider her feelings "when I went home for the holidays, if there was a Naicker woman sitting next to me in the bus, she'd immediately ask me the place I'm going to. The moment I'd say Cheri, she'd get up and move off to another seat" (20).

Another topic that Bama wants to highlight is how clothes are instrumental in judging a person's status. She mentions how she could not attend her college party as she could not afford to buy a new saree. She was often embarrassed and humiliated in her school because of wearing the same set of clothes for a week. She feels a sense of shame when at the college, final year students were supposed to attend a party and she didn't own a single sari. And therefore, decides not to go. She realizes that money gives you a certain status and prestige in society when she sees at various instances the differential treatment given to those who own some money and those who don't. Bama mentions her brother's comment where he makes her understand the importance of education and emphasizes how education could uplift the Dalit community and how the mentality of people could be changed.

Karukku is a plea for people to change, to wake up against the injustice done towards the marginalized communities. Bama stands as a spokesperson for her oppressed Dalit community. She creates an identity with her powerful, effective, and thought-provoking writings which ultimately create a new ideological and socio-cultural identity. As identity is not only what a person is born with but also what they choose to be.

Bama narrates how Dalit Christians (and the paper also stretches it to show the similar treatment of Dalit non-Christians) like Paraiyars, are forbidden to sing in the church choir and as a matter of social practice are forced to live separately, outside the areas of the upper caste Christians. Even though most of the students are from their community, still all the basic facilities like school, etc. are on the other side of the village. They are ordered to bury their dead in the cemetery outside the village especially for these 'non- humans'. Bama tells her readers how her community members were ordered to dig pits and graves to dispose of animal

bodies and clear the upper class's excreta with their bare hands. Even as a child she was very much aware of how people of her caste were supposed to behave when they had an encounter with someone from the upper caste – "all the time I went to work for the Naickers, I knew I should not touch their goods or chattels; I should never come close to where they were. I should always stand away to one side. These were their rules" (53). They had to undergo such obnoxious treatments. These treatments make her question the unethical and partiality in the existing social system. In this relation, Jyothirmayi, a famous Telugu writer says "yes, we know that nation means people, but you should know that there are differences between those people" (Dievasahayam 3).

Bama, through her cry for the need of individual emancipation, especially women, feels that education is the key to unlock respect and equality, for it not just renders financial freedom to women, but gives the essential boost to one's character and individuality. Enlightened souls believed, and rightly so, that education would emancipate the oppressed classes as education had the potential to awaken the consciousness that could finally bring about real change in society. It is similar to Baba Saheb Ambedkar's call to 'educate, agitate and organize' in order to fight against injustice as one. Her use of regionalism, folklore, and common vocabulary brings her narrative closer to everyday Indian life. The Dalit writers by using such ideological aesthetics in their work protest against the control in the knowledge sphere.

Thus, we see how 'identity' is re-build and the 'self' is reconstructed in *Karukku*. Her status elevates from being a marginalized Dalit to a brave and emancipated warrior who has faced protest, resistance, and trauma. V.Jeya Santhi in her study "Reconstruction of The Self in Bama's *Karukku*: Elevation from Being a Victim to a Brave Warrior" says how *Karukku* is a testimony of woman bravery and that Dalit women have used literature to communicate their trauma:

Her rejection of formal religion and her return to society form the vital nerve of this piece of fiction. It is an attempt to break the existing tradition and to identify ways of defining one's own identity. It stood as a testimony for the atrocity and suffering, thereby bringing the reader into contact with the victimization. Once truth has been established, it demands reparation and justice. As witnesses, we are obliged to engage in change. (Abstract)

Her multiple identities as a woman, Dalit and Christian are clearly prominent throughout the work. The caste, class and gender intersect and impact one another at various points, therefore forming the life experiences for her. She begins with narrating her story and ends up speaking for the entire community. Her language becomes the language of cultural revolution and cultural values. Her journey leads to the awakening that it is better to live a life speaking the truth than living with a lie. Even though her intersecting identities put her in certain position, she completes

her journey from feeling subjugated to accepting and celebrating herself. Dalits have been fighting for their rights since a long time and gradually things are shifting towards creating a better society for everyone to live in. But given the yearly and recent cases of rape of Dalit women, discrimination, inhuman treatment that they still have to go through, it definitely points towards an alarming situation and makes the debates, such texts relevant and extremely important.

Works Cited :

Bama. *Karukku*. Trans. Lakshmi Holmstrom, 2nd ed., Oxford UP, 2012.

Barrett, Rajan Joseph. "Subalternity and the Mirage of Social Inclusion: Bama's Karukku and the Politics of Inclusion/Exclusion." *Subalternity, Exclusion and Social Change in India,* pp. 228–245., doi:10.1017/9789384463113.011.

Coleman, Arica L.. "What's Intersectionality? Let These Scholars Explain the Theory and Its History." *TIME,* 28 March 2019, www.time.com/5560575/intersectionality-theory.

Crenshaw, Kimberle. " Demarginalizing the Intersection of Race and Sex: A Black Feminist Critique of Antidiscrimination Doctrine, Feminist Theory and Antiracist Politics." *University of Chicago Legal Forum*, Volume 1989, Issue 1, www.chicagounbound .uchicago. edu/cgi/ viewcontent.cgi?article=1052&context=uclf.

"Mapping the Margins: Intersectionality, Identity Politics, and Violence against Women of Color." *Stanford Law Review,* vol. 43, no. 6, 1991, pp. 1241–99., www.jstor.org/stable/1229039.

Dangle, Arjun, ed. *Poisoned Bread*. New Delhi: Orient Black Swan, 2009.

Dievasahayam, Rajani. "The Voice of the Marginalized- A Study of Bama's Karukku". *Pune Research: An International Journal in English,* Jan-Feb2018.

Dhawan, R.K., and SumitaPuri, editors. *Bama: A Dalit Feminist*. Prestige Books International, 2016.

Kargi, Veerppa. "Dalit Literature in Karnataka: Depiction of Dalit in the Autobiography of Aravind Malagatti." *Dalit Literature: Our Response*. Ed. N. Shanths Naik. New Delhi: Sarup Book, 2012.

Kumar, Brijesh. "Dalit Aesthetics-An Alternative Way of Looking into Literature." *IJELLH* , vol. 3, no. 4, 2015, 182.18.165.51/Fac_file/PUBLI391@673440.pdf.

Kumar, Raj. *Dalit Literature and Criticism*. Orient BlackSwan, 2019.

Mukharjee, Arun Prabha, Trans. *Joothan: A Dalit's Life*. Kolkata: Samaya Prakaasan, 2003.

Raj, K. Sareen. "Exploring Dalit Christian Autobiography: A Perspective on Bama's Karukku." Dhawan and Puri, pp.74-82.

Santhi, V.Jeya. "Reconstruction Of The Self In Bama's Karukku : Elevation from Being a Victim to a Brave Warrior." *Researchgate.com*, www.researchgate.net /publication / 303548800_RECONSTRUCTION_OF_THE_SELF_IN_BAMA %27S_KARUKKU_ Elevation_from_being_a_Victim_to_a_Brave_Warrior.

Sharma, Jayanta Kar. "Voice of the Voiceless: Subaltern can Speak". *Kafla Intercontinental,* Jan-April 2014, www.kaflaintercontinental.com/ writings/articles/ jayantkar. Sharma_2.htm.

❒❒❒

1. Research Scholar, Department of Humanities, Deenbandhu Chhotu Ram University of Science and Technology, Murthal Sonipat
2. Assistant Professor, Department of Humanities, Deenbandhu Chhotu Ram University of Science and Technology, Murthal Sonipat

Peeking Ambivalent Sexism viz., Nisha and Aasha Rani of Shobha De's *Sultry Days* and *Starry Nights*

–Dhivya Bharathi R
–Dr. T.S. Ramesh

Benevolent sexism is interrelated attitudes that are sexist in terms of viewing women stereotyping and in restricted roles. It is subjectively positive in feeling tone,and also tends to elicit behaviours typically categorized as prosocial or intimacy seeking.Although benevolent does not capture the underlying dominance inherent in the form of sexism. Benevolent sexism is not visible in our society because it is internalized and silenced, which is performed through love and care. Nisha in Sultry Days faces humiliation when she is with her boyfriend, God.

Sexism treats male as superior. So, it is a kind of discrimination against women based on sex. The chauvinistic and misogynist attitude towards the weaker sex, especially women, lead to psychological damage. Sexism is a typical aspect of controlling the submissive through the concept of power and domination with sexist antipathy. The internal aspects of sexism framed by Peter Glick and Susan T. Fiske areknown as Ambivalent sexism. Ambivalent Sexism Inventory is the theoretical framework that deals with two types of sexism as Hostile and Benevolent. The intertwined characteristics of Ambivalent sexism, such as paternalism, gender differentiation, and heterosexuality work against women.Nisha in *Sultry Days* and Aasha Rani in *Starry Nights* by Shobha De are taken for the study to examine their internal conflict, sufferings, and alienation in the hegemonic patriarchal world about the three entwined elements of Ambivalent sexism.

Keywords: Hostile, Benevolent, Atavism, Subjugation, Condescension, Machismo

Sexism is a form of prejudice that serves as a special element in the ambivalence of antipathy in relation to hostile and benevolent sexism towards women. It is a typical aspect of controlling one sex over the other through the concept of power and domination with sexist hatred. It is a form of oppression in a multidimensional construct of hostile, benevolent, neo-sexism, modern sexism, and so on. Sexism begins with the stereotypes of gender roles that are linked with traditional values. It carries the historical norms of women who are still under the roof of men and serve under the rules of men. Andrea Dworkin, a feminist activist in her book *Intercourse,* talks about

how women are still submissive creatures to men. She states that women's humanity is being destroyed when is she oppressed, which is highlighted in the following lines "Woman is not born: she is made. In the making, her humanity is destroyed. She becomes symbol of this, symbol of that: mother of the earth, slut of the universe; but she never becomes herself because it is forbidden for her to do so" (Dworkin 45). Shobha De in her novel *Sultry Days* emphasizes how the world has sexist intentions to suppress women and objectify them in public places. The way of portraying and looking at women eventually leads to the male gaze which ultimately sexualizes women and makes them insecure. God, the connoisseur of sexism, spills his sexist male gaze attitude while describing his mother as a whore in the following lines, she resembled a washerwoman or a brothel-keeper, depending on her mood—…she puts huge flowers in her hair and kaajal in her eyes. Her tits hang out of her choli and the paan in the mouth makes her look like a whore. At other times, with her sari carelessly tied, she looks like a maidservant. (De 23)

Peter Glick and Susan T. Fiske present the theory of sexism formulated as ambivalence towards women and validating the corresponding measures, the Ambivalent Sexism Inventory. It proves that sexism carries the subjectively positive approach and negative sexist antipathy towards women. Both the hostile and benevolent carry the three sources of male ambivalence as paternalism, gender differentiation, and heterosexuality. The survey has been made by psychologists with more than two thousand interlocutors,showing both hostile and benevolent approachestowards women dwelling in the society. They have proved ambivalent sexism concatenated with the traditional conventions, which has imposed only on women and has obligated them to follow the gender roles at any cost. Bell Hooks, the African feminist, in her work *Feminism is for Everybody.* advertsthat patriarchal power is an accolade formen, and they proudly take credit for annihilating women.

Males as a group have and do benefit the most from patriarchy, from the assumption that they are superior to females and should rule over us. But those benefits have come with a price. In return for all the goodies men receive from patriarchy, they are required to dominate women, to exploit and oppress us, using violence if they must to keep patriarchy intact. (Intro, ix)

The above linesof machismo are also echoed in Shobha De*Starry Nights*, where Aasha Rani gets to know that her father oppresses her mother, and puts them into the void space where they strive for existence. As a woman, Aasha Rani struggles to fit in the society and its expectations. Hostile sexism is openly the negative antagonist behaviors towards the group of people based on particularly sex or gender. The misogynist attitudes of males hit directly at different levels of the institution, interpersonal and internalized. De gives an insight into the hostile

nature of males in the following lines, "whichever way one looked at it, there was always a man in the picture. A man using abusing and finally discarding a woman" (De 211). The hostile nature of men leads to a lack of sympathy entwined with wrath and frustration. The hegemonic patriarchal world cannot accept the fact that women are equal to men. They tend to be manipulative to control women under the clutches of traditional gender norms. Aasha Rani being a star in the media industry faces the hindrance of gender differentiationwhen she has thrown out of the market. In media, married women have no place and no carrier to hold on to and survive. This is also being quoted by Shobha de in the following lines, "it is not a place for women…so many heroines who used to work with…where are they today? No roles, no friends, no money. There are dozens of pretty girls waiting to take your place. youngster, better-looking, ambitious" (De 133).

Benevolent sexism is interrelated attitudes that are sexist in terms of viewing women stereotyping and in restricted roles. It is subjectively positive in feeling tone,and also tends to elicit behaviours typically categorized as prosocial or intimacy seeking.Although benevolent does not capture the underlying dominance inherent in the form of sexism. Benevolent sexism is not visible in our society because it is internalized and silenced, which is performed through love and care. Nisha in *Sultry Days*faces humiliation when she is with her boyfriend, God. His abusive nature, egotistic attitude, and self-centered behaviours highlighted by Shobha de in the following lines, "It was humiliating and awful. But I took it. And I learned to like God, though I was probably more fascinated by him than anything else—initially. And I think he liked me" (De6). Though God is a scurrilous man, Nisha silently endures the pain and sufferings that fall upon her. Peter Glick and Susan Fiske pointed out the internal features of ambivalent sexism as paternalism, "these attitudes are often characterized by a desire to protect and preserve women" (Glick & Fiske, 61). Women try to hold on to men even they are narcissists. Often men use pleasing words to seduce women and get their needs satisfied. De in *Starry Nights* highlights that "Women are like delicate flowers. It is our privilege and duty to take care of you" (De 10). Paternalism is a practice of restricting women's freedom and responsibilities. It is an indirect way of oppressing women and keeping them intact with gender roles. Women's acceptance of sexist ideologies in benevolent laddishness where they blindly accept male's voice because they are the head and the provider of the family. They have a notion that women fall for sweet alluring conversations. De points out the interventionism and overprotectiveness of Kishenbhai in the following lines, "Never let them, do you understand? You are mine. Only mine. These are mine. All mine" (De8). According to psychologists, paternalistic behaviour falls under two types, protective and dominative paternalism. Patriarchal men recognize women for sexual pleasure and materialize them as romantic objects. Men are dyadically dependent on women

for reproduction, where they get their desire and needs satisfied. Andrea Dworkin in her work *Intercourse* proves that a woman's choice is robbed and showcased as an object in the eyes of males in the following lines,

Being female in this world means having been robbed of the potential for human choice by men who love to hate us. One does not make choices in freedom. Instead, one conforms in body type and behaviour, and values to become an object of male sexual desire, which requires an abandonment of a wide-ranging capacity for choice. (Dworkin56)

In *Starry Nights*, Akshay reveals his frustration, when Aasha Rani is used as an object for her mothers' survival, and her miserly nature in the following lines, "what sort of a mother are you? This girl is nothing but a pricey prostitute and you, her pimp, her madam. Screwing this man and that… you can't call yourself a mother- you are scum. A wretched exploiter of your own child" (De94). Aasha Rani's mother has played a protective, and also dominative paternalism to maintain her social and economic status.

Thus, Shobha De's novel analysis the nature of men's ambivalence towards women. *Sultry days* and *starry nights* by De deal with bold female characters who finally emerge as new women by confronting sexism. Bell Hooks state that feminism is an evolution to eradicate sexism in the following lines "Feminism is a movement to end sexism, sexist exploitation, and oppression" (Intro, viii). De novels substantiate the fact that women constitute both the victims and survivors of male supremacy. Equality among gender is attained only by confronting male domination in the family and workforce. Bell Hooks in her work *Feminism is for Everybody* concludes her arguments as "Without confronting internalized sexism women who picked up the feminist banner often betrayed the cause in their interactions with other women" (De11).

Work cited:

De, Shobha. (2013).*Sultry Days*. Penguin Books. New Delhi

De, Shobha. (2013). *Starry Nights*. Penguin Books. New Delhi

Dworkin, Andrea. (1987). *Intercourse*. The Free Press Macmillan. New York.

Glick, P., & Fiske, S. T. (1996). *The Ambivalent Sexism Inventory: Differentiating hostile and benevolent sexism*. Journal of Personality and Social Psychology, 70, 491–512

Hooks, bell (2000). *Feminism is for Everybody: Passionate Politics*. South End Press Cambridge.

❒❒❒

1. Ph.D. Research Scholar (FT), PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN
Email : rdhivyabharathi21@gmail.com
2. Associate Professor and Research Supervisor, PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN
Email : drtsramesh@gmail.com

Political Participation of Women in Chhattisgarh Panchayati Raj Institutions

–Deepak Kumar Kashyap
–Dr. Anupama Saxena

It was governed by the Gram panchayats, which were self-governing units. The village communities of Chhattisgarh which were unnaovas in Kalchuri, suffered a setback during the Maratha rule and after that they came to an end under British rule. In 1861 AD, when the central provinces was established as a separate province. Then, there was a new beginning of the administration of rural and urban areas, accordingly the first Municipal Act in the Central Provinces was passed in 1873, it remained till 1883.

Democracy is considered to be the best form of government, because of public participation in decision making process for establish this better, a decentralized system of local autonomous institutions was started in India. In India, this decentralization has happened at the grassroots level, and through the 73rd Constitutional Amendment, one third of the seats have been reserved for women in these institutions, as a result of which at present lakhs of women are playing their role as panchayat representatives, leading to rural self-government. Women's political participation has increased and women's leadership has developed. The Panchayat Raj Act implemented in Madhya Pradesh was implemented in Chhattisgarh, which was named as Chhattisgarh Panchayat Raj Act, 1993, which became the basis of the present local self government system in Chhattisgarh. Since 2008, Panchayati Raj Amendment Act has increased the seats reserved for women from 33 percent to 50 percent, this amendment is a revolutionary step for the participation of women in rural development programs, whose positive changes will be seen in the coming times.

KEY WORDS: Political Participation, Reservation, Rural Self-Government, Democratic Decentralization,

HISTORICAL PERSPECTIVE

Since ancient times, Chhattisgarh has a tradition of getting justice through panchayats. Gram Panchayat existed even during the Maratha regime. The Gautiya of the village used to call a meeting of the Panchayat to settle the mutual dispute.

Panchayats in the village were organized at two levels, individual and public. People used to accept the decision of Panchayat as the decision of God. It is written in the Finston Report– “Panchayats’ decisions were clear and fair, this greatly benefited the poor. They were freed from unnecessary litigation”. Jenkins wrote in his report – “Panchayats lacked a regular system. However, it was a training ground for cooperative work in the field of justice.” For Panchayati Raj system in ancient Chhattisgarh, the system of panch pradhan was first implemented in 1224 AD. The first reference of panch pradhan or mahapanchayat of pacha is found in the Sonarpal inscription of Nripati Jai Singh Dev of Chakrakot ancient Bastar. The decision of the Panch Pradhan was final in all land related disputes. All the secrets of the village were available to the Panch Pradhan through the village Nayya. From the 13th century to the present, the above system is alive in Bastar. Village land had its own independent authority. It was governed by the Gram panchayats, which were self-governing units. The village communities of Chhattisgarh which were unnaovas in Kalchuri, suffered a setback during the Maratha rule and after that they came to an end under British rule. In 1861 AD, when the central provinces was established as a separate province. Then, there was a new beginning of the administration of rural and urban areas, accordingly the first Municipal Act in the Central Provinces was passed in 1873, it remained till 1883. After independence, the state was named Madhya Pradesh by abolishing the separate names of Madhya Pradesh and Berar, ending Madhya Pradesh Raj. Whose capital was Nagpur and under which Chhattisgarh was again on 1 November 1956 the old Madhya Pradesh was reorganized and the new Madhya Pradesh was formed whose capital was Bhopal. Berar zone was separated from this Madhya Pradesh, but Chhattisgarh was included. When the reorganization of the state was repeated again, Chhattisgarh was separated from the new Madhya Pradesh and it was transformed into a new state on 1 November 2000. The state of Chhattisgarh came into existence on 1 November 2000 after the separation of Madhya Pradesh into two parts. Institutional and statutory steps regarding the creation of the state of Chhattisgarh were first taken in 1994. In the year 2000, the Madhya Pradesh Reorganization Act, 2000 was passed by the National Democratic Alliance (NDA) government at the Center, which led to the creation of the present state of Madhya Pradesh and Chhattisgarh. According to the 2011 census, the population of Chhattisgarh is 2.5 crore. There are about 20,378 villages,

150 tehsils, 146 development blocks and 18 districts in the state. According to section 78 and 79 of the Madhya Pradesh Reorganization Act, all the laws applicable in Madhya Pradesh will be applicable in the state of Chhattisgarh until new laws are made or the previous laws are abolished. On this basis, the Panchayat Raj Act applicable in Madhya Pradesh was also implemented in Chhattisgarh. Which was named as Chhattisgarh Panchayat Raj Act, 1993 which became the basis of the present Panchayat system in Chhattisgarh. In 2008, the Chhattisgarh State Panchayati Raj Amendment Act increased the seats reserved for women from 33 percent to 50 percent.

VOTING PERCENTAGE OF WOMEN IN PANCHAYATI RAJ ELECTIONS

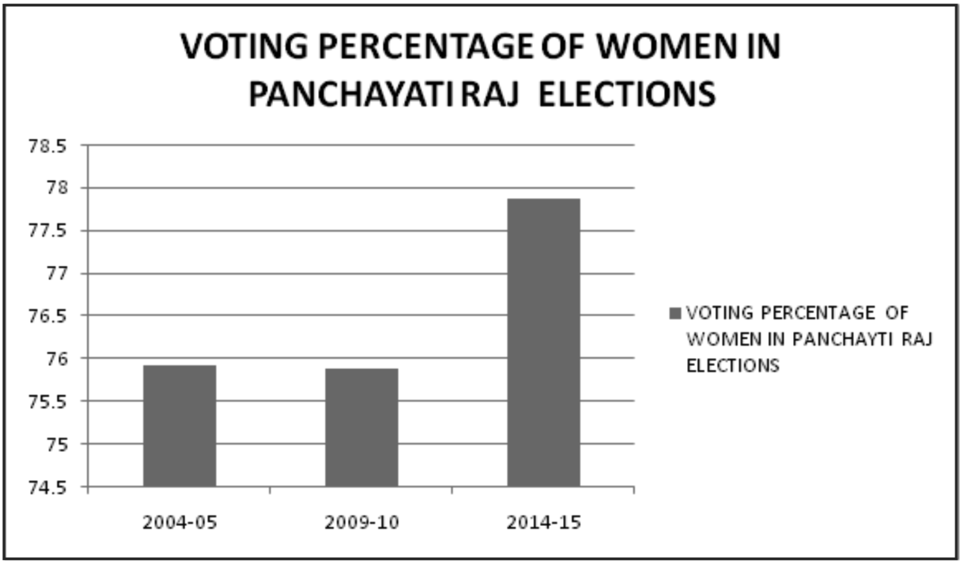

VOTING PERCENTAGE OF WOMEN IN PANCHAYATI RAJELECTIONS

YEAR	VOTING PERCENTAGE
2004-05	75.93%
2009-10	75.89%
2014-15	77.86%

Political participation means direct participation in the political activities of the government, the more the political participation of all sections of the society get benefit, the more democracy will be strengthened. From the above table number 1 we see, that in Chhattisgarh from 2004-05 to 2014-15, the vote

percentage of women in panchayat elections has increased from 75.93% to 77.86%, which shows that the political participation of women has been an increase , because the reservation given to women. Therefore, women have made many important reforms in their field of work along with improving their lives by getting reservation which shows that women's participation in panchayati Raj strengthens their position in the society, and will further strengthen the position of panchayati Raj institutions.

CONCLUSION

Political participation of women in local self government will promote balanced development of rural society and country, which will ultimately strengthen the process of decentralization in Indian democracy, because without equal participation of rural women in decision making and policy making and implementation at all levels social justice and democratic ideals will not be achieved. Women's political participation is not only a symbol of women's development and empowerment, but it also creates awareness and encourages other women to be a part of the political arena to promote their and social interests at large. In Chhattisgarh, women's reservation has been made 50% by Panchayati Raj Amendment Act since 2008, whose effect we are seeing in the vote percentage of women and political representation of women in local self government elections. In this way, this active participation of women in local self government will further strengthen the status of women and the goal of decentralization of local self government will be achieved.

REFERENCES :

Thakur, Minni (2010) Women Empowerment Through Panchayati Raj Institutions: New Delhi :Concept Publishing Company

Singh, Saumya (2013) Women Participation In Grass Root Level Of Panchayati Raj: Lucknow:New Royal Book Company

Singla, Pamela (2007) Women Participation In Panchayati Raj: Nature And Effectiveness: Jaipur: Rawat Publishing House

Dwiedi, Anupam (2015) Panchayati Raj And Rural Development: Rajat Publications

Singh, Pritam, Women Changing The Faceof Rural Goverence : Evidence From Rajasthan", Mahila Pratisthan Vol.04(2019)

Buch, Nirmala " Women Experience In New Panchayats : The Emerging Leadership Of Rural Women", Centre For Womens Development Studies, Paper No. 35

Bharti, Jaya" 50% Reservation Of Womens In Panchayats : A Step Towards Gender Equity, Orissa Review, (February 2011)

❒❒❒

1. Research Scholar, Department of Political Science, Guru Ghasidas Central University, Bilaspur (Chhattisgarh)
2. Professor & Head of Department of Political Scince, Gurughasidas Central University, Bilaspur (Chhattisgarh)

Postcolonial Ecofeminism in India: Divergent Trajectories and Emergent Voices

–Kamaljot Kour
–Vandana Sharma

First, in developing countries, women are more dependent than men on tree and forest products. Trees provide five essential elements in these household economies: food, fuel, fodder, products for the home (including building materials, household utensils, gardens, dyes, medicines), and income. Second, women are the primary sufferers of environmental degradation and forest resource depletion. This is because it is women who must walk farther for fuelwood and fodder and who must carry it all back themselves (e.g. without the help of animals).

Ecofeminist discourse with its origin in the West is inadequate in taking into account the diverse examples of non-western women-nature relationships and human-nature relationships in its fold. Moreover, the challenges and issues of third-world women necessitate an apt understanding and theorization that takes into account class, caste, ethnicity, and space while defining the women-nature relationship of postcolonial nations like India. Taking a cue from the limitations of mainstream ecofeminism in translating the relationship of postcolonial women with nature, this paper examines the trajectory of postcolonial ecofeminism and various emergent voices in India who contend that in order to explain the third world women's relationship with nature, especially in the postcolonial Indian context, it is imperative to take into consideration the diverse factors of these women that are directly related to their caste, class, and ethnicity.

Keywords: postcolonial ecofeminism, women-nature relationship, emergent voices

Postcolonial ecofeminism seeks to explore the diverse experiences of Third World women vis-à-vis nature in order to break away the unified, monolithic identity of Third World women as constructed in mainstream ecofeminist discourse. The proposed paper attempts to trace the trajectory of postcolonial ecofeminism and its various proponents in India so as to establish the interplay of caste, class, ethnicity, and geographical location in determining the relationship of women with nature. Although mainstream ecofeminism voices its concern for Third World women's plight, it does not adequately encompass their diversity. Therefore, "a homogenous

notion of the oppression of women as a group is assumed, which, in turn, produces the image of an "average third world woman"" (65) as stated by Chandra TalpadeMohanty in her book *Feminism Without Borders: Decolonizing Theory, Practicing Solidarity (2003)*. Furthermore, "this average third world woman leads an essentially truncated life based on her feminine gender (read: sexually constrained) and her being "third world" (read: ignorant, poor, uneducated, tradition-bound, domestic family oriented, victimized etc.)" (Mohanty 65). Thus, Mohanty's propositions regarding the representation of Third World women in western feminist discourse aid in analyzing their unified identity as constructed in mainstream ecofeminist discourse. One such instance is presented in Karen J Warren's *Ecofeminism: Women, Culture, Nature* (1997) in which she has represented all the women in the Third World as solely dependent on the environment for their socio-economic needs. She says:

> First, in developing countries, women are more dependent than men on tree and forest products. Trees provide five essential elements in these household economies: food, fuel, fodder, products for the home (including building materials, household utensils, gardens, dyes, medicines), and income. Second, women are the primary sufferers of environmental degradation and forest resource depletion. This is because it is women who must walk farther for fuelwood and fodder and who must carry it all back themselves (e.g. without the help of animals). (6)

Karen J. Warren's analysis of Third World women cannot be generalized as many women in these countries are living luxurious life and has no dependence on natural resources for their survival. Bina Agarwal, an Indian development economist, and critic in her essay "The Gender and Environment Debate: Lessons from India"(1992) argues against the essentialism of Third World women in mainstream ecofeminism as she asserts "the processes of environmental degradation and appropriation of natural resources a few have specific class-gender as well as locational implications…. 'Women' therefore cannot be posited …as a unitary category, even within a country, let alone across the Third World or globally" (150). She further says domination of women and of nature does not depend only on ideology and points to the "material sources of dominance (based on economic advantage and political power)" and the importance of "women's lived material relationships with nature" (151).Furthermore, there are many men particularly belonging to indigenous communities who are economically dependent on forest resources. Nevertheless, Postcolonial Ecofeminism does not refute the women-nature connection or the adverse impact of environmental degradation on women's everyday life rather it addresses the diverse factors that shape this relationship and that bring women closer to nature.

Ostensibly, before embarking upon the trajectoryof postcolonial ecofeminism it is imperative to examine the western dominant discourse on Ecofeminism that emerged out of the intersections of various feminist, peace, environmental movements like the Love Canal Disaster Movement in U.S., Three-Mile Island Nuclear Power Plant Movement in U.S., and Green Belt Movement in Kenya. Francoise d' Eaubonne's coining the term ecofeminism in her book *Le FeminismeOu la Mort* in 1974 where she argues that feminist struggles throughout the world concerned not only with equality but also with the life and death of humans, highlights the patriarchal domination over nature and over women's bodies which destroys them. Thus, begins the need for the development of a new domain that would bring feminism and environmentalism together.

This is followed by the European and Mediterranean philosophers like Carolyn Merchant, Carol Christ, Mary Daly, and Charlene Spretnak who began the examination of patriarchal underpinnings in philosophical, religious as well as cultural domains of Greek Philosophy, Ancient Mesopotamia, Judaism, Christianity and revealed that these patriarchal systems justified dominations through their books which demonise both women (eve) and non-human (snake). In "Third-Wave Feminism and the Need to Reweave the Nature/Culture Duality" Colleen Mack-Canty argues that Nature/Culture dichotomy can be traced back to the Greeks, whose philosophy and politics are centered in a dualistic framework. Barbara Arneil in her book *Politics and Feminism* (1999) asserts that Nature versus Culture, like private versus public is a distinction that is central to western ideas. Starhawk in *The Spiral Dance: A Rebirth of the Ancient Religion of the Great Goddess* (1979) initiated the debate on women's affinity with nature and pointed out that women's innate potential as healers and teachers has been erased from history by patriarchal power. Understandably, ecofeminists claim that the justification of patriarchal domination resides in western dualistic hierarchies viz. mind/body, culture/nature, heaven/earth, male/female, spirit/matter, white/non-white, human/animal, and these binaries are being reinforced through scientific and religious constructs. Val Plumwood in her work, *Feminism and the Mastery ofNature* (1993) draws a succinct comparison when she says,

> Nature, as the excluded and devalued contrast of reason, includes the emotions, the body, the passions, animality, the primitive or uncivilized, the nonhuman world, matter, physicality and sense experience, as well as the sphere of irrationality, of faith and madness. In other words, nature includes everything that reason excludes. (19-20)

Here Plumwood suggests implications of reason/nature dualism wherein all the things associated with nature are viewed as baser, instinctive and things with

a higher value are seen as part of the reason. Since women are traditionally associated with nature, this leads to their othering along with nature. However, this dichotomy cannot be universalized specifically to postcolonial nations like India because the clear dichotomies and the characteristics attributed to these dichotomies are not valid in the Indian subcontinent. In India, there is no clear demarcation/separation of men's territory and women's territory as Indian men too can be seen as much as part of nature as are women. In addition, western dualism relegates nature to margins but in Indian society, nature is being worshipped, revered, and celebrated as illustrated by Vandana Shiva in *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India* (2010)

> Prakriti is worshipped as Aditi, the primordial vastness, the inexhaustible, the source of abundance. She is worshipped as Adi Shakti, the primordial power. All the forms of nature and life in nature are the forms, the children, of the Mother of Nature who is nature itself born of the creative play of her thought…..The creative force and the created world uniform, static and fragmented. It is diverse, dynamic and inter-related . (39)

Further, Shiva asserts that ontologically in India there is no definite distinction between man and nature as well as between man and woman because all life forms exist from one source which is the feminine i.e. Nature. Shiva argues that there is dialectical unity and harmony in dualism as she says, "there is no dualism between man and nature and because nature as Prakriti sustains life, nature has been treated as integral and inviolable" (40).

> Meera Nanda in her article "History is What Hurts: A Materialist Feminist Perspective on the Green Revolution and its Ecofeminist Critics" says while understanding the relationship of postcolonial women with nature, it is imperative to examine their material conditions that align them with nature. In the article, "The Gender and Environment Debate: Lessons from India", Bina Agarwal outlines the ecofeminist debate in the US and introduced material aspect in the Indian variant of ecofeminism while throwing light on the causes of environmental degradation in rural India vis-à-vis class and gender. She has argued that women, especially those in poor rural households in India, on the one hand, are victims of environmental degradation in quite gender-specific ways. On the other hand, they have been active agents in movements of environmental protection and regeneration, often bringing to them a gender-specific perspective and one which needs to inform our view of alternatives. (119)

Admittedly, Postcolonial India has witnessed many women-led environmental movements such as the Chipko movement, Narmada BachaoAndolan, Silent valley movement, Navdanya movement, Appiko movement, Plachimada struggle,

Muthanga struggle, etc. which shows that environmental awareness and resistance movements is not a western import and the agency of Indian women has been primordial and emphatic. Moreover, the participation of women in these movements have a clear material basis rather than their universal affinity to nature. Apart from Vandana Shiva and Bina Agarwal,Mahasweta Devi, Arundhati Roy, MedhaPatkar, Mayilamma, C.K Janu, Mayilamma, DayamaniBarla, Sarah Joseph, have been vocal about the environmental crisis in India and its impact on the indigenous people, women and other dominated sections of the society through their activism as well as writings. This article also aims to throw light on all these Women who have actively participated in various movements of Postcolonial India to protest the rampant development and advancement that exploits the environment.

Arundhati Roy

Arundhati Roy is a widely known novelist, socio-political and environmental activist who is not an onlooker of events unfolding in postcolonial India but a participant in it. Through her activism and writings, she attracts the attention of people towards the various kinds of oppressions and dominations in Postcolonial India. Her non-fiction writings like *The Algebra of Infinite Justice* (2001), *An Ordinary Person's Guide to the Empire* (2005), and *Listening to Grasshoppers: Field Notes on Democracy* (2009) critiques the political and economic policies of the government both at the national level and global level regarding their impact on the population and the environment. Roy vehemently attacks the capitalistic attempts that result in the exploitation of natural resources and destroys the ecology along with human lives. In one of the essays titled "The Greater Common Good", Roy critiques the economic and political ideologies and resultant policies that support the "Big" ideas, particularly the dam projects that cause displacement of lakhs of people and environmental disasters. She has volunteered several protests against the building of dams in Postcolonial India like Narmada BachaoAndolan and raised the voice for the subjugated section of India as well as for the exploitation of the natural environment. In the essay "The End of Imagination" which is about the Pokhran Blast in 1988, Roy discusses the environmental consequences of such projects to present a scary picture of the future. She writes:

> If there is a nuclear war, our foes will not be China or America or even each other. Our foe will be the earth herself. The very elements- the sky, the air, the land, the wind and water- will all turn against us. Their wrath will be terrible. Our cities and forests, our fields and villages will burn…. Rivers will turn to poison…. There will be no day.…Nuclear winter will set in…. Radioactive fallout will seep through the earth and contaminate groundwater. Most living things…. will die. (5-6)

MedhaPatkar

Besides deforestation, another serious environmental issue that India is facing is the large-scale construction of dams. MedhaPatkar is widely recognized for being an important leader of Narmada BachaoAndolan happened in 1985 against the displacement of lakhs of people due to the construction of the SardarSarovar Project and other big dams projects on the Narmada River. This ecological movement highlighted the irrationality and indifference of higher authorities regarding the just rehabilitation of poor people. Patkar was assaulted, booked for false offenses by the government of Gujarat but she has not stopped and intensified her protest through campaigns, fasts, documenting the delirious impact on people's lives as well as the natural resources. This movement has received support from people of all walks of life and was assured by the authorities involved that further construction would be undertaken after rehabilitating the people but this was not fulfilled and Narmada BachaoAndolan was betrayed. Nevertheless, Patkar continued her fight and can be seen as a front runner in various people's movements.

Mahasweta Devi

Postcolonial Ecofeminism specifically takes into consideration the plight of the tribals in post-independent India as they are the group that is mostly impacted by the progressive projects as well as by natural conservation projects and the messiah of tribals is Mahasweta Devi, who lived her life for the subalterns of India by voicing their concerns and miseries through her writing as well as through her activism. She has represented the oppression of the untouchables by the upper-caste landlords, tribal's association with forest resources, and their displacement from land due to various factors in both colonial as well as postcolonial India.Her novels *The Book of the Hunter* (2002), *Right to the Forest* (1977), *Chotti Munda and his Arrow* (2002), *The Glory of Sri Sri Ganesh* (2003) represents the same. She has not presented the fictional detail rather her writing is the result of her extensive search and visits undertaken to the remotest villages of India to document the folklore and oral history of tribal. She has been instrumental in mobilising people through her interviews, newspaper columns in Bengali against the expropriation of fertile lands of poor people by the government in order to hand over the farmlands to big industrial houses at very low prices.

Sarah Joseph

Sarah Joseph is a well established Malayalam writer who is known for deeply evocative novels and short stories that are deeply rooted in the local but have universal scope. She is regarded as the pioneer of the feminist movement in Kerala and is always at the forefront of various ecological movements in the state. She is the founder of *Manushi*, which was formed in 1985 and this organisation has

a significant impact in mobilizing women from various strata of society. Right from her earliest short stories, much before western ecofeminism came in vogue as an ideology, she already had a keen engagement with both women's rights and the environment. In the words of Sarah Joseph, her inclination towards women and environmental issues is natural and spontaneous as she affirms India is a spiritual country wherein human beings and nature co-exists but "Today we are becoming exiles from nature. This mishap has befallen us in the wake of our orchestrated attempts to conquer nature. The current model of development sees nature as a cow to be milked forever but to be cared for, never" (Joseph). Sarah Joseph through her writings as well as through her participation in various environmental movements draws the attention of her readers and many people around over the development projects that exploit the environment and adversely affect the people living in the same environment.

Dalit/Tribal Voices

Nevertheless, tribal and Dalit environmental activists like DayimanaBarla, Mayilamma, C.K. Janu voiced the burden indigenous people especially tribal and Dalit women bear due to the exploitation of natural resources and thus has shown tough resistance against the development projects started by the government. This turn gives postcolonial ecofeminism a subaltern identity and emerged out as an inclusive approach that takes into the fold the multiple women voices vis-à-vis environmental crisis.

DayamaniBarla

DayamaniBarla is the tribal Journalist and an environmental activist who posits "the traditional communitarian way of life and love for the environment of the nature-oriented Adivasi- Mulnivasi farmers alone can be a solution to the dire crisis of the environment, water, and food facing the country" (Barla). She is an anti-displacement activist and known for her agitation against the Arcelor Mittal Steel Plant in eastern Jharkand which could have displaced many indigenous people. Barla joined the people's movement in 1995 against the KoelKaro hydel project that has the potential of displacing 2,50,000 people by destroying their agricultural land and acres of jungle. Dayamani critiques the development projects in India that are destroying the natural resources and asks relevant questions"Is this what development means? If you exploit and exhaust all rivers, forests and minerals, what will be left for our future generations?" (Barla)

Mayilamma

Another tribal woman who has led environmental activism is Mayilamma, an illiterate Adivasi woman. It is her iconic leadership against the unchecked extraction and degradation of water by a multinational Coca-Cola plant that listed the small

village of Plachimada on the global map of environmental activism. In her autobiography titled *Mayilamma: OruJeevitham*(2006), she has traced the rise of eco-activism in the wake of globalization in Kerala and the growing socio-economic inequalities.

C.K Janu

C.K Janu, a dalit activist secured Adivasi rights to forests in South India at the beginning of the 21st century. She is famous for her unfinished memoir, *Mother Forest: The Unfinished Story of C.K Janu*, published in 2004. It is under her leadership the protest of Muthanga Forests was carried upon for the landless tribals. Thus, C.K Janu, DayamaniBarla, Mayilamma has provided a much-needed subaltern identity to postcolonial ecofeminism. A similar movement in Andhra Pradesh's Medak district is being observed that is led by Dalit women under the leadership of Dr. P.V. Satheesh and his companion women, who farmed a farm cooperative and started growing millets in their infertile wasteland and became self-sufficient in meeting their needs. Thus, these local movements brought the small villages of India to the Global map of activism and highlights the fact that caste, class, environment and gender issues are deeply enmeshed. It is the poor, lower class and lower caste, and within them, the peasant and tribal women, who are worst affected and hence, they are the most active in the protests.

Therefore, Postcolonial ecofeminism underscores that gender is not the only criteria- caste, class, geographical location also plays a pivotal role in understanding the relationship of women with nature which is not taken into consideration in mainstream ecofeminism. The tribal and dalit women activists are protesting against the environmental exploitation in India as it is the resources from the natural environment that sustains them which shows that women's relationship to nature is contextual. Thus, Third World women who are living closer to nature and who are materially dependent on them are ought to be affected more by the exploitation of their immediate environment. The underlying assumption of postcolonial ecofeminism lies in the consideration of diverse factors in understanding women-nature connection as well as the refutation of the western hierarchical model which is fraught with dualism in order to understand the real causes for the exploitation of nature as well as of women of Postcolonial India.

References :

Agarwal, Bina. "The Gender and Environment Debate: Lessons from India". *Feminist Studies*, vol. 18, no. 1, spring 1992, pp.119-158. JSTOR, www.Jstor.org/stable/3178217.

..."Environmental management, equity and ecofeminism: Debating India's experience". *Journal of Peasant Studies*, vol. 25, no. 4, 1998, pp. 55-95. doi: 10.1080/03066159808438684.

Arneil, Barbara. *Politics and Feminism*. Blackwell, 1999.

Bidwai, Praful. "MedhaPatkar's contribution". *The Daily Star,* 11th January 2021, www.thedailystar.net/medha-patkars-contribution-52614 Accessed on 24 November 2021.

Barla, Dayamani. “Adivasis and the Indian State: Ease of business or loot? Jharkhand’s tribal farmers lose ancestral land to govt’s online ‘land bank’”. *Firstpost*, 22 Aug. 2019, www.firstpost.com/india/adivasis-and-the-indian-state-ease-of-business-or-loot-jharkhands-tribal-farmers-lose-ancestral-land-to-govts-online-land-bank-7209581.html. Accessed on 5th of December 2021.

Chauhan, Abha. “The Nature/Culture Dualism in the Indian Context”. *An International Feminist Challenges to Theory*, 2015, pp 71-84. Emerald Insight, doi. dx.doi.org/10.1016/51529-2126(01)80026-6.

Guha, Ramachandra. Environmentalism: A Global History. Penguin Books, 2016.

Joseph, Sarah. *Gift in Green*. Translated by ValsanThampu, Harper Collins, 2013.

Mack-Canty, Colleen. “Third-Wave Feminism and the Need to Reweave the Nature/Culture Duality”. *NWSA Journal*, vol. 16, no.3,2004, pp. 154-179.

Mies, Maria, and Vandana Shiva. *Ecofeminism*. Rawat Publications, 2010.

Mohanty, Chandra Talpade. “Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses”. *Feminist Review*, No. 30, 1988, pp. 61-88. *JSTOR*,https://www.jstor.org/stable/1395054

“Mahashweta Devi, a writer who became a voice of marginalised communities”. *DownToEarth*, 28 july 2016,www.downtoearth.org.in/news/environment/mahashweta-devi-a-writer-who-became-a-voice-of-marginalised-communities-55093 Accessed on 12 December 2021.

Nanda, Meera. “History if what Hurts”. A Materialist Feminist Perspective on the Green Revolution and Its Ecofeminist Critics”. Materialist Feminism: A Reader in Class, Difference and Women’s Lives, edited by Rosemary Hennessy and Chrys Ingraham, Psychology Press, 1997, pp. 364-394.

Plumwood, Val. *Feminism and the Mastery of Nature*. Routledge, 1993.

Roy, Arundhati. “The End of Imagination”. *The Algebra of Infinite Justice*. Penguin, 2002. pp 1-42

“The Greater Common God”. *Frontline*. 22 May 1999, frontline.thehindu.com/other/article30257333.ece Accessed on 5th December 2021.

“We’re lurching into an unknown future, in a blitzkrieg of idiocy”. *Ecologise.in*, 14th May 2019, ecologise.in/2019/05/14/arundhati-roy-literature-provides-shelter-thats-why-we-need-it/Accessed on 27 November 2021.

Starhawk. *The Spiral Dance: A Rebirth of the Ancient Religion of the Great Goddess*. Harper One, 1999.

Shiva, Vandana. *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India*, Women Unlimited, 2010.

SaleenaBeevi, S. “Role of Ecofeminism in Environmental Protection.” Shanlax International Journal of Economics, vol. 6, no. S1, 2018, pp. 78–81. DOI : https://doi.org/10.5281/ zenodo.1488523.

Varma, R. Sreejith. **“**The Subaltern Environmentalism of Mayilamma”. *ALA*, 30th September 2019, ala.keralascholars.org/issues/13/mayilamma/Accessed on 5th December 2021.

Warren, Karen J, and NisvanErkal, editors. *Ecofeminism: Women, Culture, Nature*. Indiana University Press, 1997.

❒❒❒

1. Research Scholar, Central University of Jammu, Email : kamaljotcuj@gmail.com

2. Associate Professor, Department of English, Central University of Jammu
Email : Vandanacuj2017@gmail.com

Untouchability as an Impediment to Indian Nationalism: A Re-Reading of Mulk Raj Anand's *Untouchable*

–Dr. Ramyabrata Chakraborty

This new knowledge about himself further deepens as the day progresses. He sees Pandit Kalinath making lecherous advances towards his sister Sohini; he has picked up a loaf of bread from the pavement thrown to him by a rich housewife; he is repulsed by the hostility of Colonel Hutchinson's embittered wife; he is confused by the alternative systems offered as the means for his liberation, viz., Christianity, Gandhism and Machine.

Untouchability is the practice of ostracising a group of people regarded as 'untouchables'. The practice of untouchability disturbs the spirit of communal harmony and universal brotherhood and has been reflected in Indian English Novels like Mulk Raj Anand's *Untouchable*. This novel is a high watermark in Indian English novels as a work of social realism dealing with the problems of untouchability in Indian society. Keeping in mind Anand's novel, *Untouchable* the present paper intends to examine how untouchability remains a hindrance to generate a feeling of nationalism in India

Keywords: Anand, untouchability, nationalism, Gandhi

INTRODUCTION

Mulk Raj Anand was one of the triumvirates who inaugurated the new chapter of writers of fiction along with R.K. Narayan and Raja Rao. English education was the strength behind, but the inspiration had always been the people of the land, their lives, occupations and pains. In his immediate society, Anand had friends belonging to the scavenger class. His maiden attempt at novel writing, thus, takes into consideration the life of an untouchable, then a coolie. His themes obviously follow his intimate experience, his education, and his political and social philosophy. It can be said that his themes are Indian to the core but the applications are a combination of the Eastern mode of story- telling with a technical orientation of the West (Goswami, 2009:11).

Anand's *Untouchable* is a high watermark in Indian English novels as a work of social realism.

This novel deals with the problems of untouchability in Indian society which has become a social curse. Untouchability is the practice of ostracising a group of people regarded as 'untouchables'. It is a social evil because the backward classes are denied the very fundamental rights, which are guaranteed to each and every citizen by the Constitution. It alienates people from the social structure and hinders the progress of the society as a whole. The practice of untouchability disturbs the spirit of communal harmony and universal brotherhood and has been reflected in Indian English Novels like Mulk Raj Anand's *Untouchable*. Mahatma Gandhi vehemently opposed the system and tried to remove the curse from our society. He introduced many missions against untouchability. He treated the *Dalits*, the *Harijans* and other downtrodden equally as human beings. This novel also shows Gandhi's mission to uplift the untouchables for the sake of raising the feeling of Nationalism among the people of India.

DISCUSSION OF THE PROBLEM

The central protagonist of the novel is Bakha, a dalit whose job is to clean the latrines of the people. When the novel starts we find Bakha is huddled in cold rags in his ramshackle hutment. The time is one autumn morning. His father shouts at him rudely to get up to clean the latrines for the benefit of the soldiers in the nearby cantonment. Ignoring his father, Bakha responds to the calling of Havildar Charat Singh to clean a latrine and is quick to do his bidding as he takes his brush and jug of phenol and expertly washes the latrine clean. The Havildar promises Bakha a hockey stick as he knows Bakha is rather good at the game. With the self-respect of a slave boosted in this manner, Bakha goes on washing the dirty latrines for the second time during the morning.

As an outcast from normal society, Bakha experiences the curse of being born as an untouchable. His sister Sohini has to wait for some caste Hindu to pour water into her container as she, being an untouchable, has no right to touch the well. But the hypocrite Brahmin priest, Pandit Kali Nath, attracted by her youthful charms designs to give her water. Bakha receives humiliation and torture when he absent-mindedly bumps into a high caste gentleman while relishing the juicy delicacy of a 'Jilebi'(a sweet). His tearful apology falls on deaf ears. No one takes pity on him; instead, the 'touched' man hits him on his cheek. Later on his terrible experiences in the temple and hockey match create a sort of dejection in him and he resigns himself to a sense of fatalism. Here the novelist beautifully delineates the crude realities of Indian social system dominated by the corrupt priestly class.

The greater effect of the novel is its archetypal presentation of the colonial situation. This begins in the second paragraph of the novel, introducing Bakha as a young man of eighteen who had been caught by the glamour of the 'white man's' life, the Tommies had treated him as a human being and he had learnt to think of himself as superior to his fellow-outcastes. Otherwise, the rest of the outcastes were content with their lot (Anand, 2001: 2).

The passage clearly shows the source of the process of individuation in Bakha and in all those protagonists who become conscious of their existence as a human being and thus finds it difficult to continue as a member of the tribe or community. The source is the conflict of cultures that has raged (and still rages) through the Commonwealth; when a member of one culture is touched by the other he becomes aware not so much of the attraction of the new culture (Bakha's ambition to look like a gentleman) as of the fact that he is an individual, separated from his own society but not joined to the new. E.H. McCormick in his New Zealand Literature used Matthew Arnold's phrase to describe this colonial condition:

Wandering between two worlds, one dead.

The other powerless to be born (Arnold, 1989: 296).

In Bakha's case, he is dead to the full meaning of Hindustan –he fails to recognize the snake image under the banyan tree in the temple courtyard –and he comprehends only the trappings of Western culture.

The sensation of belonging is contrasted with Bakha's rejection by his father, Lakha and by the caste society the father still respects: "they are really kind. We must realize it is religion which prevents them touching us"(Anand, 2001:74). But even the temporary sensation of belonging granted to Bakha by the Havildar's gift of the Hockey stick is ruined by an accident as the boys' hockey game and the meeting addressed by Gandhiji ends in the burning of foreign cloth. Furthermore, the whole basis of Western culture is wholly rejected in Bakha's comic encounter with the Christian missionary, Mr. Hutchinson. Robertson comments:

The way of the "traveller" addressed in the Hindi hymn sung at the meeting is not forward into the total imitation of the new culture, but back into the modified culture in which one is born—a purified Hinduism which can incorporate aspects of Western culture, such as the flush system. Robertson, 1999: 58).

The novelist also points out the motive of the Englismen to take the advantage of the desperate situation and convert the lower caste Hindus to Christianity. But Bakha survives from this trap and moves into the milling crowds who are

thronging towards the city *maidan* (open field) to attend a rally addressed by Mahatma Gandhi. He is struck by Gandhi's statement that untouchability is the greatest blot on Hinduism. But Gandhi also exhorts the untouchables to purify themselves by eschewing their habits like drinking and eating carrion. Bakha is again confused when he overhears a dialogue between two gentlemen standing near him. He listens to the criticism of Gandhi and his preaching expounded by one of them, while the other, a young poet expounds the need of destroying all castes, and emphasizes the need for the sweepers to change their very occupation itself. Herein lies the irony.

Anand is undoubtedly writing a message for his own culture in *Untouchable*; much of the novel contrasts the innate decency of Bakha with the gap between the protestation and practice of untouchability among caste Hindus in India chiefly in the hypocrisy of the priest who claims Bakha's sister has defiled him when he himself fondled the young girl's breasts, but also in other senses where characters cut corners when it suits them, as in the meeting which Gandhi addresses. He also contrasts the rigidity of Hindu beliefs with the humane relations which can develop casually between the Harijans and other "lesser breeds without the law", such as the Havildar and other Muslims, and among the boys who play hockey together.

But for this message to do more than mock hypocrisy, and easy objective, it would have to suggest a positive course of action. Anand proposes a double resolution, spiritual and physical; Gandhi offers the first:

(Untouchable) should realize that they are cleaning Hindu society…They have, therefore, to purify their lives. They should cultivate the habits of cleanliness…They claim to be Hindus. They read the scriptures. If, therefore, the Hindus oppress them, they should understand that the fault does not lie in the Hindu religion, but in those who profess it. (Anand, 2001: 138-139).

And he goes on to propose the Untouchables "should now cease to accept leavings from the plates of high caste Hindus" (Anand, 2001: 139) and should have free access to wells and temples, two reforms Anand obviously supports by the crucial incidents he portrays at the well and at the end in showing how Bakha and his family get their daily food thrown to them.

The apparent paradox of purification by emancipation is defended by the poet in the penultimate chapter, and resolved by proposing the 'organic' introduction into Indian culture of 'the flush system'. The spiritual message given by Gandhi makes Bakha in the last chapter accept his lot with the hope of escaping from the latrines when they are converted to the flush system; more important, the calmness that

descends on him at the end of a day of crises makes him abandon his hope of becoming a 'gentleman', of wearing the clothes of the sahibs imitating them.

Bakha's growth towards aggressiveness (though in limited sense) is not attributed to the instinct within him, but to the external objective situation that interacts with his consciousness. The novel narrates the events of a single day in the life of Bakha, who by nature is clean, swift and dignified, but who by profession is a sweeper, an outcaste whose job is to clean latrines, and hence an untouchable. The events are presented from the point of view of Bakha himself; Anand employs the stream-of-consciousness method which enables him to dramatize the interaction between consciousness and situation. The central event is Bakha's pollution of a rich Hindu merchant in the town, who then humiliates him before others. The event opens Bakha's eyes, and Bakha realizes with a sudden shock what he really is in society:

Like a ray of light shooting through darkness, the recognition of his position, the significance of his lot dawned upon him. It illuminated the inner chambers of his mind. Everything that had happened to him traced its course up to this light and got the answer (Anand, 2001: 43).

This new knowledge about himself further deepens as the day progresses. He sees Pandit Kalinath making lecherous advances towards his sister Sohini; he has picked up a loaf of bread from the pavement thrown to him by a rich housewife; he is repulsed by the hostility of Colonel Hutchinson's embittered wife; he is confused by the alternative systems offered as the means for his liberation, viz., Christianity, Gandhism and Machine.

To the Western reader there is a certain strain in accepting the reconciling of spiritual and mechanical solutions to Bakha's problem, and there is some evidence in the arranged denouncement that Anand also felt this strain but was determined to make his point and give his novel a practical applicability. And who can say what effect his novel has had in the formal changes that have occurred in Indian society with the passing of the "Untouchability Offences Act (1955)", even though one notes that it is still not wholly effective? In spite of Anand's resolution of the paradox and of the hope he offers for the Harijan, the Western reader is probably inclined more to side with Dr.Ambedhkar, a Dalit who was the Chairman of the Drafting Committee of Indian Constitution, in his disagreement with Gandhi over the problem. When the young poet suggests the use of 'flush system' as a means of achieving this end he is not misinterpreting Gandhi but suggesting a practical alternative which cannot be ignored. Thus a casteless and classless society could be created. Though the novel is Gandhian in its motivation, it is however open-ended.

CONCLUSION

The novels of Mulk Raj Anand touch the surface of post colonial methodology to evolve new perspective for the term 'Other', 'hybridity' and 'suppressed class'. Characters of his novels projected as 'marginalised class' and 'subaltern class' search the way to self- identity. The character like Bakha always breathes under the dark shadow of identity crisis. "*Untouchable* set an entire generation of educated Indians thinking about India's social evils that were perpetuated in the name of religion and tradition" (Chakraborty, 2019:82). These and other early novels and short stories brought into sharp focus the dehumanizing contradictions within colonized Indian society. Through his writings he revealed that in addition to the foreign colonialism of Britain there existed layers of colonialism within Indian society. This internal colonialism stood in the way of India's transition to a modern civil society. While exposing the overarching divide between the British and a colonized India, he reveals an Indian society creating its own layers of colonizers and colonized thereby rendering the fledgling Indian nationalism an extremely problematic concept:

It is not possible to conceive India as a nation in European terms. Historically speaking there is no revolutionary situation going in India (like the French revolution). India is surging with movements of all kinds. India as a state is going to last out and may ultimately be able to bring about a kind of union in the next hundred years, where the different communities have a national identity. (quoted in Chandan, 2010: 97).

Work cited :

Anand, Mulk Raj. *Untouchable,* New Delhi, Penguin, 2001.

Arnold, Matthew. 'Stanzas from the Grande Chartreuse', *Matthew Arnold: Selected Poems* (Ed. Dr. S. P. Sengupta), 3rd ed, New Delhi, Rama Brothers: 294-317, 1989

Chakraborty, Ramyabrata. *Nation and It's Narration: A Re-reading of R. K. Narayan's Novels*, Mauritius, Scholars' Press, 2019.

Chandan, Amarjit. 'Citizens of the World with Roots in the Punjab', *South Asian Ensemble* 2.3: 90-99, 2010.

Goswami, Ketaki. *Mulk Raj Anand: Early Novels,* New Delhi: PHI Learning Private Ltd., 2009.

Robertson, R. T. 'Untouchable—As an Archetypal Novel', *Indian Fiction in English* (Eds. P. Mallikarjuna Rao and M. Rajeshwar), New Delhi, Atlantic Publishers and Distributors: 53-59, 1999.

❒❒❒

Assistant Professor & Head, Department of English, Srikishan Sarda College, Hailakandi, Assam
Email: ramyabrata1@gmail.com, ramyabrata@sscollegehkd.ac.in

Paradigms of Gender and Environment Debate in Mahasweta Devi's 'The Hunt' and 'Douloti the Bountiful'

–Tania Shri
–Dr. Vandana Sharma

In a similar vein, 'Douloti the Bountiful' short story is set in the Seora village (Palmau) in Bihar is a tragic story of a tribal woman, Douloti who is the subject of exploitation for capitalists. The story showcases the exploitation of tribal land and plight of the tribal women.The Rajput and Brahmins like Munabarsingh Chandela, Parmanand and Latiaji encroach tribal land rendering them landless and eventully make them their bonded slave and exploit them for their own benefits, The Rajput and Brahmins have made the tribals their bonded slave.

The gender and environment debate in India spearheaded by an acclaimed environmentalist Vandana Shiva essentializes ThirdWorld women's connection with nature. She argues that development impels a radical shift from the traditional notions of nature as the source of creativity and life to merely 'passive' and resource. Later the debate is carried forward by Bina Agarwal, developmental economist in her essay "The Gender and Environment Debate: Lessons from India" (1992) who argues that Vandana Shiva's discourse fails to trace the plight of Third world women interlinked with caste, class, race and ethnicity. She contends that the notions of gender and caste are "historically and socially constructed and vary across and within cultures and time periods" (123). Primarily homogenizing the diverse experiences of women ignores the multiple forms of domination of women and argues that the Third world women's connection with nature are rooted in their material realities. Taking cues from the theoretical underpinnings of Vandana Shiva and Bina Agarwal the paper seeks to investigate material realities of tribal women in India as reflected in Mahasweta Devi's evocative short stories 'The Hunt' and 'Douloti the Bountiful' from her short story collection *Imaginary Maps* (1995). The select short stories deal with the exploitation of tribal women, their survival strategies for their sustenance and their initiatives for the protection of their land as well as their affinity towards nature. Moreover, it maps the resistance of tribal women against the degradation of their surroundings and the commodification of their bodies.

Keywords: ecofeminism, tribal women, environment, gender.

Ecofeminism as a theory and activism contends that nature and women are interconnected. Mainstream ecofeminist thinkers investigate the connection between nature and humans through the lens of gender. Mainstream ecofeminism represent only white and middle class women's predicaments and exploitation since ecofeminism, as a theory is the endowment of western theorists. It could not trace the predicaments of Third World women rooted into the notions of caste/class, race, ethnicity and colonialism. Therefore, it is palpable that it failed to take into account the plight of Third world women and exploitation of natureinextricably linked with the notions of colonialism, caste, class and race. Andrea Campbell in her work *New Directions in Ecofeminist Literary Criticism* (2008) rightly asserts that postcolonialecofeminism adequately contextualizes"the 'double-bind' of being female and being colonized" (1). This particular aspect of Campbell thoroughly provides evidence to the fact that tribal/Dalit women in India are subjected to double marginalization by being a female at the first place and being a tribal on the other hand.

In the Indian context, ecofeminism in theory and praxis propounded by Vandana Shiva and Bina Agarwal highlights the significant effects of ideological constructs and underline basis of women's relationship with the non-human world. Bina argues that Shiva essentializes the experiences of Third world women when she perceives the women-nature connection. Further, she asserts that Third world women cannot be put in a unitary category as their gender-based domination is interlinked with the domination pertaining to their class,caste, race and ethnicity, Although she distinguishes third world women from the rest like the ecofeminists, she does not differentiate between women of different classes, castes, races, ecological zones and so on. Hence, implicitly a form of essentialism could be read into her work in that all Third World women whom she sees as 'embedded' in nature gives women a special relationship with the natural environment (125).

Vandana Shiva claims western science and development as patriarchal projections, which leads to the parallel exploitation of women and nature. The flag bearers of development have seized tribal/Dalit women's land and their sexuality, which is eventually retrogression in disguise. Urbanization and the mechanized world are the causative agencies of the encroachment of forests, uneven use of natural resources, degradation of environment as well as marginalization of tribal women. Indian physicist and environmental activistVandana Shiva in her book *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India* (2010) calls the development as a new project of western patriarchy as Shiva claims,

Development could not but entail destruction for women, nature and subjugated cultures, which is why, throughout the Third World, women, peasants and tribal are struggling for liberation from 'development' just as they earlier struggled for liberation from colonization (2).

Taking cues from the theoretical underpinnings of Vandana Shiva and Bina Agarwal the paper seeks to investigate material realities of tribal women in India as reflected in Mahasweta Devi's evocative short stories 'The Hunt' and 'Douloti the Bountiful' from her short story collection *Imaginary Maps* (1995). The select short stories deal with the exploitation of tribal women, their survival strategies for their sustenance and their initiatives for the protection of their land as well as their affinity towards nature. Moreover, it maps the resistance of tribal women against the degradation of their surroundings and the commodification of their bodies.The present paper investigates the aftermaths of development, which destabilizes the lives of tribal women in particular when capitalist patriarchal structure hijacks their body and mind.The capitalists have hijacked their land and body. Development has ledto deforestation, which in turn has deteriorated tribal women lives and eventually spawned their displacement from natural habitats.Bina Agarwal criticizes Shiva's notions of development and colonialism as the roots of ecological destruction and oppression of women. She argues that Shiva ignores the preceding economic and gender inequalities,

Undeniably, the colonial experience and the forms that modern development has taken in Third World countries have been destructive and distorting economically, institutionally, and culturally. However, it cannot be ignored that this process impinged on preexisting bases of economic and social (including gender) inequalities (125).

Tribal/Dalit women relationship with nature are materially structured and not only biologically and spiritually. Their material reality determines their kinship with ecology (land). Tribal women depend upon forests for their sustenance and survival, which constructs their alliance with nature.

Women's and men's relationship with nature needs to be understood as rooted in their material reality, in their specific forms of interaction with the environment. Hence, insofar as there is a gender and class (/caste/race)-based division of labor and distribution of property and power, gender and class (/caste/race) structure people's interactions with nature and so structure the effects of environmental change on people and their responses to it (Agarwal 12).

Noticeably, ecological destruction affects tribal women lives particularly.Tribal/ Dalit women are the subjects of exploitation and endure environmental destruction

unleashed by capitalists and patriarchs. And postcolonial ecofeminism takes into account of the account of hardships of these women which was vacuum left by mainstream ecofeminism as it homogenizes the diverse experiences of women. But postcolonial ecofeminism unearths the manifold experiences of tribal-Dalit women embedded into the notions of caste, class and race.

Indian women writers have been depicting the issues concerning ecological degradation and oppression of tribal/Dalit women based on their diverse experiences in their works. EllekeBoehmer in*Colonial and Postcolonial Literature*(1995) states that

Postcolonial women writers from India...are equally concerned to bring fore the specific textures of their own existence. Both as women and postcolonial citizens they concentrate...on their own „distinct actualities (and) often this is a political commitment (17).

Mahasweta Devi remains one such progressive writer who is also a social activist and stands for subalterns primarily because of her subjective experiences and fights for the rights and sustenance of tribal. Her endeavor to retain the lost tribal culture and rituals in her works withholds ample significance. She has an inclination to give her voice to the voiceless tribal as she said once "I think a creative writer should have a social conscience. I have a duty toward society" (ix).

'The Hunt' is one of the short storiesof Mahasweta Devi's short story collection *Imaginary Maps* (1995) translated by Gayatri Chakravorty Spivak. It maps a powerful narrative of a very vigorous but underprivileged and marginalized tribal woman who is actually doubly marginalized, first of all among her own tribal society and by upper cast patriarchs on the other hand.Mary Oraon who fights back and resists the exploitation that capitalism and patriarchy unleashes upon nature and women. The Story reveals the parallel exploitation of nature through deforestation and subjugation of women through sexual harassment and rape.

The setting of the story is in Kuruda village of Tohri(Odisha) which is a coal-halt and sal-growing area.The capitalists from the cities are captivated by the profits that they can yield from the Tohri. Capitalists in the name of development had deforestation done in the forests of Kuruda. Timber brokers encroach sal-growing area, which eventually leads to deforestation. After the contractors' intrusion of the Kuruda and Tohri, the forests got empty.Devi's displeasure with the breakdown of ecological sanctity and sustainability is clearly reflected here, " Once there were animals in the forest, life was wild, the hunt game had meaning. Now the forest is empty, life wasted and drained, the hunt game meaningless.

Only the day's joy is real" (Devi 12). Maria Miesand Shiva in their pathbreaking book *Ecofeminism*(2010) postulates,

The capitalist patriarchal world system has led to the destructive tendencies that threaten life on earth. This system emerged, is built upon and maintains itself through the colonization of women, of "foreign" people and their lands; and of nature, which is gradually destroying(2).

Mary is a half-tribal and half-Christian woman who is a daughter of tribal woman Bhikni and son of Dixon. Mr. Dixon had planted sal on the land attached to his bungalow which Mr. Prasad, a Brahmin didn't favour but as soon as he got to know the rising prices of sal, he is determined to sell sal trees, " Now that he knows the price of sal, his one goal is to sell the trees at the highest price."(6). Ostensibly, not only city dwellers but upper caste patriarchs of village also contribute to deterioration of ecological balance. To this context Maria Mies and VandanaShivaperfectly states that, the capitalist economy is of profit- oriented nature, Only those properties of a resource system which generate profits through exploitation and extraction are taken into account, properties which stabilize ecological processes but are commercially non- profit generating are ignored and eventually destroyed (24)

Tribal women in the short story are subjected to double marginalization, first unleashed by their own tribe men and by uppercaste patriarchs and capitalists on the other hand. Mary is not considered a part of her own tribe, Oraon because of being an illegitimate daughter of a white man, "Oraons don't think of her as their blood and do not place the harsh injunctions of their own society by her" (Devi5). Moneylenders and contractors exploit tribal women in the short story as they are paid lower wages than men for cutting sal trees. Tehsildar Singh 'The Hunt' is the representative of misogynistcapitalists. And as a dutiful spokesperson, he rapes nature as well Mary, a tribal woman, "He thought, the business of felling trees in this forest is most profitable. Mary can make his stay profitable in the other sense as well." (Devi 8).He tricks tribals to hijack their land and Mary's body. Mahasweta Devi herself asserts in "Author in Conversation" in *Imaginary Maps*(1995), "Tehsildar Singh represents the mainstream. He is a contractor, the entire administration is behind him, because this illegal deforestation, which continues all over India is done with great skill, and always the tribals are condemned"(xii).

Devi has portrayed Mary as a strong and resistant woman who does not succumbs to the exploitation of patriarchs but fights back with unshakable vigour. Tehsildar makes advances towards Mary to which she she resisted initially but later on at the hunt festival kills him with her machete faking it with the sexual

embracement of him. She eventually makes the biggest kill of the hunt festival as she considers that she has killed a beast bigger than any other animal and hasmade the hunt festival worth it, “Today a small thing cannot please her. She wants to hunt the big beast! A man,Tehsildar” (Devi 5)

Thus in ‘The Hunt’ Mahasweta Devi has narrated an event that which resonates with the plight of tribal women even in post-independent India. The exploitation of underclass women has been running parallel with the degradation of physical environment in tribal areas in India. It actually originates from profit-centric ‘development’ projects designed and controlled by the mainstream consumerist planners.

In a similar vein,‘Douloti the Bountiful’ short story is set in the Seora village (Palmau) in Bihar is a tragic story of a tribal woman, Douloti who is the subject of exploitation for capitalists. The story showcases the exploitation of tribal land and plight of the tribal women.The Rajput and Brahmins like Munabarsingh Chandela, Parmanand and Latiaji encroach tribal land rendering them landless and eventully make them their bonded slave and exploit them for their own benefits, The Rajput and Brahmins have made the tribals their bonded slave.Maria Miesin *Ecofeminism*(2010) posits that,” the culturally- rooted tribal is made physically homeless by being uprooted from the soil of her/ his ancestors” (98). Munabar has made all the tribe such as Dusads, Oraons, Nagesias, Munda, Lohar, GhasiBhuyian, Chamar, Parhaia as kamiya or bonded slaves. Tribal women sing the song of their grievance “ He has become the government by lending money. And we have become kamiyas. We will never be free” (Devi21).Devi states that upper caste people consider that tribals don’t have any right to have money or build a roof. Contractors and moneylenders exploit tribals for their aid. Bono after coming from Dhanbad retells his experience of exploitation by contractors and governement to his fellow Nagesias,

Government-unine-contractor-slum landlord-market-trader-shopkeeper-post office, each is the other’s friend. Down in the mine! How dark down there! And at week’s end, double darkness above the mine as well. The contractor’s hoods stood with guns. They snatched the money. We got it only after they took their cut (Devi 24).

GanoriNagesia, a tribal man who injured his back while pulling a cart being an ox for Munabar as his young ox was eaten by a tiger due to his carelessness. And that’s how he was renamed as Crook Nagesia. Ganori is nothing but an animal in the eyes of Munabar. Tribal women are subjected to the exploitation by internal as well as external patriarchs as one-eyed man told Parmananada,

“They are all married in childhood and as soon as they are a little grown the man at home and the boss-moneylender outside-do they let them stay virgin? I was in a real bind”(Devi53)

Contractors exploit tribal women for the satiation of their sexual hunger and in return pay their loan and make them a bonded- whore. Parmananda, a Brahmin intends to marry Ganori’s daughter, Douloti for his lust, and in return repaid Ganori’s three hundred rupees and made him free from bonded labour. Munabar says to Ganori, “It’s Parmananda Misra from Jokhan, no? Releases fathers of daughters from bonded labour, marries the daughters” (Devi 47). Tribal women cannot adapt to the modernization of the cities and laments for the natural surroundings even in citities . Douloti could not find solace in Madhopura as she couldn’t connect with her surroundings,

Will he keep Douloti here after marriage? In this kind of room with brick walls all around and clay tiles on the roof?Douloti’s own place is much better. You can see trees and sky if you stand at its door. The laterine is by the door. O how much better it is to ‘go’ in the fields. When one of Douloti’suncls went to the field as a child, a tiger took him. Douloti has seen wolf, hyena, and fox. She has never seen a tiger(Devi 52).

Commodification of tribal women bodies is also one of the real intent of upper caste patriarchs. Parmananda has brought Douloti to satiate the lust of Latiaji. Doulti’ s rape and her forcible exploitation through prostitution as well as cultivation of the land by the dikus resonate with the usage of the word plough in the story by Rampiyari (Parmanand’s assistant). The capitalists have hijacked women’s reproductive spaces too. Latiajihas impregnanted many tribal women and does not let them live with their children but bring the clients even upto eight months before birth, “ They don’t let you live with your child, and clients come upto eight months before birth. Then I can’t for three months” (Devi64). Eventually, Doulti succumbs to the dreadful enslavement of Latiaji and died with tuberculosis on the Indian map, which was drawn in front of thehigh school to celebrate Independence day.This could mean that freedom has nothing to do with tribal people like Doulti. It is a kind of illusion for them even in post- Independent India, “ Today, on the fifteenth of August, Douloti has left no room at all in the India of people like Mohan for planting the standard of the Independence flag. What will Mohan do now? Douloti is all over India” (Devi 94)

‘Douloti the Bountiful’ establishes a parallel between the exploitation of tribal men who became bonded-labourers of the rich upper-caste landowners and the sexual exploitation of the tribal women who are abused as they are poor who

own nothing- neither the means of the their livelihood, nor their own bodies.

Understandably both the short stories 'The Hunt and 'Douloti the Bountiful' unfurl the diverse forms of domination experienced by tribal women basedupon their caste, class, race and ethnicity. It is their material reality that shapes their relationship with nature. Mary and Douloti bear exploitation intermixed with the notions of gender, caste,class and race and endure the aftermaths of ecological deterioration. Development has deteriorated the forests of Kuruda and Palamu in Bihar.Both Douloti and Mary are subjected to the barbaric attitude of the capitalist and are subjected to rape by misogynistic, capitalistic and masculinistic tendencies of contractors. Tehsildar Singh and Latiaji are both evocative of the hegemony over the subaltern. Their physical and material hunger has led to the displacement of tribal as they lose their land under the banner of deforestation.Therefore, development has led to deforestation and deterioration as well as displacement of tribal. Both the short stories reflect domination of tribal women post independence. The short stories traces that the independence has nothing to do with the freedom for tribal women, they are still within the grip of patriarchs. Mary being a half Christian and half- tribal suffers the patriarchal exploitation of Tehsildar Singh. In a similar vein, Douloti in post independent India is not literally independent as she bears the indictments of Latiaji who commodify her body. Ostensibly, both the short stories clearly unveils that tribal women's material reality shapes their experience with nature and their responses towards ecological destruction.

References :

Agarwal, Bina. "The Gender and Environment Debate: Lessons from India". *Feminist Studies,* vol.18, no. 1, 1992, pp. 119-158. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3178217.

Boehmer, Elleke. *Colonial and Postcolonial Literature*. Oxford University Press, 1995.

Cambell, Andrea. *New Directions in Ecofeminist Literary Criticism.* Cambridge Scholars Publishing, 2002.

Devi, Mahasweta. *Imaginary Maps.* Translated by Gayatri Spivak. Psychology Press, 1995.

Mies, Maria and Vandana Shiva. *Ecofeminism.* Rawat Publications, 2010

Rao, Manisha. Ecofeminism at the Crossroads in India: A Review. *DEP, 2012*

Shiva, Vandana. *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India.* Women Unlimited, 2010.

❐❐❐

---

1. Research Scholar, Department of English, Central University of Jammu
Email : tania.tangy315@gmail.com
2. Associate Professor, Department of English, Central University of Jammu
Email : vandanacuj2017@gmail.com

Research Article

Revealing the Complexity of Connectedness in Robertson Davies' *Fifth Business*

–Dr. Mary Sandra Quintal

Reading the works of Jung in the 50s and 60s changed Davies's outlook and this had a strong impact on his writing. According to Jung, the human psyche is made up of three major areas – the ego, the area of conflict awareness, the personal and the collective unconscious. The collective unconscious is like a vast reservoir of innate forms that are pertinent to all ages and all people, regardless of individualized history, geography and eras. This collective unconscious is the home of archetypal images such as those manifested in myths, legends, fairy tales, religious symbols, art and dreams.

Robertson Davies enjoyed a notable career as a journalist, playwright and novelist. He is a writer of great ideas and a very exciting imagination, so his stories captivated and interested audiences all around the world. He excelled in a variety of literary disciplines. He has been an astonishingly productive writer and had started his career approximately from 1939 and continued till he died. Davies novels has been considered as a brilliant novelist who has written so interestingly that a good number of critics and writers have been influenced by his works. His writings have expressed positive ideas and thoughts to his readers by bringing to life real characters, who live in this real-world learning and experiencing complicated incidents. The stories are logically written, coherent with highly developed plots and interesting and believable characters. The characters emit a positive outlook in life, living with a charismatic, authorized, patriotic and superior way of sailing through life's stormy waters.

The novels of Robertson Davies are a substantial contribution to novel writing in Canada. The comic spirit which pervades them, expressing itself through language, situation and character, in a variety of modes, is unexcelled in Canadian writing. Davies has also given evidence of considerable originality and skill in creating and projecting the characters in the trilogy. Characters like Dunstan Ramsay, Paul Dempster, Liesl, Mrs. Dempster and David Staunton not only substantiate this claim but indicate something of the breadth of Davies' range as a novelist. He does a complete character study and explores the characters in depth—for the most part they are used as a means to present or develop ideas.

Captivated by Davies depth of psychological moorings, this paper will discuss about the major theme the complexity of connectedness of the characters in general to each other because of the snowball incident in the award-winning novel *Fifth Business* and in particular by highlighting the not so glamorous and mystical life of Dunstan Ramsay who is the hero of this novel. *Fifth Business* is perhaps Robertson Davies best known and is widely considered his finest. Christopher Lehmann Haupt described the novel in the New York Times as "a marvelously elegantly written and driven by irresistible narrative force" (Flint 27). It is a story of life of the narrator, Dunstan Ramsay who functions as a '*Fifth Business*' (that is neither hero, heroine, villain, nor sidekick-but nevertheless essential to the plot).

Davies characters are shaped with a connection to mythical stories, they undergo a variety of experience's shaping their lives and become enriches by the power of it. As Diamond Lynne Nigh had said that Davies characters "are photographically realistic, but realistic in the sense of being archetypal and therefore not entirely individualized" (Nigh 18). The character's names instead of being branded forever, change depending on the status of their personality and soul. The plots are on the whole traditional and primarily vehicles of Davies' ideas.

The trilogies by Davies centers around or is in some way connected to Jungian psychology because Jung had such a powerful effect on him. The characters interact and are connected psychologically to one another, making the mythological connection more real and interesting. The characters behaviour and the major themes acts as an interconnected which creates an interest in the readers. In dominant themes in Davies's work is the quest of the individual for individualization, the process by which the individual brings together the disparate strands of his or her authentic identity. This quest explores the nature and formation of identity, the nature of fate, the consequences of an unfinished and unlived life, the role of heritage and inheritance, the definition, creation and means of living a successful life and importance of physiology in psychic health. The myriad of other psychological issues of identity that Davies investigates, many involving people, the role and the relationship, particularly within the family.

Davies' Jungian frame work serves as the basis for discussions of anima and the animus, the shadow and the archetype. These psychological and moral overtones overlap in the continuing contemplation of the change of responsibility, revenge and guilt, myth and magic, miracles and freaks, saint and devil – such is in *Fifth Business, The Manticore* and *World of Wonders* unleashed by a simple snow ball thrown in the village of Deptford in 1908 is set in semi-rural Ontario.

The Deptford trilogy traces the divergent life of the three boys- Percy Boyd Staunton, Paul Dempster and Dunstan Ramsay from their childhood. The three boys are connected by one event in their childhood. Percy throws a snowball with a rock in it meant for Dunstan, but instead causes premature birth of Paul. The novel deals with the psycho-analytical concepts and issues in the quest for identity and truth undertaken in the lives due to guilt.

Reading the works of Jung in the 50s and 60s changed Davies's outlook and this had a strong impact on his writing. According to Jung, the human psyche is made up of three major areas – the ego, the area of conflict awareness, the personal and the collective unconscious. The collective unconscious is like a vast reservoir of innate forms that are pertinent to all ages and all people, regardless of individualized history, geography and eras. This collective unconscious is the home of archetypal images such as those manifested in myths, legends, fairy tales, religious symbols, art and dreams. Davies sees the novelist and the playwright as the givers of shape to the archetypal material rising from the unconscious.

In *The Deptford trilogy* Davies fully gets engulphed in Jung's world. The narration is in first person subjective exploration. These novels are mythic and portray a marvelous view of this world where all humans are connected to each other in some way or the other. This intricate and complicated relationship between the Characters reveal the underlining truth behind the mystery and meaning of life. The importance of the magus and artist (who are often the same) as revealers of the unconscious and the problems of good and evil. Davies believes that he is the communicator who transmits the information from the unconscious and makes the readers aware of the wonders of this life and all the mysteries in it.

The novel *Fifth Business* is seen through the eyes of Dunstan Ramsay who is born in Canada, of Scottish descent. He acts as a binding force in bring meaning to the life of Magnus Ensengrim. This man is humble in contrast to Ensengrim and a traditionalist figure who does not strive for power and fame like others in the story. He is content listening to the unbelievable tale of Magnus's life, without getting upset with the opinionated view with which the story is delivered. Nor does he constantly argue with whatever is said. Basically, he is a relatively simple and happy man, who strives not for control, but for knowledge in and out of his field of history.

Ramsay's keen interest in hagiography and his guilty connection to Mary Dempster provide most of the impetus and background for this novel. He spends

much of his time struggling with his image of Mary Dempster as a fool-saint. Davies being an avid follower of Carl Jung's ideas also employs them in '*Fifth Business*'. Characters are clear examples of Jungian archetypes and events are demonstrative of Jung's ideas of synchronicity. Davies employs an interesting means of narration in *Fifth Business*. The entire story is recited in the form of a letter written by Ramsay on occasion of retirement as Master of Colborne College and is addressed to his former headmaster.

All the characters in the story –Dunstan, Lisel, Paul, Boyd and Padre are characters with whom the readers don't want to part. Dunstan Ramsay experiences a number of incidents which marks a very important aspect in his connection to the other characters in the novel. Step one is the loss of his mother's authority over him, following the whipping incident in the kitchen. He says "How could I reconcile this motherliness with the screeching fury who has pursued me around the kitchen with a whip, flogging me until she was gorged – I knew then was that no body – not even my mother – was to be trusted in a strange world that showed very little of itself on the surface" (Davies 34).

Step two is when he becomes fond of magic only to be told by a local person that it was the devils work. As Dunstan grows and begins to understand the world, the incidents which occur in his life, force him to change his view of the world. Step three is when he and the other men searching for Mrs. Dempter finds her in the bush in a blatant sexual position with the tramp. Dunstan analyses this incident in light of his relationship with Mrs. Dempster.

Davies doesn't wait for Dunstan to revaluate his own character at the end of the novel, but this revaluation and recognition of Dunstan's faults and experiences is done in a new aspect at the end of every incident in the plot structure. Dunstan's view of religion is which he is refreshingly irrelevant to the standard structures of religion yet he does not see the world as a non-religious place either. He comments to an atheist friend Sam that he knew a metaphor when he heard one and that he liked the metaphor better than reason and all atheists fall under the same perspective of life.

Dunstan is a phenomenologist; he continues to take in phenomena as they occur and he applies metaphors to them in order to understand them. If a new phenomenon occurs, which does not fit to the old metaphor, he throws out the metaphor and begins again. In this way Dunstan is playful with life and his growth as a character is beautiful and natural. Dunstan's next step of growth was his 'rebirth' in the army. He says that the army had not made him mature. He says

“I was like a piece of meat that is burned on one side and raw on the other, and it was on the raw side I needed to work” (Davies 92). He had grown to be a man in one sense, but still had another side of him to develop. He also shares the harshness he experienced in war and when talking about the war he narrates the gruesomeness of war and how the death revealed to him the meaninglessness of life.

Dunstan’s next step of growth was of course, Diana. But typical of Dunstan, he doesn’t worship her in the end as his girlfriend or wife or saviour, but just another player in his world of drama. The novel, is heaped with real and life like incidents one after the other, the readers find it difficult to differentiate because the story is also transfused with elements of magical or near magical. (Willie coming back from the dead, Mrs. Dempster’s face on the Madonna and the aura that surrounded Dunstan’s occupation with saints and their miracles). This book the *Fifth Business* is full of meaty themes, real characters, interrelated plots lines, interesting history and superb writing. Dunstan is a very interesting character and narrator of the text. He grew up in a small town, noticed its limitations, got out and kept going, found the world fascinating, realized he loved his hometown but could never live there again and has a playful view of life, philosophy and religion.

Davies uses prose that is nothing short of elegance and weaves a mythical tale that is imbued with much realism. Real-life incidents are transfused with many amazing coincidences, paving the path to surrealism. How can Ramsay run into Paul in Europe and Central America within the short time frames of his stay on the two continents? Does Mary Dempster truly bring Dunstan‘s brother back to life? - perhaps it is the vivid details and unforgettable real characters that make the implausible, semi–magical world seems real.

Ramsay’s fascination for myth and magic does not make the story dull, but enlivens it with its strong psychological framework. This novel is reminiscent of Jostein Gardner Sophie’s world, in which one can’t help but love what the main character loves–that is why Dunstan Ramsay is memorable. As John Moss commented in a Reader’s guide to the Canadian novel “Davies theatricality harnessed to a vision deep into the heart and source of things where magic and mystery hold sway becomes profound drama, moving us towards wonder rather than enlightenment, towards passion enthusiasm, eccentricity and away from ordinary conceptions of reality” (Moss 67).

The depth and breadth of knowledge in Jungian Concepts Robertson Davies draws us fathoms beneath the surface of the human personality. The audience is not left grasping for breadth, but is enraptured by the rich dualism in this fantastical world of Dunstan Ramsay. Good and evil, illusion and reality; history and myth –the shadows and likes of the world are exposed and explored. Gordan Roper, a longtime friend of Robertson Davies in an article "Fifth *Business* and that old fantastical duke of dark corners, C. G. Jung". Roper describes *Fifth Business* as a book "whose form and substance is overwhelmingly Jungian"(Moss 35). Although he notes several Jungian elements at play within the novel, He suggests that it is the concept of individuation – the process by which a individual achieves an authentic understanding of his or her nature – that is the dominant motif.

Davies had spent much of his life of understanding the works of Freud and Carl Jung, but he makes this formidable knowledge accessible to the readers with little background to psychology. Davies has much to tell us about how we view people, yet *Fifth Business* never takes on a lecturing undertone, like the theme of the story, the novel is a refined work of dualism. It teaches yet it does not sound like an overbearing school master. It is about myths and saints, yet there is little theology to be found in *Fifth Business* stands above many works of mythological realism, for it is filled with substantial themes, authentic characters and original story lines.

Davies' style is smooth-tongued and his characters speak and create impressions when the story unwraps it's self like an explosion to his readers making them wonder what would happen next. The characters express themselves through well-crafted and coherent paragraphs. The characters speak such technically attractive dialogues with the interplay of colourful imagery, which is characteristic of Davies work. On the whole Davies has written complex novels –which are mythical and portray a marvelous view of the world and plunges into the psychological moorings of the characters. Judith Grant the biographer of Davies is substantively correct when she asserts that, the most that can be reasonably gleaned from a study of Davies writings is "a map of the terrain and some hint of the riches to be mined"(Grant 9).

As a novelist, Davies was very much concerned with the images of evil in the nineteenth and twentieth century literature and so gradually moved towards literature which revealed 'life'. That is why Davies portrays the concept of wholeness. He is not really asserting a necessary dualism, but argues that we may discover wholeness of character. Davies', for all his admission to being a

kind of moralist, is much more interested in character than morality, in the difficult attempt to comprehend as best we can glimpse it, that larger, cosmic concept of wholeness. Who am I really? How can I become myself? To attain this 'wholeness of self ', one has to get rid of all the masks, drop the false fronts and discover our true selves. This realization of 'self' guide's individuals in being what they are to themselves and not what they are to society.

In conclusion the characters in the novel *Fifth Business* are connected and when they feel threatened disconnect with the other characters in the novel. Magnus Ensengrim or in other words Paul Dempster decides to connect with Dunstan Ramsay but cuts cordial terms with Boy Staunton who was the cause of all the traumatizing events in his life. Dunstan Ramsay in turn connects to the monstrous Liesl, the mentally naïve Mrs. Dempster and many other characters thereby bringing about a connection and involvement so that the incidents follow smoothly from one chapter to another. The characters interact and help each other to grow, achieve and imbibe a connectedness to themselves and the world around. Davies being a humanist and moralist strongly believes that only interconnectedness which is a complicated process, but when based on the psychological moorings of the mind is an effective way of building bridges in our lives and could make human existence soulful.

Works Cited :

Davies Robertson. *Fifth Business* . New York: Penguin Books, 1970. Print.

Diamond-Nigh, Lynne. *Robertson Davies life, work and criticism.* Canada: York press, 1997. Print.

Heindenreich, Rosmarin. *The post war novel in Canada: Narrative patterns and Readers Response.* Ontario: Wilfrid Laurier University press,1989. Print.

Birbalsingh, Frank. *Novels and the National: Essays in Canadian Literature.* Tsar, Toronto, Oxford press, 1955. Print.

Grant, Judith Skeleton. *Robertson Davies: Man of Myth.* Toronto: Viking/Penguin, 1994.Print.

John Moss. *The Canadian Novel – here and Now A critical Anthology.*Toronto: NC press limited,1983. Print.

Robert, Ed Lecker , David Jack and Quizley Ellen. *Canadian writers and their works, Fiction Three- Vol.VI.* Ontario: FCW Press, 1985. Print.

Flint, Peter. B. *New York times on the web: Robertson Davies; Chronicler of Moral Battles. Web. 14th , May 2013* . <www.nytimes.com/books/97/08/24/ reviews/davies-obit.htms>.

❒❒❒

Assistant Professor, PG & Research Department of English, Holy Cross College (Autonomous) Nationally Accredited (4th Cycle) with A++Grade (CGPA 3.75/4) by NAAC, College with Potential for Excellence, Tiruchirappali – 620 002.

Towards Climate Consciousness: Unveiling the Issues of Climate Change in Barbara Kingsolver's *Flight Behavior*

–Sahil Bhagat

Barbara Kingsolver, an American writer, essayist, and poet, is noted for her writings that usually concentrate on concerns like social equality, biodiversity, and the interplay between humans and their environment.She adopts a varied approach in writing about the landscapes that are personally familiar to her. Her stories are mostly based on the places that she has herself lived in.

Currently, human anthropogenic activities are posing a new threat to human survival and the natural world, resulting in ecological disasters such as hurricanes, droughts, floods, species extinction, depletion of ocean resources, sea-level rise, and climate change, among other implications.Now that we have entered the post-natural world, climate change and its repercussions have become the most widely contested issue in academia and scientific circles.To promote awareness about climate change, the idea of climate consciousness is a relevant aspect while considering the ramifications of global warming. The recent floods in Chamoli, Uttarakhand, and reports of polar bears benefiting from themselves in Antarctica have drawn attention to the issue of climate change among the public. The present study aims to explore the climatic consciousness embedded in Barbara Kingsolver's novel *Flight Behavior* (2012). It attempts to examine Kingsolver's meticulous description of the impact of climate change not over humans only but other species like the monarch butterflies. As we are all aware of the fact that climate change is a global phenomenon that requires global attention and in the light of resulting climate-related challenges, the paper seeks to study the novel as a realistic description of the repercussions of climate change with vivid images and seems an appropriate catalyst for binding the imagination and consciousness of the readers.

Keywords: climate change, cli-fi, climate consciousness, nature, anthropogenic activities

For around the most recent centuries, some segment of the total populace on this only existing planet has realized the idea that the world as far as we might be concerned will be obliterated or wiped out by the rage of nature or by human anthropogenic

activities. With the news of the Holocene Extinction (or Sixth Mass Extinction) occurring at the fastest rate ever recorded, the Australian Bushfire and recent flood incident in Chamoli, Uttarakhand, as well as the news of polar bears benefiting from themselves in Antarctica, people's attention has been drawn to the earth's ecology and climate change.Climate change is already having its implications on individuals and the environment globally. Climate change, as a crisis of the present or might be of future, is in a way responsible or can be attributed to human activities and poses a threat to human as well as non-human survival. The United Nations Framework Convention on Climate Change in the year 1992 has defined 'climate change' as "a change of climate which is attributed directly or indirectly to human activity that alters the composition of the global atmosphere and which is in addition to natural climate variability observed over comparable time periods" (2). It is important to mention how climate change is represented and needs immediate action since people are degrading the planet at an unprecedented rate, resulting in ecological collapse. Notwithstanding an overall issue of concern and discussion, climate change has now become an issue on an individual level.

The emerging climate crisis necessitates a multidimensional and accelerated understanding of climate change. It seems inadequate in contemporary climate scenarios to discourse only about 'climate change' when in reality we are steadily leaping steps towards climate catastrophes. The art of storytelling has been beneficial to humanity since time immemorial. It has stayed with us for a long time and in the present scenario as well storytelling is an indispensable part of communication. In this connection, it is interesting to analyze how this art has been intertwined with the climate change concerns to tell the tales of the effect of humanity on climate and vice-versa.

The swift pace with which literature has accommodated the theme of climate change is perhaps one of the ways of addressing the profound nature of the issue. The issue has now been an emerging subject in literary writings over the most recent couple of years. Along with the emergence of environmental humanities, the interdisciplinary endeavors by literary scholars highlight such issues in their non-fiction or fictional representations of climate change in literature. In a similar vein, the kind of bridge; between past, present, and future, offered by climate change novels are remarkable in looking at how humanity has and continues to affect nature and climate for a long time. On one level, such novels offer a literary space where the climate is discussed in multiple ways, on the other hand, they stimulate the readers to develop a range of thought to imagine and address climate change. From a vivid description of the dystopic and utopic climate futures to igniting the climate consciousness of the people, these novels are embedded with a varied number of social, economic, cultural, and political concerns that demand intensive analysis.

Just a few years ago, Amitav Ghosh in his book *TheGreat Derangement: Climate Change and the Unthinkable*(2016)laments "ours was a time when

most forms of art and literature were drawn into the modes of concealment that prevented people from recognizing the realities of their plight" (15). With the growing concern of climate science in fiction, the growing popularity of climate fiction is profoundly significant in the time of changing climate and the related crisis we are facing today. Climate change fiction or essentially cli-fi, as the term coined by Dan Bloom in 2007, is viewed as an opportune response to the developing cultural consciousness of human impact and its repercussions upon the planet. As a distinct genre with different forms and settings, it features the complexities rather intricacies of climate change and the resulting ecological crisis as employed fictionally in the literary narratives. In this context, Axel Goodbody and Adeline Johns-Putra, the leading climate literary critics, have given the precise definition of climate fiction in their book *Cli-Fi: A Companion* (2019) and write:

> Cli-fi may be best thought of as a distinctive body of cultural work which engages with anthropogenic climate change, exploring the phenomenon not just in terms of setting, but about psychological and social issues, combining fictional plots with meteorological facts, speculation on the future, and reflection on the human-nature relationship, with an open border to the wider archive of related work on whose models it sometimes draws for the depiction of climatic crisis. (2)

The present study aims to explore the climatic consciousness as raised by Barbara Kingsolver in her novel *Flight Behavior* and attempts to examine her meticulous description of the impact of climate change not over humans only but on the other species alike. Another significant aim of this paper is to locate the ethical, environmental, and social aspects of the novel that are intertwined with the climatic concerns to galvanize the climatic consciousness in dynamic ways. Climate change is a global phenomenon that requires awareness and consciousness and in the light of resulting climate-related challenges, our individual, as well as collective cognizance of climate change phenomenon is a central prerequisite to reconsidering our anthropocentric activities. In this connection, the idea of climate consciousness is a relevant aspect while considering the ramifications of global warming.

Barbara Kingsolver, an American writer, essayist, and poet, is noted for her writings that usually concentrate on concerns like social equality, biodiversity, and the interplay between humans and their environment.She adopts a varied approach in writing about the landscapes that are personally familiar to her. Her stories are mostly based on the places that she has herself lived in. Her experiences in places like Africa and Arizona are depicted in several of her works.Her works are often unequivocally idealistic and have been called a form of 'activism'. Published in 2012 and declared as the 'best book of the year' by the Washington Post and USA Today, her novel *Flight Behavior* is a wake-up call that unveils the factual reality of global warming on the monarch butterflies and how this incident assists to cognize the characters as well as the readers about the ecological as

well as the climate crisis. An important message of this narrative is that environmental change, including climate change, affects not just people but also non-humans, both of whom are directly and indirectly affected by this change.Apart from that, the novel is an exhaustive reading of the influence of climate change and the repercussions it may have on Dellarobia's life and that of her native people forbye.The novel has a setting in the fictional town of Tennessee where the unprecedented migratory movement of butterflies to this region not quite the same as their ordinary transient site has created a sense of confusion among the natives.

In the scientific community, the monarch butterfly is perhaps the most conspicuous and well-studied butterfly on the planet with its orange wings bound with dark lines and lined with white spots. Interestingly, millions of monarchs migrate from the United States and Canada South to California and Mexico for the winter, notwithstanding, this was contrary to the view that Kingsolver has envisioned in a sort of dream. In her words, she has described in an interview how one morning she envisions the migration of butterflies has converged in Mexico on an Appalachian mountainside instead of going to the mountains of Michoacan and this episode becomes an idea well represented in the novel and becomes an important aspect for the storyline as well.

Flight Behavior recounts the narrative of Dellarobia Turnbow, a 28-year young lady who with her disappointing life and unfulfilling aspires, wants to run from her family and daily routines, and the incident which becomes the basis of her novel is now visualized through the eyes of Dellarobia and envisions:

> The flame now appeared to lift from individual treetops in showers of orange sparks, exploding the way a pine log does in a campfire when it's poked. The sparks spiraled upward in swirls like funnel clouds. Twisters of brightness against the gray sky. In broad daylight with no comprehension, she watched. From the tops of the funnels the sparks lifted high and sailed out undirected above the dark forest…Unearthly beauty had appeared to her, a version of glory to stop her in the road. For her alone these orange boughs lifted, these long shadows become a brightness rising. It looked like the inside of joy if a person could see that. A valley of light, an ethereal wind. It had to mean something. (Kingsolver 19-21)

This sight encounters by Dellarobia is a rich description of vivid imageries of monarch butterflies who have lost their natural surroundings due to climate change. In a way, Kingsolver has directly taken into account the aftermaths of climate change over bio-diversity and the reaction of human beings toward the catastrophic events caused by climate change. She has weaved several factors together to manifest the interconnection between climate and biodiversity. Not only this, the novel is a conspicuous description of the experience of climate change that leads the readers to imagine the extent of climate consciousness that is needed to control the factors that cause climate change.

In the novel *Flight Behavior*, Kingsolver has linked the habitat of butterflies to the turmoiled domestic and married life of the narrator. The central figure is also eager to take a flight from her habitat and in this way her behavior is akin to that of the butterflies who escape their habitat to save themselves from the effects of climate change. The author has attempted to textualize and narrate the implications of climate change and the attitude of characters towards them, to make visible the lack of eco-vision and climate consciousness of the community. Although the scene of migratory butterflies has resulted from the diversion in their flights that are on the way to their original habitat, the writer further has made apparent the hypocrisy of humanity by describing the reaction of people towards this event. Rather than thinking seriously about it, most of the characters in the novel relate the incident to suit their interests. The religious fundamentalists consider it as a symbol of the rebirth of the Lord whereas to others, butterflies are annoying creatures. At the same time, Dellarobia's in-laws and media people look at them as assets through which money could be generated. The character of Bear and Hester observe the butterflies as a means to attract tourists to make money while the media persons like Tina Ultner carry a golden chance to promote their channels.

The depiction of an ignorant attitude about climate change and lack of eco-sensibility is a crucial aspect of the novel *Flight Behavior*. Kingsolver has taken into hand the bifurcated attitude of humans toward nature and presents it as such throughout the novel. This lack of consciousness is further proclaimed through the character of Bear Turnbow for whom forests are 'just trees' whereas on the other hand he is worried due to the rainfall. He hardly bothers about rationalizing the relationship between rain and forests. This lack of climate consciousness is also evident in his plan to use DDT for the sake of obliterating the monarch butterflies. In this context, Rachel Carson, in her book *Silent Spring* (1962), also laments the use of such chemicals which have detrimental effects on the environment, stating that "universal contamination of the environment [with] chemicals are the sinister and little-recognized partners of radiation in changing the very nature of the world—the very nature of its life." (4-5)

In addition, the novel is distinguished by the confrontation of fact and fantasy. On one hand, the realities of climate change have effectively been referenced in the scientific disciplines; then again, fiction has contributed significantly in addressing these climate issues. Adam Trexler, a noted literary critic of climate fiction in his book *Anthropocene Fictions*(2015) debates the need for a "disciplinary relationship between science studies and environmental criticism" (22). He maintains that "science studies offer vital tools that allow environmental criticism to describe both literary and scientific production and to investigate how meaning and truth exist in the world. Climate change is inevitably tied to science" (22) Thus in the novel, Kingsolver has explained the realities of climate change and global warming through the character of Ovid Byron, an entomologist who is a prerequisite for

the attention of the other characters as well as readers. Kingsolver makes every possibility in uncovering the visual impairment of the Appalachians concerning the subject of climate change. Ovid expresses the underlying reason for the occurrence as the excessive release of carbon and greenhouse gases in the atmosphere which trap the heat of the sun. In his role as a spokesperson of Kingsolver's scientific discourses, he becomes the representative of reality. The other concerns highlighted by him like "hurricanes reaching a hundred miles inland, wind speeds we've never seen…deserts on fire…in New Mexico we are seeing the inferno…Texas is worse…Australia is unimaginably worse—a lot of the continent is in permanent drought…farms abandoned forever" (Kingsolver 384) might lessen an oblivion attitude concerning the climate change among the readers and vivify the images of a post-catastrophic world.

The background of the novel takes up a multiplicity of interconnected social, political, cultural, and economic facets of climate change to bring into awareness the thoughtfulness with which humanity needs to look at the issues of climate change. The migration of butterflies not only represents the transience charm of nature but also the delicate balance that is interrupted by climate change. Notwithstanding, global climate change has already been altered drastically by human anthropogenic activities and the solution is in the hands of man itself by averting the most devastating impacts. The final scene of the novel depicts a calamitous vision, which serves as a stark warning to humans to rethink if current climate awareness is sufficient to guarantee the environmental well-being of coming generations. In the end, Dellarobia's home is engulfed in water due to the snow melting and a sudden flood in Tennessee awakens her more concerning the risk of environmental hazards and develops new ways of thinking about the environment. Alex Goodbody has efficiently put forth regarding this particular scene in *Flight Behavior* that it is "a narrative of an individual's awakening to environmental risks and simultaneous realization of the potential as an active member of society" (Goodbody 11).

The vision of Kingsolver doesn't end here. She has given a very optimistic ending to the novel. Dellarobia's rejuvenation of environmental and climate consciousness creates a sense of well-being while the butterflies also soar high to touch new horizons. In this way, there is an envisioning of sustainable humanity whose climate consciousness is reconstructed, subsequently giving way to the recreation of a climate-balanced planet.

Climate change fiction plays a noteworthy part in elevating the climate consciousness by exemplifying different facets of the forgotten intricacy of biodiversity and climate and the subsequent effects of both on one another. In *Flight Behavior*, Kingsolver has made evident multiple consequences of climate change and has dealt with a variety of notions that adhere to the idea of climate change. The 'myth' and 'reality' debate concerning climate change is a salient point of description for Kingsolver. Undoubtedly, the novel is open to several

arguments contemplating climate change but such arguments are also the major concerns for scientists and environmentalists across the world. It is relevant to applaud the fertile imagination of Kingsolver that has guided her to give an artistic and literary account of climate change to make it comprehensible for the readers. She has given equal attention to the graveness and a variety of climatic concerns surrounding us. The novel binds the readers with its fascinating description of the Appalachian landscape while serving the purpose of stimulating their intellect in considering how serious the effects of climate change can be. Simultaneously, it provides a lot of matter for the imagination of such effects on biodiversity. The technique through which the Appalachian community's response to climate change is recorded is a symbol of humanity's casual approach towards the environment.

The depiction of science through literature is a major challenge for a novelist but Kingsolver has taken up this challenge quite boldly. The description of the repercussions of climate change in vivid images such as that of monarch butterflies seems an appropriate catalyst for binding the imagination and consciousness of the readers. Kingsolver's vision regarding climate change is preoccupied with scientific knowledge as well as a literary understanding of social and cultural attitudes towards environmental issues. The dexterity with which she has described the thought patterns of a community towards the environmental crisis is an undeniable necessity in the climate change discourses. Equally notable is the description of the political and commercial responses to the environmental threats that are made apparent through the reports of media journalists. These journalists have a very different and self-centered account of the arrival of monarch butterflies. The issues raised by Kingsolver in the novel *Flight Behavior,* with regard to their evocation and urgency, necessitate both scientific and literary understandings to awaken the sleeping climate consciousness before the slumber becomes deadly to never wake up.

Works Cited :

Carson, Rachel. *Silent Spring*. Mariner Books, 2015.

Ghosh, Amitav. *The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable*. The University of Chicago Press, 2017.

Goodbody, Axel, and Adeline Johns Putra. *Cli-Fi: A Companion*. Peter Lang, 2019.

Goodbody, Axel. "Risk, Denial and Narrative Form in Climate Change Fiction: Barbara Kingsolver's *Flight Behaviour* and Ilija Trojanow's *Melting Ice*." The Anticipation of Catastrophe: Environmental Risk in North American Literature and Culture, edited by Sylvia Mayer and Alexa Weik von Mossner, vol. 247, July 2014, pp. 39–58.

Kingsolver, Barbara. *Flight Behavior*. Faber and Faber, 2012.

Trexler, Adam. *Anthropocene Fictions: the Novel in a Time of Climate Change*. University of Virginia Press, 2015.

United Nations Framework Convention on Climate Chage, 1992 *Unfccc.int*, unfccc.int/essential-_background/convention/items/6036.php. Accessed on March 30, 2021.

❒❒❒

PhD Research Scholar, Central University of Jammu

Exploration of Female Consciousness in Urmila Pawar's *The Weave of My Life:* A Deconstructionist Study

–Amita
–Dr. Tamishra Swain

In the context of Dalit women, the situation is thrice marginalised as they have hardly been taken up seriously even by Dalit male writers. The socio-political and economic conditions always remain silent even today. Although, various attempts have been made to raise their voices in recent years by a lot of socio-cultural and political groups. In response of these efforts, Dalit feminism have taken place.

Dalit men and Dalit women have different ways and modes of writing. In literary circles Dalit movement was started by various Marathi, Tamil, Gujarati writers under the fantastic leadership of Dr. B. R. Ambedkar. Dalit literature questions the tone and existing canons of literature and disseminate the whole process of a literary movement. In social hierarchical ladder, a Dalit woman is always placed at the bottom and have to face structural discrimination of caste, class and gender. A Dalit woman's experience is totally different from others as she is thrice marginalized. According to Derrida we often express our thoughts in terms of binary oppositions. Present research paper is an attempt to track the binaries existing in Urmila Pawar's famous autobiography *The Weave of My Life* and will deconstruct them through Derridean approach in the context of female consciousness.

Keywords: *Deconstruction, binary oppositions, Dalit, autobiography, consciousness*

Introduction

"It's not just that life is cruel, but that in the very process of our birth we submit to life's cruelty." -Shashi Deshpande, *That Long Silence.*

The emergence of writings of the marginals or subalterns is one of the significant traits of postmodern era. Deeply affected by marginality, Dalit community in India, has struggled for decades to create its own sphere of knowledge, identity and representation in Indian literary discourse. A lot of Dalit writers have taken initiative to narrate the bitter and painful experience of living in the outskirts as untouchables. Living on edge doesn't mean only physical separation but apartness on many levels. Therefore, their narratives in poetry, autobiographies, fiction are often

woven on the motif of discrimination and inequality. 'Autobiography' for Dalit writers has become a favourite genre to narrate their experience as the subjecthood of 'self' is the main focus of the genre. Ramesh and Jyothirmai expressed:

"Ostracized and distanced for ages Dalit autobiographies appear to remain the only authentic means to prove their presence as humanity. They have the potential to become the sub-text for entire Dalit literary tradition". (Ramesh and Jyothirmai, 197)

Initially feminism was a weapon used by upper caste and educated women seeking equality in their social and political rights. However, middle class women were seeking gender equality and equal wages for similar work.

In the context of Dalit women, the situation is thrice marginalised as they have hardly been taken up seriously even by Dalit male writers. The socio- political and economic conditions always remain silent even today. Although, various attempts have been made to raise their voices in recent years by a lot of socio- cultural and political groups. In response of these efforts, Dalit feminism have taken place. Various programmes for encouraging Dalit female consciousness have been organized by those Dalit women groups who are educated or some how attempted to educate themselves. 'Consciousness' which is an ambiguous term refers to the state of being conscious, awareness of one's own status, surroundings etc. When a wo(man) shows awareness about her rights and roles in society to question and challenge her rights, attacks major positions, points out the injustice of society and advocates the equal status in society then it is called feminist consciousness. The paper will examine the rhetorical strategy of Dalit women narrative which is known as 'antithesis' by rhetoricians and 'binary opposition' by structuralists.

The Postmodernists believe in the deconstruction of truth and social norms which are imposed by a particular section. In Indian context, mainstream literature emphasised a particular literary tradition. According to Pam Morris:" 'Literature' is normally used to refer to a body of texts that are perceived to have certain aesthetic qualities; this body of writing is often also called the 'literary canon'. Secondly, 'literature' is also an institution which is embodied primarily in education and publishing. And, finally, 'literature' is a cultural practice involving the writing, reading, evaluation, teaching and so on of the literary canon." (Morris,6). As our so-called social system applies the rules to keep away Dalit wo(men) from knowledge. Hence, Dalit literature emerged as the reaction of such discrimination. According to structuralists reality is available only through language while post structuralists believe that language itself is not stable. Through this exercise, each term in binary opposition always affects the other. We can't separate them, as they depend on each other. Ramesh and Jyothirmai stated:

"Derrida has demonstrated that every binary conceals within it an implied hierarchy of values which he strove not to reverse, but, more radically, to undo

both the opposition and it's implicit evaluation of one term as superior. " (Ramesh and Jyothirmai, 199).

The present paper will deconstruct such binaries in the famous autobiography of Urmila Pawar's *The Weave of my life*.

Theoretical framework

'Deconstruction' as a literary theory was popularized by Algerian born French philosopher Jaques Derrida. He is known as the founder of Deconstruction. Language is always unstable and due to coexistence of various varieties within a single language, leads to the lack of finality and always deferred. The term 'deconstruction' is often associated with the term 'poststructralism'. In the context of binary oppositions Derrida stated that we usually express our thoughts in terms of binary oppositions. Through this exercise, each term of binary opposition always affects the other. During the textual reading there are two opposing elements, such pairs of related terms which are opposite in meaning is known as binary opposition. We often think in binaries, for instance life and death, heaven and hell, upper and lower, day and night etc.

Binary opposition participates in each other's identities. They are not opposite rather paired. We can't define a man without defining a woman. Each one depends upon other. What comes first is superior and other is inferior. Derrida asserts that lets deconstruct these hierarchical binaries and let's see what is behind it. Habib explained:

"Derrida points out that oppositions, such as those between intellect and sense, soul and body, master and slave, male and female, inside and outside, center and margin, do not represent a state of equivalence between two terms. Rather, each of these oppositions is a "violent hierarchy" in which one term has been conventionally subordinated, in gestures that embody a host of religious, social, and political valencies. Intellect, for example, has usually been subordinated over sense; soul has been exalted above body; male has been defined as superior in numerous respects to female. Derrida's project is not simply to reverse these hierarchies, for such a procedure would remain imprisoned within the framework of binary oppositional thinking represented by those hierarchies. Rather, he attempts to show that these hierarchies represent privileged relationships, relationships that have been lifted above any possible engagement with, and answerability to, the network of concepts in general." (Habib,104)

The Weave of My Life: An overview

Urmila Pawar's famous autobiography, Aaydan, which is translated by Maya Pandit as *The Weave of My Life* in its English translation, has become a signpost in the history of Marathi Dalit writings. Urmila Pawar was born in the Konkan region of Maharashtra. The word aaydan means bamboo baskets. It was the caste-based occupation of their community. It is a generic term used for all things

made from bamboo. However, aaydan also implies ‘utensils’ and ‘weapon’ too. Urmila has established a close connection between the practice of ‘weaving the aaydan’ which is generally done by her mother and writing of her autobiography *The Weave of My Life*. Both practices reveal an ‘unspoken pain’. Pawar states:

“My mother used to weave Aaydan and i was writing this book, both were activities of creation of thought and practical reality of life.” (WML,3)

Pawar’s autobiography *The Weave of My Life: A Dalit Woman’s Memoirs* is a story of a Dalit girl in a small village near Ratanagiri and how she started her journey from a small village to a huge metropolis and became one of the leading intellectuals and autobiography writers. Pawar describes three generations of Dalit women who struggled to control the burden of their caste. In this novel Dalits were housed in the centre of village so that the upper castes can call them at any time.

Among the seven siblings, Urmila was the youngest child. Her father’s demise was a big blow to her family. At that time, she was a child of just third standard to bear this great tragedy. After the death of her father there was no other source to run a large family. Hence, her poor and illiterate mother started weaving baskets and sold them for earnings. Though her father was not much educated still, he wanted to educate all her children.

Deconstruction of binary oppositions of man vs woman

The present research paper is an endeavour to deconstruct binaries which are present in the text *The Weave of My Life*. The primary binaries which function in the text are: upper and lower, man and woman, pure and polluted, essence and existence etc. In the deconstructionist studies we need to examine all the hierarchies and the premises on which they are based. According to biological differences human beings are divided into male and female. Male and female are associated with oppositions, discriminations. Male occupies top and dominant position according to our social norms and females are deprived of all those rights which are provided to males. Hence, both sexes have not equal status and it contradicts our human rights according to which everyone is born with equal right. But the situation of Dalit wo(men) is all the more critical as they have to tolerate the discrimination based on caste, class and gender. Derrida is of the opinion that if one thing occupies central position then it is natural that other will occupies the peripheral position. Same is in the context of male and female. It is society which decides that which thing should be placed at central position and at peripheral position.

The Weave of My Life is actually knitted through such binaries. Urmila Pawar herself admitted that she was an unwanted child because she was a girl. Birth of a girl child is always considered unwanted in our social context.

“I was the youngest child in the family. Yet I was never indulged. In fact, I was an unwanted child because I was a girl. When I was born, my cousin

Govindadada wanted to throw me away onto the dung heap. When I grew a little older, many would beat me.” (WML, 64).

Domination of man upon woman is nothing new. Urmila Pawar mentioned several women in her autobiography who suffered at the hands of their cruel and heartless husbands. In the social hierarchical order, a Dalit woman is placed at the bottom who has to face systematic, structural discrimination of three types- as a poor, as a female and as a Dalit. Patriarchy is the ideological construction where man is considered superior to woman. And due to this so- called patriarchy they often torture and beat the woman.

“There were several such women around who suffered at the hands of their heartless husbands. When the torture crossed the limits of their endurance, they came to my mother to confide in her, to give vent to their anger.... The husband arrived with a stick in his hand, his eyes spitting fire. “(WML, 154-55)

Binary opposition doesn’t mean to reverse the binary. If we do so then another binary will take place. For instance, man vs woman. We should try to understand one thing which is common in both man and woman is humanity. Humanity doesn’t know any gender, class and caste. Deconstruction studies tries to understand what is hidden behind such binaries which is common for all.

“It was not only husbands or family members who bashed up women. If a woman was suspected to have erred, she was brought before the Panchayat for justice and punishment. She was publicly judged and her relatives would beat her up as well”. (WML, 156)

Urmila Pawar states that they were born in a particular caste and learnt to eat whatever was given to them without any complaint. The very discriminatory feelings which one encounters throughout his / her life can never be conveyed through imagination. Due to this reason a Dalit literature is known as the literature of reality.

“The upper caste girls always used words like ‘ladu’, ‘modak’, ‘karanjya’, ‘puranpolya’. They brought such novel items in their tiffin boxes as well as at times when we went on excursions. They would also bring such food when they played with dolls. But I never asked myself the stupid question, ‘Why don’t we make such dishes at home?’ We were aware, without anybody telling us, that we were born in particular caste and in poverty, and that we had to live accordingly.” (WML, 94)

“Aaye would tell yet another story of an obedient boy when we grumbled about food. This boy was so obedient that when his mother gave him a piece of bhakri with an empty bowl, he pretends that there was some vegetable in the bowl and ate the bhakri with it. After hearing such stories how could we ask for tasty dishes? So, we learnt to eat whatever was given to us without complaining. We couldn’t say, ‘I’ am not hungry now; I ‘ll eat it later’ for simple reason that

one would never be sure whether any food would be left over to eat later. “(WML, 95) The writer herself admits that a woman herself nurture and protect patriarchy.

“How we women nurture and protect patriarchy, like a baby in the cradle!” (WML, 240)

A Dalit woman often faces multilayered oppressions due to caste, class and gender based. Urmila Pawar explained that her husband Harishchandra believed that to look after house and children is the sole responsibility of a woman.

“Harishchandra did not agree with this at all. He firmly believed that looking after the house was the sole responsibility of the woman. He kept stating his philosophy that man has the right to behave any way he likes. This angered me and led to fights which went on and on.” (WML, 241)

Conclusion

From a piece of literary work, we often expect pleasure and beauty. Brijesh Kumar explained in his research paper, “Dalit writers give priority to the problems of society; they do not create literature for achieving popularity, status and wealth. Their effort is to make people aware of freedom, justice, love, equality and fraternity”. (Kumar, 93)

Through the deconstruction of the hierarchical binaries exist in the text we find that a woman faces various discrimination due to the gender stereotypes in our society. Our society must have to understand that it is our society which labels male and female. So, what we need is to deconstruct such binaries. Simone de Beauvoir has rightly mentioned, “one is not born a woman, but becomes one”. In order to change this mind set one should give support to the participation of woman and downtrodden section and break the existed binaries so as to achieve equality in society.

References:

- Habib, M.A.R. *Modern Literary Criticism and Theory: A History*, Wiley Blackwell, 2013.
- Pawar, Urmila. *The Weave of My Life: A Dalit Woman’s Memoirs*. Translated by Maya Pandit, Kolkata, STREE,2008.
- Kumar, Brijesh. “Dalit Aesthetics- An Alternative way of Looking into Literature”. International Journal of English Language, Literature and Humanities, Vol.111, issue 1V, June 2015, pp.87-94.
- Ramesh, Sree, Kotti and Jyothirmai, D. “Spatial Distances And Binary Oppositions in Section One of Sharan Kumar Limbale’s *Akkarmashi*. International Journal Of English Language, Literature and Translation Studies (IJELR), Vol.4, Issue.1,2017(Jan-Mar.), pp-196-201.
- Morris, Pam. *Literature And Feminism*, Blackwell Publishers, 1993.

❑❑❑

1. Research Scholar, Department of English and Other European Languages Banasthali Vidyapith, Rajasthan
2. Assistant Professor, Department of English and Other European Languages Banasthali Vidyapith, Rajasthan

A Study on Sin of Despair: With Reference to Vikram Chandra's Select Works

–B. Ramya

Along with Sandhya, we also come across the desparity of Iqbal Akbar. It is about to love between two men Iqbal and Rajesh to suggest how the possibility of fast and easy material gain change one's life and how a dear friend can reveal himself unexpectedly as a complete stranger. Rajesh disappears suddenly from the life of Iqbal. This sudden disappearance one evening sets of Iqbal on a trail which takes him all over the city culminating in an encounter with the Bombay bhai log, a euphemism for the criminal underworld. He went in search of Rajesh in every corner and streets of Sion.

Red Earth and Pouring Rain, an epic novel set in India, inspired by the autobiography of Colonel James 'Sikander' Skinner, a legendary 19th-century soldier, half-Indian and half-British, includes characters such as witches and heroic soldiers of fortune, porn-stars and boys begotten miraculously by the consumption of sticky buns. *Love and Longing in Bombay* consists of five short stories entitled Dharma, Shakti, Kama, Artha and Shanti. *Sacred Games*, Chandra's second novel narrates the story of Sartaj Singh and underworld don Ganesh Gaitonde. Two narratives strands intersect when, after a tip-off Singh apprehends the Hindu gang load Ganesh Gaitonde in his hide out, a nuclear bunker, in a Bombay suburb from which this story of intrigue, greed, corruption, sexual exploitation, violence and intimidation grows into a political thriller.

Keywords: Despairity, White faced monkey, communal riot, euphemism, physical hurt

Studied Film at Columbia University in New York and Creative Writing at Johns Hopkins University and the University of Houston, Vikram Chandra, started his career as PppCreative Writer and worked as a journalist and also as an independent software engineer and consultant.His first novel, *Red Earth and Pouring Rain* (1995), won the 1996 Commonwealth Writers Prize (Overall Winner, Best First Book).

Red Earth and Pouring Rain, an epic novel set in India, inspired by the autobiography of Colonel James 'Sikander' Skinner, a legendary 19th-century soldier, half-Indian and half-British, includes characters such as witches and heroic soldiers of fortune, porn-stars and boys begotten miraculously by the consumption of sticky buns. It has naive magic,

mannered conceits and lush fantasies and plenty of psychologically realistic accounts of family relationships and Love. ShashiTharoor in *Los Angeles Times* suggests that *Red Earth and Pouring Rain*, stories which "he has so vividly brought to life, have ceased to be his. They are ours now and in the exhilaration of discovering them, all of his readers have cause to be profoundly grateful."

"To despair is sin" observes Christianity. Abhay and Sanjay commit the sin of despair. The opening pages of the novel portray the gunshot of Abhay. Abhay, a son of Mr. Ashok Misra and Mrs.MrinaliniMisra who has returned to his hometown after four years of his studies from America. Abhay shoots the white-faced monkey for clutching his jeans, "He got my Jeans." (4)

Sanjay's preternatural ability to "listen to language" (240) and to learn to write without being taught draws him inevitably to the mystery of "the language of the firangis" (257) and the desire to learn the meaning of the English words he overhears- " di-gra-did, si-vil-iz-a-shun, prau-gres, di-cay" (281). At the same time, his early desire to observe all things is frustrated by this realization that he canonly be in one place at one time: he "regretted not being able to be everywhere at once, the stolid, physical existence of his body that reduced all the simultaneous potentialities of his life to a single, inescapable monster strong narrative." (302)

Perhaps Abhay's attempt to create a kind of American set up for Amanda in India is failed. Because Amanda feels some discomfort in staying in India. She informs Abhay about her return to her native as, "But, maybe, I should go home" (662). This conscious rejection of India by Amanda is the beginning of the counter education of Abhay. That perhaps is what *Red Earth and Pouring Rain* is all about the education of Abhay in the art of acceptance and assimilation. His initial discomfort and incommunicability with this parents on his return from America, his irritation with the inconveniences of the Indian set-up, his contempt for the world of animals, which forms a part of the pantheon of Gods in India and his rationalistic scepticism must all give way to a sense of belonging, a sense of being a part of the entire process of history and continuity.

Like Sanjay and Abhay, Sikander and Chotta, the laddoo brothers of Sanjay too feels the desparity. Sikander cannot accept the drudgery of the clerk's world and escapes to pursue his dream of becoming a great soldier. He joins the service of Benoit de Boigne and battles for their Maratha employer against rival Maratha factions, as well as the Rajputs and the British. Sikander is haunted by Thomas's enigmatic parting words: "I will not fight you; I am an Indian, but what are you?" (401). In his letter to Sanjay, Sikander poignantly seeks relief from the unrest this challenge stirs in him: "I never found out what he meant by that question... What did he mean by that question, Sanju? Why did he ask me that?" (401)

Love and Longing in Bombay consists of five short stories entitled Dharma, Shakti, Kama, Artha and Shanti. All the stories are long and Chandra wants to treat this subject at various levels. In this regard, Chandra has too many irons

in the fire and consequently his many stories meander on and on, leaving the reader high and heavy. In *Love and Longing in Bombay*, JagoAntia, Sheila Bijlani, Sartaj Singh, Iqbal commit the sin of despair.

Major General JehangirAntia who returns to his ancestral home in prime residential land in Khar, Bombay and finds that it is haunted. The day he turned fifty his missing leg began to ache, two inches under his plastic knee. He stumbled not out of agony but surprise. Twenty years had passed without a twinge. But at night, a muffled voiced beckoned him: "he sensed a rush of motion on the balcony… he heard the movement again, not distinct footsteps but the swish of feet on the ground towards him." (12-13)

Major Antia confronted that the haunting spirit is nobody else but his brother Sohrab's who died very young while they were playing together as children. The perturbed mind of Major Antia gets settled when this psychological desparity takes place. As David Punter remarks, "The confrontation results in psychological desparity with his repressed guilt from the past releasing his phantom pain and he is able to laugh again." (66)

SheelaBijlani is fortunately married to Bijlani, an U.S. returned electrical engineer. She has a gradual rise in the social ladder. Unfortunately, her growth is thwarted by Dolly Boatwalla, an elite socialite. Sheila's longing and manoeuvrings for acceptance when her son Sanjeev fell in love with Dolly, the rival's daughter Roxanne, Mother's love for her son reigns supreme. She is ready to bury their past hostility and consent to Sanjeev - Roxanne marriage. Sheila realizes that it "is a trap finely honed for her by the years of victory. Even now she had to appreciate the justice of its bitterness" (60). Apart from exposing the hollowness of the feud in upper class society and the hypocrisy of high society people to whom the rest of the world is invisible.

Desparity of Sartaj has been placed under continuous investigation. Sartaj Singh's professional investigation eventually leads to an investigation of his own self. There is another reminder from Nayak which leaves Sartaj weary and he even contemplates death. At the very moment Megha comes to Invite Sartaj. He breaks down and Megha comforts him and she departs. Sartaj "felt very empty, his mind like a hole, a black yawning in space…Outside the night came" (125). Later Sartaj handed over the duly signed divorce papers and a telephonic conversation with his mother solaced him from his grief.

Sandhya'sdesparity reflected within her. She lost her sleep. Most of her nights are spent in desparity. She slept by four and wake up by six. Once Iqbal asked Sandhya" But you're looking little hard labour…Four, she said…Don't be mean" (173). After some time she wearied and fed up with Anubhav too Because he is unable to admire the beauty of Sandhya even he is an artist. Sandhya suggested that with Iqbal as He's not a beauty worshipper, Iqbal," she said wearily "A serious artist". Soon she discovered the reason for weariness of Anubhav.

Along with Sandhya, we also come across the desparity of Iqbal Akbar. It is about to love between two men Iqbal and Rajesh to suggest how the possibility of fast and easy material gain change one's life and how a dear friend can reveal himself unexpectedly as a complete stranger. Rajesh disappears suddenly from the life of Iqbal. This sudden disappearance one evening sets of Iqbal on a trail which takes him all over the city culminating in an encounter with the Bombay bhai log, a euphemism for the criminal underworld. He went in search of Rajesh in every corner and streets of Sion. On his way in search of Rajesh, Iqbal is recollecting the days with Rajesh. He felt despair even amidst of people. The desparity is clearly stated in the forth coming lines, "I turned my head and leaned my head against the bars on the window and Cried" (194).

Finally, the narrator *Love and Longing in Bombay* who commits the sin of desparity. Shiv Subramaniam who narrates all the above stories is under desparity. He narrates that his wife Shanti is also in despair. Later their desparities unites them to proceed their life.

Shiv has lost his twin Hari in the communal riots. Earlier Shiv is used to be lost in his own morbid thoughts; he even contemplates suicide. He lives with his sister. He is friendly with the assistant station master, Frankie Furtado. He feels very despair and frequently he is haunted by the thoughts of Hari. Soon the lady catches his attention, "who is she? where is the going? Why did she return?" (240). After some enquiry he learns that she is looking for her husband. He is a fighter pilot in the RIAF and missing white flying Hurricane over Burma in 1942. So, she enquires from men who comeback from the prison, from the INA etc. She tells Shiv the story of the evilest man in the world. On her next trip, she tells another story about a woman who runs backward into future. Shanti comes to Leharia often and every time she tells Shiv plenty of stories apart from news about her husband, "…some incident, some episode, told to her by an old man, a young bride..." (255). By these words it is clear that Shanti is much eager to engage herself with Shiv. Very soon Shiv proposes and Shanti accepts. With the support of Frankie, they elope to Bombay, same time they elope from their desparity. They were happy. "We've had our life, our Bombay life." (267)

Sacred Games, Chandra's second novel narrates the story of Sartaj Singh and underworld don Ganesh Gaitonde. Two narratives strands intersect when, after a tip-off Singh apprehends the Hindu gang load Ganesh Gaitonde in his hide out, a nuclear bunker, in a Bombay suburb from which this story of intrigue, greed, corruption, sexual exploitation, violence and intimidation grows into a political thriller. Scott McClintock of National University opines in *Violence After the Sacred* Millennial Indian Novel that "Vikram Chandra's novel, whose title invokes not only the Cosmic play of Lila but also, I suspect, the aphorism especially with respect to Salman Rushdie's Shalimar the clown." (74)

Ganesh Gaitonde, the second protagonist, commits the sin of despair.Death of KantaBai, his God Mother, torments him for so many days and nights, “I had done nothing to save KantaBai” (241).The sudden death of Dipika, a daughter of his God Father, Paritosh Shah, hurts him a lot. But being faithful to his God Father, he recommends a groom for her at his choice to him, yet she begs Gaitonde to support her love with a lower community boy. Unpredictably, soon after the wedding of his father’s choice, she kills herself in a road accident. Gaitonde realises his guilt and he has said “I had betrayed Dipika and I could not face her” (261).

Subsequently, Gaitonde is terribly affected by the horrible death of another well-wisher Paritosh Shah. Gaitonde is ashamed of himself. His guilty consciousness pricks him a lot, “He had died because me… He had died for me. I had killed him” (280).

The pain inside him is not because of the physical hurt during the consequent gang wars, but because of losing his soul mates and his boys. He lays in his bed but feels some vibration and trembling in his chest physically and ragged by thinking of his stupidity mentally, “It is rage at myself, at my stupidity” (120). He is haunted by unnecessary thoughts that he finds himself dead on the road in front Mahal.

We may say that Sanjay, Abhay, Sikander, JagoAntia, Sartaj Singh, Sandhya, Iqbal, Shiv, Ganesh Gaitonde commit the sin of despair because they are haunted by loneliness. Paul Elmer More’s observation: “The stress of youth, the feebleness of age, all the passions and desires of manhood, lead but to this inevitable solitude and isolation of spirit” (125), can be cited to describe the life of these characters. But there is a subtle difference between alienation and solitude. Alienation is the result of the rejection of a person by fellow human beings or his inability to live with others; solitude on the other hand refers to the ability of a human being to be at peace with him when he is alone. It helps a man to relax and to enjoy nature. It is remarkable that none of these characters feel solitude; all feel loneliness. The above-mentioned characters exemplify the saying of Thomas Wolfe, “loneliness in the central and inevitable fact of human existence … very root of strong, exultant joy.” (155)

References:

Chandra, Vikram. *Red Earth and Pouring Rain.* Haryana: Penguin Books India, 1995.

Love and Longing in Bombay. Haryana: Penguin Books India, 1997.

Sacred Games. Haryana: Penguin Books India, 2006.

More, Paul Elmer.”The Solitude of Nathaniel Hawthorne”.*An Anthology of American Literature. 1890 – 1965.* New Delhi: Eur Asia Publishing House, 1967.

Wolfe, Thomas. “God’s Lonely Man”. *An Anthology of American Literature. 1890 – 1965.* New Delhi: Eur Asia Publishing House, 1967.

❒❒❒

Ph.D Research Scholar, Department of English, J.K.K.Nataraja College of Arts and Science, Komarapalayam, Namakkal Dt

Representation of African Culture and African Consciousness in the Fiction of Ben Okri

–Indusoodan I
–Dr. S. Geetha

Born to Igbo mother and Urhobo father, in Okri, Yoruba ideologies are bounty.Okri's interest in the inviolable African consciousness drives him to combine mythical, mystical, and folkloric themes with socio-political and historical concerns. The Famished Road is set at the momentous time of Nigeria's independence from British colonial control in 1960, depicting the history and fictional ideas of rural people living in a slum of an African country.

Culture is best understood as the general customs, ideas, beliefs of a particular society or country in a particular time. On understanding the culture of a particular group of people i.e. ethnicity, acquainting with their specific art, music, literary forms and traditions becomes possible. Learning specific religions, social habits and other facets of lives of a particular group of people also enables comprehending their heritage, intrinsic values and socio-political dimensions. Thereby knowledge of them is understood, shared and disseminated. In addition, their perception, preferences and influences are also best received. Since literature mirrors life and values of people, it has been a medium to understanding better the culture of people living in a particular period or land.

Being vast and with the inhabitants and immigrants, the culture in the continent of Africa is myriad and diverse. Africa has been known for its various forms of art and craft, starting from physical to folklores which vary from linguistic group to group, to name a few Yoruba, Igbo and alike. This paper aims at articulating the pervasion of African culture and African consciousness in the novels of Ben Okri.

KEYWORDS: African Culture, Craft, Ethnicity, Values, Tradition.

INTRODUCTION

In the novels of Ben Okri, Nigerian tradition, culture and mythology have been reflected. The mixing of realism with myth and folklore is prevalent in the works of Ben Okri. With his African mindfulness, he represents the history of his native land in his writings. By using the myth, magic and

dreams Okri has woven his works. On coming across Okri's writings, the African world and mythologies is inescapable. This research paper analyses the African culture and consciousness as represented in the novels *The Famished Road* (1991) and *Starbook*(2007) by Ben Okri. Okri has also instilled the same in most of his other novels.His *Astonishing the Gods* (1995) is evocative of African consciousness;*Dangerous Love* (1996) is set in a post civil-war Nigerian society;the novel *In Arcadiaisa journey in search of Postmodern Utopia and is infused with myth* and superstition (2002); *The Age of Magic* (2014) is again a journey in a mysterious Swiss mountain in search of the meaning of life; and *The Freedom Artist* (2019) is a dystopian allegory about how cultures can become cruelly prisonlike and how freedom is threatened in a post-truth society. This inclination of Okri is profuse also in his An African Elegy, a collection of poems published in 1992, he encourages Africans to resist the forces of disorder within their country. Despite without being overtly political, Okri's paintings transmit obvious and urgent messages about the need for Africans to create again identities for themselves.

THE YORUBA MYTHSIN THE NOVELS

Born to Igbo mother and Urhobo father, in Okri, Yoruba ideologies are bounty.Okri's interest in the inviolable African consciousness drives him to combine mythical, mystical, and folkloric themes with socio-political and historical concerns.The Famished Road is set at the momentous time of Nigeria's independence from British colonial control in 1960, depicting the history and fictional ideas of rural people living in a slum of an African country.That is, through the Yoruba myth abikuchild and the metaphors- the road and the journey, the novel depicts the social, economic, and political status of Nigeria on the cusp of self-government and analyses post-colonial Nigerian society and the country's failure as an independent nation state.Similarly, the lives of African artists is captured in the novel *Starbook*. This fiction deals with the artists' passion for creating different sculptures which have one or the other magical feature in them. Their beliefs, undisturbed living from the clutches of this materialistic world have also been depicted.

The abiku or spirit-child myth has been handled by Okri in his *The Famished Road*as well as in the trilogy. Abiku is a child who dies very young, before attaining puberty, and is born to the same mother many times. The spirit-childhas to return to the world of spirits by leaving the earthly life, Azaro is the spirit-child in the fiction. Being not ready to leave the world, he is annoyed incessantly by other spirits which send many envoys to have him back. Refusing his return to the other

world for the love Azaro has for his mother and father, he witnesses many unusual happenings in his venture throughout the trilogy.His struggles as a spirit-child continues in the sequels too.

The road metaphor here refers to the path of loneliness, misery and realisation of the self. This myth is not only intricated in The *Famished Road* but also reflected in a different form in *Starbook*.In the former fiction, the abiku child suffers to stay on earth. For the same, he encounters his sibling spirits from the spirit realm. While leading earthly life, in addition to feeling aloof, Azaro has also to face problems and evil entities. *Starbook*, capturing the lives of a prince and a maiden in an unknown kingdom and unfamiliar forest respectively, more like an imaginary spacein Africa, also intersects their lives.

Both of them suffer in their lives only to transform and become the better selves. They undergo the process which turn be quite painful and life sucking. The prince sometimes finds himself an outfit or treated by the ministers in the court so. Meantime, the maiden is odd and cannot easily move in with her friends. The paths in which both travel are not different, but one and the same connecting the prince and the maiden and preparing them to face the world.*Starbook*could also be considered as a journey-based fiction like most other writings of Okri, specifically herein the protagonists go in search of the meaning and interpretation of their lives.

THE AFRICAN SETTING

In the novels, Okri has diligently usedboth real and mythical African settings.A mythic African village as the background, *The Famished Road* and the trilogy move on. In the novel *Starbook*, an unnamed African kingdom and an unknown realm of artists are presented. In both the novels, the places are unnamed and unknown. But with the reference to the settings and characters, the readers decipher that the author has employed inexplicitly some African land, more likely Nigeria.

THE AFRICAN CONSCIOUSNESS

Okri's African consciousness and his concern for a corruption free society is apparent through his character Azaro. Azaro's quest for identity is encountered throughout the Famished Road trilogy. The novels in the trilogy capture the land being plagued by wicked spirits andAzaro'sacquaintance with the prospects of peacefulness outside disorderliness. Azaro fights the spirits besides standing against the social evils in his contemporary society. Even though, African quest for identity and consciousness is predominant all over

his writings, Okri has not explicitly stated anywhere in his writings but there is a reverberation in his works that the Africans should value their past and return to the roots.

This same vein could be seen, for Okri opines although he does as an omniscient narrator, in *Starbook* 'golden age is ending'. He points out here the devastating effects of Atlantic slave trade which has plagued the lives of the artists in Africa on one hand and on the other that captivated their skills along with them. This slave trade led to the decline in the artistry of the tribe with the artists scattering across the world. Nevertheless, the condition is beyond repair, Okri is optimistic in the novel *Starbook* that the scattered tribe will unite shortly and their talents will flourish again.

CONCLUSION

Thus the fiction picked for this research investigation remain as the ruminations of Okri about African culture and African consciousness yet he never spells out them as such overtly. Okri has infused magic with his works to inform his readers his reminiscences of Africa in a quite fascinating manner. The representation of one's own culture and region is more common when the writer expresses himself through writing, in Okri this same goes applicable but he has performed this function with magic realism like what fairies make with a wand.

REFERENCES:

1. Okri, Ben. *The Famished Road*. London, Vintage, 2003.
2. Okri, Ben. *Starbook*. United Kingdom, Random House, 2008.
3. HUANG, Yihua and ZENG, Yanbing. A Study on the Perspectives in The Famished Road. *CS Canada Studies in Language and Literature*. DOI:10.3968/11419, Vol. 19, No. 3, 2019, pp. 69-74.
4. Barhoun, Brahim. The Carnivalesque in Ben Okri's Magical Realist *Abiku* Trilogy: Subverting Colonial Discourse. *OYÉ: JOURNAL OF LANGUAGE, LITERATURE AND POPULAR CULTURE*, Vol. 1, No. 1, September 2019, pp. 37-49.
4. Ikechi, Emeka. (2015). The Reign of Evil in Ben Okri's The Famished Road.*AFRREV IJAH: An International Journal of Arts and Humanities*. DOI: http://dx.doi.org/10.4314/ijah.v4i3.14, Vol. 4(3), S/No. 15, 2015, pp. 168-175.
5. Chinedu, Ezekwesili. (2019). Ideology and the Pursuit of Desire in Ben Okri's Starbook. *International Journal of Applied Linguistics and English Literature*, http://dx.doi.org/10.7575/aiac.ijalel.v.8n.3p.1, Vol. 8, No. 3, 2019, pp. 1-4.
6. Pandya, Dr. Digvijay and Anand, Mr. Vijay. Search Of Identity: A Thematic Analysis of Ben Okri's Select Novels. *European Journal of Molecular & Clinical Medicine*.Vol. 7, Issue. 7, 2020, pp. 6121-6125.

❑❑❑

1. Ph.D Research Scholar, indusoodan@gmail.com
2. Assistant Professor, Department of English, Sri G.V.G. Visalakshi College for Women, Udumalpet.

A Study on Enhancing Writing Skills Using Descriptive Tasks at the Tertiary Level

–K. Jefferson
–Dr. V. Radhakrishnan

Learning a language in a naturalistic way is the most appropriate technique to enhance the descriptive writing and the objective of using this in classroom is to engage students well with descriptive tasks and which make the learning, leaner- centric rather than a conventional classroom learning type. It is essential for the language teachers to teach the language using naturaland practical way for better understanding and how to use in real time situation.

Language proficiency for engineering graduates at the tertiary level is necessary to meet their requirements both in academics and future profession. So, the job of English teachers' job is to make students meet their necessities and device methods for enhancing academic and professional communication. Creative skills are generally with engineers because they make abstract ideas into physical representations. This work incorporates descriptive tasks along with creative skills of the students to enhance the writing skills. The aim of this study is to develop descriptive writing through descriptive tasks. The objective of this study is to overcome the challenges faced by the students in acquiring language proficiency and would help the learners to comprehend the use of contextual words, connectives and make them familiar with the structural aspects like coherence and cohesion of a passage.

Keywords: Language proficiency, communication, descriptive tasks, descriptive writing, coherence, and cohesion

Introduction

As far as Engineering education is concerned, skills are significant both in academics and professional perspectives. In terms of language enhancement for the engineering graduates, the English language has to be taught as skill rather than a subject. Basically, language has four skills like listening, speaking, reading, and writing. This study focuses on the development of writing skills of tertiary level engineering students, as they have to send e-mails, towrite reports about the research findings, describe objects and products, write

research projects, and other professional and academic writings. Generally,students of engineering are technically strong, but when it comes to writing, they lack in performance.Consequently,the students' writing text has become unrewarded and unused owing to their deficiency of knowledge to employ in real context. Nicholas D. Sylvester in his book *Engineering Education* says the importance of communication for an engineer as "Engineers who cannot communicate – cannot spell, cannot make a sketch, have difficulty in all phases of communication with others. The student of today needs more ability than ever and a key need is to increase the ability to communicate both in speech and graphics." (Manivannan,G, 2006) Communicative proficiency is required for an engineer's progress both in professional and academic growth that can be acquired through rigorous real time practice and with situational and contextual scenario. It has made writtencommunication as a mandatory skill for the engineering graduates and as a result theyneed to enhance the writing skills to meet the professional and academic requirements. "Writing, because it allows us to represent to ourselves our learning, our ways of making meaning, teaches us the most profound lesson about how we read, write, and use language, about what it means to know." (Zamel, 1992, p. 481) Fundamentally, writing is classified into four types such as Expository writing, Argumentative writing, Descriptive writing, and Narrative writing. In this study the researcher has made an attempt to develop the descriptive writing among the tertiary level learners using descriptive and natural approach in the ESL classroom with several descriptive tasks.

Literature Review

Descriptive approach is used to describe a particular person, place, event, action, object and product through which a second language learner may sense the actual pictorial representation of the object which is being described either in spoken or written forms of communication associated with the preconceived notion in his/hermind. HaryantoAtmowardoyo, defined " 'Descriptive research' as a research method used to describe the existing phenomena as accurately as possible. The word "existing phenomena" makes descriptive research contrary to experiment research…" (2018).The main objective of descriptive research is to describe the objects as per the usual concrete observation by an individual and using the preconceived observation in natural learning acquisition.

Tracy Terrell developed "The natural approach" and it was supported by Stephen Krashen, to acquire second language as natural as first language. Krashen and Terrell note that the Natural Approach is primarily "designed to develop basic communication skills - both oral and written" (1983: 67).The

foremost focus of this approach is to enhance the writing skills with special focus on the functional aspects of the language. In addition, it facilitates the learners to use the language in their necessity rather than memorizing grammatical structures. The goal of this approach is to write better, to understand cohesion and coherence of paragraphs, usage of word classes in sentences and usage of transition words in writing skills.

Learning a language in a naturalistic way is the most appropriate technique to enhance the descriptive writing and the objective of using this in classroom is to engage students well with descriptive tasks and which make the learning, leaner- centric rather than a conventional classroom learning type. It is essential for the language teachers to teach the language using naturaland practical way for better understanding and how to use in real time situation. In this learning ambience teachers are expected to set thenatural and contextual learning environment to acquire the target language.Krashen and Terrell noted that "approaches have been called natural, psychological, phonetic, new, reform, direct, analytic, imitative and so forth" (Krashen and Terrell 1983:9). It is presumed that the above approaches would be the apt approach and method to progress the descriptive writing proficiency of the engineering graduates at the tertiary level.

Research questions

1. Will the descriptive approach enhance the writing skills at the tertiary level?
2. Will the naturalistic approach develop the writing skills of the learners?
3. Are the proposed descriptive tasks enhance the written communicative proficiency of the learners?

Limitations of the Study

This study is limited to the first year students and with special focus to enhance the descriptive writing of the students.

Activities

Task:1Description on Experience

A context-oriented activity is given to the students to describe real experience. The sample activities like describe your favouritefood, describe your room and describe your best or worst vacation. These activities are meant to enhance the writing skills with the student's realistic experience on situation.

Task:2 Picture Description

Different contextual pictures are provided as task and students are expected to describe the picture. This activity made the learner to use their creativity in writing, previous experience in contextual writing and using adjectives in writing.

Data Collection Method

The researcher collected data through a questionnaire and an essay on descriptivecontext. The questionnaire was given to 25 students in an engineering class to check the writing proficiency. The questionnaire had 8 questions in total to understand the learners' knowledge in writing. The 1st question is based on their views about the I semester language paper and the 2nd question was on the learners' level of writing. The 3rd question was about the opportunity for learning in kindergarten, primary, High school, Higher secondary and College to progress their writing skills. The 4th question was about to identify the source of students' English language development from parents, teachers, friends, other books, and TV. Role of school and college in enhancing the language werethe 5th and 6th questions respectively. The 7th question is on identifying the learners' rudimentary understanding and the capability to use cohesive device in writing. Finally, the students were asked to rate their descriptive writing.

Why Descriptive Writing?

Figure 1: Rating of learners' descriptive writing skills

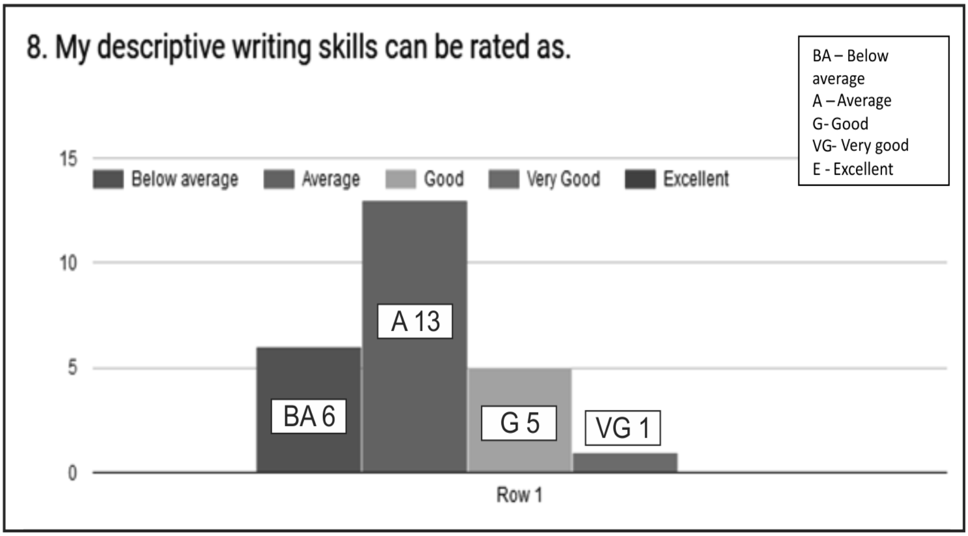

Figure.1, shows the result ofrating of learners' in descriptive writing in which the level of below average is observed as 6 students. It is further observed as 13 students are in average level, 5 students and 1 student as good and very good respectively. No one is excellent in descriptive writing. From which it is understood that the students are lacking in producing a descriptive text. So, the researcher triedto enhance the descriptive writing at the tertiary level engineering with the combination of naturalistic and descriptive approach and with suitable methodology.

Methodology

Figure:2 Process of Descriptive Writing

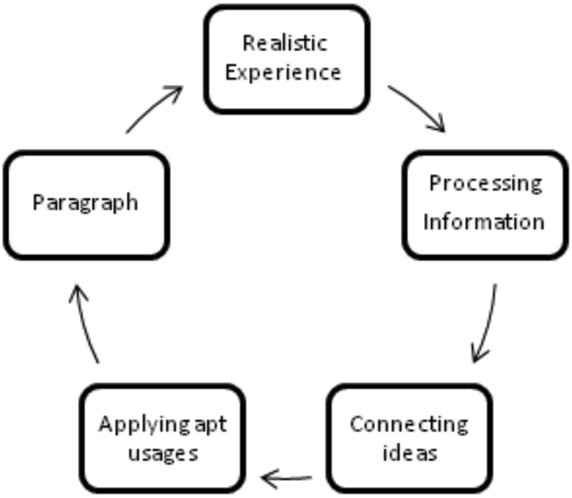

Descriptive writing involves certain natural process of language acquisition method which is clearly portrayed through the methodology. To improve writing skills in an effective way, natural approach was used to acquire the target language as stated by Krashen and Terrell "acquisition can take place only when people understand messages in the target language" (Krashen and Terrell 1983: 19).A realistic experience-oriented activities like describe your favourite food, describe your room, and describe your best or worst vacation were given to the learners. Also, another activity picture description makes the learners to reconnect with their existing experience on the picture. These activities provoke the curiosity and interest among the learners. Specially while recollecting information related to the activities make the learner to connect their ideas coherently. The next stage is to apply appropriate language devices like adjectives and cohesive devices to make a final product as a paragraph. Before starting these activities, the students were given a brief explanation about descriptive writing. Active participation was seen in during the activity.

Research Findings

L2 discourse requires an attachment to real socio-cultural setting to achieve its communicative purpose, (Carter &Nunan, 2004). As per Carter and Nunan's view, language learning is a natural process that should get into one's mind naturally rather than forcibly and as per his opinion the similar learning environment was created to the learners to improve descriptive writing. The activity which was conducted in the class paved a stage to acquire new words, to comprehend the connotation of words in situation and how to use those words in an proper context. Outcome of the method is effective in grasping and using the target language in tangible state because the learners were provided with realistic contextual

illustrations. In addition to that, learners can exploit adjectives, and connectives in authentic descriptive contextual conditions. Conventional chalk and talk education are not that much obliging in terms of understanding towards the real situation so that new rational way of teaching method has been introduced to make the learning insight more applied and natural. This method facilitated the second language learners to become more proficient in written communication as per context and to interact with cognitive descriptive notions and content.

Conclusion

For learners of second language, written communication is one of the crucial skills to be acquired by everyone. At first, a suitable approach was selected along with Krashen and Trell's views regarding language learning were discussed. Then the naturalistic way of learning method was discussed in detail with the real time activity which made the learners to actively participate with curiosity and students were made to understand the words. Like Communicative Language Teaching, the Natural Approach is hence evolutionary rather than revolutionary in its procedures according to Richards and Rodgers (2001).

References :

1. Carter, D., &Nunan, D. (2004). *The Cambridge guide to Teaching English to Speakers of Other Languages*.Cambridge: CUP.
2. HaryantoAtmowardoyo. "Research Methods in TEFL Studies: Descriptive Research, Case Study, Error Analysis, and R & D." *Journal of Language Teaching and Research*, vol. 9, no. 1, Jan. 2018, pp. 197–204., doi:http://dx.doi.org/10.17507/jltr.0901.25.
3. Huy, Nguyen Thanh . "Problems Affecting Learning Writing Skill of Grade 11 at Thong Linh High School." *Asian Journal of Educational Research*, vol. 3, no. 2, 2015, pp. 53–69.
4. Mani , K. RatnaShiela . "The Natural Approach." *Veda's Journal of English Language and Literature (JOELL)*, vol. 3, no. 1, 2016, pp. 8–16.
5. Manivannan, G. *Technical Writing & Communication: What & Why?*, 12 December 2006, https://www.usingenglish.com/profiles/user/115/.
6. Mehta, D. & Mehta, N. K. "Communication Skill for Engineering Professionals". *AditJournal.*, vol. 4, no. 1, 2007, pp. 89-95.
7. Reddy Sandhya. A, "The Importance of Technical Writing Skills for Engineering Students." *IMPACT: International Journal of Research in Humanities, Arts and Literature (IMPACT: IJRHAL)*, vol. 4, no. 3, 2016, pp. 1–4.
8. Rhalmi, Mohammed. "The Natural Approach." *The Natural Approach*, 27 Sept. 2009, www.myenglishpages.com/blog/natural-approach/.
9. T. Rodgers, Jack C Richards. *Approaches and Methods in Language Teaching.* CUP, 2001.
10. Terrell Tracy, Stephen Krashen, .*The Natural Approach: Language Acquisition in the Classroom*. Oxford: Pergamon,1983.

Zamel, V. (1992). Writing one's way into reading. *TESOL Quarterly, 26*,463-485.

❒❒❒

1. Research Scholar (Part-Time), K S Rangasamy College of Arts and Science (Autonomous), Tiruchengode
2. Associate Professor & Head, K S Rangasamy College of Arts and Science (Autonomous), Tiruchengode.

Inevitable Modifications and Natural Calamities in Paolo Bacigalupi's *The Windup Girl*

–S. Priyadharsini
–Dr. C.G. Sangeetha

The changing climate has a significant impact on the ecosystem and natural resources. The weather patterns is major elements, but there are other variables that are important as well. These include evapotranspiration, relative humidity, wind speed and solar radiation, all of which have substantial hydro-logical repercussions as a result of climate change. As the world's population continues to grow, the demand for water and other natural resources has increased steadily, resulting in a reduction in the amount of these resources available per person.

Farmers have been preserving seeds from one harvest season to the next for millennia now. This natural and rational process is slowly becoming untenable, both legally and medically, as the world becomes more and more complex. The United States Supreme Court ruled in 1980, the year Jimmy Carter succeeded Ronald Reagan as president, that seeds could be patentable. This astounding choice laid the groundwork for the corporations to gain control of the global food supply predominantly through genetic modification and patent license. With patenting, comes the ability to regulate seed access. Writer Paolo Bacigalupi predicts the predicaments of the GM foods and expects this sort of modification leads to draught, flood and other natural calamities. This paper analyzesthe predicaments of the GM foods and political force which is behind this inevitable process through his novel, *The Windup Girl*.

Keywords: GM foods, flood, politics, Watery rhetoric, global warming

Global warming is a burning issue, and flood tradition is powerful artistic expressions that communicate the seriousness of the situation. Despite the fact that flooding does not occur until towards the conclusion of Paolo Bacigalupi's science fiction novel *The Windup Girl*, flooding is ubiquitous as a rhetorical figure, a complicated process, and an awaited occurrence in the narrative. By drowning its narrative discourse in floods and flows, this article contends that The Water Cure summons out a watery sort of thought, which serves as a counterpoint to the prevalent land-based conceptions of ecocriticism now in vogue. Watery rhetoric, on the other hand, combines meaning rather than moving it from one domain to

another as a basic resource. This rhetorical effort connects with the storey, which brings together a range of economic, migratory, viral, and other flows in a single location. The novel expresses in literary form the insights gained from complex systems theory, which states that forces are not limited to the domains assigned to them by academic disciplines, but rather spill over and have massive consequences for other systems. Changes in one system can have massive consequences for another, and seemingly, insignificant changes in one system can have massive consequences for another. As a result, the novel provides an opportunity to gain a firsthand awareness of catastrophic global warming.

Climate change is modifying the overall watershed or catchment behaviour and their characteristics in many ways leading to a variety of adverse consequences like reduced water availability or drought, flood nuisance, reduced groundwater recharge, overexploitation of groundwater, soil erosion, reduction in life of the reservoir, reduction in vegetation and evapotranspiration, increase in temperature, loss of flora, fauna and other ecological disturbances (Mamuye 88)

The changing climate has a significant impact on the ecosystem and natural resources. The weather patterns is major elements, but there are other variables that are important as well. These include evapotranspiration, relative humidity, wind speed and solar radiation, all of which have substantial hydrological repercussions as a result of climate change. As the world's population continues to grow, the demand for water and other natural resources has increased steadily, resulting in a reduction in the amount of these resources available per person. As a result of the additional stress of climate change on water resources, which vary both in terms of time and space, the situation regarding water availability is becoming increasingly difficult to manage. A watershed or catchment is a fundamental unit of study for hydrogeological and morphological phenomena that is commonly employed in hydrogeological and morphological research. It is possible to measure the health of a watershed by looking at its hydrology, geomorphology, topography, and vegetational features, all of which are related to watershed health. The availability of diverse natural resources such as water, vegetation, and other resources is a result of the health of the watershed.

Paolo Bacigalupi's*The Windup Girl* is the epitome of climate fiction, which gives the ultimate warning about the climate change through storytelling. The setting of the novel is Bangkok particularly the author fixes the timeline of the novel is 23rd C. People in this century find scarcity for everything. The oil resources and all other natural recourses were exploited by their previous generation. The kaleidoscopic view illustration depicts the various dimensions of the climate change. The changing climate brings scorching heat and severe storms, while the yearly wet monsoon so critically important to life has become entirely unpredictable: 'Will the monsoon even come this year? Will it save them or drown them?' (*The Windup Girl* 338).

Increasing sea level and the city's flood defenses are on the verge of failing. The city is repeatedly depicted as being 'overheated' and as being threatened by incoming 'floods' of foreign firms, refugees, genetically modified crops, and illnesses, which serves to emphasize the parallels between elemental and human processes in a rhetorically effective manner. A good illustration of how literature might assist to alter the terms of the environmental argument from 'climate change' to the more urgent 'global heating' is the novel's depiction of the metropolis of Bangkok as endangered by violent currents and burning heat. The storey also highlights the ways in which global warming is associated with psychological, social, economic, technical, and ecological 'heating' and 'flooding,' helping readers to comprehend the intricate relationships that exist across diverse systems.

Windup Girl is successful in visualizing the consequences of global warming on living and non - living systems, which become much more profoundly and catastrophically intertwined as a result of the warming of the planet. In this sense, thinking about the water may serve not just to diagnose, but also as a powerful tool for developing a holistic, non-anthropocentric mode of seeing and thinking. For example, unlike other flood-themed novels, such as Maggie Gee's *The Flood*, AmitavGhosh's*The Hungry Tide*, Barbara Kingsolver's *Flight Behaviour*, and Nathaniel Rich's *Odds AgainstTomorrow*, there are no illustrations of flood scenes throughout the book. Anderson, states, 'It's difficult not to always be aware of those high walls and the pressure of the water beyond. Difficult to think of the City of Divine Beings as anything other than a disaster waiting to happened'(10). It appears as though the flood is acting as a "strange attractor," to use the lingo of complexity theory. Furthermore, the flood is pervasive in the novel as a rhetorical metaphor that appears to apply to, and hence link, a variety of various institutions and situations. Whereas land-based conceptions are particularly effective when it comes to environmental conservation, watery thinking is more sensitive to exceedingly complicated phenomena such as global warming. A narrative complement to complexity theory's insight that processes are not confined to the domains accorded to them by academic disciplines; rather, they spill over, and seemingly insignificant changes in one sphere can have sudden and massive consequences in another is created by *The Windup Girl*'s watery storey world and narrative discourse.

The representation of politics in *The Windup Girl* is similarly characterized by a slick use of jargon. Instead of attempting to maintain their composure and cool under pressure, the political opponents in the novel adopt a more confrontational demeanour. Currently, the political environment in Bangkok is controlled by a struggle between two opposing factions, represented by the Ministries of Environment and Trade. The Ministry of the Environment wishes to preserve the Thai seed bank from the ravenous wave of unrestricted biocapitalism,

which is sweeping the country. It sees global biotech corporations as the successors of the old Western industries that contributed to the rising sea levels that are a danger to the city of Bangkok. "JaideeRojjanasukchai (like the novel's narrator, I shall refer to him by his first name here), a hot-headed ex-boxer called 'the Tiger of Bangkok,' is the public face of the Ministry of the Environment. Jaidee employs his strong energy to regulate the foreign traders who come into the Kingdom from all directions with their monocrops and then dump them. Moreover, he is concerned about 'migrants 'flooding in' " (168) and undignified the native culture. Jaidee and the Ministry of Agriculture and Forestry constitute a territorial paradigm of bio-politics that bears some resemblances to eugenics, in that they regulate and impede all kinds of flux and transition in the country.

The Ministry's environmentalism is a cocktail of religious fundamentalism, nationalism, hyper masculinity, and anthropocentrism, not so different from the divinely-ordained preservation of life in the neo-conservative sects of Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale*. It is also reminiscent of the biblical story of Noah's ark, which is invoked several times in the novel. Tragically, even Jaidee proves to be susceptible to bribery, although he never gives up the cause. His partner Kanya muses that of all the pressures on the Thai kingdom, there's no force quite like that of money 'surging in as strong and as deep as the ocean against the seawalls' (244). The normal cycle of life is in danger: as Kanya complains, she's haunted by the *phii* (spirit) of her mother, who stubbornly refuses to incarnate because the new world is no place to live. The Thai seem to be pulled along by a current they cannot understand. Apart from newspapers, media are scarce and characters repeatedly complain they don't have the information to oversee the escalating situation. Watery rhetoric, in combination with the looming threat of flooding, thus fleshes out the dangers of runaway global heating and the feelings of loss and nostalgia they bring along.

Most of the scholarship about *The Windup Girl* follows a Marxist trajectory, perceiving the novel as working through the contradictory forces of late capitalism, eventually arriving at a point of exhaustion and possible change. The novel thus destabilises oppositions between utopia and dystopia, nature and technology. According to the Ministry of Trade, the concept of a native nature and culture is no longer viable in a postgenomic world. The irony, as the reader discovers midway through the storey, is that the Ministry of Environment has engaged a 'gene ripper' to extract the maximum amount of genetic information from their seeds. Novel methods of altering biological matter have rendered differences between pure and hybrid species, as well as between natural and artificial niches, meaning that they no longer exist. Using water as both a metaphor and a physical force, *The Windup Girl* challenges traditional notions of hierarchy, purity, and control while encouraging an understanding of life as hybrid, mobile, and always changing.

Throughout Emiko's journey of transformation, water plays a crucial part. People who work in the wind are reliant on water to keep from being overheated. Due to the escalating level of social unrest in Bangkok, there is a spike of violence directed towards windups, which forces Emiko to run from predators many times, almost resulting in her death due to overheating. In the new, flooded Bangkok, on the other hand, there are significantly fewer people and enough of water to go around. Besides developing her own survival skills, Emiko has also identified a market niche for her particular kind of human being. Water not only helps her to develop physically, but it also allows her to wash away her guilt and forget about her past in a metaphorical manner. The narrative comes to a close when Emiko comes face to face with another survivor, the Thai Kingdom's own genetic engineer Gibbons, who pledges to build new Windups who would be able to reproduce, so kicking off a new posthuman civilization in the process.

Foods derived from the genetically modified organisms are another example of the blurred line that exists between the natural and the manufactured in fiction, because new foods may be generated through genetic modification. As a result of this practice, the question of whether humans should be meddling so severely with natural, vegetative processes arises; in the world of the novel, however, and given the deteriorating environment, the creation of genetically modified food has become a must. The technologies modified everything in the Earth through the exploiting the resources but the fact if the nature is erasing the man made exploitation by the floods."Change in precipitation regime may lead to a change in the distribution of rainfall temporally and spatially which may lead to droughts or floods. An increase in extreme rainfall events may also lead to floods and loss of life." (Kripalani 201) The power of nature is symbolically represented by the flood and the author evokes a loud alarm to wake up the readers before they sink in the upcoming floods.

Works Cited :

Anderson. *Effects of IPCC SRES Emissions Scenarios On River Runoff: A Global Perspective*.Hydrology and Earth System Sciences. 2003

Bacigalupi, Paolo.*The Windup Girl*.Night Shade.2010

MamuyeKebebewu. *The Climate*.Rakush Pearl Publishers, 2018.

Kripalanietl.,*Indian Monsoon Variability in A Global Warming Scenario*. A.K. Publishers. 2003.

❒❒❒

1. Ph.D Research Scholar, Department of English, Sri Sarada College for Women (A), Salem–16 Email : priyadharss@gmail.com
2. Research Supervisor, Department of English, Sri Sarada College for Women (A)Salem-16 Email : sangee.govi@gmail.com

Enhancing the Reading Competency of the L2 Learners by using CLIL with Metacognitive Strategies – A Study

–R. Gomathy
–Dr. V. Radhakrishnan

The motive of the researcher is to teach grammar to the students but before teaching grammar the pre test is given to analyze the students level of understanding and readiness of learning. The pre test shows that the L2 Learners are giving less importance to their reading. They do not understand the purpose of their reading and they want to complete their text in order to get pass mark.

This study investigates L2 students' Metacognitive Reading Strategies. The quantitative research method is used through a survey. Metacognition is considered as one of the important factors in determining reading comprehension. This is because metacognition plays a vital role in cognitive activities in learning, including comprehension of textual information. The application of metacognition in reading is actualized in the form of strategy. Learning a second language with the prescribed text is called Content and Language Integrated Learning (CLIL). In this present research a story content is given to the L2 students and makes them to understand the real meaning of the text along with the grammar component. Here the prescribed text is a story and a student simultaneously understands the summary of the story and the basic of English language. Here understanding the text and learning a language are the two process have been carried out by the CLIL method. The content influenced the readers to find the purpose of their reading and also understand a language. The instrument to collect data used in this research was a questionnaire. The study involves 46 undergraduate students. The data are collected from the students by using a questionnaire of Metacognitive Awareness of Reading Strategy.

Key words: Metacognitive, CLIL, Reading Strategy, L2 learners and language

This study investigates L2 students' metacognitive reading strategies. The quantitative research method is used through a survey. Metacognition is considered as one of the important factors in determining reading comprehension. This is because metacognition plays a vital role in cognitive activities in learning, including comprehension of textual information. The application

of metacognition in reading is actualized in the form of strategy. Learning a second language with the prescribed text is called Content and Language Integrated Learning(CLIL). In this present research a story content is given to the L2 students and makes them to understand the real meaning of the text along with the grammar component. Here the prescribed text is a story and a student simultaneously understands the summary of the story and the basic of English language. Here understanding the text and learning a language are the two processes have been carried out by the CLIL method. The content influenced the readers to find the purpose of their reading and also understand a language. The instrument to collect data used in this research was a questionnaire. The study involves 46 undergraduate students. The data are collected from the students by using a questionnaire of Metacognitive Awareness of Reading Strategy.

The motive of the researcher is to teach grammar to the students but before teaching grammar the pre test is given to analyze the students level of understanding and readiness of learning. The pre test shows that the L2 Learners are giving less importance to their reading. They do not understand the purpose of their reading and they want to complete their text in order to get pass mark.

The CLIL method has been implemented to create the interest among the readers to learn the grammar. The metacognitive reading method allows the students to think about their study and thinking level. The researcher has given 10 pre test question to do self test to the students. The questions make the readers to develop their reading in a very deep way. The L2 learners may not aware of the reading methods. Most of the students just do loud reading without notice the meaning and importance of the text. This has been notices by los of the teachers. The CLIL method used to create curiosity among the readers to learn more from the text.

Picture:

The picture description teaches more lessons than 100 words thus a student can very understand the text by seeing a single picture. The picture should be related to the content and it should deviate or mislead the main concept. The students once notice a picture she should remember it for ever so the teachers should be very careful while selecting a picture.

Colour:

The colours use in the CLIL must be very attractive. Colour plays a major role in the teaching aids so the teachers should use appropriate colours. The attraction of the colours makes the learners to remember the words easily. The colour of the picture and content must be suit to the prescribed text. Every prescribed text can be easily explained with CLIL method.

Diction:

While using CLIL the dictions should be simple and clear because the prescribed text is for especially for the L2 learners. The complicated diction mislead the readers to understand the text so the text should be very clear and there should

not any ambiguity words. The selections of diction should be simple and it should convey direct meaning of the text.

List of the Metacognitive Reading Strategies: To develop students' reading comprehension, a teacher should implement the seven cognitive strategies: activating, inferring, monitoring-clarifying, questioning, searching-selecting, summarizing, and visualizing-organizing.

Present Simple Tense

Reading

The name of my dog **is** Jimmy. She **is** brown in colour. She **is** grey in colour. She **is** four years of old. She **keeps** cat away from my house. She **likes** to eat fish. She **barks** when she **sees** a stranger in the street. She never **bites** anyone though she **likes** meet. Whenever I **come** from school, he **comes** to me and sits in my lap. After I **complete** all my work, Jimmy and I **play** together in the park. I **love** my pet very much. My dog also **loves** me very much.

Verbs in Simple present tense: **Keeps, sees, bites, eats, likes, play, jumps, runs, love and loves**.

The present simple tense is used to mention the regular activities and universal truth. Examples:

- I go to school every day
- I love India
- Sun rises in the east
- Dogs Bark

Pre test Questions:

1. Did you ask questions before, during, and after reading ?
2. What is the usefulness of the text while reading?
3. Did you understand the meaning of the every words in a text?
4. Do you feel difficulty to read a comprehension?
5. Do you take notes while reading a text?
6. Do you have aloud-reading practices?
7. How can you find the deeper meaning of a word?
8. Do you have a purpose in mind while reading a text?
9. Do you check your understanding level with your peer group?
10. Do you find a solution to improve your vocabulary?

Post test Questions:

1. What is the purpose of this story?
2. What is the usefulness of the text while reading?
3. What is the meaning of the word 'stranger'?

4. Do you feel difficulty in reading the story?
5. Do you take notes while reading this text?
6. Did you the read the given story aloud?
7. Frame a sentence with simple present tense
8. What is the theme of the story?
9. Where we have to use simple present tense?
10. Which of the following sentence is correct?

Conclusion:

The Research proves through the driven conclusion that CLIL method can easily triggers the L2 Learners to learn the language in a easy way. The metacognition makes the person to think deeply. The given picture message allowed the leaders to read aloud and find the verb agreement without any difficult. The pretest proves that most of the L2 learners read a text without any purpose. Metacognitive reading strategy makes the students to understand the story and induces to know the purpose of reading the text. The post-test proves that the L2 learners take efforts to understand the text. The CLIL content makes them to read fast and understand each and every words.

The following chart illustrates the efforts of CLIL teaching method to the L2 learners.

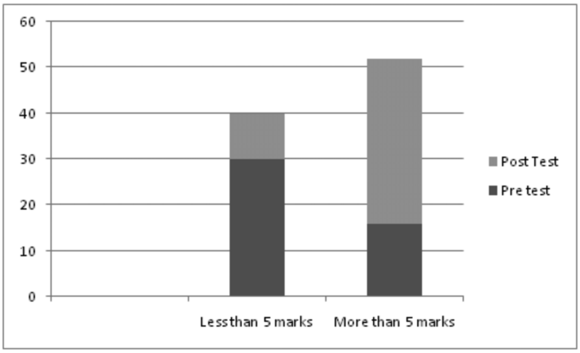

Works Cited :

1. Bentley, K. The TKT Course: CLIL Module. Cambridge University Press,2010.
2. Coyle, D., Hood, P., & Marsh, D. CLIL: Content and Language Integrated Learning.Cambridge. Cambridge University Press.2010. Fig. 1 Hyuna Lee. https://www.pinterest.com/pin/432697476698302115/
3. Hilliard, Patricia. “Teaching Students the Skills of Expert Readers”.Edutopia. https://www.edutopia.org/blog/teaching-students-skills-expert-readers-tricia-hilliard.
4. Marsh, D. CLIL/EMILE- The European Dimension: Action, Trends and Foresight Potential. Jyvaskyla. University of Jyvaskyla,2002.

❒❒❒

1. Ph.D - English - Part Time Research Scholar, K.S. Rangasamy College of Arts and Science, Thiruchengodu, Tamil Nadu, India.
2. Associate Professor & Head, K.S. Rangasamy College of Arts and Science, Thiruchengodu, Tamil Nadu, India.

The Potential Power and Values of Education Builds a Character : A Study of Githa Hariharan's *The Ghosts of Vasu Master*

–Mrs Sasikala AD
–Dr. K. Radhai

Vasu understands that modern time has achieved a few changes in the school system, yet up how much the impact of these progressions are pertinent is the matter getting looked at. He feels a struggle under the surface when he understands that changes which innovation has achieved for the sake of headway of school system have done a greater number of damages than help to training.

This present paper treats different sorts of struggles figuring in GithaHariharan's novels like the contention among legend and reality, among history and contemporaneity, between old unbending shows and present day perspectives on contemporary society, between old qualities and new arising values, between oral story methods and current methodologies and between strict orthodoxies and strict fundamentalism. Her subsequent novel, *The Ghosts of Vasu Master*, depicts the existence of a retired teacher Vasu Master, who having spent quite a while in his exceptional profession of teaching, presently after his retirement, thinks about the benefits and negative marks of the present schooling system. The primary striking struggle that figures in this novel is a contention between custom and modernity. Another contention, which surfaces in the novel, is struggle between old strategies for educating method and present day techniques for teaching.

Keywords: conflict, tradition and modernity, techniques for teaching

The Ghosts of Vasu Master (1994) is Githa Hariharan's second scholastically acclaimed novel. Madhu Jain's applicable comment is very much an accolade for the inborn value of the novel. In her novel, *The Ghosts of Vasu Master*, GithaHariharan explores the excursion of a retired school teacher, Vasu Master who has taught for a very long time in P.G. Boys School, Elipettai, Chennai. The clever arrangements with the different grave issues of the Indian school system are illustrated in this novel. GithaHariharan questions the disadvantages of the Indian schooling system, which should shape the foundation of the country in her novel, *The Ghosts of Vasu Master*.

The novel starts with the conversation of the hero, Vasu Master, "a patient, mild, soft-spoken, school teacher" (3). Generally, any novel starts with a profession beginning however this novel starts with the completion of a profession. GithaHariharan has obviously taken advantage of the zig-saw-puzzle account technique in this novel. She has portrayed the void, fatigue and personality of a retired teacher who, presently being a retired person, contemplates the benefits and negative marks of the school system, through the memories and recollections of the past.

The novel opens with the visit of Vasu Master to a doctor. He has been suffering some stomach issue for quite a while and on the demand of his elder son, Vishnu, he goes to a doctor. Subsequent to looking at Vasu, doctor endorses a few meds and ordinary check-ups for him, encouraging him to take rest. Vasu is very sure of the treatment of his primary care physician.

After his retirement, Vasu lives in his home alone and there is nobody who can eliminate the vacancy and fatigue of his life, after the passing of his better half, Mangala and the settlement of his two children in a metropolitan city. Mangala passed on many years ago when their children were not adult. After the passing of his better half, the onus of raising kids falls on Vasu. He raises his both children, Vishnu and Vinu with extraordinary consideration and love, never causing them to understand that they have lost their mother until the end of time.

However Vasu has taught numerous students in his school, he has been not able to do equity to the education of his own two children, for he never gets adequate time to educate them. His sons, in the wake of finishing their schooling, have gotten comfortable in a Metro City, away from Elipettai. They barely get time to see their dad. The chief medium of communication, among father and children is only through letter. It is exclusively by composing letters, they share their delights and distresses. Vasu helps significant guidance by his two children through their letters. Despite the fact that Vasu composes long and full letters to his children but he gets exact and concise letters from his children, as they lack the capacity to deal with composing long letters. His elder son, Vishnu needs after his retirement Vasu should deal with himself appropriately and he should settle himself with Vishnu's family in the city. Since for his entire life, he has been a dedicated teacher, presently he should quit trying sincerely and should carry on with an existence of harmony and joy, represented by his own choices as it were. In any case, Vasu detests carrying on with a daily existence which is without work.

Vasu's significant other, Mangala has been an optimal spouse for her entire life. Despite the fact that she kicks the bucket at her previous stage, she takes extraordinary consideration of her family till she is alive. She had been an optimal ally for Vasu. She, as a conventional housewife, had never visited the premises of P.G. school, where his significant other showed for his entire life. She had a place with those gatherings of women who kept themselves restricted to their family work and their loved ones.

Mangala had been the first educated women in the group of Vasu Master. Requested nothing from her significant other, as she had been compliant, agreeable and domicile wife. After the passing of Vasu Master's dad, she gave extraordinary comfort and reassurance to Vasu. At the end of the day, she was a commendable respectable spouse and mother who scarified her solaces for her loved ones. After his retirement, Vasu connects with himself in giving private tuition to students at home. Thusly, he swamps off his depression and void and adds a reason to his life. Mani "a smooth skin and a thick short neck . . . pale-skinned boy"(8) accompanies his dad to join tution classes run by Vasu. Mani is an intellectually impeded youngster who is behind the curve.

In this manner, customary strategies for educating and learning have been a major disappointment for Mani, as he shows no reaction to them. Vasu attempts to the best of his ability to show Mani however he stays fruitless. Mani, in any case, doesn't answer him well and on second thought of giving any reaction to him, he continues sitting inert, living in his own universe of dreams and dream. Vasu currently feels disheartened as up until this point he can't show Mani anything. He feels that Mani is certifiably not an ordinary youngster like different offspring of his age. His conduct and nature is unique.

Vasu, while showing Mani, recalls his expired dad whom he has been profoundly appended and who had been an Ayurveda healer for his entire life. His dad used to accept that a large portion of the issues connecting with the body were made because of the evil capacity of the digestive system. In the event that the digestive system is in a decent condition no sustenance can hurt a body. He exhorts his child that one can work well for one's nation when one is solid and liberated from diseases. So anyone who needs to serve his country, he should initially sustain his own body well.

Vasu has been so near to his dad that in any event, when his dad is no more, he actually looks for his recommendation on different complex issues of life,

envisioning, what his dad would have done in that condition which Vasu himself is confronting. As Mani gives no reaction to his customary strategies for educating, he normally contemplates taking ideas from his dead dad as what his dad would have done while giving his treatment to Mani who is too hesitant to even considers learning. After much consideration, he chooses to assume a part of healer rather than to be an educator of Mani. He, similar to his dad, attempts to mend Mani's psyche to show him appropriately and the most ideal kind of recuperating that he can do is with the assistance of the fascinating stories. Stories are enjoyed by each youngster, so Mani might want to pay attention to stories.

In this way, genuine instructing of Mani starts with the anecdotes, tales which give solace to Mani's unsettled, stubborn mind. Vasu recounts to Mani the stories of crow, mouse, bug, firefly, and wasp to give good judgment to Mani. Mani begins looking into them and his peregrination of learning starts. While depicting the significance of stories and tales in the novel, SaritaPrabhakar comments: ". . . in The Ghosts of Vasu Master stories as tale and purposeful anecdote show the two Mani and Vasu functional insight empowering them to address the difficulties of life" (161). While teaching Mani, Vasu investigations the pertinence of showing strategies which are the most part utilized in school for educating children. As indicated by Vasu, an educator must be a healer to show his students well. Since just a healer knows where the difficulty is and he treats it with his incredible expertise and care, similarly, a good instructorknows the issues of his students and where his students are submitting botches.

Vasu has a place with those classifications of teachers who devote for what seems like forever to teaching and learning, continuously reassuring their students to accomplish information in their respective field. They respect their students their own children, treating them mercifully and affectionately. Consequently, with the assistance of fascinating and spurring stories, Vasu attempts to teach in Mani those qualities and habits which are fundamental for anyone for carrying on with his life effectively.A significant investigation of the novel gives a mixture of different sorts of struggles which make this novel very pertinent to contemporary times.

Vasu understands that modern time has achieved a few changes in the school system, yet up how much the impact of these progressions are pertinent is the matter getting looked at. He feels a struggle under the surface when he understands that changes which innovation has achieved for the sake of headway of school system have done a greater number of damages than help to training. Contrasting old and present day schooling system of the country he feels a situation among

custom and innovation. In the antiquated Gurukula framework, an instructor used to appreciate most elevated place in the public arena. His poise was considered past examination. He, similar to a committed dad, used to deal with his students. students had full confidence in his instructor. The teacher dealt with fostering each part of his students' life whether it is mental, physical or passionate. He was the creator of their fate. However, in current times things have been changed. Teachers, who used to be a guide and producer of his understudies, incontemporary time, have become financial specialists of schooling. They treat their students with impressive skill, thinking about their students as a wellspring of their pay. In present times, instructing doesn't have anything to with information and learning. The main accentuation, which is given by the educators these days, is packing of realities. Rather than creating great proficient students, educators are delivering great repetition students. Also, the main thing which he finds out while contrasting old and current school system is accentuation on character working of students. In old time, the accentuation of the schooling was on character-building and in present day time accentuation is on acquiring an occupation. Schooling, in present day times, has become totally proficient.

Another contention, which surfaces in the novel, is struggle between old strategies for instructing and present day techniques for educating. Teaching in the olden days depended on students' learning limit and assuming that the student showed his hesitance to learning; teachers changed their strategies for teaching, falling back on stories and tales, as students learned more things through stories, anecdote and tales than formal schooling. Yet, in modern times, teaching depends on simple culmination of prospectus. It is centered on the schedule rather than the capacity and necessities of students. In present day, on the off chance that students neglects to learn, he, rather than being instructed with an alternate technique, is removed from the class, being labeled as a simpleton, a naughty individual in the class. Thus, the contention among old and current strategies for educating, assumes an exceptionally critical part in the novel.

Vasu's one more outer clash is found as far as his contention with his partner Venkatesan over the need of moral training for students. Venkatesan trusts that eventually, students need to realize a wide range of tricks to get by in the relentless cutthroat world. Howsoever, moral and ethical education has been bestowed to students; finally, they need to learn savvy and intelligence to adapt to the issues of practical life effectively. So rather than moral training, they ought to be shown

stunts and ploys. Venkatesan accepts that it is of no utilization to instruct profound quality to a kid, when at last he needs to confront the world, which is loaded with fakes and misdirection. In any case, Vasu accepts that regardless of whether a youngster needs deceives and strategies to make due in his general surroundings, still he ought to be prepared as a man of high ethics and morals. As high standards, certainly, pay in the long making students solid from inside.

Vasu's dad likewise felt a contention among history and contemporaneity for his entire life. His dad had been an Ayurvedic healer who served his patients as well as taken part in the opportunity battle of the country. In any case, after India accomplished its opportunity, his commitment to his nation was forgotten by his own comrades. Vasu's dad understood that individuals in free India, at his time, turned out to be more narcissistic and materialistic. They just spotlight on their own necessities. The beliefs which he appreciated during his own life time were broken in contemporary India where individuals didn't have high standards as his dad had for his general public.

Mani's senior sibling, Gopu, likewise experiences a contention among ideal and reality. In a perfect world, he regards his teachers massively and thinks about educating as a calling of extraordinary regard and commitment yet when he is denied admission to a school on account of his neediness, his confidence in educating and educators breaks. He trusts that to get well-rounded schooling one should be rich and princely so one can purchase degrees and authentications effectively without any effort.

References :

1. Bahuguna, Divyaranjan. "The Self-Discovery of a Teacher in the Novel The GhostsOf Vasu Master." The Criterion: An International Journal in English, Vol.III Issue I, March 2012. 1-4. Web.<http://www.theriterion.com/V3/n1/Divyarajan.pdf>
2. Hariharan, Githa. *The Ghosts of Vasu Master*. Penguin Books. 1994.
3. Jain, Madhu. "Well Written but a Surfeit of Issues" *India Today*, January 31, 1995.Web.<http://indiatoday.intoday.in/story/book-review-githa-hariharan-the-ghosts-of- vasu-master/1/290079.html>
4. Kamble, J. P. "*The Ghosts of Vasu Master*: An experimental Novel." *Golden Research Thought*, vol. 1. Issue . II/August 11 p.p. 1-4. Web. <http://aygrt .isrj.org/uploadeddata/ 623. Pdf>
5. Pandey, R. S. *Some Issues in Education*.Anubhav Publishing House. 2008. Prakabhakar, Sarita. *Fiction and Society*. Rawat Publications, 2011.

❒❒❒

1. Assistant Professor of English, Part time PhD Research Scholar, JkkNataraja College of Arts & Science, Komarapalayam
2. Associate Professor & Head, Department of English, JkkNataraja College of Arts & Science, Komarapalayam

A Study on Developing Writing Skills through Vocabulary Activities

–R. Ramya Sri
–Dr. V. Radhakrishnan

Writing skill is an important skill for engineering students at tertiary level. It is because of the fact that engineering graduates are supposed to work with e-mails, manuals, reports and proposals. In any language, words are the fundamental aspect for language enhancement and it is also called as building blocks of the language. Enhancing writing skills of the tertiary level learners is the prime focus of this study. Language can be produced through real time contextual situations because it is being utilized often everywhere for its functional purpose rather than structural aspects. This study aims at enhancing the writing skills using contextual words in written communication.Few useful contextual vocabulary related tasks are framed to develop the written proficiency of the learners.

Key Words: Language Production, Contextual Words, Writing Skills, Contextual Teaching and Learning Approach, Tasks

Introduction

Language learning takes place through a consistent cognitive process. In the modern era language learning happens along with the guidance of the teachers. To acquire language naturally learner engagement in the classroom can be made to happen through activities. This study attempts to study on the role of contextual words in developing the writing skills of the L2 learners at the tertiary level. Writing is an intellectual, creative, and methodological process because that includes investment of time and practice to achieve clarity and effectiveness. (Ramírez Balderas, 180). Ability to write clear and concise have a wide range of benefits in language development because engineering graduates should be proficient enough both in academic and functional perspectives to meet the requirements of the company. Widdowson explained that writing is a visual medium to includes the graph logical and grammatical

Contextual Teaching and Learning is defined in several ways by the experts. Learning in proper settings develop the students to use the acquired knowledge and skills in accurate circumstances. (Berns and Erickson, 2). Contextualization has become a vital phenomenon in language learning and teaching. It has overruled the perception of learning the language in isolation by the notion of using the language in the tangible time conditions and circumstances.

system of the language (62). Skills should be mastered through continuous rigorous practice in context rather than structural aspects. In language production, learning through contextual approach make the learning environment more engaged. Enhancing the usage of right choice of words in writing is the prime motif of this study.

Literature Review

Contextual Teaching and Learning is defined in several ways by the experts. Learning in proper settings develop the students to use the acquired knowledge and skills in accurate circumstances. (Berns and Erickson, 2).Contextualization has become a vital phenomenon in language learning and teaching. It has overruled the perception of learning the language in isolation by the notion of using the language in the tangible time conditions and circumstances. The significance of context in language acquisition has promoted learning to the next level because of the learner engagement in the classroom with real time contextual tasks that benefit learners to understand the language better. Johnson stated that Contextual Teaching and Learning (CTL) Approach simplifies the students to link the topic with real life background (3). SusiloriniTiningsih, quotedTrianto that the Contextual Teaching and Learning attentions on seven main components like constructivism, inquiry, questioning, learning community, modeling, reflection, and authentic assessment (20).

Contextualized Vocabulary Acquisition is a method that has recently introduced in language learning and that made vocabulary acquisition as prerequisite in language learning. It is opposite to explicit method, where learners are made to memorize the words in isolation but this entirely context based. Failing to retain words and using it in appropriate context are the notable problems of the L2 learners. Habit of newspaper and book reading would help the learners to learn new words but it looks they could not reminisce the words. In such states contextual learning plays a crucial part to develop writing skills that is exposed in Tribble's(1996, p. 67) opinion as, writing with the help of milieu can enhancethe analytical ability of the students in producing a passage.

Vocabulary learning happens incidentally when the words are given in a specified and well-defined context. This kind of exposure provides ample opportunity to the learners understand the syntactic and semantic usage of the words in appropriate context. In addition to this, learners also get adequate practice and can learn, memorize and use the words in context, where actually the language is being used. So that learners can retain words in their long-term memory to use them frequently. The concept of Contextualized Vocabulary Acquisition is defined as the 'active, deliberate acquisition of word meanings from text by reasoning from contextual clues, prior knowledge, language knowledge, and hypotheses developed from prior encounters with the word, but without external sources of help such as dictionaries or people' (Rapaport, 1)

Teaching Framework

Task: 1 Words through Context

Objectives

- to learn contextual meaning of a word
- acquiring proficiency by using the words in sentences

Procedure

Initially, a text is given to the students to identify nouns, verbs, and adjectives words from the context. Subsequently, the leaners are expected to find the equivalent words for the identified words and later to write a short passage using the learnt words.

Task:2 Contextual Cloze Test

Objectives

- to be familiar with the choice of words
- to comprehend the contextual purpose of words in sentences
- to understand the logical connection of words in sentences

Procedure

A passage with some highlighted words is given to the students to make them familiar with the words. Learners are asked to pick up those highlighted words, understand the meaning and make sentences for the context on their own.

Task: 3 Questions in Context

1. Which restaurant do you prefer for lunch and why?
2. Why do you use this smart phone?
3. Which college do you prefer for higher studies and why?
4. Which shop do you like for dress purchase and why?
5. Do you prefer to buy things online or off line?

Sample answer:

My favourite restaurant is A2B where I usually have my delicious and sumptuous lunch. Moreover, the quality of the food is good in comparison with other restaurants.

Objectives

- To learn language through real time preferences
- to make use of suitable words in context

Procedure

Questions in context is a task given to the students to apply contextual words. Students are expected to write two lines responses for every question by applying real time experience. This brings in the contextual experience and to useappropriate words in exact places which leads to cognition and retention.

Task: 4 Paragraph Development with Hints

Devan - clever thief - robs the rich - gives all to the sick and the needy - other thieves jealous - plan to get rid of him - challenge Devan to steal the King's pyjamas - Devan accepts challenge - finds king sleeping - opens a bottle of red ants on the bed - King badly bitten - cries for help - servants rush in pretends to look for ants - Devan removes King's pyjamas – escapes - other thieves dumbfounded - accept Devan their leader

Objectives

- to understand contextual usage of words
- to learn word accuracy
- to use linking words

Procedure

Hints development based on a story is given to the students to expand the story by linking the contents and make a paragraph. There the students are expected to use linking words to understand the coherence and cohesion of a passage. In addition, it leads to comprehend contextual meaning of a text because learners can apply their previous experience to connect the story.

Methodology

Contextual learning-based tasks were framed in this study to insist the importance of contextual approach in language enhancement. Experience, real time situations and proper context for getting right cognition are the prime factors of this work. Contextual tasks like words through context, contextual cloze test, Questions in Context and Paragraph Development with Hints.

Steps to enhance Writing in Contextual Approach

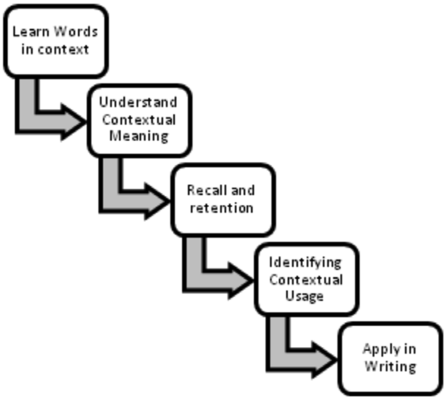

Contextual relational process in language production is shown in the above chart. Based on the tasks discussed in the teaching framework the learners should learn words in context. The second process talks about the understanding the words and its contextual meaning. Subsequently, the following step takes the learner to previous experiecnce by recalling and retention. After that, students should understand the contextual usages of sentence styles and finally apply it in writing.

The discussed teaching framework activities are very much applicable to the method that is selected for this study. For instacne, contextual tasks like words through context, contextual cloze test, questions in context and paragraph development with hintsare the activities with special focus on applying words in enhancing the writing skills. Initially the first two tasks are integrated with reading activity to acquire writing skill. Question in contextsfacilitates the learners to apply their previous experience while answering in the real time context. The last activityparagraph development with hints develops

the ability of the learners to understand contextual meaning and logical cohesion of the sentences while making the paragraph.

Results and Discussion

Contextual learning method provides plenty of opportunities for the learners to learn in suitable context that simplify their learning experience and which made the learning more learner-centric and benefit the students in terms of cognition. This method supports the learners to keep the words in their retention for their entire life time because the words are applied in the right context after learning. Learned words are used in sentences that develops the skill to select appropriate choice of words in context and word accuracy. It also promotes the learning environment more learner-centric and be a motivating factor for the learners to acquire expertise in writing skills. It makes the learner to have a word stock with the assistance of the tasks. In addition, the mentioned tasks in this study led the learners towards vocabulary development, comprehending meaning in context and writing a passage in real time context by applying the words. Using real time context in terms of tasks enhances the written proficiency of the learners like acquiring cohesion, coherence, contextual meaning, link ideas with transition words and using content words in apt places.

Conclusion

This study highlights the importanceof Contextual Teaching and Learning Approach in developing the skill of writing among the second language learners at tertiary level. The main objective of this methodology contextualization is used in all the tasks that are framed. The tasks are aimed at developing the vocabulary of the students and there by using it in the appropriate context.

Reference :

1. Berns, Robert G., and Patricia M. Erickson. *Contextual teaching and learning: Preparing students for the new economy*. Vol. 5. Columbus, OH: National Dissemination Center for Career and Technical Education, 2001.
2. Johnson, B. E. (2002). Contextual teaching and learning: why it is and why it is here to stay. California: Sage Publications Ltd.
3. Ramírez Balderas, Irais, and Patricia MaríaGuillénCuamatzi. "Self and peer correction to improve college students' writing skills." *Profile Issues in TeachersProfessional Development* 20.2 (2018): 179-194.
4. Rapaport, William J. "What is the "context" for contextual vocabulary acquisition?." *Proceedings of the 4th Joint International Conference on Cognitive Science/7th Australasian Society for Cognitive Science Conference*. Vol. 2. (2003): 1-6.
5. Tiningsih, Susilorini, and SherlindaOcta. "Writing Skills Enhancement Using The Contextual Teaching And Learning (CTL) Approach In Jayapura." *International Journal of Business, Economics and Law* 5.2 (2014).
6. Tribble, C. (1996). Writing. New York: Oxford University Press. Widdowson, H. G. (2001). Teaching a language as communication. (12th ed.). Oxford: Oxford University Press.

❐❐❐

1. Research Scholar (Part-Time), K S Rangasamy College of Arts and Science, (Autonomous), Tiruchengode.
2. Associate Professor & Head, K S Rangasamy College of Arts and Science (Autonomous), Tiruchengode.

Research Article

Liminal and Portal-Quest: Neil Gaiman a Hybrid Fantasy Writer

–S. Govarthini
–Dr. K. Prabha

The portal-quest fantasy usually involves direct confrontation with the fantastic, whereas liminal fantasy conceals the threshold. It keeps implying that the lines between fantasy and reality are frequently arbitrary or insignificant. In portal fantasy, to cross the portal, one must confront the illusion, but the confrontation usually reduces rather than intensifies the fantastic. This is according to Mendelsohn, but limiting factors here, on the other hand, evoke the humorous and surreal overtones when the story refuses the threshold.

Neil Gaiman is known for writing fantasy novels. On a deeper investigation, it turns out that he not only writes a particular form of fantasy, but he combines ideas from the traditional with the postmodern. Some of his works come under liminal fantasy, and others in the Portal-Quest, which basically mimics Tolkien's style of fantasy. Neil Gaiman's ironic stories illustrate the all-encompassing influence of all post-modern parody. The hypertextuality in popular genres demonstrates the contemporary urge to rewrite fantasy fairy tales from a feminist perspective. Definitely, his text of liminal fallacy stretches and renews this genre. This certainly provides a new fuzzy set for readers of fantasy.

This paper looked at how some of his works fit into the category of liminal fantasy and others fit into the Portal-Quest.Nevertheless, Neil Gaiman's ironic stories illustrate the all-encompassing influence of all post-modern parody. The hypertextuality in popular genres demonstrates the contemporary urge to rewrite fantasy fairy tales from a feminist perspective. Definitely, his text of liminal fallacy stretches and renews this genre. This certainly provides a new fuzzy set for readers of fantasy.

Keywords: Neil Gaiman, Fantasy, Portal-Quest.

Fantasy has many definitions, and one of them is by Brian Attebery. He defines fantasy as "a fuzzy set... defined not by boundaries but by a centre and whose boundaries shade imperceptibly" (12). Such definitions are particular to fantasy, but the hub of the genre is Tolkien's *Lord of the Rings*. Tolkien's book is considered by many as the first modern fantasy and the best example of what fantasy literature should be. Tolkien's work became the

prime sample because of its enormous popularity. The book has changed how fantasy is interpreted.

Tolkien has argued in his famous *fairy stories* about the definition of fantasy, but still there are many challenges by critics. He is arguably one of the prime fantasy writers, and he is the centre of the fantasy canon, but this could be easily threatened by authors like Terry Pratchett and Neil Gaiman. The postmodern world is quite interested in works that parody the usual classical representation of fantasy. In recent years, readers not only enjoy regular fantasy, i.e., portal-quest, but also fantasies that are called "the liminal fantasy." In his book *Rhetorics of Fantasy*, Mendelsohn describes liminal fantasy as a sub-genre that is "in defiance of the conventional understanding of the fantastic as straight-faced... the ironic mode" (xxiv).

According to portal quest fantasies, the protagonist will always leave behind a simple, boring life to experience "direct contact with the fantastic" (xx). The great classics like C.S Lewis's *The Lion, the Witch, and the Wardrobe* and also J.R.R. Tolkien's *Lord of the Rings* belong to the category of novels like portal-quest. The language of the portal-quest is always elaborate and descriptive. The portal-quest needs to describe and explain all the driving forces behind the narrator, and language is of primary importance. As far as the perspective is concerned, the position of the reader and the companion audience is very important for these kinds of novels. The narrative is always tied to the protagonist, and it is dependent upon the protagonist for explanation and decoding.

In other words, this type of narrative often remains one-sided. The reader goes along with the characters, and he hears and sees whatever the characters see and hear. It is like a guided tour of the landscape. Mendelsohn's arguments can be taken with a pinch of salt. Tolkien's words are more of a descriptive inventory of the landscape in the realm of fairies. But instead of rewriting and playing with the boundaries of reality and the fantastic, Tolkien and authors like him focus on the roles of independence, invention, and creation. They place a greater emphasis on the world of fairies.They deem it important to keep it intact and stay apart from reality.

For writers like Tolkien, when the magic is mixed with reality, the spell is broken. Tolkien's fantasy novels are all about the escape from everyday reality. emphasise on the suspension of fantasy from reality, but this is not the case with Mendlesohn's idea of fantasy. The fantastic story excludes doubts about the fantastic nature of the text. Tolkien's principles are diametrically opposed to those of liminal fantasies; authors such as Neil Gaiman do not fall under the purview of quest-related fantasy, but they do fall under the purview of liminal fantasies.AsMendlesohn explains, "creating a moment of doubt, sometimes in the protagonist, but also in the reader" (*Rhetorics 182*).

Gaiman often uses dreams and parodies and also compares storytelling to magician's solutions with mirrors. He emphasises the balancing and twining of the mundane and the miraculous. He seems to follow the tradition of Edgar Allan Poe and he invokes TzvetanTodorov's definition of the fantastic as "a hesitation common to reader and character, who must decide whether or not what they perceive derives from reality as it exists in the common opinion" (*The Fantastic 41*).

The portal-quest fantasy usually involves direct confrontation with the fantastic, whereas liminal fantasy conceals the threshold.It keeps implying that the lines between fantasy and reality are frequently arbitrary or insignificant.In portal fantasy, to cross the portal, one must confront the illusion, but the confrontation usually reduces rather than intensifies the fantastic. This is according to Mendelsohn, but limiting factors here, on the other hand, evoke the humorous and surreal overtones when the story refuses the threshold. It has a much greater potential to generate fear or confusion. Thus, Mendelsohn approves of liminal fantasy rather than portal-quest.

Gaiman has also written a work called "*How to Talk to Girls at Parties.*" For example, there is a protagonist named Enn. He is fifteen years old and he considers earthly girls just as alien as girls from outer space. His friend Vic asked him to talk to girls at the party, but Enn ignores all the peculiarities of the party girls, who seem to talk about interstellar journeys, cloning, nations metamorphosed into a poem, and so on. This story is unquestionably a prime example of liminal fantasy.The narrator keeps misinterpreting his conversation with a girl who is in fact extraterrestrial, but he thinks that they are Americans.

Mendelsohn draws on the liminal fantasy study done by Wayne C. Booth, who seems to argue that recognising stable irony in parodies helps in understanding the implied authors and implied readers. The theory of Booth is useful in understanding the irony in liminal fantasy and in Gaiman's texts. Booth's theory outlines parodies and intertextuality. Parodies can outline and reject the perspective of the readers of conventional fiction. Irony is emphasised as the significance of intertextuality. Critics often do this in the sense of "reading between the lines" and also because they are concerned with what the author might mean. They are in a similar process that is very familiar to the reading of stable irony.

Intertextuality, without doubt, is crucial to understanding and interpreting Gaiman's oeuvre. There are many textual allusions in Gaiman's fiction, and this has been emphasised by so many critics. For example, Bethany Alexander, for example, argues that "Neil Gaiman borrows rituals, deities, tricksters, and fairy tales from under every stone, roof, or teacup" (139). This is true if one clearly

analyses all the texts. Other critics have pointed out that postmodern texts not only quote but also modify and play with their source texts: “Ironic inversion is a characteristic of all parody... This ironic playing with multiple conventions, this extended repetition with critical difference, is what I mean by “modern parody” (6). Darrell Schweitzer certainly makes a strong claim and argues almost in the same manner. He notes, “a writer can’t merely stand on the shoulders of giants. He has to do something interesting while he’s up there. A little tap-dance, maybe. Gaiman does at least that “(116).

The critics have pointed out that Gaiman is a British author who currently resides in the US. Thus, the opening scene definitely depicts an uneasy space that can be constructed as a latency of horror. Mendelson says that an interesting fantasy features a protected space, **one** that cannot be ruptured, and a sense that such a rupture is eminent. In the story, the narrator meets a stranger who turns out to be a drug whale, who is the Angel of revenge. He brings on the intrusion foreshadowed by the setting of strange Los Angeles. This character tells a story that takes place in heaven before the human universe has been created. Even in Sandman, Neil employs such stories.Because of his strong desire to hear the story, the protagonist does not intervene or express his surprise at the silence, instead accepting the angel’s point of view.

The narrator is accepted on the basis of a willing suspension of disbelief. This evokes once again the conventions of Mendhlesohn’s portal quest fantasy. He mentions that it is the unquestionable purity of the tale that holds together the shape of the portal quest fantasy. In order to sustain it, the authority and reliability of the narrator must be asserted. These kinds of murder mysteries always defy the portal quest fantasy’s rules.They increasingly resemble the frame story and the embedded story. This is the reason there is a big difference between portal quests and murder mystery stories. The fantastic and the real become inseparable, spiralling together to create an unusual double-layered tale. Murders and interrelated investigations take place on both levels. Both the murders and the narrators are sexless. This is important as far as liminal fantasy is concerned.

Besides the influence of Lovecraft’s fiction, Neil has also written versatile myths and traditional fantasies; he’s also inspired by them. Add games fiction, which also includes fairy tale themes.There are several ways to interpret several of his texts. The significance of many of the fairy tales in Gaiman’s writing may be shown by where he embeds an early version of Little *Red Riding Hood* in the Sandman. In this version, which is based on an earlier version recorded by the Brothers Grimm, the Wolf not only kills the grandmother but also pours her blood into a bottle and slices her flesh onto a plate.The wolf then offers the blood

and the flesh to the girl, who at that time naively accepts and eats the remnants of the grandmother. This is particularly drastic when it comes to liminal fiction. The story ends without the consolation of a happy ending. This was extremely important to Tolkien's idea of fantasy.

The story does not resurrect the hero or the hunter. The story in the comic book also indicates that there are earlier versions that are even worse. In this case, he might be referring to the version in which the smart girl escapes from the wolf by asking for permission to defecate. But the most important point about this fairy tale rewriting is that Neal writes with an unusual perspective. Unlike his liminal fantasies of naive and strangulation, These stories often just reverse the traditional viewpoint, and they replace the seemingly reliable narrators with overly unreliable ones. This is also part of the liminal writing style of Gaiman. These types of reversed writing conform to Linda Hutcheon's postmodern parody: "a form of imitation, but imitation characterised by ironic inversion" (6).

In the Anansi stories that replaced the Tiger stories, there are the cunning human characters who dominate the human imagination instead of the hunter or the beast. The lifestyle of humanity changes from prehistoric hunting to civilization. "The world is as it is." Because of how it is told and who owns the story (Wolfe 15).

All over the world, all of the people aren't just thinking about hunting and being hunted anymore. Now they are starting to think their way out of problems—sometimes thinking their way into worse problems. They still need to keep their bellies full, but now they are trying to figure out how to do it without working-and that's the point where people start using their heads. Because now people are telling Anansi stories, and they're starting to think about how to get kissed and how to get something for nothing by being smarter and funnier. That's when they start to make the world. Anansi 230

Anansi himself vindicates his domination. This may call into question the objectivity of justification. If the narrator is also a hero, there is definitely a slanted point of view which will emerge and that will be exploited. As Dowd points out, "Gaiman makes it explicitly clear that we should not trust storytellers. It isn't a matter of storytellers being unsavoury people, although some of the ones in Gaiman's stories surely are. The real reason we shouldn't trust storytellers is that they are untrustworthy by nature (110). From this, it is clear that Gaiman in his writing uses liminal fantasy and not quest fantasy.

There is a tangible presence of post-modern parody in Gaiman's text, but this desire to mark and rewrite fairy tales has always been historical. Right after the genre convictions, characters, motifs, and when they become established in

the collective mind of the audience, The first wave of storytellers in France appeared in the late 17th century, and was quickly followed by a group of writers in the early 18th century who used textual references to a literary genre that had already established itself.These authors simply deployed parody and enjoyed playing with the motives and expectations of their audience. In other words, it seems like an innovation and mocking fairy tale rewriting is nearly as old as fairy tales themselves. Some generations of tradition are almost instantly followed by those who parody the tradition. It is unavoidable, and so parody serves as a protective, creative approach to tradition.

In recent years, fairy tales have been interpreted with a focus on repetition instead of originality. Neil Gaiman's ironic stories illustrate the all-encompassing influence of all post-modern parody. The hypertextuality in popular genres demonstrates the contemporary urge to rewrite fantasy fairy tales from a feminist perspective. Definitely, his text of liminal fallacy stretches and renews this genre. This certainly provides a new fuzzy set for readers of fantasy. When he rewrites fantasy tales and fairy tales or inverts traditional narrative perspectives, there are fragments and other sources that he combines using various styles. Gaiman can be read as a postmodernist, an innovator, and a contemporary literature author, but he can also be read as a traditionalist because he adheres to an established conviction.

References:

Alexander, Bethany. "No Need to Choose: A Magnificent Anarchy of Belief." Darrell Schweitzer, ed. The Neil Gaiman Reader

Attebery, Brian. "Fantasy as Mode, Genre, Formula."Strategies of Fantasy. Bloomington: Indiana UP, 1992. 1-1

Booth, Wayne C. ARJoetoric of Irony. Chicago: U of Chicago P, 1974

Dowd, Chris. "An Autopsy of Storytelling: Metafiction and Neil Gaiman." The Neil Gaiman Reader.Ed. Darrell Schweitzer. Rockville: Wildside, 2007. 103-20.

Hutcheon, Linda. A Theory of Parody: The Teachings of Twentieth-Century Art Forms. New York: Methuen, 1985.

Mendlesohn, Farah. Rhetorics of Fantasy. Middletown: Wesleyan UP,2008.

Schweitzer, Darrell. "Tapdancing on the Shoulders of Giants: Neil Gaiman's Stardust and its Antecedents." Darrell Schweitzer, ed. The Neil Gaiman Read

Todorov, Tzvetan. Introduction to Poetics.Trans. Richard Howard.Minneapolis: U of Minnesota P, 1981

Wolfe, Gary K. "Locus Looks at Books: Gary K. Wolfe." Locus 55.5 (2005): 15-16. 55-56.

❒❒❒

1. Research Scholar, Department of English, Kongu Arts and Science College (Autonomous), Erode, India. Email : govarthinisivasamy@gmail.com

2. Assistant Professor, Department of English Kongu Arts and Science College (Autonomous), Erode, India. Email : prabhaenglish85@gmail.com

Relentless Suffering of Women in Shashi Deshpande's *A Matter of Time*

–R. Janani
–R. Padmavathi

Kalyani's real misfortune starts after the loss of Madhav for which she is considered responsible. Even though the son is mentally retarded, he has worth more noteworthy than Sumi and Premi because he is a son, the inheritor of the property. Shripati forced Kalyani to return to her parent's home with their two daughters. He gets back simply after Manorama, her mother-in-law, urges him on her death bed to bring Kalyani back. He accepts the request of Manorama, yet not a word is shared between them. His arrival brings no difference to her life or her existence as they live in the same house as two separate people.

This paper aims to trace the social mindsets of women in India; though they are trapped in a patriarchal society they lose not only their independent existence but also their freedom. The institution of marriage in India is quite complex to understand, the women are to be ready for a marriage, no matter whether the men are healthy or not. Through the portrayal of Kalyani and Sumi, Deshpande has shown that the institution of marriage is designed to reduce the woman to the other man and deprive her of her freedom to live her own authentic life.

Key Words: Trapped, existence, complex, deprive, authentic

In a culture dominated by men, women's status and position are uncertain. Due to a lack of education and social awareness, women's conditions, especially in society, are more helpless. Their primary goal is to have a successful marriage. From childhood, they are taught that their husband is the sheltering tree, the symbol of kumkum and the protector of the mangalsutra. As a novelist of deep understanding, Deshpande observes the issues of Indian women and reflects them in her work. Her novel *A Matter of Time* portrays the image of women who relentlessly suffer and negligence of their husbands and remains silent forever.

Sumi is the protagonist whose quality is the ability to endure tough conditions, remaining silent for a long time without questioning anybody, Gopal, the husband of Sumi, keeps up cheerful relations with his wife and three daughters Aru, Charu and Semma since he lives with them, yet he abandons them without warning. Here Deshpande fails to provide any convincing

reason for Gopal's desertion and the readers remain confused as to why he would leave his family behind with nothing.

Since Gopal is an educated and responsible family man, leaving his wife and three children for no reason raises serious questions about his character. The author is keenly aware of the fact that husbands, in the man-centric Indian society, are responsible for taking care of their families. When a husband has three children, he has no excuse to leave them alone at such a young age. A husband in a family is not a man, he is the guardian of the family and his wife stands as the face of the family in society. It is immoral for a husband to even try to live a saintly life at the expense of the suffering of his wife and children. No matter what, Gopal's act cannot be accepted. What he did to his family as a man is not justified.

Sumi's daughters feel humiliated as well as harmed because their father is not with them and their mother is silent. They feel every movement at the door as if Gopal is back, yet Sumi, unlike her daughters, is not worried about his passing. She believes that he is still alive somewhere. The million-dollar question is why, for what reason, her husband has left them. Sumi has no answer of that 'why' then again; actually, she isn't responsible for her husband's departure. Sumi is a woman who has the responsibility to live for her children and the endurance to work for them. After Gopal left, Sumi without any complaints about her fate accepts the responsibility of the family and take care of them as much as she could. At the point when she is asked by Devaki why she doesn't weep for the event that happened to her, Sumi is unable to express what she feels over the situation. She says to Devaki: "What do I say, Devi? That my husband has left me and I don't know why and maybe he doesn't really know, either? And that I'm angry and humiliated and confused...?" (107)

In the view of Deshpande, the Indian women are relentlessly prepared their minds, without any expectation, to live with their husbands even at the cost of their self-respect. The husbands of such women are sufficiently fortunate to be glad for their wives while the latter are forced to depend upon their husbands. In most families, the women are taught to give love, comfort and bear the family hurdles as if she is the root of the family even though their husbands deprive their duties, besides she could not expect anything in return for her sacrifice to the family. In Indian society, women are portrayed as a symbol of sacrifice which constrains all her wishes and expectations. On the top of it, if there is any family quarrel, the wife should come forward to pacify even if they did not commit any mistakes. Manju's mother-in-law speaks like a typical Indian woman. She suggests Sumi for her goodness to come back to her husband by offering a statement of apology. Since Gopal is a good person in nature contrast to depriving his duties as a husband and father, he may forgive her. Such mindset of the Indian women keeps them in never-ending subjugation of their husbands.

Sumi recalls the tense relationship of her parents' married life which is the centre of the novel. Sumi's mother Kalyani's situation is no chance less impactful than that of her. Deshpande portrays Kalyani as a keen young lady with a promising future, who had been permitted to seek her studies. But the conditions drove her to be married to Shripati because Kalyani's mother Manorama was unable to bring forth a male heir to their property. She was against Kalyani's wedding to a new family with the idea that the property would then have gone to them. It is under such impenetrable conditions that she gets Kalyani married to her sibling Shripati just to keep the property inside the family. Three children are born of this marriage- Sumi, Premi and Madhav.

Kalyani's real misfortune starts after the loss of Madhav for which she is considered responsible. Even though the son is mentally retarded, he has worth more noteworthy than Sumi and Premi because he is a son, the inheritor of the property. Shripati forced Kalyani to return to her parent's home with their two daughters. He gets back simply after Manorama, her mother-in-law, urges him on her death bed to bring Kalyani back. He accepts the request of Manorama, yet not a word is shared between them. His arrival brings no difference to her life or her existence as they live in the same house as two separate people. Sumi reflects: "But for many others this may well be sound arrangement where husband and wife are living together under the same roof even if there is only silence between them." (167)

AruSumi's daughter is always confused and irritated to see her grandmother silent, the silence later turns into her strength. She utilizes her 'silence' as a weapon, a method of resistance that doesn't allow anybody to have come to a judgement about her. Premi, Sumi's sister, a successful professional, a mother of Nikhil, a seven-year-old son, is a wife of an effective and prosperous lawyer, Anil. Premi, who comes from a family where its members don't converse with each other freely, is surprised to see her marital family free and cheerful. Her marital family is much the same as a family in a film. She feels: "At first it had been like watching a movie-it was pleasing, interesting, pretty, but it could not possibly be true."(18) It is hard for Premi to accept that such kind of a family, a family-like Anil's, exists. Contrasted with her mother and her sister, she is glad in her marital life. Premi accepts that the woman needs a husband and her life is disjointed without him. Her unconstrained reaction to Aru, the response that Nikhil is the result of their marriage, features her satisfaction and fervour at the birth of Nikhil, a son. Hers, one might say, is a cheerful family far away from stresses and issues.

However, the story described by Premi, the story of one of her patients, the pregnant wife of an AIDS patient, who, aware of his disease and critical condition, married the girl with the goal that he would have somebody to care for him, brings of new elements of dishonest and savagery in the man-woman

relationship. The institution of marriage in India is quite complex to understand, the women are to be ready for a marriage, no matter whether the men are healthy or not. Their fundamental duty is to serve and take care of their husband, though he is rude or diseased, like a servant without wages, the bitter truth is, marriage is considered as joy and harmony, and it brings prosperity in the life of two.

Kalyani's mother, Manorama, a daughter of a helpless man from a village, a wife of Vithalrao, has never been cheerful in her marriage life, not because of her husband, however, under her unfulfilled want to have a male child. Kalyani acclaims the magnificence of her mother. She proudly says: "You should have seen my mother's saris. She never wore anything but silks. Such silks! And her diamonds –you could see them flashing a long distance away. My father used to say you didn't need a lantern at night if she was with you."(117) Aru express her incredulity both in Kalyani and Goda for whom Manorama is a wonderful lady. Manorama has always needed a son yet there is Kalyani, the root cause of her mistake and disappointment.

There has been a sister-like bond and connection among Kalyani and Goda, a bond that stands even the pressure of Kalyani's mother, Manorama. During Goda's weekly visits to the Big House, her conjugal existence with Sathyanarayan is at the central point of her discussion with Kalyani. The discussion between Goda and Kalyani follows an ordinary example starting with her grievances about her husband. Her husband is a simple tempered man, a decent provider and an adoring and lively companion always prepared to satisfy his wife. He is devoted to his wife even following forty years of their marriage. Contrasted with Kalyani and her marriage life, Goda's life is cheerful and agreeable.

Devaki, who was a thin, abnormal young lady in spectacles, wearing a short and straight dress, aware of her unpleasing picture, blooms into a stylish young lady after her marriage. Aware of her constraints and inadequacies, she has purposely moulded herself and effectively conquers the awkward corners of herself and her personality. After her marriage with Vasudev Murthy, a fruitful architect from an eminent family, she develops confidence and effectively fits and modifies herself to a sort of life her husband needs. It is with his assistance and backing that she turns into a free and successful businesswoman.

Like Devaki, Ramesh's wife, Chithra, as well, substantiates herself as a devoted wife and a caring mother of twins, Jai and Deep. Sumi discovers Ramesh and Chitra as genuine partners. Defeat by regret, she converses with Ramesh about Chitra, about her commitment to Jai and Deep, about how she has changed herself from being an ambitious athlete to a devoted wife and mother, how magnificently she is forming the twins, accomplishing such a great deal for them, going jogging in the morning, tennis training in the evening and a lot more such things for her children. Hers is a complete, happy and ideal family living with each other and

living for each other. Devaki and Vasudev Murthy, Ramesh and Chitra prove that achievement of marital life relies upon both, a couple living in co-ordination with each other, understanding one another and cooperating.

ShashiDeshpande's novel, *A Matter of Time*, expresses the distress, torment, questions and dreads of her characters- male and female the same. In this novel, her plot is identified with three women speaking to three generations of a similar family. All these three women are subjected to exploitation by their husbands. Every one of them needs to go through mental misery and pain. Manorama is exploited by Vithalrao because she has no male child. Kalyani stays isolated from her husband to lose her intellectually impeded child in disarray at a railway station. Gopal completely forgets Sumi and his daughters and moves away. In this manner clearly, all these three women need to confront the misfortune of the life for which they are not mindful. The most astounding thing is that none of them dares to stand for their privileges and status. They all endure bad form making no voice: the novel mirrors the reality that the Indian women having a place with a male overwhelmed society dependent on the customary moorings have no chance to get out other than suffering affront, mortification and negligence dispensed to them by none yet by their husbands. It demonstrates that Deshpande's works mirror the gross sexual separation and women's exploitation pervasive in the Indian culture. Her practical methodology and sensible perspective identified with women's exploitation and sufferings infiltrate into India's social structure where women are treated differently.

Through the portrayal of Kalyani and Sumi, Deshpande has shown that the institution of marriage is designed to reduce the woman to the other man and deprive her of her freedom to live her own authentic life. This leads to the denial of reciprocal relationships and harmony between the two sexes. But Deshpande does not limit her vision to the portrayal of woman's oppression in marriage, rather she broadens her vision by suggesting the possible way-out and the power a woman can exercise within marriage. In Indian culture, where responsibilities overshadow desire, marriage is considered to be-all and end-all of existence.

Works Cited :

Deshpande, Shashi. *A Matter of Time*. New Delhi: Penguin, 1996.Print.

Menon, Ritu. Afterword. *A Matter of Time*. New York: CUNY, 1999.Print.

Sisodiya, Singh, Suraj. *The Novels of ShashiDeshpande Woman and Society*. New Delhi: Prestige Books International, 2014.Print.

Sawant, S. Tukaram. *The Female World in ShashiDeshpande's Novels*. New Delhi: Atlantic, 2017.Print.

❒❒❒

1. PhD Research Scholar, Department of English, Government Arts and Science College, Komarapalayam, Email : januram7676@gmail.com
2. Assistant Professor, Department of English, Government Arts and Science College, Komarapalayam, Email : vpssr11@gmail.com

Tracing the Phylogeny of New-fangledwomen in Manju Kapurs Select Novels

–Ms. K. Niranjana
–Dr. T. Gangadharan

The novel is a bildungs-roman capturing a naïve Virmati growing into a mature educated,self-accultured woman. There is a radical growth in the nation from aimperialist country to an emerging and independent country. Young Virmati is duty bound to her younger siblings in colonized India, and emerges as an independent woman as India emerges. She too emerges as an assertive young woman. Indian society is a beautiful myriad of various aspects of human life.

This paper aims to present the evolution of women in the post imperialist India, as ManjuKapur begins her Novel with a new independent woman in a new independent India. The cause and effect of the changes in urbanization of place people and culture and its influence on women is analyzed. Women were naïve uneducated and were easily exploited. Education opened up new frontiers in various arenas and instigated them to prove their talents and skills. Women moved on from being dependent to independent. This attitude has been gregariously opposed by culturally old order men and women as well. The phylogenic women wriggle out finding their own spaces which is dealt here in this paper.

Key words: Women's liberation, Women's Education, individualism finding new spaces asserting individuality.

Manju Kapur is one of the versatile contemporary elegant writers of our country. The writer began writing novels in her late forties. Her exposure to young people especially to women, as she was a former professor of English in Miranda collage, Delhi, stamps the imprints of that age. The details are real, not imaginary. Her true success lies in her meticulous details of structuring her protagonist. She is unbiased as far as her portrayal of protagonist is concerned. Like a breeze the story takes its own course. The course of movement is according to the wind similarly her protagonist takes their own course as their whims and fancies intensify. The character of Virmati, Nina, Nisha, Asta, Sagun and even Ishita takes determent steps slowly but surely toward the decided desire.

The tectonic culture shifts from colonized India to the post-colonized India is best captured by ManjuKapur through her stringof five novels written from 1998 till date. Her debutnovel, Difficult Daughters, which was shortlisted for the Commonwealth writers Prize deals with a biography of Virmati, before and after Independence of India. ManjuKapur has lucidly captured the life of Virmati from which we see the post-imperialist impacts which are involved within the novel.

The novel is a bildungsroman capturing a naïve Virmati growing into a mature educated,self-accultured woman. There is a radical growth in the nation from aimperialist country to an emerging and independent country. Young Virmati is duty bound to her younger siblings in colonized India, and emerges as an independent woman as India emerges. She too emerges as an assertive young woman. Indian society is a beautiful myriad of various aspects of human life .There are so many juxtaposing issuances going side by side like tradition and modernity, and conservative as well as the liberal , localization and globalization , Joint family and individual nuclear families , opportunities that provides aspiration , and denied opportunities that provide desperation . Men ,women and children in India have to wade through these tough waters . Ancient India is known for its rich arts, architectural and cultural values. Modern India is presented as a country that is not fully liberated from old values but partially stuck to its past.

ManjuKapur's protagonists stand out because they do not follow old order as dictated by their families Almost all women in her novels are educated and come from conservative families. The men are too caring and are in turn well cared by these women. Yet ManjuKapur finds space for eruption of old order to new. The reason for emergence from the comfort zone to a new independent self-wrought life is discussed here in this paper.

We see the protagonist taking strutting steps, not a bold and firm step. This is one of the important post-colonial issues learning to be independent after being under the supreme commanding and an authoritative power of the British. The colonized country has the problem of handling their freedom. Most of the British colonies are either completely or partially dependent upon the developed nations. The colonized lost their originality. The influence of the imperials was so strong that even after independence socially and politically the colonized imitated the colonizer, striving for perfection.

The old values were ripping apart. Socially, we see India as a country with joint family system. Virmati's grandfather LalaDiwan Chand is a generous old man who provided space forhis sister, two sons, daughter-in-laws and ten

grandchildren. They were more than fifteen people in the same house. Very slowly a family ripped apart. The two sons were given separate houses. We see the drift in not only the houses but also values. Harish, a married neighbor took a liking for Virmati while she was focusing on her studies and just emerging as an independent woman trying to voice out her hopes to the family. Harish who was educated was symbol of hope to her. But Harish's mean intentions broke the female value system that just emerged in Virmati leaving her helpless and defiant before her family. She lost her loving family. She meekly surrendered to her offender and tried to look victorious after devastating his former family. The anguish with which she lived in the opening lines of the novel as said by her daughter Ida, "the one thing I had wanted was not to be like my mother".Virmati has become a symbol of emergence, emergence of free will thought and action.

ManjuKapur's next novel *Immigrant* goes on to the next issue of educated modern Indians in a foreign land. The natural ability to adopt to a new place is so placidly dealt. The urge to fly beyond countries and create a new home is seen as escapism. This results in diasporic sentiments of loneliness, loss of identity, searching for roots, and striving for survival. We also see the best is procured by the developed nations and the secondary to developing issues. Nina who crosses her marriageable age is chosen by Ananda to hide his dysfunctional condition. The major issues of immigrants are food and culture shock. It is seen as a major issue affecting immigrant. Food, cloth and socializing, though seems adoptable takes quite a long time to settle in a new land. Even the names are changed.

The psychological turmoil faced by diasporas is one major post-colonial issue. The trauma lies in shirking the culture with which they have grown so stringently to a more liberal and entirely different culture. Adaptations to different climatic conditions also play an important role. ManjuKapur's characters emerge successfully breathing an air of confidence and freedom which would never be thought of in their homeland. Breakdown of Indian values is presented. When in Rome be a Roman. As a saying goes, we see Ananda and Nina breaking down the Indian family system. The small nuclear family of two is broken and they are gripped strongly by loneliness and desperation. A strong sense of loss and anguish pushes them further and further until they find a ray of hope. Characters like Ananda tend to lose their Indianness in total and are carried away by the new world's culture.

On reading the novels, one can see the characters evolve from naive, innocent personality to a stronger and assertive character. Individualism here means assertive

of the general will if an individualin a collective, culturally strong society in which the individual is present. Jean Jacques Roseau says ‘general will in the society contract’. All the protagonists emerge in a novel style to assert themselves. There is a birth of assertion from naivety. The warmth of kind and trending society gives birth to new a spirited individual who searches for suitable space to take tools. How they assert themselves in a culturally strong society and produces a space is well analyzed in her novel. In ‘difficult daughters’ we see Virmati in a British controlled India, as India gets liberated from British, we see the Virmati liberated from ignorance intelligent, innocent to assertion from configuration to freedom.

In home we see Nisha emerging from sweet sticky bond of familiar ties to successful entrepreneur. She emerges from a dependent weak personality to a financial independent woman.A beautiful young woman with the dreams of settling with a young boy Paswan is ripped off from her world forced to adjust with a mechanically existing family. She tries to take root from there as the family couldn’t find a ‘mangalic’ as directed by astrologer. She lost her vivacity by then. When the family built a newhome, she managed to get a small space in the basement and began her own boutique. she took roots and was successful. But the long-awaited day of marriage arrived. Though she was married to a person next street the established boutique was taken away by her sister-in-law’s. We see Nisha was physically abused by Vikram when she was an infant, this shocks the readers of gross negligence in a joint family of ten and more. ManjuKapur has thread bared the unsafe familial condition in a so thought safe haven. Kapur’s new emblematic novel is an intricate story of joint family life. LalaBanwariLal –the patriarch of the family believes in the old ways. AnupamaChowdhury elaborates:

“Home reveals a disturbing home truth that joint families can both destroy and preserve our maturity, individuality and mental progress.” (Chowdhury, 33).

With the advent of technology, the family in “Home” witnesses a series of new beginnings; to havenewly viewed generation, education and above all to find peace. She is affected by an allergic condition after her family prevented her from marrying Paswan. In spite of the psychological and physical difficulties she succeeded as an entrepreneur in which she took pride and found her self-esteem.

In *Immigrant* we see Nina, a professor who had to face the brunt of shame for not having married at the right age. The taboo around an unmarried youngindependent to a woman who found a new place for herself in America. When she got married, she evolved as a self-respecting woman who took courage to shirk her marital bond and to find her own roots in the new soil.

ManjuKapur'sCustody, is a mild parody saves the story from humorless legal drama. Yet the lightness does not take away from the heartbreak. The two children, Arjun and Roohi, become the pawns through which their parents unleash their fury on each other. Kapur gives us effective glimmers of insight into their young, confused minds. The battle lines are drawn early and both parties fight to its end. The cycle of rage between Shagun and Raman not only fuels itself but is complicated by the new stepmothers and fathers acquired through second marriages. Kapur is adept at dealing with this complicated family reconfiguration, and the insecurity it brings to the step-parents as well as children. In Ishita's plight, we see the second wife's desperate struggle to replace the biological mother, while Ashok presents a more ambiguous kind of care. We see Shagun who shrugs a culturally strong familial bond to realize her dream, she activated a space for herself fore going the welfare of her kids. We see space created for each one for their survival after divorce and remarriage. A widely adapted novel became the talk of the town. A woman completely shrugs her well settled family in favor of an extramarital affair.

A woman from culturally strong family with a steady domestic life drift away with an affluent boss of her husband. We are presented with a more acceptable Ishita childless and thrown away from her family for being childless. ManjuKapur twists the story by placing Ishita in Sahagun's place for which she is thankfulThe term 'hybridity' has been most recently associated with the work of Homi K. Bhabha, whose analysis of colonizer/colonized relations stresses their interdependence and the mutual construction of their subjectivities Bhabha contends that all cultural statements and systems are constructed in a space that he calls the 'Third Space of enunciation' Cultural identity always emerges in this contradictory and ambivalent space, which for Bhabha makes the claim to a hierarchical 'purity 'of cultures untenable. For him, the recognition of this ambivalent space of cultural identity may help us to overcome the exoticism of cultural diversity in favor of the recognition of an empowering hybridity within which cultural difference may operate.

REFERANCE :

1. Postcolonial Studies and beyond edited by Anialoomba, Suvir Kaul Matti Bunzl Antoinette Burton Jed Esty
2. https://www.independent.co.uk/arts-entertainment/books/reviews/custody-by-manju-kapur-2238058.html DATED 3.11.20

❒❒❒

1. M.A. M.Phil., Assistant Professor of English, Government Arts College (A), Salem–7
2. M.A, M.Phil., Ph.D, Associate Professor of English, Government Arts College (A), Salem–7

The Unrevealed Meloncholia and the Survival of Life in Sharon M. Draper's *Out of My Mind*

–N.K. Saranya
–Dr. B. Visalakshi

Melody enters fifth grade. She gets an electric chair. It's like Melody got freedom. She is very happy and thankful to her father. She can move without the help of others. It helps her to attend the regular classes. Melody is smart enough to know the names of all the regular kids in fifth grade. Mrs. Lovelace, music teacher is very kind and protects the special children. Her music takes them from dreadful mood to excitement.

Children's Literature is acceptable quality exchange books for children from birth to youth. It covers subjects of significance and interests to children and youngsters, through illustration, verse, fiction and nonfiction. African American Children's Literature commends the strength of the black family as a social establishment and vehicle for endurance. One of the prominent writers of African American Children's Literature is Sharon M. Draper. She is a professional educator as well as a skillful writer. Sharon M. Draper's *Out of My Mind* is a story about an eleven year girl, Melody. She cannot walk or talk. She is affected by cerebral palsy. It is entrancing, with voice and voicelessness of Melody. She wavers between intentional and involuntary which disappoints her. Melody has spirit, determination, intelligence, and wit and no one knows it. It makes her to survive from melancholia and frustration.

KeyWords: Children's Literature, African American Children Literature, cerebral palsy, determination, frustration, melancholia and survival.

Stories have the ability to advance enthusiastic and good turn of events. Children's Literature is significant in light of the fact that it gives children occasion to react to writing. It gives children gratefulness about their own social legacy just as those of others. Children's writing is immortal convention. African American Children's Literature demonstrates the veracity of Black individuals' resolved battle for opportunity, balance, and pride. It sustains the spirits of Black youngsters by reflecting back to them, both outwardly and verbally, the excellence and skills that we as grown-ups find in them.

Sharon M. Draper is one of the preeminent writers of African American Children Literature. She has been awarded for excellence in education, empowerment of women, humanitarian award, and life time achievement award for adolescent literature. *Out of my Mind*, a New York Times bestselling novel for very nearly two years. It has received numerous awards.

Melody Brooks is an eleven-year-old girl who was born with cerebral palsy. She says, “I can’t talk. I can’t walk. I can’t feed myself or take myself to the bathroom (03). Her parents have done everything they can to help her live a normal life. It frustrates her lot. As a result, Melody has to fight to get her wishes.

Melody has many millions of words and meanings in her mind. But she says, “I have no idea how I untangled the complicated process of words and thought, but it happened quickly and naturally…But only in my head. I have never spoken a single word. I am almost eleven years old.” (02)

Melody worries people take time to notice her beautiful smile and deep dimples as they are interested in listing out my problems. She is upset when sometimes people never ask her name. Melody has a good memory than her father records in his camcorder. Melody’s parents enjoy her company. Melody notices smiley face in her mother but her eyes is filled with worries. Melody recognizes everything- noises, smells and tastes. She loves music. She even sings in her mind but can’t express it. Even her mother is not able to understand. Everything is saved in her memory. The memory never goes away from her mind like others. She says, “… being able to keep every instant of my life crammed inside my head. But it’s also very frustrating. I can’t share any of it, and none of it ever goes away.”(07). She is depressed when she is unable to express her thoughts with words.

Melody’s father always motivates and encourages her. He says, “well, Melody is well, you know, really special.” (41) He sings to her and keeps her content. She is sharp and quick-witted. She remembers complicated strands of numbers, recall pictures and words in precise way, long passage quotes of poetry, toll-free number from every infomercial, mailing addresses and websites.

Melody agonizes nobody knows that she knows everything she comes across. Melody’s mother also fails to understand this. It makes her insane. It makes her to lose control of herself. Her arms and legs are tighten and lashed out like tree limps in a storm. Sometimes she can’t breathe well. So she screeches, screams and jerks. Melody calls them as “tornado explosions” (15)

Melody suffers lot when she is unable to express herself. One day she sees in TV news that lead coated toys affects many children. They are hospitalized.

Melody's mother buys her lead coated blocks for playing in a store. Melody tries lot to reveal this but couldn't help her. Only thing she could do is scream, point and kick. The act of unrevealing pushes her to a state of melancholia. Her mother worries for her rude behavior and rings up to doctor. Doctor also fails to understand and gives her sedative.

Melody is an extraordinary talented girl. She knows everything that children of her age are supposed to know and even lot more than that. But her problem is all that is stricken inside her mind. No one or even talented doctors is smart enough to see inside of Melody.

Melody agonizes, "I'm always amazed at how adults assume I can't hear. They talk about me as if I'm invisible, figuring I'm too retarded to understand their conversation." (22)

At age five, Melody is even diagnosed as proudly retarded by one of the doctors, Dr. Hugely. He says, "It is my opinion that Melody is severely brain-damaged and profoundly retarded."(22) Though Melody is born with physical defect but she is blessed to have her mother. She protests and says Melody is a bright child that she notices in Melody's eyes. Melody's mother angrily says, "I think you're wrong-I know you are! Melody has more brains hidden in her head than you'll ever have, despite those fancy degrees from fancy schools you've posted all over your walls!" (26) Despite this Melody's mom enrolls her in public school in order to get the education she needs.

Melody's class students are special children with different disabilities. She likes all the kids. She understands all their situations better than anybody. Melody apprehends," It's like I live in a cage with no door and no key. And I have no way to tell someone how to get me out."(38)

Mrs. Violet Valencia (Mrs.V), her neighbor, is a kind but tough woman. She pushes Melody to do the best she can. When Melody was three, Mrs.V was not impressed for Melody to rely on her parents for everything. Because of this, Mrs.V forced her to learn how to crawl and roll on the ground. She even taught melody how to catch her whenever she fell from the wheelchair. She teaches her many words and sentences. These things helped Melody became self-sufficient, but she continues to be reliant on her parents to help feed her and go to the bathroom.

At the age of eight Melody got a little sister, Penny. Penny is born perfectly normal against their parents' fear. Melody feels jealous as Penny grows and matures, since she'll never be able to do that things Penny can do. However, Melody loves her little sister and pleasures she brings to her parents.

Melody enters fifth grade. She gets an electric chair. It's like Melody got freedom. She is very happy and thankful to her father. She can move without the help of others. It helps her to attend the regular classes. Melody is smart enough to know the names of all the regular kids in fifth grade. Mrs. Lovelace, music teacher is very kind and protects the special children. Her music takes them from dreadful mood to excitement. She says, "Music is powerful, my young friends. It can connect us to memories. It can influence our mood and our responses to problems we might face." (96)

The other best companion of melody is Rose. Melody likes to spend time with her. Rose understands her very well. Melody feels happy for petty things. One day when Melody and Rose are talking and laughing in class, "Mrs. Lovelace had to put her finger to her lips to tell us to hush. Never in my life have I had a teacher tell me to be quiet because I was talking to somebody in class! It was the best feeling in the world! I felt like the rest of the kids."(101)

The inclusion program is to make the children participate in all. Melody frustrates when she knows the answers for the teachers' question but unable to answer it. In a parent conference Melody is surprised and exhilarated when Mrs.Shannon brings her in the middle of the inclusion program teachers and says, "She is so great! … This child's got some serious smarts! She's going to be our star in this program."(103) Melody's father is very happy that they have recognized her.

She also gets a communication board that allows her to talk with other people. Melody also gets an aide, Catherine, to help her. Melody gets medi-talker machine. Medi- Talker is a combination of computer, music player, and speech device. It has got HD and high-tech guts. It is designed to rock her world and to connect her to the people around her.

Melody operates it to speak what she thinks. She first operates carefully to tell "Hi,Dad .Hi,Mom. I am so happy… I love you."(138) Melody's mother and father are moved by her words and they shed tears. Melody is relieved from the stress that she can't speak with the help of medi-talker. She is happy that she can express lot to her fellow students. Melody is still distressed. She feels, "Nobody promises to call me after school. Nobody asks me to come to a birthday party or a sleepover."(146)

The survival of Melody is in the love of the people around her. One day Melody worries that she will not be allowed to take part in the competition. Mrs.V consoles her that she will be their secret weapon. She

encourages melody to prepare for the exam. Mrs. V, Catherine and Melody's parents support her and train her for the competition. Melody reads all subjects. Mrs.V takes much care for Melody to get through in the exam. When Melody gives her name for the quiz competition, the children demean her and criticize her. Even her teacher, Mr. Dimming, has no hope on her. But Melody to everyone's surprise passes a test exam of a trivia competition and makes the team.

Melody feels her dreams have come true. Her team is selected for a national competition in Washington D.C. Everyone appreciates her. They are proud of her. Many take photos with her. The reporter interviews the winning team. She asks the children in the team to sit near Melody. Melody is focused than others. The reporter asks her, "How will being on the winning team change your life at school?"(226). Melody thinks it is a good question. Her longing and anxiety is confessed in her words, "Maybe kids will talk to me more" (227).

Melody's mother is happy that her daughter's photo appears in the newspaper. She says, "The whole article seems to be focused on you."(240) But Melody is upset and worries her teammates will not accept this and will be displeased. They will hate her. She thinks her teammates will say nice things about the article but their eyes speak the truth. In the class Mr.Dimming appreciates Melody and asks the other children to give her special round of applause. Melody is disturbed. Catherine enquires her. Melody thinks her teammates don't want her in their team. They are scared and think she is ridiculous. Catherine advises Melody not to bother about them. Melody is unable to outpour her pain. She manipulates,

It's hard to put my feelings into words that will come out right on my talker. I know the other kids are uncomfortable with me on the team. There's no other way to put it. My presence was cute at first, maybe okay for a local competition, but for the big game-on national television-that's different. I'll make them stand out, and not in a good way. (246)

The team practice well. They are ready for the competition. Melody gets ready for Washington D.C. However, on the day the group is to fly to Washington. Melody learns that her flight has been cancelled due to weather, but the rest of the team has made an earlier flight without her. She feels like choking. Darkness covers her. "The entire airport feels like a vacuum to me. No sound. No voices. No air" (260) Melody is angry and helpless. She hates this kind of feeling. Melody's mother kneels before and cries. She hugs her and says, "It'sgonna

be okay, sweetie. You're still the best, the smartest, the most wonderful girl in the world."(260)

Melody's mind is tormented with many questions about her team. She ponders they left her purposely. She wants to stamp. She cannot even get mad like a normal kid. The next day, Melody insists on going to school. It is raining and melody's mother is sick, tired, and frustrated.

Melody realizes that Penny has gotten into the path of the car when they are about to leave. Therefore, Melody kicks, screams, and hits in order to warn her mother. Her mother fails to understand and Penny is hit by the car and injured. Melody blames herself not being able to warn her mother, even though everyone, especially Mrs.V. tells her fault. Melody is guilty. But Mrs. V says, "The fact that you insisted on going to school, even after what happened to you yesterday, shows you are strong person, a better person than anyone else there. I'm proud of you for that."(279) In the end, Melody learns that Penny is going to be fine. Her class also apologizes for their lack of being considerate towards her.

Melody's intelligence is unknown and invisible to the world at the outset. The failure to make others understand her causes her out of her mind. Ultimately she is understood by classmates and others. Melody is blessed to have supportive parents. She survives with the love and protection of her parents and her instigators.

Mom knows when I'm hungry or thirsty, and whether I need a glass of milk or just some water. She can tell if I'm really sick or simply faking it, because sometimes I do pretend I don't feel good just so I can stay home. She can tell what my temperature is just by feeling my forehead. She only uses the thermometer to prove she's right. (85)

To conclude the story voice of the voiceless girl portrays perseverance, bravery and large-mindedness. Melody in spite of her disappointments she fights against her life and consequently she triumphs.

References:

1. M. Draper, Sharon. *Out of My Mind.*New York: Simon Pulse, 1998. Print
2. en. wikipedia. org/wiki/Sharon-Draper
3. en. wikipedia.org/wiki/ children/27s_...

❒❒❒

1. Ph.D in English, ERK Arts and Science College.
2. Asst. Prof. of English, ERK Arts and Science College, Erumiyampatti

The concepts of Destiny and Memory in Deep Trivedi's *I am Krishna*

–Dr. A. J. Manju
–Ms. Roja Sankaranarayan

In this theory, the memory criterion is definitely an important condition. This is a necessary condition for a high degree of personal identity, given some kinds of contingent facts. For example, it happens that memory is a necessary condition for being able to act responsibly and also to generate karman, although if one had some sufficient power of intuition, memory would not be required. It should be noticed that even without continuity of memory, there is some degree of personal identity because even though there is less opportunity to generate karman, karman can easily be dissipated.

Krishna is a popular and revered Hindu deity. Throughout India, his devotion has taken different forms. This presentation will focus on Krishna's incarnation, survival of memory and character, and choice of destiny as examined in Deep Trivedi's book I am Krishna. Deep Trivedi uses heavenly legends to convey practical principles. He is essentially dismantling a holy narrative in order to illustrate how to live a great life. The Buddhist doctrine of incarnation was also mentioned here to emphasise the karmic awareness' need for recollection.

Keywords: Concepts of Destiny, Hindu deity, Memory and Character, Buddhist doctrine

Introduction

Krishna is a beloved and important deity of Hindus. His worship has taken many forms throughout India. For instance, he is called Radha Krishna of Braj in North India, Jagannath in Orissa, Ranchor in Gujarat and also Guruvayor in Kerala. These are just to name a few. Krishna is considered to be the incarnation of Vishnu, who is portrayed as the supreme being and even some sects believe that he is the supreme source being himself. Krishna is spread throughout all the literary traditions of South Asia. Even the great epics of India, the Ramayana and Mahabharata, are linked to him. In the Mahabharata, Rama is the incarnation of Ramayana and Krishna.This paper will focus on the incarnation, survival of memory and character and choice of destiny of Krishna as explored in the book *I am Kris*hna by Deep Trivedi.

Incarnation

The correct term that should be used in terms of Krishna manifesting himself as flesh would be an avatara. It generally means the descent of a deity or

even part of a deity. Even an extraordinary person may also be called a secondary avatara. This doctrine of avatara is more in line with Vaisnavism. This would cover the avatara of Vishnu or some associated with him, like Krishna. The ideas of avatara are found in the Bhagavad Gita. In this religious text, it is clear that the avatara of Krishna is real, as opposed to a mere appearance. It should be pointed out that even though Krishna is considered as a divine being, he evolves along with his avatara in the form of a real body, and not some kind of an illusionary one. Even religious scholars have pointed out the human body is imperfect for the perfect being as the Prakrti is made up of the three gunas and so his form has to be imperfect. In a similar understanding, Krishna is both really divine as well as human. Only in the latter part of the work did Vasinavites develop the idea of a perfect "pure matter" (suddha-sattva) constituting the body or form of the avatara.

Krishnan The supposed narrator in the book, I amKrishna starts by telling the reader that he is on his death bed. At this point, he is an old man utterly disappointed in his life. He was vexed with his failures and humiliations. He observes that, "the fault was mine and mine alone! It was a flaw in my way of being"'(Deep 3). The author has made efforts not to show Krishna as a divine being. He has tried to show Krishna as a man who has achieved divinity through his actions and words. The religious idea of incarnation is not explored by Deep Trivedi; rather, he has voiced out the lessons that could be learnt from Krishna.

Deep Trivedi tries to teach practical lessons from divine stories. He is literally deconstruing a divine story to explain the path to a successful life. On his death bed, he asserts his desire to become a powerful being. When he made this decision, he was filled with a serene, powerful personality. When he resolved, a voice seemed to emerge from inside of him:

"O people! Wait and See! In my next birth, I will be successful in whatever I choose to undertake! All my contemporaries will be awestruck by my intelligence, my knowledge and my inner strength. I will accomplish such remarkable feats that my intellectual prowess will be hailed for aeons to come! For, I have now come to realise the ways of the world; here, a person has to work hard to better his lot and I have already started doing so. Hence, in my next birth, no one can stop me from achieving stupendous success."(Deep 4)

From the above lines, it is clear that the author has tried to make Krishna less divine. He is asserting to accomplish something that will help himself in his next life. A divine being would not necessarily make such a statement. It is in this context that it should be understood that a man who has resolved to achieve anything in his life must first make up his mind to follow it. After making such

a resolve, the soul of Krishna was lingering in the nothingness with his 'subtle mind'. While his soul waited for the earthly avatara, his mind was still able to remember his identity.

Survival of Memory and Character

The author asserts that, in the sense of earthly time, perhaps four or five hundred years would have passed for him. But in the case of nothingness, it seemed like a week, as there is no concept of time in that dimension. The soul is free of time and the mind is at peace without any kind of physical bondages. Perhaps this is not true for all humans. As Krishna is divine, he might be able to keep his memories of his old life and his character intact. The Buddist school of thought, especially, the Theravada Buddist theory of incarnation, suggests a theory of personal identity, which is certainly identified with the karmic process. In this theory, as in any process theory of personality, there are certain defrees of personal identity.

The theory suggests that the feature of the processes is that the distinction between two processes is not a precise one. As two processes become more connected, then they slowly become one process. Thus, if there is no karmic heir but karman is diffused at death, the individual karmic process ends at death, although the larger collective karmic process endures. However, if one had a karmic heir who inherited a large part but not all of one's karman, one would share some degree of personal identity with one's karmic heir.

In this theory, the memory criterion is definitely an important condition. This is a necessary condition for a high degree of personal identity, given some kinds of contingent facts. For example, it happens that memory is a necessary condition for being able to act responsibly and also to generate karman, although if one had some sufficient power of intuition, memory would not be required. It should be noticed that even without continuity of memory, there is some degree of personal identity because even though there is less opportunity to generate karman, karman can easily be dissipated.

This is exactly what is happening to Krishna right now as he ponders nothingness.If Krishna did not have the memory of his previous life, how could he still hold onto the resolution of his previous life. Krishna is becoming aware of his next incarnation. He already sees his mother-to-be, Devaki, and his father-to-be, Vasudeva, as well as his uncle Kansa. He is already aware of this and he becomes quite happy that he will be born in a royal palace. In the previous birth, he did not have much, but he says, "to tell you the truth, the very thought of growing up in a royal palace was making me delirious with joy" (Deep 4). But while he was ruminating, he once again lost consciousness and he narrates that he lay there for many years in nothingness.

Krishna observes that he was continuously trying to become conscious. And by trying sometimes, he once again regains his consciousness. When he once again comes back to consciousness, he notices Narada in the village of Mathura. He asks the villagers about Kansa. And he gets some ill news about himself, and he goes to meet the king furiously. It is ironic that in his existence within nothingness, Krishna is able to know the current incidents. Krishna pleads that, “Narada, please have some patience. After all, he is my uncle-to-be. If you destroy him, how will I take birth in the royal palace? “ It appeared that doom and despair would keep stalking me even in the life to come, and with this depressing thought, despondency pervaded my entire being”(Deep 5). Just like any other human being, he was in desperation. But then when Narada and Kansa confront each other like a prophecy, Narada laughs and says, “Death is upon Kansa!” and he proclaims, “Your death is standing right beside you, hidden in your sister Devaki’s womb! Beware! Devaki’s eight sons will become the cause of your death! He will be your nemesis. He will be all powerful! He will be God!” (Deep 6)

Choose your own destiny.

The utterance of Narada’s prophetic words that he would be God must have come as a surprise to Krishna. He knew his karmic avatara would make him incarnate God. While Krishna was imagining a life of luxury, and other things on hand.The very question of his life was suddenly suspended in ambiguity. His uncle Kansa killed the baby that was born. But at that time, Krishna makes up his mind and he says that he is not his former self(not the person of the previous birth). He is no more the timid person. He makes up his mind and says that he will go to any extent to give himself a royal birth. That was the moment he evoked his earlier resolve. “I will ensure that my next birth becomes a reality at any cost, even if it means confronting fate itself” This is a powerful statement, and it shows that a divine being itself can fulfil its divinity by only struggle.

The resolve of Krishna was tested from time to time when he found that all the babies born to Devaki were killed mercilessly. In the state of nothingness, he was becoming more and more aware. As he was waiting for his time, the suspense of whether he would be born sooner or later, had he made me fully realise the presence of time. And simultaneously, he had come to the realisation that being aware of time was‘heaven ’ and the feeling of passage of time is ‘hell’.

During this time, Krishna points out, time and again, that his mind is evolving. Krishna points out that the mind perennially accompanies the soul life after life, and so the evolution of the mind definitely holds much greater relevance. Krishna observes further that,

You might remember that in my previous life, when I had analysed my entire life at the time of death, I had come to realise that no one is responsible for an individual's failure except his own personality, his own way of being. Perhaps, it was this quality of self-analysis which was rapidly becoming immanent to my nature…But unfortunately, the resolve that I had taken at the time of my death was nowhere to be found. (Deep 7)

This resolve or choice once again comes into the picture when Krishna, after some time, decides to be born no matter what. This shows that even in nothingness, if a person if full of resolve, if they are keen on choosing their destiny, they will accomplish much. Krishna comes to an understanding that the state of mind is important in choosing destiny. He points out that the state of mind is the driving force which makes things happen around us; and indeed, if this is the case, then every event is nothing, but the manifestation of one's own state of mind. Then suddenly, Krishna once again comes to his resolve and he admonishes himself. He says that he is a fool, and it would be better for him if he confronted God. He says, "He [God] might be making plans to push you into the jaws of death, but you must live, and that too, not just an ordinary life but a splendid one" (Deep 9). This is clearly a way of showing that destiny can be chosen.

Conclusion

Krishna's soul in nothingness is in itself a lesson. This paper has certainly pointed out that memory is an indivisible part of incarnation, without which consciousness, the Karmic values will be forgotten. The Buddhist theory of incarnation was also implied here. The other important concept is the choice of one's destiny. Even if God confronts the choice, Krishna is resolved to confront it and make things happen. This concept of incarnation has practical consequences, according to the author. However, the concept of Krishna is widespread, and his utterance is the great Bhagavat Gita. Thus, such a soul would have to endure a lot just in the nothingness before he could even walk the palace corridors.

Reference :

Bryant, Edwin F..Krishna: A Sourcebook, Oxford University Press USA, 2007.

Forrest, Peter. "Reincarnation without Survival of Memory or Character."*Philosophy East and West*, vol. 28, no. 1, University of Hawai'i Press, 1978, pp. 91–97, https://doi.org/10.2307/1397928.

Sheth, Noel. "Hindu Avatâra and Christian Incarnation: A Comparison." *Philosophy East and West*, vol. 52, no. 1, University of Hawai'i Press, 2002, pp. 98–125, http://www.jstor.org/stable/1400135

Trivedi Deep. *I Am Krishna*. Aatman Innovations.

❑❑❑

1. Narayana Guru College of Arts and Science, Coimbatore 641105
2. Narayana Guru College of Arts and Science, Coimbatore 641105

Myth and Climate Change in Amitav Ghosh's *The Gun Island*

–Ms. T. Thenmozhi

One of the most dangerous risks the world will face is climate change. But the importance that is given to climate change is rather feeble. This tendency to exclude climate friction from mainstream writing is more evident in the case of Indian literature, where most stories related to climate change are branded as improbable, but when viewed through the lens of disbelief, an Indian author who's responsible for bringing about this change is none other than AmitavGhosh. Ghosh has not only written books that are driven by facts and data, but he has also weaved a story that tries to tell the real impact of climate change in the Indian subcontinent.

This study tries to demonstrate the concept of interconnection in the current novel *Gun Island*. It's a narrative about travel and migration, with myths and folk stories thrown in for good measure, and it's set against the backdrop of a looming climate disaster. It contains a complex narrative that weaves together humans, animals, the present, the natural, and the supernatural. This astonishing cohabitation of unconnected components appears to extend to cases when myth and magic combine seamlessly with climate change occurrences.

Keywords-Climate, Weather, Cyclone, Myth, Magic.

Introduction

Climate change is real, and humans must adapt to the system as soon as possible. At the global scale, there is an understanding of the magnitude of the challenges. Climate change and its effects can be seen all over the world. Most people will not realise the huge scale of the climate crisis because of the smaller geographical ideas that they hold. Nevertheless, the world is humongous and the changes are subtle, but in retrospect, one can understand that climate change is a real threat.He has been outspoken on many climate-related issues since the publication of his book on the subject.His new book, *The Gun Island,* is about these changes on the land, and how they impact the migration of people as well. The novel shows how the land, the people, and climate change are deeply connected with mythology.

Change of Climate

There has been a long-time altercation of the changes due to the environmental crisis. Effective temperature in the rainfall levels have been dramatically

improving over the years. This brings in a lot of damage to the flora and fauna in general. Climate change is also the primary reason for other destructive weather events such as a frequent and intense hurricanes, floods, downpours and wildfires.

Since the industrial revolution started over 200 years ago, human activities have added very large quantities of greenhouse gases to the earth's atmosphere. These GHG act like a greenhouse to drop the sun's energy and heat, rather than letting it reflect back into space. When the concentration of GHG is too high, too much heat is trapped, and the earth's temperature rises outside the range of natural variability. (Center for climate change in health 2).

The overall temperature of the Earth is rising on a daily basis, which is commonly referred to as global warming.This is a serious issue, and scientists around the world have been urging governments to make efforts to curb this disaster. Nonetheless, governments have been lethargic in taking any considerable action, citing various reasons. AmitavGhosh is very much concerned about the climate crisis, and he has raised concerns that authors must also take part in creating awareness about climate change.

Effects of Global Warming

There are various effects of global warming, and one of the most important factors that could result in such large-scale global warming is that the atmosphere and oceans have warmed, leading to the melting of polar ice. Scientists have warned that if the polar ice melts, various other viruses that are more deadly than COVID will arise. Shifting climatic patterns are visible everywhere. Many ecosystems that belong to diverse endangered species are on the brink of extinction. Even during this terrible pandemic, climate change still seems to remain one of the defining issues of the modern world as its impact is expected to grow in the coming decades.

One of the most dangerous risks the world will face is climate change. But the importance that is given to climate change is rather feeble. This tendency to exclude climate friction from mainstream writing is more evident in the case of Indian literature, where most stories related to climate change are branded as improbable, but when viewed through the lens of disbelief, an Indian author who's responsible for bringing about this change is none other than AmitavGhosh. Ghosh has not only written books that are driven by facts and data, but he has also weaved a story that tries to tell the real impact of climate change in the Indian subcontinent.

AmitavGhosh has been writing some wonderful fiction for many decades, which is a powerful connector of geography and history. But his latest work is set in the backdrop of the climate change.His early works have been trying to portray the various climate related catastrophes. For example, in *The Hungry Tide* is one of those rare novels thatimpact of climate change. He's writing often uses complex narrative strategies, but it presents meticulously researched facts without losing the interest of the common readers. It is a conglomeration of history,

memory, and political struggle. Apart from this it deals with unrequited love and human bonding.

Myth and Folk tales

In his first novel *The Circle of Reason* he follows any Indian protagonists who are suspected of being a terrorist and thus he leaves for North Africa in the Middle East border.Thenovels deal with the British and Burmese Ghosh pioneered his Ibis trilogy with*Seaof Poppies* which is a novel that describes individuals on a ship that is carrying indentured labourers to theopium. This historical series also included *River and Smoke* and *Flood of Fire*. One of the most influential and powerful piece of nonfiction about climate change was when he wrote the *Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable.*Ghosh for his writing was awarded the Padma Shriwhich is one of the most celebrated awards in India for its distinguished contribution to literature.

This paper attempts to show the notion of interconnectedness in the recent novel, *Gun Island*. It is a story of travel and migration, and it is overlaid with myth and folk tales, and it also has a deepening crisis of climate change. It has an intricate plot which connects humans, animals, the present, the natural, and the supernatural. This striking coexistence of unrelated elements seems to extend to instances where myth and magic blend effortlessly with the events related to climate change.

Ghosh tells the story of Dean who is a rare book dealer, and he isinvited to Lusibariby Nilima. He wants to explorer the shrine of the gun merchant. On his visit to this particular shrine unwonted incidence forms into critical conditions. The tale that he heard as a child keeps haunting him throughout his life, and this is the reason he wants to find out more about the tale that he so eagerly listened when he was a child. The tale however is an old Bengali folklore and it is about ChandaSadagar who is a merchant and the goddess Manasa Devi who has control over the snakes and other poisonous creatures is eager to make Chand a devotee. This starts a battle is undertaken by Manasa Devi to turn Chand Sadagar into her devotee, and how he adamantly refusing to do so creates a lot of tension in the tale.

Major Natural Disasters

The version that he hears from his relatives is quite different and they address him as the Gun Merchant. The retelling of the story encourages Dean to visit that ancient temple hidden in the mangroves at the Sundarbans. Only in this journey there unfolds a series of events that beautifully portrays the present reality of climate change and how the disruptive migratory patterns of both humans had impacted the land.

The novel deals with the impact of storms, and one of the most important factors that Ghosh seems to elucidate is the fact of their recent cyclones and how they have been reoccurring from year to year. Almost all the major natural disasters

are in part the result of climate change. Ghosh also explores the different ways that communities and people are also impacted by climate change. One of the drastic changes that have recently occurred in the migratory patterns of different species and also people is shown by Ghosh. Clearly, the people of the Sundarbans are accustomed to living in tune with nature, following traditional occupations like fishing, but the rapidly changing terrain of the Sundarbans and natural calamities like cyclones and inconsistent rains are changing all that. Rivers that ran a different course have come flooding in to destroy the land and the people. The experienced fisherman is finding it quite difficult to navigate the waters. People are being forced to migrate in large numbers as life in the Sundarbans becomes increasingly difficult and unpredictable.

Migration of Different Species

There are people like Rafi who are choosing to leave for entirely different reasons. Rafi is a young fisherman who guards the temple of Manasa Devi, whereas Tipu is a tech genius who has been helped by Piya. But both Rafi and Tipu assist Dean in unravelling the puzzle of the gun merchant. Both of them seem to live in a world where they do not have a sense of belonging. Tipu, who is mainly educated abroad, finds his affluent lifestyle has no connection with the impoverished and superstitious community. Rafi, on the other hand, finds it hard to make the choice of leaving the Sundarbans to experience true freedom. Rafi appears to be foreshadowing many of his grandfather's thoughts, which can be interpreted as a warning of disasters that follow migration and tell me that I didn't need to learn what he knew because the rivers, the forest, and the animals were no longer as they were. He used to say things were changing so much and so fast, that I wouldn't be able to get by here; he told me that one day I would have no choice but to leave (Ghosh 86).

Ghosh seems to maintain the motives of migration, especially those that were induced by migration growth, and the novel has a greater impact on human life. Creatures like spiders, snakes, dolphins, and even ship firms have all been spotted in unexpected habits as the difference in temperatures and humidity changes the course of nature. An incident involving yellow-bellied snakes washing up on the shores of Venice beach is one example of such migrations. "These snakes generally lived in warmer waters to the south, but sightings in Southern California had become increasingly common. Their distribution was changing with the warming of the oceans and they were migrating northwards towards close court" (Ghosh134). Gun Island becomes the Clarion Call for climate-induced migrations as it skilfully portrays the migration of different species due to changing climate and warming waters.

Myth and Magic

Piya the marine biologist who is also the central character in *The Hungry Tide* is Bengali American who teaches in Oregon. *Gun Island* issues and she

explains the dead zones and how the aquatic life is migrating rapidly. There are numerous climate-related discussions taking place on Gun Island.Ghosh still succeeds in maintaining an aura of myth and magic throughout the novel. The characters are well developed, and the feeling of anxiety develops with the main protagonist, and this could be felt by the readers as well. Ghosh uses Dean's journey to Los Angeles to highlight yet another natural calamity, the raging fires of Los Angeles, according to reports. 2018 was California's worst year yet for repeated wildfires everywhere. Dean looks at the vast field of ash and understands how climate change is impacting the world. Dean thinks about the years and recalls the droughts, the famines, the storms and the ill luck that followed the Gun Merchantas he travelled around the globe to escape the wrath of Manasa Devi. This can also be read in a metamorphic way that there is no escape from the consequences of climate change like the GoddessManasa Devi will find people. It is not uncommon for Ghosh to use the myth of the gun merchant as an analogy to draw certain parallels between the little Ice Age and the present scenario where droughts come out, floods, cyclones, and wildfires have become a part of our everyday lives.

Conclusion

Ghosh certainly links the climax of the myth of the gun merchant with the novel's climax as well. By doing so, he shows how myths and legends of our past always hold a place in our present. According to the myth, while he is on the way to the island, there is a miracle and the gun merchant is saved by the creature of the sky and the sea. The creatures were the dolphins and the birds that saved him. Just like in the legend, the creatures of the sky and the sea rose up to protect these migrants and even promoted the Admiral in charge of the warship to give an order for the rescue of the migrants. Gun Island, as opposed to many other tales of climate change, ends on a happy note as the migrants are safely rescued, and Dean and Piya come to understand and decide to take a chance to be together. Ghosh, in maintaining a positive outlook instead of projecting warnings of impending doom and a complex, gives the readers hope for a better tomorrow.

References :

Ghosh, Amitav. (2019). *Gun Island*.India: Penguin Random House.

Maslin, Mark. (2014). *Climate Change: A Very Short Introduction*. 3rded., UP: Oxford UP.

lans. "*AmitavGhosh unveils the 'Magic of the Bonduki' in his latest book 'Gun Island.'*" TheNew Indian Express, 2 Jul. 2019, www.newindianexpress.com/lifestyle/books/2019/jul/02/amitav-ghosh-unveils-the-magic-of-the-bonduki-in-his-latest-book-gun-island-1998333.html

❒❒❒

M.A., M.Phil., (Ph.D.)., Assistant Professor of English, Vivekanandha College For Women, Thiruchengode, Namakkal, Email : thenmozhithangavel0@gmail.com

Artfulness of Lunancyin Elie Wiesel's Select Novels

–Y. Raja
–Dr. T. Gangadharan

In this novel, Raphael Lipkin, the protagonist, is a Holocaust survivor. He visits the mountain clinic and encounters persons who believe that they are biblical characters such as Adam, Cain, the Messiah and even God. He talks to all the characters. The last patient he talks to a patient who believes he is God. As he is talking, he finds that this man is the one who called Raphael at midnight. He asks Him with lot of questions. He even accuses Him for not protecting His people. He asks God brilliant questions like Should God have intervened during the Holocaust? Should God have prevented those childrenfrom being born, later who became Nazis? God asked when should he have intervened? Rafael does not have what to respond to this question.

Eliezer Wiesel was a Romanian born American novelist, Political activist and Holocaust Survivor of Hungarian *Jewish* descent. He was the author of more than 50 books. The best Known book is *Night*, a memoir that describes his experiences during the Holocaust and his imprisonment in several concentration camps. Wiesel was awarded the Nobel Peace Prize in 1986. The Norwegian Nobel committee called him as a "messenger to mankind"

"How can Humans confront the heinous evil that has been unleashed in the world? The responses that Wiesel's characters make are manifestations of varying degree of madness."(Rittner,154)

This paper*Artfulness of Lunancy in Elie Wiesel's Select Novels* tries to display how the madness plays a major role in Wiesel's writings. Being a Holocaust Survivor, he witnessed hell. In his work *Why I Write*he says he writes in order not to go mad or on the contrary to the touch the bottom of madness. appears in most of his works starting from his memoir *Night.*Wiesel says in his memoir that he is attracted towards madman. He further says that madmen have a clearer insight and deeper knowledge about life. He requests the world to listen these madmen because they communicate the real truth, even if their stories seem unbelievable. They are the one who may be informed before the rest and they serve as messengers of mankind.

Keywords: Holocaust, Memory, Suffering, Lunancy, Trauma, PSTD, Witness.

Introduction

Michel Focault in his premise *Madness and Civilization* defines that madness is the mirror image of Sanity. It is a dark looking glass through which

sane people can recognize their own features, if somewhat distorted and reversed. He treats Madness as simple negativity, nothingness, or perhaps mankind's knowledge of void, the silent indifference of the Universe. This philosophical or theological definition is protean and elusive. Yet a clearer definition of madness would either fail to communicate the obvious fact that madness defies rational exposition or be a preconception and lead to circular proofs. Madness as nothingness can be traced only in relation to something existent but necessarily distinct from reason, which madness negates.

Freud says that our minds are structured to protect us from perishing of the truth. And in order to protect us from too much reality, each part of our minds harbours a different form of madness. The most striking form of madness in the normal psyche is the unconscious. He defines neurosis as the low valuation of reality, the neglect of the distinct between reality and phantasy.

Hegel defines Madness as " a state in which the mind is shut up within itself , has sunk into itself, whose peculiarity… consists in its being no longer in immediate contact with actuality but in having positively separated itself from it" (Daniel,196).

Madness plays a major role in Elie Wiesel's writing. Being a Holocaust survivor, he went through hell. He had experienced atrocious incidents in his concentration camp life. He would have got madness, if he had not taken the story telling as his career.

Madness appears in most of his works. He himself says in his memoir that he is attracted towards madmen in real life. His attraction towards madmen started in his early childhood, when he met Moshe the beadle. Elie Wiesel had several experiences which made him to have a opinion that madmen have a clearer insight and a deeper knowledge of things. He further writes that the whole world might have gone mad and eventually he considers that God may also be mad.

One can see different displays of madness in Wiesel's writings .There is for example Moshe, the beadle in *Night* starts with a description of him. The Jews of **Sighet** , birthplace of Elie Wiesel, feel embarassed by the poor people. They are all fond of Moishe, the beadle because he does not get on anyone's nerve. He seems almost invisible. There is something weird about him.

" Physically ,he was as awkward as a clown. His waiflike shyness made people smile. As for me, I liked his wide, dreamy eyes, gazing off into the distance. He spoke little , He sang or rather he chanted and the few snatches I caught here and there spoke of divine suffering of the Shekinah in exile , where, according to Kabbalah, it awaits its redemption linked to that man." (Night,21)

There is the description of the typical madman who does not speak much to others but rather hums to himself. He cannot focus his eyes on people and things around him. He is considered weird by the people. They can smile on him

and no one is afraid of him. Their friendly attitude towards Moishe changed when he miraculously returned after he had been deported with many other foreign Jews. He returned in order to warn the people of Sighet of what would happen to them if they didn't flee. They did not believe him.

"Moishe told me what had happened to him and his companions. The train with the deportees had crossed the Hungarian border and, once in Polish territory,had been taken over by the Gestapo. The Train had stopped. The Jews were ordered to get out……. The Gestapo began theirs without passion or haste , they shot their prisoners ….. Infants were tossed into the airs and used as targets for machine guns….. How had he ,Moishe , the beadle , been able to escape? By a miracle . He was wounded in the leg and left for dead…. (24)

Moishe witnessed something horrible because he changed a lot, his warnings were not taken seriously. People neither believed him nor do they even listen to him anymore:

"Moishe was not the same. The joy in his eyes was gone. He no longer sang. He no longer mentioned either God or Kabbalab. He spoke only what he had seen. But people refused to listen. Some even insinuated that he wanted their pity, that he was imagining things. Others flatly said that he had gone mad. As for Moishe , he wept and pleaded " Jews, listen to me! That's all I ask you. No money. No pity. Just listen to me! (25)

When Jews of Sighet were deported in cattle cars, Wiesel introduces another character named Madame Schachter who was with his ten years old son. Her husband and other sons had been mistakenly deported in the earlier train. She lost her mind , because of the tragedy . She cried often in the dark, " Fire! I see a fire!"(43). The other Jews in cattlewagon looked out through the window. They didn't see anything. They asked the woman to be quiet but she often cried out. Finally some men tied and gagged her up. She somehow freed her bond and she was shoutinglouder than before . "Look at the fire ! Look at the flames ! Flames everywhere….." 44).

When the train reached a station someone who was near a window said it was Aushwitz. No one had ever heard that name. The train halted in the station for sometime. Two men in the wagon was given permission to fetch water in the station. They came back and told the news that this was the final destination. The train began to move again. Jews of Sighet were able to see the barbed wire. They understood that it was the labor camp. Everyone had forgotten Mrs.Schachter. Suddenly there was a terrible scream "Jews! Look at the fire! Look at the flames". This time it was someone not Mrs.Schachter. Now, the Jews of Sighet were able to see the flames rising from a tall chimney into a black sky. MrsSchachter had been now silent, mute, indifferent, absent and she had returned to her corner.

The *Night* shows how a person is able to see things which the others not able to see. The mad person turns to madness inorder to save himself from the reality where as the sane person wants to protect himself from the real truth the mad person talks about. Sane persons are afraid of the fact that Madame Schachter may be right . That is why they treat her as mad. In the case of Moshe, the beadle, Jews of Sighet regard him as mad. Here in both the cases, Jews pitied and isolated them because they tell the real fact about the Jews' fate. Both the characters' prophecy became true at the end. Mad people are able to envision things which are going to happen. Had the Jews of Sighet believed their vision , they would have escaped from the Holocaust.

Elie Wiesel's second novel is *Dawn* .In this novel there is not real madness but a performance by Joab. He is one of the group of guerilla fighters in Palestine. One evening all the theguerilla fighters sit together and they all tell their most interesting survival stories. They all have faced death atleast once despite their young age. Joab also tells his story that he was once reported to the police by a neighbor. He fled to an insane asylum. The Police came and asked the superintendent of the asylum. The Superintendent informed that "He imagines he is dead"(Dawn,172). But the police persisted on seeing him. He was brought to the superintendent's office. Two police officials asked him questionsbut he pretended that he was not hearing anything. The Police officials were not convinced that he was insane. Despite the Superintendent's protest, they took him away . He was submitted to forty eight hours interrogation. Joab played he was dead and he did it successfully. He refused to eat and drink. They slapped his hands and face but he didn't react because dead men feel no pain and so they do not cry. After forty eight hours, he was taken back to the asylum.

Joab's story shows that sometimes madness can serve as a means of protection. It also shows that Joab chooses madness in order to escape the reality.

The Next novel is *Twilight*, which was written thirty years after the Night triology. The title itself suggests that it is not as dark as Night and it is also as bright as Day. So,Twilight means half light. In this novel, Madness is the dominating topic. The novel opens with an epitaph taken from Maimonides: "The world could not exist without madmen". The opening sentence of the novel itself goes like this "I am going mad, Pedro. I feel it. I know it. I have plunged into madness as into the sea. I am about to sink to its depths. Infinity cannot be challenged with impunity, and madness is infinite down to its fragments….. What am I to do, Pedro? To whom shall turn for a little light, a little warmth? Madness is lying in wait me and I am alone (Twilight,1).

In this novel, Raphael Lipkin, the protagonist, is a Holocaust survivor. He visits the mountain clinic and encounters persons who believe that they are biblical

characters such as Adam, Cain, the Messiah and even God. He talks to all the characters. The last patient he talks to a patient who believes he is God. As he is talking, he finds that this man is the one who called Raphael at midnight. He asks Him with lot of questions. He even accuses Him for not protecting His people. He asks God brilliant questions like Should God have intervened during the Holocaust? Should God have prevented those childrenfrom being born, later who became Nazis? God asked when should he have intervened? Rafael does not have what to respond to this question. God who knows everything, He now needs help and caring.

Twilight is a complex story which speaks of bits and pieces characters. These distorted characters are characteristic features of Holocaust memory. Madness, Silence, mute, memory, Trauma are also part and parcel of Holocaust memory. Twilight shows a mad world which represents the cross section of the real world. Everyone is mad somehow and it is hard to believe that who is sane and who is insane.

Conclusion

All the characters discussed in the paper represent the sufferings and pain the author encountered during the concentration camps. The Holocaust memory and trauma made Elie Wiesel to have one or more mad characters in almost his works. After witnessing a heinous crime at great magnitude, whoever be the person, he would have become mad and have existential questions. Writing Novels, Story Telling and living witness to the dead Jews have come handy to Elie Wiesel to overcome the Holocaust trauma.

Works Cited :

Berthold-Bond, Daniel, **Hegel, Nietzsche and Freud on "Madness and the Unconscious". The Journal of speculative philosophy,**Vol.5,no.3,Penn State University Press,1991 pp.193-213 http:// www.Jstor.org/stable/25669999.

Brown, Robert Mcafee, **Elie Wiesel Messenger to all Humanity**.University of Notre Dame Press, Notre Dame, Indiana.1989.Print.

Foucault, Michel, **Madness and Civilisation: History of Insanity in the Age of Reason**. Routledge.2001.Print.

Rittner, Carol, **Elie Wiesel Between Memory and Hope**. New York University Press, New York,1990.Print.

Wiesel, Elie, **The Night Trilogy**, translated by Marion Wiesel.Farar, Straus and Giroux,2008.Print.

Wiesel, Elie, **Twilight**, translated by Marion Wiesel, Penguin Books,London, 2013.Print.

Wiesel, Elie, **Why I Write.**Confronting the Holocaust: The Impact of Elie Wiesel.Ed. Alvin Rosenfeld and Irving Greenberg. Indiana University Press, Bloomington, 1978.Print.

❑❑❑

1. PhdScholar (Part Time) & Assistant Professor of English, Government Arts College (Autonomous), Salem, Tamilnadu

2. Associate Professor of English, Government Arts College (Autonomous), Salem, Tamilnadu

'Mirroring the contradictory Images of Women within the Socio-Cultural Scenario of Ancient Times': A Philosophical Analysis

–Dr. Neena T.S.

The primary disadvantage that the wife faced in the Vedic era was her inability to own or inherit property. A daughter did not have the right to possess, acquire, or dispose of property. This means she had no legal standing during the Rig-Veda period. However, the unmarried daughter who remained in her father's home received a part of his estate.

Abstract

The status and respect bestowed on a woman are usually compared to those bestowed on a man. Women's status can be analysed to measure the merit of a civilization. It reflects the cultural norms of each decade in general. Their social status in a country determines the social climate of the time. From ancient times to the present, women's status and function have changed considerably in India. Women were depicted as equal to males in the Vedic periods, and women as appendages to men in the Post- Vedic period to the end of Smriti. This articlefocuses on these two periods of ancient India and examines the inconsistent portraits of women in a socio-cultural context.

Key Words : Status of women, Civilisation, Vedic and Post Vedic, Manu Smriti

The position of women in every civilization reflects the social and cultural standards of the time. The status of women can be used to assess a civilization. The term status often refers to an individual's place in a group as a result of his or her gender, age, and familial ties, as well as the rights and duties that come with it. The status of a woman refers to her place in a network of social obligations, rewards, rights, and responsibilities.

From prehistoric to current times, Indian women's status and function have gone through multiple stages of advancement and decline, i.e., they have changed several times throughout history. Again, Indian history is littered with contradictory and opposing views on women's reputations. Changes in their position are part of the transformation process of a traditional society, so they can be seen within the socio-cultural context of the society.

The evolution of Indian women's status during ancient times may be traced through two important periods in the history of ancient India, i.e., the Vedic period and the Post-Vedic period, to the end of Smriti. Women have been described as equals to men in one phase and as appendages to men in the other.

Vedic period

The Vedic scriptures describe the status of women during that period as wonderful because they were independent and equal. Women played an important role throughout the Vedic period. Experts in classical literature generally agree that the status of a woman in Vedic times was equal to that of a man. In the Rig Vedic period, it was not an unlucky event to give birth to a daughter; rather, a father who had many daughters was praised.

In Vedic times, girls were educated in the same way as boys were. They used to pass through a period of Brahmacharya while wearing the sacred thread. Following the Upavita ceremony, the Vedic women continued to study the Vedas, recite Vedic mantras, conduct Vedic rites, take Vedic vows, and do whatever was required for the correct performance of the ceremony, just as a son would. Those who chose this path were called 'brahmavadinis'. Many of them rose to prominence as poetesses, with their works being included in Vedic literature. Some of the upper-class ladies were well-educated and actively engaged in philosophical and intellectual debates.

Along with literary careers, women pursued careers in education, medicine, business, the military, and administration.In the selection of their life partners, educated girls had a natural advantage. Marriage was a religious requirement for both men and women, and neither could get salvation without the company of their legally married spouse. No religious rite can be conducted perfectly by a man without the participation of his wife. She had the social position of both a loving wife and a loving mother. They did not veil their faces. The Vedic sages described her as an ornament of the home. Another significant aspect was the permission for widows to remarry.

The primary disadvantage that the wife faced in the Vedic era was her inability to own or inherit property. A daughter did not have the right to possess, acquire, or dispose of property. This means she had no legal standing during the Rig-Veda period. However, the unmarried daughter who remained in her father's home received a part of his estate. Only in the absence of brothers might married girls inherit their father's property.

Post-Vedic Period to the end of Manu Smriti

Following the Vedic period, there were noticeable changes in women's status due to a variety of factors. The patriarchal attitudes governing women's sexuality and mobility were entrenched with the growth of private property and the

establishment of class society.The most notable of which was the denial of education. Girls were not permitted to attend other people's homes or educational institutions, and were instead taught only by close relatives such as their father, brother, or uncle. Only the daughters of well-to-do families received religious and other schooling. As a result, there appeared to be a trend towards restricting women's religious rights and privileges in general. The urge to have a son in order to have a stable future has become very strong.

For the first time in history, Manu gave women a specific role in society. For many generations, Manu's code has had the most disastrous effect on Indian women. His regulations reveal a conflict between his conceptions of women as spiritual beings, on the one hand, and biological beings who embody wild or untamed nature, on the other.

Manu assigned the tendencies of lying, wasting time, adorning love, ager, meanness, treachery, and evil manners to women. He then goes on to give a slew of regulations that govern the behaviour of a woman. He reduces her to a position of utter subjugation. He advocates self-negation as the pinnacle of a wife's ideal. As a result, women took control of their sexuality and realised that they had lost power and respect as a result of the codes they were handed.He believes that a wife must treat her husband with such devotion that he is treated as if he were God, despite the fact that he is clearly devoid of virtue. When she is a child, a female must be safeguarded by her father, then by her husband when she marries, and finally by her son after her husband dies. Never should a woman be self-sufficient. Because a wife's principal responsibilities are to serve and worship her husband, she can aspire to enter heaven by doing so.

When the significance of ancestor worship grew, and only sons were considered eligible to make oblations, daughters were unable to fulfil the vital religious obligation. Women were not allowed to participate in sacrifice rituals. Women had no liberty, even when it came to performing significant domestic rites. They can take part in ceremonies but not perform them on their own. They finally lost touch with the Vedas and were relegated to domestic responsibilities. The study of the Vedas became a man's monopoly. Women stopped attending public gatherings as well. They were only honoured as mothers after losing their status as partners with men in public activities. In general, the wife's social situation could be described as unsatisfactory.

The marriage of a widow was forbidden. Widows were commanded to live a life of extreme asceticism. The practise of disfiguring the Hindu widow appears to have arisen from an ascetic removing her hair off the head. Manu thought that after her husband died, she was obligated to live a life of devout widowhood, continuously meditating on her late spouse's merits.

However, there are several claims in Manu Smriti that are conflicting. On the one hand, he respected, honoured, and recognised the woman's importance, implying that Gods reside where women are respected. But on the other hand, he presented women as the embodiment of evil.

Nevertheless, as a conservative Hindu lawmaker, Manu's primary purpose was to defend the interests of family and society at the expense of individual liberty. A restricted social framework was built to safeguard land, women, and rituals, and all three are interconnected. As a result, unless female liberty is carefully organised, all three will be impossible to maintain. Manu was claiming that by properly guarding the woman, one could maintain the purity of one's family, lineage, and progeny. This may explain why women are considered male appendages these days.

References :

1. Altekar, A. S. (2014). The Position of Women in Hindu Civilization., Motilal Banarsidas Publishers, p 5
2. Bhaskaranada, Swami, The Essentials of Hinduism, Sri Ramakrishna Math, Chennai,1998, P 53
3. Buhler, George, The Laws of Manu, 1886, Oxford, The Clarendon Press
4. Chakravarti Uma, Gendering caste through a feminist lense, Sage, NewDelhi, 2018, pp67-68
5. Chaudhari , Jathindra Bimal, The position of women in Vedic ritual, Calcutta Oriental Press, 1956, P 34-35
6. Griffiths, Morwenna, and Whitford, Margaret,(ed),. (1998), Feminist Perspectives in Philosophy, Bloomington, Indiana University Press.
7. Harshananda, Swami, (2007), An Introduction to Hindu Culture, Advaita Ashram, Kolkata, p 31
8. Jayapalan, N, (2000), Women Studies, New Delhi, Atlantic Publishing and Distributors
9. Mohanty Manoranjan, (ed) (2006), class, caste, gender, New Delhi ,Saga Publications India Pvt. Ltd.
10. Nelasco, Shobana Dr., (2010), Status of Women in India, New Delhi, Deep and Dee Publications Pvt Ltd.
11. Rao, Anupama, (ed) (2018), Gender, Caste, and Imagination of Equality Delhi, Women Unlimited,
12. Roy,Kumkum (ed),(1999),Women in Early Indian societies , NewDelhi, Manohar Publishers & Distributers.
13. Sarkar, Tanika, (2001), Hindu Wife, Hindu Nation, Delhi, Permanent Black.
14. Upadhyaya, B.S., (1974).Women in Rigveda at 44-6, S Chand, New Delhi;
15. Yalman, Nur, (1962), On the Purity of Women in the Castes of Ceylon and Malabar', Journal of the Royal Anthropological Institute of Great Briton and Ireland 93, pp 25-28

❒❒❒

Associate Professor, Post-Graduate and Research Department of Philosophy, Maharaja's College (Government Autonomous), Ernakulam-692021, Mahatma Gandhi University, Kerala, India

Live in Relationship and Domestic Violence in India

–Ms. Deepmala Srivastava
–Dr. Annu Bahl Mehra

In this definition the first condition to be satisfied for a shared family is that the aggrieved lives with the respondent at any stage and for any time limit in a domestic relationship and the second is the house in which the aggrieved is residing with the respondent at any time. is related in any way to the aggrieved or the defendant and thirdly the victim is residing in a family which may belong to a joint family of which the respondent is a member, even if the respondent or the aggrieved person has any right, title or interest in the shared family.

In Hindu mythology marriage is a sacrament, very sacred affair that stretches beyond one life-time. In India, the concept of a live-in relationship is still taboo and not widely accepted. But recently, things are changing fast and couples have started living together in a single household even without being married. Living relationship in India has been legalised, it is essential to know the obligations and responsibilities that come along with it. Domestic violence is also a big issue where two persons live in living relationship

The law does not define how we should live, it is ethics and social norms which explain the essence of living in welfare model. The objective of the paper is to analsye Legal status of living relationship and Application of Domestic Violence Act in living relationship. Also, an attempt to study that does Domestic Violence Act protects victims against minor or female in living relationship.

Keywords: Living relationship, Domestic violence, marriage, Respondent, Household, minor.

Marriage is a legally and socially accepted form of relationship between couples in our society. Social structure and bonding being stronger in our country, the institution of marriage holds even greater importance. According to Hindu beliefs, human life is divided into four ashrams and for a householder's ashram, Panigrahan rites i.e. marriage is absolutely necessary.

There is no definition which adequately covers all types of human marriage. It has given a number of definitions and explanations. *Edward Westermarck* in his "History of Human Marriage" defines marriage as "the more or less durable connection between male and female lasting beyond the mere act of propagation till after the birth of offspring."[1]

According to *Anderson and Parker*, "Marriage is the sanctioning by a society of a durable bond between one or more males and one or more females established to permit sexual intercourse for the implied purpose of the parenthood."[2]. In simple way we can say marriage is culturally and legally a union between people known as spouses and wedlock creates rights and obligations between each other.

Living together without marriage is considered to be ignoble and taboo from the social point of view but recently, due to western influences and technological development things are changing rapidly and the cases of couples living together in the same house without getting married have increased. The term "live-in relationship" refers to a cohabitation that lasts for a long time. It is not a new concept in India; many tribes and groups have examples of living relationships. Members of the Garasia tribe in the northwestern state of Rajasthan have been cohabiting in living relationships outside wedlock since time immemorial. Here women choose the partner of their choice and live in live with them and marry them only when they have a child. If they have any kind of dissatisfaction then they can break the relationship without any pressure. Women hold a higher status in this tribe and there is never any incident of rape or assault on women in this tribe. Social scientists who have studied the custom believe that the tribal culture of cohabitation is based on a system known as "the right to choose and right to reject".[3]

We can define Living relationship as where two people decide to live together on a long-term or permanent basis in an emotionally and or sexually intimate relationship. The term is most frequently applied to couples who are not married.[4] Living relationship in India has been legalised, it is essential to know the obligations and responsibilities that come along with it.[5] When two persons are living together like couple, there are many legal issues arises. Domestic violence is also a big issue where two persons live in living relationship. The victims of domestic violence are overwhelmingly women, and women tend to experience more severe forms of violence.[6] This paper also throws light on the subject that to what extend is the living relationship treated at the legal level in the Indian society and as well as what are the remedies provided for living relationship in domestic Violence Act

Day by day living status and mind set of people are changing, due to globalization and technological up gradation, in recent scenario societies are accepting the living relationship and also arises other issues of this type of relationship. Domestic violence is also a big issue increasing day by day, during Covid pandemic it increased in a big ratio. Domestic violence is violence any form of maltreatment or other abuse in a domestic setting, such as in marriage or cohabitation. There are three laws for Domestic violence in India which deals with punishment and Penalty for domestic violence in India. First is section 498A of the *Indian Penal Code*, 1860, second *The Dowry Prohibition Act*, 1961 and the third one is *The Protection of Women from Domestic Violence Act*, 2005 (DV Act).

There are many acts which are immoral but not a crime also vice versa. It has said in a judgment, that two consenting adults engaging in sex is not an offence in law, even though it may be perceived as immoral.[7]

The term 'living relationship' fails a precise definition, it refers to the domestic cohabitation between two unmarried individuals.[8] The marriage and living relationship are two different terms. According to section 5 of *Hindu Marriage Act*, 1955, for a legal marriage there must be single, minimum age requirement, capable of giving a valid consent, not in prohibited degree and not sapind. While in case of living relationship there is no such type of legal conditions and requirement. Living relationship is completely based on mutual consent of two people in which there is neither any social pressure nor legal binding.

The Supreme Court held that a live-in relationship comes within the ambit of the right to life enshrined under Article 21 of the Constitution of India.[9]In various cases Honorable courts are presumed living relationship is just like marriage. But this does not mean that all living relationships are marriage.

In *Payal Sharma v. Nari Niketan*,[10] the Supreme Court said that a couple could live together upon their willingness even without getting married. Demarcating the difference between law and morality, the Court expressed that even if living relationships are regarded as immoral by society but it is neither illegal nor an offence.

In case of living relationship there is no requirement of age limitation like marriage but both parties must be major. Below the age of 21 in case of male while in case of below the 18 years in female legally not be married[11], but if they are major, can live together in living relationship. In an important decision, the Kerala High Court has acknowledged the right of adults to choose their partners and live together, even outside marriage. The writ petition was filed by the father of a 19 years old girl to prevent her from living with an 18 years old boy. The Court stated that partners in a living relationship could not be separated through the writ of habeas corpus. "Honorable Courts are bound to respect the unfettered right of adults to have living relationships even though society does not accept such relationships." The Court dismissed the writ petition and declared that the daughter is free to live.[12]

A living relationship between married and unmarried couples is impermissible.[13]Adultery has been abolished by Honorable Supreme Court.[14]In case where a married person staying in living relationship with unmarried person, aggrieved person can file a case against his wife or her husband. Aggrieved person in marriage has a right to file a judicial separation[15], divorce[16] or restitution of conjugal rights[17], while in case of living relationship mutual separation is sufficient.

In *Kusum v. the State of UP*, a married woman who had 'eloped with another man' continued to live with him for five years. However, the Allahabad High Court disallowed the woman to seek protection under the garb of a living relationship since her marriage was not legally dissolved. Therefore, her new relationship could not be said to fall within the expression relationship 'in the nature of marriage.[18]

In a case, the Kerala High Court held that service benefits by a female partner in a living relationship could not have a better claim than a legally married wife. The Court stated that there is evidence of long cohabitation of men with two women together, one according to a ceremonial marriage and the other not so. The presumption of the law of valid marriage will lean in favour of a married one.[19]

To get recognized as "in the nature of marriage," certain conditions were set by the Supreme Court in the case of "*D. Velusamy v. D. Patchaimal.*"[20]The couple must hold themselves out to society as being akin to spouses and of legal age to marry. They must be otherwise qualified to enter into a legal marriage, including being unmarried and also voluntarily cohabited and held themselves out to the world as being akin to spouses for a significant period of time.[21]

In other case "*Indra Sarma*vs*v. VKV Sarma*[22]," the Supreme Court was of the view that all living relationships are not relationships in the nature of marriage.

After seeing the above case laws, we find that in living relationship both persons must be major. If the couple lives in a living relationship, if either of them is less than 18 years of age, then the person whose age is 18 or more than 18, then that person will be an accused of child abuse in the *Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act,* 2012, and also be charged for kidnapping in the *Indian Penal Code,* 1860.[23]

An Act to provide for more effective protection of the rights of women guaranteed under the Constitution who are victims of violence of any kind occurring within the family and for matters connected therewith or incidental thereto. The object of the Domestic Violence Act (DV Act) was primarily to provide protection for the wife or female living partner from violence at the hands of the husband or the male living partner. When a woman, whether married or not, is in a domestic relationship with a man, the focus of the DV Act violation enquiry is centered on the tangible harm caused to the woman and the consequent protection of the woman. Any denial of protection would be a grave injustice to the women who are suffering from domestic violence.[24] In the case of *Ishpal Singh Kahai v. Ramanjeet Kahai,*[25] the court said that the object of the DV Act is to grant statutory protection to victims of violence in the domestic relationship who had no proprietary rights. The Act provides for security and protection of a wife irrespective of her proprietary rights in her residence. The main aim of the Act is to protect the wife against violence and also prevent the recurrence of acts of violence.

According to the definition of "aggrieved person" means any woman who is, or has been, in a domestic relationship with the respondent and who alleges to have been subjected to any act of domestic violence by the respondent.[26] This says that victim will be a woman either married or not but living in a domestic relationship with the respondent. It does not specify that marriage must be necessary for domestic violence, so we need to understand the word 'domestic relationship'. This Act is wholly for the protection of Women in Domestic environment.

The word "domestic relationship" means a relationship between two persons who live or have, at any point of time, lived together in a shared household, when they are related by consanguinity, marriage, or through a relationship in the nature of marriage, adoption or are family members living together as a joint family.[27] This definition says that women should be live together and share house hold. The Honorable Supreme Court in *Satish Chandra Ahuja v. Sneha Ahuja*[28]case elaborated the definition of shared household and said that Section 2(s) of the DV Act is an exhaustive definition.

In this definition the first condition to be satisfied for a shared family is that the aggrieved lives with the respondent at any stage and for any time limit in a domestic relationship and the second is the house in which the aggrieved is residing with the respondent at any time. is related in any way to the aggrieved or the defendant and thirdly the victim is residing in a family which may belong to a joint family of which the respondent is a member, even if the respondent or the aggrieved person has any right, title or interest in the shared family.[29] This shows that neither marriage nor point of time necessary for domestic relationship, so in case of living relationship DV Act will apply. the protection of women from DV Act 2005 offers maintenance and protection by providing alimony for the aggrieved line in partner.

In case of *Sou Sandhya Manoj Wankhade* v. *Manoj Bhimrao Wankhade and ors*[30] the Supreme court held that although Section 2(q) of Domestic Violence Act defines 'Respondent" to mean any adult male person, who is or has been in a Domestic Relationship with Aggrieved Person, the proviso widens the scope of said definition by including relative of husband or male partner within scope of complaint, which may be field by an aggrieved wife or female living in relationship in nature of marriage. If the intention of the legislature is to exclude women from the scope of a complaint which may be filed by an aggrieved wife, then women would have been specifically excluded, rather than in the provision that against the husband or relative of the male partner. A complaint can also be lodged. Here the expression "relative" was not defined, the word relative includes both male and female. Therefore, legislature never intended to exclude female relatives of husband or male partner from ambit of complaint that could be made under provisions of the DV Act.[31]

In the case *Hiral P. Harsora* v. *Kusum Narottamdas Harsora,*[32]Supreme Court struck down term "Adult male" from the definition of "respondent" and said that the words "adult male" in Section 2(q) of the Act should stand deleted since these words do not square with Article 14 of the Constitution of India.

Regarding the word "adult", the Court said that it is not difficult to conceive of a non-adult below the age of 18 years old member of a household who can aid or abet the commission of acts of domestic violence, or who can evict or help in evicting or excluding from a shared household an aggrieved person. It was held that even the expression "adult" in the main part is Section 2(q) is restrictive of the object sought to be achieved by the kinds of orders that can be passed

under the Act and must also be, therefore, struck down, as this word contains the same discriminatory vice that is found with its companion expression "male"

The Court said that the difference between male and female, adult and non-adult, regard being had to the object sought to be achieved by the DV Act, is neither real or substantial nor does it have any rational relation to the object of the legislation. Taking note of various sections of the Act, the Court held that it is clear that such violence is gender neutral. It is also clear that physical abuse, verbal abuse, emotional abuse and economic abuse can all be by women against other women. Even sexual abuse may, in a given fact circumstance, be by one woman on another.[33]

In the above judgment complaint under DV Act can be filed against female whether adult or non-adult. The words 'adult male' u/s 2(q) struck out as these words discriminate between people similarly situated and are contrary to the object sought to be achieved by the DV Act.

If a person below 18 years of age can be accused of only offenses such as murder, rape, sexual harassment and so on, then if persons under 18 years of age are freed from the offenses of domestic violence, gross injustice against the victim. In the above cases, it appeared from the decision of the Supreme Court that the Hon'ble Court also tried to remove the shortcomings of the legislature and by the decision gave a new dimension to this Act. By expanding the limited definition of the respondent, the legislature gave full protection to women. Criminals have neither age nor gender; they are neither in the bond of caste nor of any lineage. Therefore, we cannot narrow down the definition of a defendant to such a point where an offender does not escape by hiding behind another by taking recourse to the law.

Conclusion

There is famous quote, "Come up with a resolution, violence is never a solution". The cases of domestic violence are increasing day by day and also come in the knowledge of court in a small ratio, these are very few cases of domestic violence, which have come out only after exhausting the capacity to tolerance by the victims. Women are shy and afraid that if these cases will be taken to the police or court, even if the accused is punished, they may also get protection, but their relationship may end, so they have to endure to save the relationship.

The government should set up a mediation center to get them out of this fear where they have the privacy to speak and that institution can play the role of a proper defender without putting the matter in the police station or court. That organization should be so capable that it can help the victim in every way. A healthy domestic environment is the pillar of a wealthy nation.

References :

1. Rao C.N. Shankar, Sociology, Principles of Sociology with an Introduction to Social Thought, S.Chand &. Co. Pvt. Ltd., New Delhi, 2007, p.327.
2. Anderson W. A. and Frederick B. Parker, Society, New Jersey, D. Van No strand Company, 1964, p.144.
3. Retrieved from <https://www.aljazeera.com/features/2014/6/17/marriage-an-alien-notion-for-indian-tribe> visited on 19-02-2022, 08:30 IST.

4. Retrieved from <Retrieved from <http://www.legalservicesindia.com/article/211/Live-in-Relationships.html> visited on 13-02-2022, 09:00 IST.
5. *Khushboo v. Kanaimmal and another*, 2010 (4) SCALE 462.
6. McQuigg, Ronagh J.A., "Potential problems for the effectiveness of international human rights law as regards domestic violence", in McQuigg, Ronagh J.A. (ed.), *International human rights law and domestic violence: the effectiveness of international human rights law*, Oxford , New York, 2011, p. 13
7. *Lata Singh v. State of U.P. and Anr*. AIR 2006 SC 2522.
8. Auroshree, Editor, Sharma, D., Surodip, Saxena, A., Hameed, Parth, Gupta, N. K., Saini, A., Raman, M. A., Lal, V, srinivas, ail, I., kumar, D., &Indulia, B. (2021, May 19). *Live-In Relationship And Indian Judiciary*. SCC Blog. Retrieved from <https://www.scconline.com/blog/post/2019/01/23/live-in-relationship-and-indian-judiciary/.> visited on 12-02-2022, 07:20 IST.
9. *Kanniammal* (2010) 5SCC 600.
10. AIR 2001 All 254.
11. Section 5(iii) of Hindu Marriage Act, 1955.
12. Retrieved from <https://blog.ipleaders.in/recent-developments-live-relationships> visited on 10-02-2022 12:30 IST.
13. *Rashika Khandal v. State of Rajasthan* (Petition No. 3023/2021)
14. *Joseph Shine vs. Union of India* (2019) 3 SCC 39.
15. Section 10 of Hindu Marriage Act, 1955.
16. Section 13 of Hindu Marriage Act, 1955.
17. Section 9 of Hindu Marriage Act, 1955.
18. Retrieved from <https://www.news18.com/news/india/immoral-but-not-illegal-fate-of-live-in-relationships-in-india-lies-in-the-hands-of-judiciary-heres-how-4056416.html> visited on 18-02-2022 09:02 IST.
19. Rajeeve v. Sarasamma & Ors. MAT.APPEAL NO. 338 OF 2017.
20. 5 SCC 600.
21. Retrieved from <https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/2631831820974585> visited on 18-12-2022, 08:30 IST.
22. 15 SCC 755.
23. Section 361 of the Indian Penal Code, 1860.
24. Retrieved from <https://www.theweek.in/news/india/2021/07/07/live-in-relationships-at-cross-roads-with-morality.html> Visited on 16-03-2022, 09:30 IST.
25. 2011 SCC Bom 412.
26. 2(a) of The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005.
27. 2(f) of The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005.
28. (2021) 1 SCC 414.
29. Retrieved from <https://www.singhlawyers.com/post/supreme-court-redefines-the-meaning-of-shared-household> visited on 17-02-2022 09:30 IST.
30. 2011 (1) KLT 609 (SC).
31. Retrieved from <http://www.cja.gov.in/All%20Judgments/Respondent%20To%20include%20females.pdf> visited on 22-02-2022, 11:00 IST.
32. 2016 SCC OnLine SC 1118.
33. Retrieved from <https://www.scconline.com/blog/post/2016/10/07/term-adult-male-from-the-definition-of-respondent-under-the-protection-of-women-from-domestic-violence-act-2005-struck-down/> visited on 18-02-2022 09:02 IST.

---

1. Reseach Scholar, Singhania University
2. Associate Professor, Deputy Dean, Maharishi Law School, MUIT

Understanding the 'hushed': A Foucauldian Perspective of Selected Literature

–Eza Deshwal

Foucault understood confession of sexual activities as a way of making an intimate act part of the social norms and thereby creating an ambience of acceptance of the supposed sexual indiscretions. Foucault's intellectual musings are applicable to the present day as well where certain sexual indulgences are still considered transgression. The issue of female sexuality has been one such taboo. With the advent of feminism, it became a much-discussed topic. The aforementioned religious practice of confession in a Church transformed into personal aesthetic solace experienced through the act of writing.

The paper aims to study Foucault's ideas, as presented in "Incitement to Discourse"from *History of Sexuality* (Volume 1), in a literary context, with a particular focus on James Joyce's *Portrait of an Artist as a Young Man*. The paper also analyses various theorization proposed, such as "institutional incitement," through multiple examples from the text. Furthermore, it analyses the art of confessional poetry, queer writings and Oscar Wilde's legal case from a Foucauldian perspective.

Keywords : Repressive Hypothesis, Confessional practices, sexual codification

Understanding the 'hushed': A Foucauldian Perspective of Selected Literature

Part two of Foucault's *History of Sexuality* talks about the "repressive hypothesis," where he attempts to debunk the pervasive stereotype of a Victorian as an "imperial prude". He believes that with the advent of capitalism, the discourse of repression also developed, which ultimately solidified this stereotype. But contrary to the popular misconception regarding sex being a silenced topic, Foucault argued that it has always been a dominant developing discourse causing "institutional incitement" in multiple power structures such as religion, medicine, schooling and legislation. Despite the codification of language around sex, it was still part of multiple discussions. Its participants, however, had changed from the common folk to figures of institutional power. Observing the seventeenth century, he examines the Church's role as a structural institution in authorising a self-claimed purified vocabulary to talk about sex, thereby establishing a lexical control over the discourse. He states, "Under the authority of a language that had

been carefully expurgated so that it was no longer directly named, sex was taken charge of, tracked down as it were, by a discourse that aimed to allow it no obscurity, no respite" (Foucault 20).

Foucault further dissects the role of the Church in shaping the discourse around sex by observing the confessional practice, which was viewed as a manifestation of ethical Christian spirituality. He observes the general practice of confession as "…one of the West's most highly valued techniques for producing truth" (Foucault 59). Confessional practices, he asserts, are associated with the freedom of truthful expression, assertion of power and establishment of individualistic identity. Therefore, amidst policing of sexual statements and confessional society, Counter Reformation brought forth "confessions of the flesh" as well as its subsequent penance.

Brought up as a Catholic, James Joyce, depicts the essence of the aforementioned confessional practice in his work, *The Portrait of an Artist as a Young Man*published in 1916. Through his protagonist, Stephen Dedalus, Joyce beautifully captures the struggles of a confession as he attempts to coincide his engrained religious spirituality with his innate sexual curiosity. Considering the authorized vocabulary which codified sex, there was a dearth of language to understand and express desire. This linguistic isolation often bordered on the loss of meaning which instigated fear in the people and to avoid this fear, people didn't dare venture out of the familiarity of their structured life.

Stephen's deliberation before his confession reflects a similar dilemma as he feels compelled to confess in order to legitimize himself but is reluctant to verbalize his 'sins.' An insight into Stephen's stream of consciousness captures his internal monologue, "Confess! He had to confess every sin. How could he utter in words to the priest what he had done? Must, must. Or how could he explain without dying of shame? Or how could he have done such things without shame? A madman! Confess! O he would indeed to be free and sinless again! Perhaps the priest would know" (Joyce 80). Foucault had theorized this dilemma when he said, "According to the new pastoral, sex must not be named imprudently, but its aspects, its correlations, and its effects must be pursued down to their slenderest ramifications: a shadow in a daydream, an image too slowly dispelled, a badly exorcised complicity between the body's mechanics and the mind's complacency: everything had to be told" (Foucault 19).

The act of confessing, according to Foucault, endowed the listener with the knowledge of sinful secrets which consequently gave them power. The practice in itself made the speaker feel ostensibly cleansed of past sins. Stephen asks himself after his confession, "I have amended my life, have I not?" (Joyce 87). Streit, studying Joyce's entire oeuvre from a Foucauldian perspective, states that "This confessional is depicted as a spiritually empty machine, which industrializes confession similar to the way in which guillotine industrialized death during French Revolution. The metaphor of Stephen's sins oozing from him in the confessional

like the secretion from a wound…is reminiscent of the text's description of the physical effect that the retreat sermons had on Stephen" (Streit 68).

Joyce uses epiphanies as devices for Stephen to understand his individuality in a world regulated by overbearing and powerful ruling forces. After a series of juxtaposing epiphanies, Stephen finds linguistic solace and meaning in his aesthetic theory which empowers him enough to distance himself from his childhood dilemma. Stephen says, "You made me confess the fears that I have. But I will tell you also what I do not fear. I do not fear to be alone or to be spurned for another or to leave whatever I have to leave" (Joyce 140). Therefore, one may argue that the text not only demonstrates the power structures, specifically the Church, which administer sex but also ignites hopes of resistance.

The narrative of *The Portrait of an Artist as a Young Man* also examines the intermingled structural forces of religion and education which surveil and regulate the intimate life of its pupils. While discussing the influences of education in shaping the discourse of sex, Foucault provides the example of German boarding schools where even beds are arranged in a manner that discourages sexual curiosity amongst adolescent boys. Stephen's Belvedere College, which was administered by Jesuits, can also be seen as an example of policing sexuality in educational institutions. A major instance to illustrate this argument would be when Lawton and Fleming are humiliated and corporally punished in front of their class for deviating from the institutionally sanctioned representation of sex. The public nature of their punishment establishes the dominance of power structures (in this case, Catholic school teachers) and conditions the pupils to view illicit desire, particularly homosexuality in this instance, as metamorphosed violence. This implants a revulsion towards the exploration of sexuality amongst adolescents.

Foucault understood confession of sexual activities as a way of making an intimate act part of the social norms and thereby creating an ambience of acceptance of the supposed sexual indiscretions. Foucault's intellectual musings are applicable to the present day as well where certain sexual indulgences are still considered transgression. The issue of female sexuality has been one such taboo. With the advent of feminism, it became a much-discussed topic. The aforementioned religious practice of confession in a Church transformed into personal aesthetic solace experienced through the act of writing. Confessional poetry, ranging from Emily Dickinson to Kamala Das, aligned with the practice of libertine personal writing (as Foucault observes through the text *My Secret Life*) explored and celebrated female sexuality while bringing forth issues which were earlier neglected. While sharing her first naïve intimate experience in her poem *Introduction*, Das writes, "…I asked for love, not knowing what else to ask/ For, he drew a youth of sixteen into the/ Bedroom and closed the door" (Das, lines 27-29). The matters which were hushed as private, yet again, became a part of the dominant discourse.

Similar confessional overtones and incitement to discourse about sex can be observed in Queer literature and the whole concept of 'coming-out.' Divulging in one's sexual orientation or 'coming-out' is commonly regarded as establishing a liberated self-accepted subjectivity against the repressive heteronormative society. But queer theorists have also argued that by 'coming-out', one is also creating a norm of insidious entry of social surveillance, guised as sanctioned acceptance, into the identity of self. Kotze notes, "While coming-out stories appear to conform to some of the discursive practices characterising confessional modes of response to incitements to speak, they are also deemphasized as central to the constitution of selfhood" (Kotzei).

Foucault explores the timeline further and notes how religious regulations on sex were replaced with moral regulations during the Age of Enlightenment. Sex was no longer a spiritual confession but a matter of the state to be surveilled, scientifically scrutinized and governed. 'People' became 'population.' With thorough demographical examinations in mind, legal policies were formulated as "…sexual conduct of the population was taken both as an object of analysis and as a target of intervention" (Foucault 26). Discourses of medicine, followed by psychiatry, attempted to regulate the secrecy of sex by classifying certain sexualities as 'nervous disorders' and 'mental illness.' Though Epstein counters this argument stating, "Foucault appears to overestimate the capacity of medical experts to produce social identities out of whole cloth, and to underestimate the agency of historical subjects" (Epstein 493).

Foucault further examines the legislative forces which shaped the discourse of sex. In *The Perverse Implantation*, Foucault observes the ramifications of legal interference as he writes, "As defined by the ancient civil or canonical codes, sodomy was a category of forbidden acts; their perpetrator was nothing more than the juridical subject of them… Homosexuality appeared as one of the forms of sexuality when it was transposed from the practice of sodomy onto a kind of interior androgyny, a hermaphrodism of the soul. The sodomite had been a temporary aberration; the homosexual was now a species" (43).

The legal control over the discourse of sex can be better understood through a study of Oscar Wilde's trial. The Marquess of Queensberry, furious with Wilde's affair with his son, accused him of "posing as a sodomite." The latter was indicted for "acts of gross indecency" under section 11 of the 1885 Criminal Law Amendment Act. The trial had understandably caused a scandal in the Victorian society and ruined plausible future career prospects for Wilde. However, the spectacle of the trial is considered significant in modern queer history for "…providing historians a marker to locate the emergence of a distinct homosexual identity. In fact, the trials are often implicitly credited as the event where the Homosexual emerged as a social subject" (Schulz 37). Prime-Stevenson was relatively more reserved

in his valorisation of Wilde and his trial as he writes, "Wilde was a victim of British social intolerance and hypocrisy, and of the need of new and intelligent English legislation as to similisexual instincts is perfectly true: but Wilde himself was not a little shrewd and superficial poseur, to the very last" (as qtd. in Wilper 145).

To summarize, Foucault discusses sex and its development as a discourse by observing its changing dynamics with varying power structures over time. Epstein notes, "While insisting upon the multiplicity of pathways by which power and pleasure collide and recombine, Foucault was not averse to detecting patterns" (Epstein 492). He first postulates the role of the Church in the formation of a sexual discourse in their attempt to keep it discreet. With the Age of Enlightenment, this discourse was further developed with more upfront structural forces, primarily consisting of educational, legislative and medicine. He acknowledges the intricate complexities which broaden the discourse of sex through various demographic, biological, medicinal, psychiatric, psychological, ethical, pedagogical, and political factors. Recounting the diversifications "…between the objectification of sex in rational discourses, and the movement by which each individual was set to the task of recounting his own sex," (Foucault 33) he states the discourse is not just expanded but created a diversified network of centers. Through his essay, he demonstrates how state surveilsand regulates matters that are as individualistic and private as sex to establish power and dominance over its subject. But paradoxically, by using all means to ensure that sex is consigned "a shadow existence," the state not only committed itself to speak of it but also simultaneously exploited it.

Works Cited :

Das, Kamla. "Introduction." *Poem Hunter,* 2012, https://www.poemhunter.com/poem/an-introduction-2/. Accessed 25 April 2022.

Epstein, Steven. "An Incitement to Discourse: Sociology and the History of Sexuality." *Sociological Forum*, vol. 18, no. 3, 2003, pp. 485–502, http://www.jstor.org/stable/3648894.

Foucault, Michel. *The History of Sexuality(Volume 1)*. New York: Pantheon Books, 1978.

Joyce, James, Chester G. Anderson, and Richard Ellmann. *A Portrait of the Artist As a Young Man*. New York: The Viking Press, 1964.

Kotze, Ella. *Lesbians' coming-out stories as confessional practices*. Johannesburg: Faculty of Humanities, University of the Witwatersrand, 2010.

Schulz, David. "Redressing Oscar: Performance and the Trials of Oscar Wilde." *TDR* (1988-), vol. 40, no. 2, 1996, pp. 37–59, https://doi.org/10.2307/1146528.

Streit, Wolfgang. *Joyce/Foucault: Sexual Confessions*. University of Michigan Press, 2004. JSTOR, www.jstor.org/stable/10.3998/mpub.16235.

Wilper, James Patrick. "A Tough Act to Follow: Homosexuality in Fiction after Oscar Wilde." *Reconsidering the Emergence of the Gay Novel in English and German*, Purdue University Press, 2016, pp. 137–52, http://www.jstor.org/stable/j.ctt1wf4dth.11

❒❒❒

Research Scholar, Department of English and Foreign Languages, Maharshi Dayanand University, Rohtak

Research Article

A Journey Towards Post Modernism: Study of Italo Calvino's "The Castle of Crossed Destinies."

–Vaishali

Each storyteller tries to depict his/her story through the pictures on Tarot cards interpreted by the narrator. The cards used by the storyteller are based on their closest correspondence to the incidents or adventures of their lives. With time one can analyse the change in behaviour of these people as they fight for possession of cards which are significantly related to the depiction of their stories. The idea of depiction of the stories becomes a crucial project as it transforms into a way of valediction of their lives and justification of their experiences.

This paper provides a brief understanding of Italo Calvino's *The Castle Of Crossed Destinies* and aims to analyse it in the academic lights of Postmodernism. Each storyteller tries to depict his/her story through the pictures on Tarot cards interpreted by the narrator. The cards used by the storyteller are based on their closest correspondence to the incidents or adventures of their lives. With time one can analyse the change in behaviour of these people as they fight for possession of cards which are significantly related to the depiction of their stories. Narrative and image collide in an evocative space on human desires and destinies, the text's overarching theme, the boundaries of possibility, and the need of decision, all of which are built thematic channels of approach to the text's overarching subject through the principal rhetoric of conquering.: writing and reading and their "magical," "murderous," and "mistical" qualities.

Keywords : Postmodernism, Narrative technique, Tarrot Cards, Metaphors.

A Journey Towards Post Modernism: Study Of Italo Calvino's "*The Castle Of Crossed Destinies*."

"By all means be experimental, but let the reader be part of the experiment." - Max Sebald

Italo Calvino's experimental novel *The Castle of Crossed Destinies* is a celebrated work of fiction. He is a novelist, short story writer, and journalist from Italy. He is one of Italy's most well-known authors, noted for combining fantasy, humour, and fable to create a remarkable representation of modern life and to give novel writing a new depth. *The Castle of Crossed Destinies* is a string of short narrative stories divided into two sections: "*The Castle of Crossed*

Destinies" and "*The Tavern of Crossed Destinies."* Guests and travelers relate the stories of their lives in the peculiar and gloomy settings. These storytellers have lost the power of speech as their experiences are acutely disturbing. Unlike most of Calvino's novels, *The Castle of Crossed Destinies* has received little. Many critics have criticised Calvino's experiment of storytelling with tarot cards negatively. Calvino's trick of creating stories out of the Tarot card has been rejected as a "wasted exercise" by Rob Markey.

Calvino's writing reflects a loss of faith in traditional narrative expression and a desire to explore new literary territory. Simultaneously, the heroes' journeys become increasingly pointless, and the characters are unable to comprehend their meaningless existence in the cosmos. Calvino develops literary principles explored by modern theorists such as Roland Barthes and Jacques Lacan when these issues emerge in his work. He emphasises the reader's role in the text's construction, frequently confronting the reader with innovative methods. According to Markey, the latter pieces are harder to comprehend because of their dwindling readership. Calvino writes on his anti-humanist stance, fragmented works that blend genres and themes.

Each storyteller tries to depict his/her story through the pictures on Tarot cards interpreted by the narrator. The cards used by the storyteller are based on their closest correspondence to the incidents or adventures of their lives. With time one can analyse the change in behaviour of these people as they fight for possession of cards which are significantly related to the depiction of their stories. The idea of depiction of the stories becomes a crucial project as it transforms into a way of valediction of their lives and justification of their experiences. It is important to note that the pictures on the tarot card are mere symbols that resemble the experiences of the storyteller, and they are not as precise in communicating the actual story. The readers get to read the interpretation of the narrator. However, they also have the authority to make their meaning by carefully studying the pictures on Tarot cards given at the margins on the pages of the novel. As a result, Calvino invites the reader to become an important part within the story. *The Castle of Crossed Destinies* combines and juxtaposes several story mediums to create a variety of realised and unrealized narrative possibilities. The reader is encouraged to read inside the gaps formed by the tension and interplay of different media. The written word and visuals make up these storytelling media, and it is the gaps between them that show the combinatory game as a success rather than a failure.. One can compare this experimental narration to Calvino's "If on a Winter's Night a Traveler" that as well It is not a standard linear story in which the author talks via text; rather, it is a postmodern presentation of sumptuous language, the meaning of which is determined by the reader.

One can argue that Calvino was experimenting with his form of narration in this work to depict the communication barriers in the postmodern era. He portrays a world where symbols are disjointed from the experiences or where the language has failed to express the truest emotions. This communication failure through words has been the subject of various postmodern works like "Waiting for Godot" by Samuel Beckett and "How to Make a Dadaist Poem" by Tristan Tzara. It can be studied that the tarot deck becomes symbolic of the lives of these storytellers. This symbolic representation though lacks literal precision but provides ample connotation for deep understanding of the characters' journey. There could be a possibility that being a postmodern writer Calvino aimed to suggest that words are as arbitrary to meanings as the interpretation of the narrators to the tarot cards employed in storytelling by these people. Since many people use the same cards for their stories, they imply similar metaphors for otherwise different experiences. These cards are also instrumental in blurring the social hierarchies of the storytellers as they emphasize the homogeneity of all lives, from the aristocratic to the most humble. However, by the end of the novel, the narrator, the author of the novel, has no answer to what T.S. Eliot called "the overwhelming question" of the meaning of life.

Calvino engages two mediums of communicating stories to the readers, which are open to various other interpretations. He employs different stories in the same pictorial space and interweaves them. In his last story of the novel "The Tales of Madness and Destruction," he puts together the stories of three Shakespearean plays "Hamlet", "Macbeth" and "King Lear." The story is narrated based on already laid-out cards used by other storytellers. These stories are already known to the author and readers so one can argue that any story can be implied to these tarot cards. The images on the cards no longer conjure up stories we don't know and must put together, nor do they conjure up experiences we've lived and want to share with others. However, there are tales in the visuals that we can recognise with a little imagination—stories that we physically find or rediscover.

In the concluding chapter of *The Castle of Crossed Destinies*, author finds the tales of Macbeth, Hamlet, and King Lear, entitled "Three Tales of Madness and Destruction," amid the cards that have previously been put out and employed for other stories. Of course, he and we can only accomplish this if we think that practically any tale could be discovered in this deck, and that we already are aware these stories, so the concept of reading becomes rather more intriguing. The pictures on the cards do not further evoke up stories that readers don't know and must put together, or stories they have lived and want to share with others, but stories that can be recognized in the images shown to the readers—stories they physically find or rediscover. Initially, Hamlet, Woman Macbeth, and King Lear are addressed as 'a young man,' 'a lady,' and 'an elderly man,' respectively.

Lady Macbeth depicts the story, including the prophecies of the three witches; she sees the ghost of Banquo's amidst the pictures on tarot cards and points toward her version of Macbeth's story. Her story, as narrated by the narrator, is full of madness and destruction, which has borrowed heavily from the Shakespearean story of Macbeth.

The first card, that is, the card of Ruined Tower symbolises the Elsinore – home of Hamlet, Dunsinane – Kingdom of Lear and Brinam Woods of Macbeth. The picture of a building collapsing with the lightning and the falling of the crown depicts the story of all three characters. The card is emblematic of destruction and loss of power which was shared as a common fate by all three storytellers. The Moon Card depicts the night when Hamlet's father's spirit walks; the night in which the witches call and operate; and the devastated countryside, which is all Lear has left of his belongings. A group of stars and a lady pouring water from two pitchers are seen on the Star card. This image represents Ophelia's madness to Hamlet, yet Lady Macbeth interprets it as herself attempting to remove the blood stain off her hands. Lear examines the card, seeing his exiled daughter Cordelia "drinking water from the ditches" and relying on the birds for health. Another lady with pitchers is seen on the Temperance Card represents both Ophelia, who went insane and lost her senses, and Lear's daughter, whom he has lost because to his lack of morality.

Critics have argued that this whole thing of creating stories out of pictures is an artistic endeavour for Calvino done for amusement. Both Hamlet and Lear are frequently analysed as plays on generational conflicts, with the young being tormented by the authority of the old and the elderly being plagued by what the young refuse to bury. "With daughters, whatever a father does is wrong: authoritarian or permissive, parents can never expect to be thanked." On the other hand, Macbeth is a tale of marriage between two equals: "They have shared the roles like a devoted couple, marriage is the encounter of two egoisms that grind each other reciprocally and from which spread the cracks in the foundations of civilised society…" It can be suggested that Calvino is trying to trace the madness of twentieth-century modernism into the times of classical writers like Shakespeare. It can be analysed that author's ideas and perceptions are not forced on the cards, and not just any cards would suffice for any tale. Despite the fact that the stories are well-known, they may be understood and reinterpreted in a variety of ways.

It is crucial to note that a single card is read in multiple aspects with different stories, which render the idea of multiple interpretations of a single situation by different people as per their experiences. It is interesting to examine that pictures have symbolised the minute details of the adventures of the travellers, which language would have otherwise failed in. Calvino contemplates 'Words' as cards with which a speaker plays, predicts the future, narrates stories of the past and

shares experiences. Calvino states, "In writing, what speaks is what is repressed." Calvino is apparently influenced by Jacques Derrida's idea of 'Difference', the dominance of one particular way of thinking over others, and defies the idea of fixed meaning.

One can refer to Julia Kristeva's idea of intertextuality to better understand the use of multiple stories of past writers by Calvino. According to Kristeva individual texts are intricately related to other texts in a matrix of multiple and transient meanings. She asserts that a literary work may be constructed from previous works in a number of ways, including implicit and explicit allusions, quotes, repetitions, and transformations. Calvino's last chapter, "Three Tales of Madness and Destruction," borrows the stories from Shakespeare and gives them a new form and structure. He opens the door for multiple interpretations of these stories by employing pictures instead of words as symbols of expression of experiences. However, the cards' pictorial ambiguities have been transformed into grammatical language. Images are used as reminders of everything language simplifies or misses. It can be concluded that Calvino uses postmodern narration techniques in this work. He questions the authority of language by operating the pictures of tarot cards. He deconstructs the implied meanings of classical literary texts of the past by putting them parallel to the postmodern status quo. Calvino's career began with neo realistic works following World War II, partly as a result of his involvement in the resistance struggle and the communist party; it was the dominant type of Italian narrative after the war. Calvino makes the reader aware of the story's tarot roots by making the cards a crucial narrative function and printing them on the margins of practically every page, close to the story's necessities. The picture-card stories, which may be read backwards, sidesways, and forwards, parallel the book's fragmented and specular layout and transcend beyond linear linguistic limits.

References :

Allegrezza, William. Italica, vol. 77, no. 3, 2000, pp. 436–37, https://doi.org/10.2307/480316. Accessed 27 Apr. 2022.

Calvino, Italo. *Castle Of Crossed Destinies*. New York : Harcourt Brace Jovanovich, 1979

Jeannet, Angela M. *Italica*, vol. 72, no. 2, 1995, pp. 236–38, https://doi.org/10.2307/480167. Accessed 27 Apr. 2022.

Schneider, Marilyn. "Calvino at a Crossroads: Il Castello Dei Destini Incrociati." PMLA, vol. 95, no. 1, 1980, pp. 73–90, https://doi.org/10.2307/461734. Accessed 27 Apr. 2022.

Sbragia, Albert. "ITALO CALVINO'S ORDERING OF CHAOS." *Modern Fiction Studies*, vol. 39, no. 2, 1993, pp. 283–306, http://www.jstor.org/stable/26284216. Accessed 27 Apr. 2022.

❒❒❒

Ph.D Research Scholar, Department of English and Foreign Languages, Maharshi Dayanand University, Rohtak

Rights and Conditions of Undertrial Women and their children in India

–Himanshu
–Dr. Rama Sharma

The National Human Rights Commission's members as well as officers visiting different jails have noted with dismay that there is no pre- release planning and well laid policy for rehabilitation of women prisoners after their release. Indeed, women offenders in India face peculiar problems of rehabilitation during their post release period. They become vulnerable to suspicion and rejection and are stigmatized for having been in prisons. Imprisonment has more adverse impact on women than men.

Training and treatment of women prisoners is often badly neglected. Further, women, prisoners suffer from unhealthy living conditions, exploitation and separation from their families. In a 'Nari Bandi Niketan' of Uttar Pradesh, a number of women prisoners undergoing long periods of imprisonment told that with great anguish that they have not heard anything from their children and family.

Many of them were over anxious to know particularly the fate of their children. There is urgent need to ensure that women prisoners should have frequent opportunities to unite with members of their families. The Mulla Committee on Jail Reforms expressed the view that to have specially separated jails for 5 to 6 women offenders in every district or sub-divisional Jail is administratively difficult and financially prohibitive. Again concentrating all women prisoners in one jail can be faulted on the ground that this arrangement keep women prisoners in far away places separated from the kith and kin. A proper balance has to be struck between the two alternatives. It is also disturbing to note that there is prolonged imprisonment of undertrial women who constitute more than 70 per cent of female jail population of the country, There are undertrial women languishing for 4 to 5 years in jails for offences for which the sentence would have been far less if they had been convicted. Again, many women prisoners continue in jails for long periods as they are, unable to defend themselves and ignorant of the ways and means of securing legal help an thus totally at the mercy of the jail officers, who often fail to show any understanding of their problems.

Keywords: imprisonment, women Incarceration, Penal provisions, undertrail.

Introduction

The national Expert Committee on Women Prisoners with Justice Krishna Iyer as its Chairman (1987) stated after visiting many women prisons that both prisoners and the prison staff suffer from what was called by the Supreme Court the pathology of misinformation or ignorance about rights and limitations. This often leads to callous disregard of human rights. Similarly, courts also fail to show proper awareness of women forming a special category, especially t hose with minor children or bread – earner responsibilities in cases of female-headed households. "They are " to quote the words of the Krishna Iyer Committee on Women Prisoners, " a low dispositional priority and receive routine neglect. The immensely larger undertrial figures among women vis-a –vis men prisoners is adequate illustration of how judicial processes have outcast the women in a custodial limbo".

There should be wider use of parole or furlough in case of women."The women's central role in relation to the family and the strain caused on her immediate family as a result of imprisonment," observed Krishna Iyer Committee on Women Prisoners, should also " necessitate in liberal use of bail, probation, parole and other innovative forms of sentencing". The Committee recommended setting up of women's courts.

Role of Judiciary

However in India the origin of Prisoner Rights can be traced back in the land mark case of *A. K. Gopalan v State of Madras*[3]. The main contention raised by the petitioner was on the phrase "procedure established by law", as contained in Art. 21 of the constitution;

In another important case of*State of Maharashtra v PrabhakarPandurang*[4], the Supreme Court held that the mere detention would not restrict other fundamental rights; the Apex Court also held that, the personal liberty (Article-21) has been violated in this case.In this case, the respondent was detained in the jail in order to prevent him from acting in a manner prejudicial to the defence of, public safety and maintenance of public order. From the jail, he wrote a book in Marathi, which was based on scientific interest, and was not prejudicial. The prisoner asked the government and the Superintendent to send the manuscript outside the jail for publication, but was rejected. But, the High Court held the view that, the civil rights and liberties of a citizen could not be curbed by the order of detention. Similar view was also been undertaken by the Supreme Court also.

In the landmark case of *Khatri v State of Bihar*[5], this is popularly known as Bhagalpur Blinding Case, the Supreme Court held that, the right to free legal aid is an essential ingredient of fair, just and reasonable procedure for a person accused of an offence, and this right has been guaranteed under Article-21, of the Constitution. In this case, a number of persons were put under prison. It was also held in this case, that the State has to provide compensation to the blinded

prisoners, as there was a violation of their right to life and personal liberty, under Article-21.

In *M.H.Hoskot v State of Maharashtra*[6], Supreme Court held that right of appeal is an integral part of the fair procedure as given in Art. 21 of the Constitution. It also was critical about the silent deprivation of liberty caused by unreasonableness, arbitrariness and unfair procedures inside the jail. This procedure says that the indispensable essence of liberty and natural justice. In this case the Supreme Court laid down that the constitutional mandate under Art. 21 read with Art. 19 (1) (d) prescribes certain to the prisoners undergoing sentence inside the jail.

In *PremShankerShukla v Delhi Administration*[7], Supreme Court struck down the provision of determining who was to be handcuffed on the basis of whether the prisoner is rich or poor. The Supreme Court in this case gave a number of directions with a view to reforming and humanizing jail administration and also held that the procedure of handcuffing is a violation of Article-21. Handcuffing is permitted only in extraordinary circumstances.

In the case of *Rudal Shah v State of Bihar*[8], the petitioner was acquitted by the Sessions Court of Bihar on 3rd June, 1968, but he was released from jail on 16th October, 1982, i.e., 14 years after he was acquitted. The Supreme Court, held the view that, this illegal detention by the Police, is a violation of Article-21 (right to life and liberty), and hence a monetary compensation is to be provided and also the State should take action against these officers.

Sunil Batra versus Delhi Administration[9]In this decision, Justice D.A.Desai, speaking for himself, the Hon'ble Chief Justice of India and two Hon'ble Judges observed that a convict is in prison under the order and direction of the Court and the Court has, therefore, to strike ajust balance between the dehumanizing prison atmosphere and the preservation of interval order anddiscipline, the maintenance of institutional security against escape, and rehabilitation of the prisoners.

Justice V.R. Krishna Iyer in Charles *Sobraj v. Supdt., Central Jail*[10], observed thatimprisonment does not spell farewell to fundamental rights although, by a realistic re-appraisal, Courts willrefuse to recognize the full panoply of part III enjoyed by free citizens. Further, observed that the axiom ofprison justice is the Court's continuing duty and authority to ensure that the judicial warrant which deprives aperson of his life or liberty is not exceeded, subverted or stultified. It is a sort of solemn covenant runningwith the power to sentence. Referring to the decision of Supreme Court in*Menaka Gandhi*, it was observed that Prisoner's retain all rightsenjoyed by free litigants except those lost necessary as an incidentof confinement, the rights enjoyed byprisoner's under Article 14, 19 and 21 though limited, are not static and will rise to human heights whenchallenging situation arise.[11]

Role of NHRC

The National Human Rights Commission's members as well as officers visiting different jails have noted with dismay that there is no pre- release planning and well laid policy for rehabilitation of women prisoners after their release. Indeed, women offenders in India face peculiar problems of rehabilitation during their post release period. They become vulnerable to suspicion and rejection and are stigmatized for having been in prisons. Imprisonment has more adverse impact on women than men. The society considers them as pariahs. Some of the women prisoners suffering life- imprisonment in jails said that their husbands no longer accept them after their release and they have no other place to go. Indeed a pathetic situation. Moreover, a number of women prisoners suffer from mental depression and other forms of arrangement for psychiatric treatment and counseling. Many women prisoners are totally ignorant of jail rules and procedures, and many life convicts, as NHRC team could find during a visit to a women's prison in U.P. are unaware of the remission already earned by them. They have become victims of State custody, "instituted by legal processes, their own ignorance and poverty".

The NHRC has prepared a model Prison bill for replacing the century – old Prison Act of 1894. The Bill discards some of the outdated provisions of the old Prison Act and, reflects, modern penological thinking on the, reformation and, rehabilitation" of the criminal. It accepts the recommendations of the Mulla Committee and provides that in the headquarte4rs of the Prison Department, a lady officer of the rank of DIG should be posted exclusively to look after the problems of women prisoners. Apart from ensuring complete segregation and differential management of women prisoners under the supervision of the female staff, the proposed bill advises the State Governments to formulate a comprehensive scheme for care, protection, treatment, education and development of women prisoners in keeping with their personal characteristics and rehabilitation needs. The NHRC hopes to persuade the Central and state Governments to pass a new Prison Act on the lines of the bill prepared by it.

International Prespective

In U.S.A. courts have been receptive to the claims of female prisoners that their conditions of confinement should be equal to that of their male counterparts. Thus markedly unfair conditions in women's prisons in comparison to men's prisons have been held to violate the equal protection clause of the Fourteenth Amendment. In the case of Cauterino v. Wilson, the court held that the officials of the Kentucky Department of Correction, unconstitutionally discriminated against the inmates of Kentucky's only prison for women. Among the equal protection violations found were inferior programmes, training, vocational education when compared to those available to similarly situated inmates at the state male correctional institutions.

Similarly, health care needs of female prisoners must comport with the American Supreme Court decision in 'Estella vs Gamble '. This decision lays down that the prison officials are in violation of Eighth Amendment principle against unnecessary infliction of pain when they show a deliberate indifference to the serious medical needs of the prisoners.

Problems faced by Women Prisoners

Women constitute a very small proportion of the general prison population worldwide, usually between 2% to 9% of a country's prison population. Only 12 prison systems worldwide report a higher percentage than that.[12] Unfortunately, this means that most prison arrangements are male centered and do not pay attention to the problems and needs of women in prison. As prison systems have been primarily designed for men, who comprise more than 95% of the prison population in most countries, prison policies and procedures often do not address women's health needs.

The gender specific health care needs and additional issues related to the women's responsibility for children and families are often neglected. Many women in prison have young children for whom they were often the primary or sole career before they entered prison (United Nations Office on Drugs and Crime, 2009). Women in prison frequently come from deprived backgrounds, and many have experienced physical and sexual abuse, alcohol and drug dependence and inadequate health care before imprisonment (Penal Reform International, 2008). Further, women entering prison are more likely than men to have poor mental health, often associated with experiences of domestic violence and physical and sexual abuse (United Nations Office on Drugs and Crime, 2009). In prisons in the United Kingdom, 70% of sentenced female prisoners are said to have two or more mental disorders. Psychotic disorders are estimated to be present among 14% of this population, 14-23 times the level in the general population. Data from the prison services for 2005 showed that 597 out of every 1000 women harm themselves while in prison.

Due to lack of female guards to accompany them, women prisoners are not produced at court on the required dates or as often as required, resulting in long delays in their trials. In Ghaziabad and Meerut prisons, fans are not installed in the women's enclosure due to a "suicide risk", whereas, the same facilities are allowed in other prisons. For the same reason, in these two prison premises, the trees have been cut down, and the area is dry and barren. In some prisons, women enjoy hot water facilities but the maintenance of solar installations is poor. All the special requirements of female prisoners are, in practice, subjected to the norm: "as far as possible or wherever it is possible or available".[13]

Conclusion

Both prison reform and penal reform are crucial elements among many problems affecting the Indian prisons. They are to be resolved at priority basis.

Imprisonment can be regarded as the final stage of the criminal justice process, which starts with the commission of offences, their investigation, the arrest of suspects, their detention, trial and sentence. How the criminal justice system deals with offenders determines the size of the prison population, which in turn has a significant impact on the way in which prisons are managed. The criminal justice system itself is on the other hand influenced by the government policies and political climate of the time - determined to a large extent by the public, which, in democratic countries, elect their governments. It is guaranteed to every person by Article 21 of the Constitution and not even the State has the authority to violate that Right.

Speedy trials are frustrated by a heavy court workload, police inability to produce witnesses promptly and a recalcitrant defence lawyer who is bent upon seeking adjournments, even if dilatory tactics harm his client. The next question that we should ask ourselves is: are courts punishing far too many? This question is relevant mainly to the U.S. where the trend is one of enlarging the number of offences for which there is a mandatory jail sentence. The success rate of prosecutions in that country is also high. We do not have this phenomenon. Although our numbers per se are forbidding, conviction rates are low (32 per cent in 2010). What is of concern is the high rate of pendency in courts. For instance, in 2021 National Crime Records (NCRB),[14] study revealed that nearly 220,000 cases took more than three years in court, and about 25,600 exhausted 10 years for trial to be completed. Can there be a sadder commentary on our system? Not many get bail during trial, because they are too poor to get bonds executed in their favour for a release. Is this fair at all when we often speak of 'social justice'? This is no condemnation of corruption, but a mere explanation of it. This undesirable practice is not confined to Tihar. Stealing of supplies to prisons leading to sub-standard food for inmates is another complaint. Seeking sexual favours from women prisoners is not an unknown happening. One of the first bodies was the All India Commission for Jail Reforms (popularly known as the Mullah Committee, after its Chairman Justice, Mullah) that spent three years (1980-83) preparing a model Prison Bill to replace the Prisons Act of 1894. The National Human Rights Commission (NHRC) also came out with a model Bill in 1996 for the benefit of the States. Its emphasis was on the human rights of prisoners, an area of great concern because of the horror stories of physical abuse that keep coming out at periodic intervals. In 1998, the Home Ministry circulated a draft Bill to the States, a few of which have come out with new legislation. Following a Supreme Court direction (1996) in Ramamurthy v. State of Karnataka [15] to bring about uniformity nationally of prison laws and prepare a draft model prison manual, a committee was set up for this purpose in the Bureau of Police Research and Development (BPR&D). As in the case of the recommendations of the National Police Commission (1977), which had sought the creation of a State Security Commission and the promulgation of a new Police Act to replace the 1861 enactment,

implementing jail reform recommendations rests with the States. Finally, how do we ensure that prisoners do not go back to commit an offence after release? How do we enhance prisoner skills so that he or she is enabled to take up a vocation that brings in assured regular income? More importantly, how do we inculcate in them a set of values that place emphasis on the dignity of labour and the wisdom of strengthening one's ties with the community in which he or she lives? These are eternal questions that have agitated those enlightened souls who view incarceration not as retribution but a means to win the mind of a convict and channel it along constructive lines.

References :

1. Chattoraj, B.N.(2006) Children of Women Prisoners in Indian Jail.
2. Ghosh , S. K. (1993) Women and Crime
3. Roy Chowdhury, N. (2002) Indian Prison Laws and Reformation of Prisoners
4. Siddique, Ahmed (2005) Criminology
5. Dodge, Mara; "One Female Prisoner Is of More Trouble than Twenty Male: Women Convicts in Illinois Prison, 1835-1896"; Journal of Social History, Vol.32, No.4 (Summer 1999), pp.907-930
6. Tappan, Paul W; "The Legal Rights of Prisoners"; AAAPS; Vol.293 (Prison Transformation) May 1954; pp.99-111
7. Jacobs, James B; "The Prisoners Rights Movements and Its Impacts, 1960-1980"; Crime and Justice; Vol.2 (1980); pp.429-470
8. Bosworth, Mary; "Engendering Resistance and Power In Women Prisons"; Asghate Dartmouth
9. Cherukari, Suvarna; "Women in Prison- An Insight Into Captivity & Crime"; Cambridge University Press India Pvt.Ltd.

Works Cited :

3. 1950 AIR 27, 1950 SCR 88.
4. AIR 1966 SC 424.
5. AIR 1981 SC 928.
6. AIR 1978 SC 1548.
7. AIR 1980 SC 1535.
8. 1983 AIR 1086, 1983 SCR (3) 508.
9. AIR 1978 SC 1675.
10. AIR 1978 SC 1514.
11. Supra note 14
12. Walmsley Roy, "World Prison Population List," (9th ed.,) ICPS, London.
13. Murali Karnam, "Conditions of Detention in the Prisons of Karnataka," Commonwealth Human Rights Initiative, New Delhi.p-26.
14. NCRB Records2021 accessed on 13th April, 2022.
15. 87 Ramamurthy v. State of Karnataka87 (1996)

❐❐❐

---

1. Research Scholar, School of law Justice & Governance, Gautam Buddha University, Greater Noida, U.P.
2. Assistant Professor, School of law Justice & Governance, Gautam Buddha University, Greater Noida, U.P.

'Vocal for Local' - Special Treatment to MSMEs under Insolvency and Bankruptcy Code, 2016

–Swati Gandhi
–Dr. Rama Sharma

MSMEs are one of the most significant stakeholders in the insolvency resolution process under the IBC. An MSME enterprise can be in the position of corporate debtor if it fails to make payment to its creditors, or it can be in the position of operational creditor who has supplied its goods or services to the Corporate Debtor which is undergoing insolvency resolution. Operational creditor is defined under the IBC as those creditors who have supplied goods and services to the corporate debtor.

Micro, Small and Medium-Term Enterprises (MSMEs) provide a significant contribution in the Indian economy. The vision of our Hon'ble Prime Minister Sh. Narendra Modi, 'Vocal for Local' resonates deeply with the growth and development of MSME sector. They are small or medium-term enterprises providing goods or services to the industry, which operate on a small scale in terms of investment and turnover but have the potential to turnaround the economy in terms of both development and employment generation.MSMEs play a key component in the development of the country and can be seen as a pivotal clog in the wheel of the economy. To promote MSMEs the government comes up special schemes and policies from time to time. One such special treatment given to the MSMEs can be seen through the recent amendment done in the Insolvency and Bankruptcy Code, 2016 with the introduction of Pre-Package Insolvency Resolution Process. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016 is one of the most important economic reforms brought about by the Central Government in the recent times. This Paper explores the position of MSMEs under the Insolvency and Bankruptcy Code, 2016.

Key words: MSMEs, pre-pack resolution, informal process, adjudicating authority.

I. INTRODUCTION

The country is enthusiastically celebrating '75 Years of AzadiKaAmritMahotsav' through various programs and events. Contribution of Micro, Small and Medium Enterprises in the growth and prosperity of the country needs special recognition.Strengthening MSMEs will strengthen Bharat through our Hon'ble Prime Minister Sh. Narendra Modi's mantra of 'Vocal for Local'.

What are MSMEs? MSMEs are small term enterprises, producing and manufacturing goods or rendering services. MSMEs are defined under the Micro, Small or Medium Enterprise Development Act, 2006.[1]

Since there was a long-standing demand from the sector to redefine the definition of MSME, the government has proactively looked into the same and has redefined the MSME classification. The criteria for classification as MSME with effect from July 1, 2020 and as also available at the official website of Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises is:

Micro- Investment in Plant and Machinery or Equipment should be not more than rupees one crore and annual turnover not more than rupees five crore.

Small- Investment in Plant and Machinery or Equipment should be not more than rupees 10 crore and annual turnover not more than rupees 50 crore.

Medium- Investment in Plant and Machinery or Equipment should be not more than rupees 50 crore and annual turnover than rupees two hundred fifty crores.[2]

Need for Amendment in the IBC Law with regard to MSME Sector:

MSMEs are one of the most significant stakeholders in the insolvency resolution process under the IBC. An MSME enterprise can be in the position of corporate debtor if it fails to make payment to its creditors, or it can be in the position of operational creditor who has supplied its goods or services to the Corporate Debtor which is undergoing insolvency resolution. Operational creditor is defined under the IBC as those creditors who have supplied goods and services to the corporate debtor.

In case of default in payment to the creditors by the MSMEs, they are now given special procedural framework for their insolvency resolution, to enable least disruption to their businesses.[3] The newly inserted Chapter under the Insolvency and Bankruptcy Code, 2016 (the Code), 'Pre-Packaged Insolvency Resolution Process', contains provisions relating to insolvency resolution of those corporate debtors which come under the category of micro, small and medium-term enterprises.

TheCode aims to achieve maximization of the value of the assets of the corporate debtor through a time bound resolution whilebalancingthe interest of all the stakeholders.[4]

The onslaught of Covid 19 pandemic in the world has impacted not only the human lives, but also many livelihood activities. The businesses have failed due to imposition of lockdowns, which is not limited to few countries but has impacted the world as a whole.

This was duly recognised by the Government through the promulgation of the Ordinance[5], that the, Covid -19 pandemic has impacted the micro, small and

business enterprises and has exposed them to unprecedented hardships which is beyond their control and perception. This led to an amendment and introduction of a separate chapter covering the pre-packaged insolvency resolution for the MSMEs. Other measures like increasing the default amount to one crore rupees through Gazette Notification[6] for initiating corporate insolvency resolution process and also suspension of CIRP[7] for a period of one year to mitigate the impact of covid on the corporates are other steady steps in the direction.

II. Pre-Package Insolvency Resolution Process for MSMEs

Creditor-in-control to Debtor-in-possession-

MSMEs are now provided with a curated insolvency resolution process to resolve them efficiently without much disturbing their business structure. Under pre-packs, resolution plan is devised through informal negotiation between the promoters and the creditors. In this process, the corporate debtor is allowed to provide base resolution plan to its creditors.[8]There is a deviation from the normal corporate insolvency resolution process(CIRP), that is, in the case of MSMEs they are allowed to be debtor-in-possession unlike creditor-in-control for corporates other than MSMEs. This treatment given to the MSMEs is justifiable as distinctiveness of the corporate debtor requires distinct procedure.

Special Resolution of the Members of the Corporate Debtor has to be passed approving the corporate debtor (CD) to initiate pre-packaged insolvency resolution in terms of section 54A(2)(g) of the Code. The Resolution has to annexed to the application to be filed before the adjudicating authority. Declaration by the majority of the Directors of the CD in terms of section 54A(2)(f) has also to be submitted before the Tribunal. The decision of the directors has to be approved by the financial creditors of the CD.

Adjudicating Authority for Pre-Packs-

National Company Law Tribunal (NCLT) is the adjudicating authority for initiating the pre-package insolvency resolution process and the date of admission of the application is the date of commencement of such process.[9]

Disposal of Pre-Pack Applications by NCLT-

Where an application is filed for initiating pre-packaged insolvency resolution, theadjudicating authority (AA) under section 54 C shall dispose it off by either rejection or admission which has to be done in priority over any other application filed for regular corporate insolvency resolution process during the pendency of pre-package insolvency resolution (PPIR) application in respect of the same corporate debtor.[10]

Minimum Default Threshold Limit in case of MSMEs-

Minimum default amount for pre-packaged insolvency resolution process of MSMEs is Rupees Ten lakhs.[11]Provided that the minimum default amount shall not exceed the value of rupees one crore.[12]

Informal Process for MSMEs through Pre-Packs-

The government was keen to introduce a tailor-made remedy for these small enterprises by allowing them an informal method of resolution, with final approval by the NCLT. In pre-pack resolution, the promoters or the owners of the corporate debtor can have informal discussions and negotiations with the lenders and come to a consensus on the way to resolution. It can be through different methods like restructuring of the debt portfolio, sale of some assets, diluting equity interest of the promoters etc. When the promoters and the creditors agree to a Plan, the same will then be taken to the adjudicating authority for its final approval. So, we can say that it's a two-way process-informal negotiations leading to formal approval by the Tribunal. Approval of the plan by the Tribunal gives confidence to the lenders also, that in future they will not have to face allegations of any biases etc. Promoters are also benefitted with the aspect of confidentiality associated with such informal kind of process at the negotiation stages.[13] Thus,it's a win-win situation for both the promoters as well as creditors.

In contrast to CIRP, wherein, when the resolution process starts the control of the company is transferred from its promoters to its creditors.The retention of management of the corporate debtor in the hands of its promoters in case of MSMEs during pre-pack insolvency resolution can benefit the organisation. Because these small business entities can better be managed by its owners rather than a resolution professional.[14]

The Board of Directors shall manage the business as going concern and file all statutory compliances as they were doing previously. In this manner, the pre-packs provide least disruption to the business, but at the same time; efforts have started to resolve the insolvency of the corporate debtor.

Constitution of Committee of Creditors-

The resolution professional (RP) shall constitute a committee of creditors (CoC) within seven days of the commencement of the pre-package insolvency process.

Approval of Resolution Plan-

The Pre-Package Insolvency Resolution Process (PPIRP) has to be completed within 120 days from the date of its commencement. The base resolution plan has to be submitted by the corporate debtor (CD) within two days of the commencement of the process and the RP shall thereafter present the same before the committee of creditors. The CoC may approve the base resolution plan. If the base resolution plan is not approved by the CoC, then RP shall call for resolution plans from the prospective resolution applicants to compete with the base resolution plan.

If the CoC is of the opinion that the resolution plan submitted in response to an invitation is better in comparison to base resolution plan, then CoC may approve that plan. Sixty-six percent is the requisite majority of CoC for approval of the plan. If no such plan is approved by the CoC, then RP may move an application in the tribunal for termination of the process.

Further, CoChas the powers to direct the promoters to dilute their equity share in the CD if the base resolution plan impairs any claims of the claimants of the corporate debtor. If the base resolution plan does not provide for such dilution and CoC still approves it, then CoC has to record its reasons for approving such plan.If the plan approved by the CoC meets the requirements and is capable of implementation, then AA shall approve the Plan.[15]

The CoC has been given powers to terminate the pre-package insolvency resolution process before approval of any plan by a vote of not less than sixty-six percentage and initiate corporate insolvency resolution process in respect of the said CD if the CD is otherwise eligible for CIRP under Chapter II of the Code.

However, to be fair, such decision should be based on some relevant criterion and should not give a fear in the minds of the genuine promoters that they can be dragged to CIRP at any time by the CoC.

In a first of the case under pre-package insolvency resolution process, GCCL Infrastructure and Projects Ltd. (Corporate debtor) which is an MSME has been admitted by the NCLT Ahmedabad Bench vide its decision dated 14.09.2021.

III. MSMEs as Operational Creditors under IBC

MSMEs can acquire position of operational creditors (OC) in the corporate insolvency resolution process. If any business unit has supplied its goods or services to a corporate debtor which is undergoing insolvency resolution, then claim of such creditors come under the category of operational debt. Section 5(21) defines operational debt and to whom the operational debt is owed are called as operational creditor.[16]

An operational creditor is neither given any representation in the committee of creditors nor any voting rights in the meetings. So, if an MSME undertaking is an operational creditor, then it has like other operational creditors, practically no say in the approval of resolution plan for the corporate debtor as committee of creditors consists only of financial creditors.

Bankruptcy Law Reforms Committee in its Report observed that, “typically operational creditors (OCs) are neither able to decide on matters regarding the insolvency of an entity, nor would be willing to take the risk of postponing their payments for better future prospects of the corporate debtor and concluded that

constitution of committee of creditors (CoC) should be restricted only to financial creditors (FCs) for rapid and effective resolution process".[17]

But it can be seen that many times operational creditors have not been duly compensated in the resolution plan and have been given negligible recoveries.

Need for representation of operational creditors in CIRP: There is a need that there must be some rational criterion under IBC, based on which such OCs may also be included in the CoC and get proportionate voting rights. Voting rights to the OCs are extremely important in the context that while financial creditors get a large portion of their dues, the operational creditors are left with nothing. It is all the more pertinent to bear in mind that OCs operate on a smaller scale and are the ones who actually need repayment of their dues while banks as FCs have a lot of bandwidth to absorb losses.

In ***Rajputana Properties Pvt. Ltd.* v. *Ultra Tech Cement Ltd.*[18],** the NCLAT New Delhi has discussed upon the position of Operational Creditors. The Resolution Professional while examining the resolution plan, has to see that it provides for payment of OC debts also. Under section 24 (3) RP is required to issue notice of meeting of CoC to the operational creditors or their authorised representative only if their aggregate dues is not less than ten percent of the debt. OCs can attend the meetings but have no voting rights in such meetings.[19] The appellate tribunal observed that, although OCs have no voting rights but they may express their views to CoC in reaching a conclusion for the approval of resolution plan, and CoC should record their reasons while approving or rejecting any resolution plan.

In ***Essar Steel***[20]the NCLT suggested to the committee of creditors that dues of operational creditors must get at least similar treatment as compared to the dues of financial creditors on the principles of equity. The NCLAT, also ordered the CoC to consider the suggestions made by NCLT. The NCLAT in its judgment held that there cannot be any difference between financial creditor and an operational creditor in the matter of payment of dues and an equal treatment should be meted out to both the creditors and ordered for a redistribution of proceeds between financial and operational creditors.

The decision of NCLAT was challenged before the Supreme Court on the grounds that code does not provide for identical treatment for different creditors like secured/unsecured financial creditors and operational creditors.

The apex court observed that different creditors cannot be treated equally and that there is a difference between equal and equitable treatment of differently placed creditors. It further observed that if the resolution plan complies with the provisions of the code and the regulations thereunder, the commercial decision of the CoC must be respected by the adjudicating authority.

It may be noted that in the final resolution plan, some of the operational creditors were given nothing, as liquidation value payable to such operational creditors was nil.

This raises an issue of concern with regard to those operational creditors who are allotted nil or many times negligible recoveries under the resolution plan. These OCs are small time players and if such will be the scenario, they may ask for securities for their payments before supplying goods or services to the corporates. This concern found words in decision of NCLAT New Delhi in ***Binani Industries Limited***[21] wherein, the court observed that if operational creditors are discriminated against financial creditors in payment of dues, then they will be wary in providing goods and services to the corporates on credit which will also defeat the object of availability of credit in market.

IV. Conclusion and Suggestions

The success of this newly introduced resolution process especially curated for the MSME sector may depend upon the scale of its implementation. The more this simplified remedy for curing insolvency is resorted to by the businesses, the more successful the resolution process would prove to be. If attempts and initiatives are taken by the promoters or the directors to resolve the insolvency of their businesses in the initial stages only, the more fruitful the whole process would turn out to be. It is always better to go in for early intervention of resolution mechanism, lest the business fails completely. The legal procedure adopted through pre-packaged or pre-designed resolution plan can prove to be a game changer in the resolution business of the country.

The Corporate Insolvency Resolution Process has already shown a remarkable feat since its implementation.Industry experts are keenly watching the developmentsin the Pre-Packaged Insolvency Resolution Process as it is a recently added feather in the cap of the Insolvency and Bankruptcy Code.

It is expected that MSME sector will show enthusiasm in resorting to this pre-package insolvency resolution process. The final approval of the Resolution Plan by the NCLT gives the stamp of finality and reliability to the complete procedure of pre-packs under this newly introduced IBC regime.

The Government is doing many efforts for helping the MSME sector through its schemes and policies. In this stead, it would be highly beneficial if the legislators bring in some legal changes under the current Insolvency and Bankruptcy Code, to give due representation and decision-making power to the operational creditors also in the corporate insolvency resolution process, which may benefit operational creditors in general and MSMEs in particular.

References :

1. The Micro, Small and Medium Enterprises Development Act, 2006 (Act 27 of 2006), s. 7.
2. https://www.msme.gov.in
3. The Insolvency and Bankruptcy Code, 2016 (Act 31 of 2016), Chapter III A, Ins. by Act No. 26 of 2021 (w.e.f. 04.04.2021).
4. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, Preamble reads thus, "An Act to consolidate and amend the laws relating to reorganisation and insolvency resolution of corporate persons, partnership firms and individuals in a time bound manner for maximisation of value of assets of such persons, to promote entrepreneurship, availability of credit and balance the interest of all the stakeholders including alteration in the order of priority of payment of Government dues and to establish an Insolvency and Bankruptcy Board of India, and for matters connected therewith or incidental thereto."
5. The Insolvency and Bankruptcy Code (Amendment) Ordinance, 2021 (No. 3 of 2021).
6. Ministry of Corporate Affairs, Notification dated 24.03.2020 *available at:* www.ibbi.gov.in
7. Ministry of Corporate Affairs, Notification dated 22.12.2020 – suspension of CIRP initiation extended for another period of three months from 25.12.2020, so covid suspension remained from 25.03.2020 to March, 2021.
8. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, section 5 (2A).
9. Insolvency and Bankruptcy Code,2016section 5 (23B).
10. Insolvency and Bankruptcy Code,2016section 11A
11. Ministry of Corporate Affairs, Notification dated 09.04.2021.
12. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, s.4- "…. Provided further that the Central Government, may by notification, specify such minimum amount of default of higher value, which shall not be more than one crore rupees, for matters relating to the pre-packaged insolvency resolution process of corporate debtors under Chapter III –A."
13. BallewarAnamika, "What, Why and How of Pre-Pack Insolvency" available at taxguru.in/corporate-law/what-pre-pack-insolvency.html
14. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, s. 54H
15. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, s.54K and s. 54L.
16. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, s.5(21) defines operational debt as, "claim in respect of the provision of goods or services including employment or a debt in respect of the payment of dues arising under any law for the time being in force and payable to the Central Government, any State Government or any local authority".Section 5(20) defines operational creditor as "a person to whom an operational debt is owed and includes any person to whom such debt has been legally assigned or transferred."
17. Bankruptcy Law Reforms Committee Report dated 04.11.2015, www.ibbi.gov.in
18. 2018 SCC OnLine NCLAT 1059.
19. Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, No. 31, Acts of Parliament, 2016 (India), sec. 24 (4).
20. Committee of Creditors of Essar Steel India Ltd. v. Satish Kumar Gupta, (2020) 8 Supreme Court Cases 531: 2019 SCC OnLine SC 1478.
21. Binani Industries Ltd. v. Bank of Baroda, 2018 SCC OnLine NCLAT 521

❑❑❑

1. Research Scholar Gautam Buddha University
2. Assistant Professor Law Gautam Buddha University

Internet of Things (IOT) and market research: ethical and data privacy issues

–Vardan Dikshit
–Dr. Abhishek Upadhyay

The Internet of Things (IoT) has the potential to improve several elements of marketing research. The technological capabilities of IoT can enable marketing managers to plan and conduct thorough marketing research. To do this study properly, a number of criteria must be addressed. For example, because ease is such an important aspect of the consumer experience and the brand as a whole, it has become a strategic marketing strategy. The strategy and communication methods used with IoT platforms for marketing research allow marketing managers to create a good connection with customers.

The Internet of Things (IoT) was first recognised as a concept in 1999, with the goal of supporting RFID technology and associated computing devices. Computers, cellphones, wireless sensor networks, home/building automation, manufacturing equipment, software applications, and smart appliances are among the gadgets available. IoT allows consumers and businesses to get a wide range of benefits by collecting, processing, and exchanging data. For example, with IoT devices, it is feasible to use electronic tools to diagnose, cure, and prevent illnesses. Furthermore, it is possible to combine consuming appliances into a single IoT system, improving power consumption efficiency. In marketing, IoT-enabled smart appliances can track product availability, allowing owners to get advice on new purchases, offers, and trends. Simultaneously, according to several studies and IT specialists, the number of IoT devices will reach 30 billion by 2020. IoT devices are now being employed as a critical tool in marketing research. Organizations market various products and services using IoT devices and other modern technologies such as artificial intelligence, machine learning, and social media. IoT devices are used to communicate with consumers, collect marketing data, and evaluate marketing trends and performance metrics, among other things. The possibilities for IoT in corporate analytics are virtually limitless.

This article examines the use of the Internet of Things in marketing research. IoT technologies are regarded as a cutting-edge option for enhancing numerous aspects of organisational performance. The constant usage of IoT devices and applications leads

to enhanced information interchange in marketing research, as demonstrated in this paper. Furthermore, the essay goes over important facts about IoT's ability to improve organisational competitiveness in a global corporate context. Finally, this study discusses the issues that come with incorporating IoT into marketing research. Individuals and practitioners in business research may increase their understanding of existing IoT platforms and how they can be used to achieve optimal results by studying such difficulties.

Innovative Capacities of IoT in Marketing Research

The Internet of Things (IoT) has the potential to improve several elements of marketing research. The technological capabilities of IoT can enable marketing managers to plan and conduct thorough marketing research. To do this study properly, a number of criteria must be addressed. For example, because ease is such an important aspect of the consumer experience and the brand as a whole, it has become a strategic marketing strategy. The strategy and communication methods used with IoT platforms for marketing research allow marketing managers to create a good connection with customers. Machine-to-machine (M2M) connectivity, automation, and big data are all IoT capabilities that may help marketing managers quickly find marketing possibilities and segment the market.This characteristic can also become a foundation for customercentric marketing. IoT devices tend to facilitate the advertisement process to become less inconvenient, as these technologies provide flexibility to the target audience to acquire a product or brand-related information based on their choice and preference.

In the realm of communication, IoT platforms open up a slew of new possibilities for businesses. IoT and social media have the potential to significantly extend marketing channels and tools. Social media is now being used by businesses to get feedback on their products and services (Ray, 2018). The combination of IoT with social media can create a digital area where a firm and its target audience can have a more personal relationship (Caro and Sadr, 2019). In addition to exchanging personal information, there is a greater chance of expanding the consumer base (Vermesan and Friess, 2014). Whole, IoT technologies have the potential to revolutionise the overall architecture of corporate communication by becoming an important component of integrated marketing communications (IMC). One of a company's key objectives is to do marketing research. IoT platforms provide opportunities to gather consumer data in limitless volume, velocity, and variety. Age, gender, preferences, social position, income, hobbies, shopping behaviours, location, and other sorts of behaviour are common types of data. Market segmentation opportunities have grown in breadth and potency. Industrial automation systems can assist marketing managers quickly collect precise and variable customer behaviour attributes since communication between networked computer equipment is faster as a result of IoT adoption (Ray, 2018). As a

consequence, marketing research and organisational performance are greatly improved as a result of this procedure. A large number of customers have already begun to use current technologies like social media, gadgets, and smartphones to help them make shopping decisions and make their payment alternatives more convenient. Consumers are becoming increasingly willing to use mobile and wearable technologies while shopping. This trend is particularly captivating for companies, as they can collect information about purchasing patterns and types of consumers (age, gender, social status, etc.). It will further help organizations develop qualitative and quantitative databases that might improve the product development process, supply chain method, advertising strategy, and marketing research. The ability of IoT systems to explore location-based customer information must be emphasised by businesses. Market segmentation is one of the most important aspects of marketing research (along with industry intelligence, market trends, data analysis, SWOT analysis, and PEST analysis) (Pauget and Dammak, 2019). Recognizing the segmentation of targeted clients is critical for businesses. IoT as a tool may assist marketing managers combine numerous aspects in the analytical process to make data-driven decisions in the context of marketing research (Madakam et al., 2015). Effective marketing analytics may help organisationsmaximise efficacy, performance, and return on investment by gathering high-quality data (ROI).

Some clients, on the other hand, are concerned about the security and privacy risks that come with using new technology. Given the risks, dangers, and obstacles connected with the use of IoT in marketing research, security and privacy have emerged as a hot topic (Vermesan and Friess, 2014). It has been shown that a significant proportion of consumers are willing to submit personal information in return for product offers, prizes, and coupons (Ray, 2018). It's become a popular way for marketers to get customers to reveal their personal information (Caro and Sadr, 2019). However, the security implications of this trend should be investigated further in order to prevent the exploitation of consumers' personal information. The comprehensive scientific research on IoT can create additional opportunities to eliminate challenges and risks. It is important to consider users' consent initially to transfer data and connectivity plans and ensure their anonymity. Anonymity is a difficult subject to deal with, especially when marketing specialists are gathering personal information from customers for promotional purposes. The use of Internet of Things (IoT) technology to all elements of marketing necessitates a meaningful link between customers, mobile devices, and the Internet. In this case, the integration of many components into a single mobile application boosts productivity and consumer happiness (Caro and Sadr, 2019). Companies may offer a wide range of products and services to customers thanks to the widespread

usage of IoT technology. Individuals may choose from a variety of alternatives based on their interests and preferences, ensuring that the concept of flexibility is properly included into IoT for marketing research (Pauget and Dammak, 2019).

Use of IoT to Enhance Information Exchange in Marketing Research

In marketing research, it's critical to evaluate the specific environment in which customers utilise certain products or services. Customer impressions are influenced by the external environment as well as the conditions of consuming those items or services (Caro and Sadr, 2019). In this light, the felt data gleaned from consumers' reactions is a critical source of feedback for businesses (Pauget and Dammak, 2019). Similar details are frequently explored when determining an individual's personal demands and preferences. Marketers' first priority is to provide a positive consumer experience. In today's competitive business world, one method to please customers is to tailor the information supplied to them. It's important to remember that the process of information transmission should have significant value and significance for individuals who use it. To facilitate the whole breadth of marketing research and help organisations acquire more permanent competitive advantages, a detailed examination of human expectations and preferences is required (Ray, 2018). As a result, IoT technology may be employed in marketing research to improve information transmission. The ability to measure and monitor consumers' emotional states utilising specific products or services is a big benefit of IoT in the marketing environment (Moradi et al., 2017).

The information gathered by IoT devices flows from users to organisations, increasing communication among key players in a given sector. Companies, in turn, utilise the data to create new, more efficient apps to meet the demands of their consumers (Pauget and Dammak, 2019). The usage of IoT devices in marketing allows for more interaction between marketers and consumers in terms of obtaining and assessing particular data that can be strategically employed to benefit various groups of people (Kosmatos et al., 2011). Marketing departments acquire useful information on client reactions to certain products or services. Such input means more opportunities for refinement and modification, which is in keeping with businesses' top priority of providing the best possible customer experience. Customers desire to be well-informed about the newest IoTdevelopments, which means that businesses must build and maintain a clear information sharing method. Transparency and open communication are features that assist consumers in making informed decisions based on thorough information about products or services (Kosmatos et al., 2011). The multimodal character of IoT allows stakeholders to appreciate the ramifications of the 21st century's continually informed society (Gigli and Koo, 2011). Better educated stakeholders can suggest better business growth choices that are consistent with the organization's overall strategic direction and goal.

Contributions of IoT Technologies to Organizational Competitiveness

The focus on boosting organisational competitiveness is continually maintained since firms prefer to evaluate the numerous consequences of personalising the customer experience. It has been suggested that smart, connected gadgets, as well as the data they provide, have become critical for competitive advantage (Pauget and Dammak, 2019). Organizations use the information they receive about users' preferences and expectations to develop new marketing tactics and techniques to better engage customers (Ray, 2018). The investigation of sensing devices in the context of the Internet of Things raises the question of how this process could affect organisational competitiveness. The use of biosensors to collect meaningful information about consumers' reactions is a strong basis for gaining competitive advantages. Marketers may draw more thorough conclusions about current and future customer behaviour trends by combining all of these facts (Vermesan and Friess, 2014). Since a result, the development and adaption of IoT are sufficiently considered, as the focus is not only on gratifying customers, but also on grasping particular changes linked with the competitive force. Organizations are most likely to reconsider their present marketing approach in light of current competitive situations. When firms evaluate the application of IoT in marketing research to boost their competitiveness, one of Porter's five-force model's dimensions, consumer bargaining power, is stressed. The insights gained through IoT devices might either increase or decrease customers' negotiating power, especially when businesses are pushed to use new means of communication. At the same time, changing to a new supplier might impact users' satisfaction with particular products or services (Vermesan and Friess, 2014). Companies are expected to demonstrate a high level of strategic and market preparedness to address any changes that might occur in the process of integrating IoT technologies into marketing research. IoT adoption is frequently linked to considerably better products and services that are tailored to the requirements and preferences of customers. As a result of the extra benefits from IoT adoption, the marketing departments of firms may be able to improve their performance (Vermesan and Friess, 2014). Even if there may be a change in power in the context of marketing research, this implies that buyers may have extra motivations to acquire particular items. To develop creative and competitive IoT goods and services, companies often focus on forming cross-functional teams from diverse business groups (Caro and Sadr, 2019). For long-term success, new IoT solutions are aligned with the organization's vision and strategy.

Development of IoT Tools and Challenges

In the development of IoT tools, researchers and practitioners collaborate. While using efficient IoT solutions is related with organisational success, it is also

critical to consider the ongoing cooperation between academics and practitioners in developing optimum methods that might lead to business excellence. Referring to the collaborative IoT paradigm in this context gives useful insights into the engagement of academics and marketing specialists, highlighting the concept of collaboration in data collecting and analysis (Stankovic, 2014). Because of this constant collaboration, the notion of service sharing has also improved (Rahman and Asyhari, 2019). Academics are expected to demonstrate their wide expertise by acquiring relevant data that may be utilised to construct complete IoT tools. The reason for favoring such an approach is that academics can collect research information and interpret it from multiple perspectives (Farooq et al., 2015). They can share insights that can provide relevant strategic directions to marketing practitioners and IT specialists. Academic researchers' expertise can be utilized for the generation of creative and innovative ideas about the IoT sector (Wang et al., 2015). The combination of important theoretical assumptions and practical experience is vital to achieving the strategic goals of the collaboration between academics and practitioners. Academics' most important lesson about the use of IoT technologies is that it is possible to harness the power of technology in order to improve people's lives. One of the most important aspects of the collaboration between academics and practitioners in building competitive IoT solutions is to keep this wide viewpoint in mind (Wang et al., 2015). As a result of this constant collaboration, novel solutions for various consumer groups may be given. Academics, for example, may create efficient IoT solutions to assist persons with speech difficulties after doing comprehensive study on the boundless potential of IoT applications (Suh, Seo, and Park, 2018). Academics' ideas would be validated by practitioners in a given field after they were presented. High trust and open communication appear to characterise such teamwork. Academics and practitioners alike feel more powerful when discussing the advantages of various IoT solutions since they are committed to common goals. Both parties must be aware of the need of using open communication channels to properly communicate their thoughts (Wang et al., 2015). Because they are motivated by the same goals, academics and practitioners enjoy collaboration because it may lead them in the right direction (Angelova, Kiryakova, and Yordanova, 2017). Academics and practitioners alike are focused on the successful completion of specific projects employing IoT tools, but they may require more time to reevaluate strategic possibilities for real transformation.

Conclusion

The use of IoT in marketing research was investigated in this work. With their novel capabilities, IoT solutions have arisen to assist marketers in replacing traditional marketing research operations with more complete and reliable data

analysis formats. The usage of Internet of Things tools has been shown to improve the role and functions of information exchange in marketing research. Digital marketers were able to enhance their research and add new dimensions to marketing by utilising a variety of IoT technologies and methods. The report demonstrated how continuous usage of IoT technology increased organisational competitiveness significantly. There was also a talk on academics and practitioners working together to build IoT technologies. Academics and practitioners' perspectives revealed particular tendencies in customer experience using IoT solutions. The research did warn out, however, that the collection of significant data is linked to the creation of specific issues, necessitating a holistic approach to producing effective and competitive IoT products. The most significant obstacles to implementing IoT technologies were stated as ethical and data privacy concerns. Consumers in the digital world, without a doubt, expect to be well safeguarded, which would accelerate the adoption of IoT solutions. Future research may need to concentrate on strategies to increase academic-practice collaboration in order to create more conclusive findings concerning the strategic direction for building transparent and complete IoT solutions.

Refrences :

1. Al Hogail, A. (2018).Improving IoT technology adoption through improving consumer trust. Technologies, 6, 64-80. https://doi.org/10.3390/technologies6030064.
2. Allhoff, F., Henschke, A. (2018). The Internet of Things: Foundational ethical issues. Internet of Things, 1-2, 55-66. https://doi.org/10.1016/j.iot.2018.08.005.
3. Angelova, N., Kiryakova, G., Yordanova, L. (2017). The great impact of Internet of Things on business. Trakia Journal of Sciences, 15(1), 406-412. https://doi.org/10.15547/tjs.2017.s.01.068.
4. Baldini, G., Botterman, M., Neisse, R., Tallacchini, M. (2018). Ethical design in the Internet of Things. Science and Engineering Ethics, 24(3), 905-925. https://doi.org/10.1007/s11948-016-9754-5.
5. Caro, F., Sadr, R. (2019). The Internet of Things (IoT) in retail: Bridging supply and demand. Business Horizons, 62(1), 47-54. https://doi.org/10.1016/j.bushor.2018.08.002.
6. Farooq, M.U., Waseem, M., Mazhar, S., Khairi, A., Kamal, T. (2015). A review on Internet of Things (IoT). International Journal of Computer Applications, 113(1), 1-7. https://doi.org/10.5120/19787-1571.
7. Gigli, M., Koo, S. (2011). Internet of Things, services and applications categorization. Advances in Internet of Things, 1, 27-31. https://doi.org/10.4236/ait.2011.12004.
8. Hoffman, D.L., Novak, T.P. (2018). Consumer and object experience in the Internet of Things: An assemblage theory approach. Journal of Consumer Research, 44(6), 1178-1204. https://doi.org/10.1093/jcr/ucx105.

❒❒❒

1. Research Scholar, JS University, Shikohabad
2. Guide, JS University, Shikohabad

Tourism Planning and Development in Uttarakhand- Prospects and Challenges

–Dr. Rituraj Pant
–Dr. Himani
–Pragya Joshi

Uttarakhand is the 27th state of India and it is fastest developing state in which Tourism plays a vital role. Statistics shows the growing figures every year and so the destinations shouldget ready to take advantage and taste the fruit of benefits. Tourism development board has designed fantastic strategies to foster the growth of tourism. But the success is depended on its implementation and approachability to local people. Various regions are the niche destination which if can be developed with promotional, infrastructure and geographical aspect which will benefit all i.e. tourist, localities, and government.

Uttarakhand is the state of northern India which has Ample of Opportunities of Tourism. from Past many Years it has attracted many Tourists Across India and world. In Uttarakhand tourism portfolio is vast and diverse. For all varietyof tourist Uttarakhand has great potential like pilgrimage, temples, wildlife tours, bird watching, rafting, mountaineering, skewing, trekking, camping, yoga, meditation and much more.

Not only it has attracted many tourists but also have proved as an economic strength to state and localities. It has given financial stability to people of Uttarakhand. Two decades back only few options were there for tourism in Uttarakhand. Religious spots were the onlyscope but with the development of new policies, scope has widened. The growth chart reveals the change in tourist visits.

Recent developments in the region include initiatives by the state government to capitalize on the widening visitor trade. (Table-1)

It can understand from above data that there is a continuous growth in the tourist visits in last 20 years. All this is the contribution of strategic formulation and implementation of tourist development board. Major determinant in increased tourism in Uttarakhand is its tourism policy. From time to time Various objective is laid down bythe board to develop its different aspects of tourism. With the passing of time state government has realised the importance of tourism and its positive impact on state and its development.

Table-1 : Growth in Tourist visit–domestic and commercial

S. No.	Year	Domestic Tourist visits (million)	Foreign Tourist visits (million)	Total Tourist visits (million)
1	2000	11.08	0.057	11.137
2	2001	10.55	0.055	10.605
3	2002	11.65	0.056	11.706
4	2003	12.93	0.064	12.994
5	2004	13.83	0.075	13.905
6	2005	16.28	0.093	16.373
7	2006	19.36	0.096	19.456
8	2007	22.15	0.106	22.256
9	2008	23.06	0.112	23.172
10	2009	23.15	0.118	23.268
11	2010	30.97	0.136	31.106
12	2011	26.67	0.143	26.813
13	2012	28.29	0.125	28.415
14	2013	19.94	0.097	20.037
15	2014	21.99	0.102	22.092
16	2015	27.46	0.091	27.551
17	2016	29.75	0.092	29.842
18	2017	34.58	0.142	34.722
19	2018	36.69	0.154	36.85

Keyfactor of Growth and development –Uttarakhand tourism policy

Tourism sector provides strategic importance in the upliftment of Indian economy and also provides social as well as economic benefits like employment, income and foreign exchange, development or expansion of other industries such as agriculture, construction, handicrafts etc. are some of the important economic benefits provided by the tourism sector. Also, government expenditure in development if infrastructure has led to the development of INDIAN ECONOMY.

The first tourism policy was developed in 2001, with the objective to develop the world class infrastructure to attract more tourists, attract more private players, explore new tourism spots and provide facilities to tourists. Large number of opportunities still needs to explore to enhance the income generation, employment opportunity and prevention of local peoples from moving to cities.

Tourist Arrival	Year 2001	Year 2017
Indian	105.4 lakhs	345.8 lakhs
International	0.54 lakhs	1.42 lakhs

Source : Uttarakhand Tourism Development Board

Uttarakhand Tourism Policy 2017–keypoints

- Foremost is the development of those lands which have high tourism potential
- Rules were made regarding registration of agencies and tourist service enterprises.
- Provisions were made to attract new entrepreneur in this field
- Unidentified or niche market and products of tourism are needed to be developed through a well-planned strategy which include product/ activities, destinations, infrastructure Development etc.
- Assessment of infrastructural pitfalls and its development, creation of employment opportunities and planning for availability of budget for its development of facilities.
- Initiative in the field of attracting private ownership and its collaboration with government by single window clearance.
- Cooperation with world level funding agencies like World Bank and ADB for providing funds and getting assistance through other schemes of central government like smart cities etc.
- Conservation and prevention of nature and environment through 3 R- reuse, recycle and reduce and stable and responsible tourism is promoted. Protection of natural resources from its depletion is also considered.
- Apart from old and limited tourism, new location, destination, activities are identified and developed.

Most popular kind of tourism is Ecotourism and Wild life Tourism, Adventure Tourism which include activities like-rock climbing, bungee jumping, aero sports activities like hot air ballooning, paragliding, parasailing and water sports

River Rafting/Kayaking, and Mountaineering, Aero Sports, Angling/Game-fishing

- Rural Tourism–kind of ecotourism in which tourists actively participate in a rural lifestyle
- Agri Tourism-attracts tourist farm activities
- Home stays is a kind of tourism in which tourist can stays in local houses of the people with their family in their lifestyle.

Tourism policy 2018

Tourism plays significant role in the economy of Uttarakhand and is also the major source of employment generation. During 2006-07 to 2016-17, the sector announced for over 50% of GSDP. As per the data of CSO , this sector is magnificently contributing to the service sector GDP of the state. The first Tourism Policy of Uttarakhand was formed at the time of formation of state i.e. in 2001,

and new policy is devised in 2017 after looking over the changes in touris's influx to various kinds of tourism.

Key points of Tourism policy 2018-New Tourism Policy 2018 was introduced in Uttarakhand during „ Destination Uttarakhand Investor Summit 2018.

The policy provides„ Industry status to Tourism through this creating investment opportunity for investors by offering favourable incentives, subsidies & provisions. The policy also lays down a roadmap for the Govt. of Uttarakhand's flagship 13 districts, 13 destinations' scheme for systematic development of these destinations.

1. The new tourism policy has introduced 'Industry tourism' an emerging kind of tourism, where investors are invited with good incentives to invest in small industry, investment limiting 10cr.
2. Tourism Policy 2018 has developed capacity building and development programme in collaboration with Uttarakhand skill development mission to develop opportunity in employment in service like cook, gardening, driver, housekeeping, guide, security etc.
3. Film Tourism And Golf Tourism Are New In Tourism Product Category Which Is Expected To Generate Huge Income
4. To Making Tourism More Convenient and Easier, Helipads Are Proposed in Collaboration with Aviation Department.
5. Scheme For Income of Permanent Residents Through Home stay which must have minimum 1or maximum of 6 rooms for tourists, for hill areas government provides capital subsidy of 33% or 10 lakh, whichever is minimum.

Development of Tourism and Tourism Destinations in Uttarakhand

1. **Adventure Tourism** - There are many adventure tourism activities like trekking with different trek circuits like, Watersports -Rishikesh, Auli, Trekking at Hemkund Sahib, Jharipani, Maldevta, Tons Valley, Dhanaulti, Tehri
2. **Ecotourism**- Uttarakhand is enriched with healthy ecology. It has the dense forests, snow- capped mountains, high altitude lakes, rolling meadows, wetland habitat and exotic wildlife, birds and plants species in Kumaun and Garhwal regions.
3. **Cultural tourism**-Uttarakhand is endowed with the cultural wealth in form of art, music, festivals, language, theatre and dance. Culture of Uttarakhand is ancient and deep rooted, also attached to its nature and religion.
4. **HealthTourism**-In recent times Uttarakhand has proved as a plot of rejuvenation, it has ample opportunity of creating health as wealth through change in climate, yoga, meditation, medical treatment and Ayurveda treatment. It has number of ashrams, retreat centres and spas. Rishikesh is famous for its yoga.

Many ashrams are there in Haridwar, Pithoragarh, Ramgarh, Champawat. Jageshwar, Almora, Nainital.

5. **Spiritual tourism-** Pligrimage spots are there for all religion tourists, for Hindus there is Haridwar as a gateway to god, Kedarnath, Badrinath and all Dhams. For Sikhs there are famous gurudwara like Hemkund sahib, Ponta sahib and Reetha sahib, foe Muslims there are famous mosques and Mazar in Nainital and Roorkee and Churcha real so here from Britishers time.
6. **Wildlife Tourism-**It is very famous for watching wildlife in their own homes-freely and in open sky in a wide land area - Jim Corbett National Park, Rajaji National Park, Binsar Wildlife Sanctuary, Kedarnath Musk Deer Sanctuary, Nanda Devi National Park, Askot Musk Deer Sanctuary, Neel Dhara, Pakshi Vihar, Benog Wildlife Sanctuary, Govind Wildlife Sanctuary.

Impact of Tourism Planning and development-

- Generationof employment
- Speedy development of infrastructure in most tourist destination-road facility, recreation facility in char Dham yatra, network connectivity etc.
- Exploration of more rural and local
- Improved state economy
- Improved local economy
- Tax revenue
- New business opportunity
- Sustainable development of state

Challenges in tourism planning and development

- Environment protection from different types of pollution-state is succeeded in increasing tourism in recent years, but still there is no such strategy is devised to control the solid waste and pollution
- Disaster Prone Areas–There are numerous instances where development is on disaster-prone high-risk zone.
- Lack of tracing and scanning instruments for number tourists.
- Problem of Parking and Traffic Management at major Hill Stations.
- Availability of Portable drinking water at all destinations.
- Security measures for protection of tourists from local gangs and localities from tourists dominants.

2. OBJECTIVE OF THE STUDY

- A-To determine the growth and affecting factors of tourism in Uttarakhand.
- B-To study the fields of government initiative towards tourism development

3. SCOPE OF THE STUDY

- The study will help local people for new scopes of business
- The study will help government to identify the growth and hurdles in tourism

• The study will provide the different facets of development
• The study encourages retention and limits migration

4. LIMITATIONOFTHE STUDY

• Study is based on secondary data only

5. LITERATUREREVIEW

Few studies have been done but not particularly on planning and development and not denoting any strategy of development of tourism-

Dhiraj Pathak, Indu Tiwari, Shashi K Tiwari Tourism in Uttarakhand: An Introspection :. “The locals have now understood the power of tourism as an option for economic, environmental and social development. Uttarakhand s tourism growth can be attributed to enumerable number of factors.”

6. RESEARCH METHODOLOGY

The research design adopted for the study was descriptive research design. Data collection was done through secondary source. The secondary data was collected through government portal and magazines, central statistical organization.

7. DATA ANALYSIS AND INTERPRETATION

The whole studywas based on the growth statistics of tourism in Uttarakhand. New activities to attract tourism are put to more attention to develop. Efforts are made to attract all kind of tourists. And various policies are also developed and helping localities to stay there in their home place and earn from there. By keeping into consideration, the number of tourists, government is developing various activities and developing programmes to promote tourism-

7.1 Development of Theme wise destination to attract tourism:

Government has developed various zones to attract tourism in different ways. new products like health and wellness, film tourism, educational tourism, golf tourism, adventure games and land are in the plan to progress in tourism.

7.2 Initiative to Attractinve stors:

Study revealed that various subsidies and incentives are introduced to investors to start their industry in state which will be helpful in the generation of employment and economic standability of state

7.3 Development of infrastructure factors:

The study reveals that development of infrastructure facility is always been the priority of board. Monsoon season puts the tourism in low pace due to the breakdown of road and communication network. Hotels and other home stays also gets affected due to heavy rainfall and landslide, which create the fear among tourist to visit the Hilly region. Due to thistourism scope is limited to favourable seasons only.

7.4 Skill development plans to cater the need of tourists:

Various skills development plan like cooking, driving, cleaning, guiding and many other programmes are on the way to prepare the localities to serve the tourists. Uttarakhand are in such remote areas to which are known to only local people and accessible to them only but they are high in their spirituality and peace. In such case Local guides could help better in placing them to their need fulfilment.

7.5 Opening the closed doors-HOME STAY:

Though government is taking positive steps toward facilitation of tourism and encouraging local public also to earn through it. Government has approved many schemes for the development of homestay, as many tourists want to get deep rooted with such beautifulplaces of Uttarakhand and for that purpose homestay are best option to stay connected. It is also helping in reducing migration from hilly areas to plain

Conclusion

Uttarakhand is the 27th state of India and it is fastest developing state in which Tourism plays a vital role. Statistics shows the growing figures every year and so the destinations shouldget ready to take advantage and taste the fruit of benefits. Tourism development board has designed fantastic strategies to foster the growth of tourism. But the success is depended on its implementation and approachability to local people. Various regions are the niche destination which if can be developed with promotional, infrastructure and geographical aspect which will benefit all i.e. tourist, localities, and government. Hugely it will lowerdown the migration and will promote regional imbalance as people will get new sources of livelihood at their nearest. Though some flaws are present everywhere but they can be fixed by turning them to opportunity but by considering the benefit of all.

References:

1. Uttarakhand tourism policy 2017
2. Uttarakhand tourism policy 2018
3. Published Tourist statistics from Uttarakhand tourism development board
4. Tourism and hospitality sector profile, Uttarakhand tourism development board
5. Annual Report 2016-17, Ministry of Tourism, Government of India
6. AC Nielsen ORG-MARG Pvt. Ltd., tourism statistics for the State of Uttaranchal.
7. Dhiraj Pathak, Indu Tiwari, Shashi K Tiwari, Tourism in Uttarakhand: An Introspection, international conference on recent development in engineering science, humanities and management, ISBN978-93-86171-36-8. Website : www.uttarakhandtourism.gov.in, www.investuttarakhand.com

❐❐❐

1. Asst. Prof., Deptt. of commerce, I.P.G.G.P.G.C.C. Haldwani (Nainital), UK
   E-mail : riturajpant@gmail.com)
2. Asst. Prof., Deptt. of Economics, Bhakt Darshan Govt PG College Jaiharikhal (Garhwal), UK
   E-mail : himanipant1984@gmail.com
3. Asst. Prof., Devsthali Vidyapeeth College of Professional Studies, Rudrapur (US Nagar), UK
   E-mail : joshi.pragya63@gmail.com

Right to Privacy in Cyberspace: Is it Real or Fake?

–Kamshad Mohsin
–Harshit Kiran

A synopsis of the remarks in the writing is that right to security is the option to safeguard everything that is straightforwardly connected with the individual (body, home, property, considerations, sentiments, mysteries, personality, correspondence, and so forth). This right permits the person to decide for himself which part of the individual space to make accessible to other people, as well as to decide the way and season of purpose. An investigation of the advancement of the idea of the right to security, along with a similar examination of the option to its worldwide insurance, was made.

The point of the article is to audit the improvement of the contemporary data society in view of developing informatization of social cycles and to arrange the fundamental difficulties for client's security and individual information insurance. In this reason a concise outline of highlights of advanced age in view of the fundamental security issues is made and the potential issues for the individual information are talked about.

This article means to introduce the verifiable advancement of Right to Privacy in India, in order to comprehend the significance of this idea in the existence of an individual and the general public overall. First and foremost, a short conversation on the significance of 'Security' will be done, trailed by the advancement of Right to Privacy in India. Beginning from the antiquated times to the cutting-edge times, where in the old times we would zero in on old laws of 'Dharmashastras' and Hindu texts like Hitopadesha, Upanishads, Arthashastra and so on Then, at that point, for the cutting edge times we would zero in on Right to Security during the English period and the different conversations and thoughts that occurred in the Constituent Get together on Right to Privacy to make it separated of Key Privileges, after the autonomy of India.

Keywords: Informatization, Digitalization, Right to Privacy, Fundamental Rights, Cases

Introduction

The consistent expansion in the use of data and correspondence advances in current social cycles influences the improvement of the data society and decides the need to know their elements and abilities and the effect on security[1-2]. One of the subjects for conversation in the computerized age is the degree of capability of clients of advanced administrations

in the organization space and their computerized proficiency[3-4]. This is connected with the informatization of society, which constructs the premise of the data society and is a nonstop interaction for social, monetary and logical, and specialized advancement of the social data climate[5]. The point is to set out open doors to meet the data needs of individuals in the acknowledgment of the privileges of residents, specialists, and associations. This requires guaranteeing sufficient individual information security for clients utilizing ICT, for example, virtual entertainment[6], and for the exchange, stockpiling, or remote admittance to conveyed data assets in the worldwide computerized space, remembering for the cloud[7].

Development of the Data Society

The presentation of the idea of "data society" was made at the same time in Japan and the US during the 1960s, and during the 1970s and 1980s, various terms were sent off, contrastingly connected with the reliable informatization of society through the approach of ICT. "Informatization" is presented in two autonomous works by Marc Porat (1977) and S. Nora and A. Minc (1978). Afterward, Academician A. P. Ershov (Russia) characterized informatization as "a bunch of measures to guarantee the full utilization of solid and far-reaching information in all socially huge exercises", and G. Wang (1994) connected it to the cycles of advancing data and speeding up its dispersal to raise the financial, political, social and social status of society.

Toward the start of the 21st century, different creators characterize informatization as a reason for building an advanced data society and characterize it as a cycle for more huge utilization of contemporary Information & Communication Technologies, ICT (Everett Rogers, 2000). Kim (2004) proposes estimating the degree of informatization in individual nations in view of the rules (boundaries): "Schooling", "Exploration", "Farming area", "Licensed innovation" and offers 3 methodologies for its theoretical definition:

1. Financial data;
2. Mechanical capacities (ICT information and number of PCs per unit of populace);
3. Mindfulness (number of distributed mechanical diaries).

A synopsis of the informatization of society at the current stage is made in[8], characterizing it as "advancement, excellent improvement, extremist reinforcing through present day data and innovative method for mental social constructions and cycles".

Two primary ways to deal with public informatization can be resolved[9]:

a) a technocratic approach in which ICT are essentially pointed toward guaranteeing higher effectiveness of work in the field of creation and the board;
b) humanistic methodology, thinking about informatization as an interaction for advancement of human action in all circles and seen as a bunch of interrelated specialized, monetary, social, political and profound social elements.

At the present progressive phase it very well may be accepted that the genuine current data society "begins" from the start of the XXI century, characterizing a few

talked about measures: Mechanical - examination of data advances utilized underway, organization, instruction and daily existence for expanding the productivity of cycles acknowledged in the organization climate and data the executives[10-11]; Social - examination of cycles that are a significant trigger for changing the personal satisfaction[12]; Financial - investigation of data, a critical component in the economy, for example, assets, administrations, merchandise, wellspring of added worth and work[13]; Political - opportunity of access and dispersal of data and thoughts connected with political cycles, permitting agreement between various classes and social layers of the populace[14]; Social - acknowledgment of the social upsides of data in the contemporary computerized age, in light of the fact that "the approach ofcomputerized innovation has altogether changed human lives and added new aspects to our utilization ways of behaving"[15], that are continually changing the socio-social elements of the general public.

Fundamental of Privacy & Data Protection

Privacy is a basic liberty perceived in numerous peaceful accords and archives, however the significant inquiry is "The thing is protection?" The extension and content of the idea not entirely settled based on public culture and individual attributes of the populace, yet there are likewise normal things, like the sacredness of individual data and its assurance (access, use, spread, move, and so forth) In this explanation, everybody has the privilege to the insurance of individual information and two types of security are characterized, which consider the subject- "right to security" and "right to information assurance".

There are very few endeavors to characterize "right to protection", and a few remarks are as per the following:

- The term ought not to be characterized as a different lawful right, and existing regulations connected with security ought to be adequate.
- To characterize individual sacredness (protection), it is important to observe a typical association between the various substances of the legal dispute on the subject.
- One more remark regards protection as "computerized security" and recommends that the right to security be viewed as an autonomous right meriting guideline.

A synopsis of the remarks in the writing is that right to security is the option to safeguard everything that is straightforwardly connected with the individual (body, home, property, considerations, sentiments, mysteries, personality, correspondence, and so forth). This right permits the person to decide for himself which part of the individual space to make accessible to other people, as well as to decide the way and season of purpose.

An investigation of the advancement of the idea of the right to security, along with a similar examination of the option to its worldwide insurance, was made. The book surveys worldwide regulation in the field talked about in both recorded and contemporary settings, underlining the effect of innovation on the right to security and ways of safeguarding it in the contemporary advanced age.

Personal Data Protection (PDP) is a right not entirely set in stone by the connection between the individual and society, including government establishments, organizations,

and different substances, and is straightforwardly connected with protection (GDPR characterizes "right to information assurance" as a significant classification). The Contract of Major Privileges of the European Association (CFR), which became restricting on 1 December 2009, perceives the right to security in Article 7 and the right to the insurance of individual information in Article 8. Likewise, Article 8 affirms the rule that individual information should be handled reasonably and for explicit purposes based on the assent of the individual concerned or for other still up in the air by regulation.

Privacy in Digital World &Internet Communication

The essential necessities for Web access suppliers for various sorts of organization interchanges are obviously characterized in different information assurance reports. One synopsis is the accompanying:

- guaranteeing classified correspondence by disallowing the tuning in, snooping or capacity of messages without the assent of the information subject;
- guaranteeing the security of the administrations through suitable measures presented by the email suppliers;
- warnings of information break when the supplier recognizes security issues prompting misfortune or robbery of individual information;
- traffic and area information should be erased or mysterious when presently not needed for correspondence purposes or other lawful circumstances;
- earlier assent prior to sending spontaneous business messages (known as "spam"), which incorporates SMS instant messages and other electronic messages;
- prerequisite of earlier assent for incorporation of public indexes (phone number, email/postal location) in a public catalog;

Related Cases

One of the earliest cases related to privacy was the case ***M.P. Sharma v. Satish Chandra***[16], where the Supreme Court on the issue of 'force of search and seizure' held that protection can't be brought under crucial freedoms as it was something not connected with the Indian Constitution. It was seen that the Supreme Court had a restricted understanding for this situation, restricting itself just to the endorsed legal guideline.

And the recent case related to it is ***Justice K.S. Puttuswamy (Retd.) &Anr. v. Union of India &Ors***[17] The verdict was the outcome of a petition challenging the constitutional validity of the Indian biometric identity scheme Aadhar. This was a case relating to the Unique Identity Scheme that was discussed along with the right to privacy. The question that was placed before the court was whether a right like right to privacy was guaranteed under the Constitution or not. The Attorney General of India had however argued that privacy did not have a place in the fundamental right guaranteed to Indian citizens.The One page order signed by all nine judges declares:

The right to privacy is protected as an intrinsic part of the right to life and personal liberty under Article 21 and as a part of the freedoms guaranteed by Part III of the Constitution.

Finally, it was on 24th August 2017, that a historical judgement was made by the Supreme Court of India that stated the right to privacy to be a part of fundamental rights that was protected by the Indian Constitution. The Supreme Court declared that the right to privacy stems from the fundamental right to life and liberty and that it would be having a long-lasting consequence. The Nine-Judge bench of the Supreme Court was involved in the case of Puttuswamy vs. Union of India that declared the right to privacy to be protected under Part III of the Constitution of India. The Judgment was in response to the reference made in connection with the challenge to India's National Identity project called Aadhar.

Conclusion

The article is an endeavor to sum up the highlights of the new advanced age, in view of present day advances and new ways to deal with correspondence between individuals. The high proficiency of the digitalization of the general public can't be denied, not just with the utilization of the advances talked about above, yet additionally in the field of e-government, e-learning, as well likewise with the proposal of numerous e-administrations (e-banking, e-business , e-casting a ballot, and so forth) Notwithstanding, it is additionally important to examine the potential issues that could prompt bothersome ramifications for members in the advanced world, so the last option can be mindful of them and avoid potential risk to safeguard their protection and personality.

To sum up the development of right to privacy one might say that after an extremely lengthy lawful translationthat has been set somewhere near the High Court at different place of time, it is adequately sufficient to come to aend that the Right to Security has at last been fused into the Part III of the Indian Constitution.Security can likewise be viewed as one of the elements of the poise of an individual and that is the reason, even theIntroduction to the Constitution guarantees this to each distinctive individual. The Right to Protection isn't simply anmechanical assembly in the possession of the State to intrude upon the individual space of the individual however it is additionally ainstrument through which the State can enough manufacture organizations that would permit each person tosafeguard their private life. It should be perceived that the Right to Security is significant for a weightyusage of opportunity of articulation, especially in this time of digitalization. These decisionsconnected with Right to Security will actually want to give a significant ramification to the insurance of protection in India.

Thus, Right to Privacy in India has made considerable progress to be laid out as a vital piece of the MajorFreedoms ensured to the residents of India.

References :

1. Ordenov, S. Polishchuk, O., Skyba, I., Shorina, T. Clarification of problems in modern society in the processes of informatization and globalization, E3S Web of Conferences, Vol. 164, article 11037, May 2020, 15 p. DOI: https://doi.org/10.1051/e3sconf/202016411037
2. Romansky, R., I. Noninska. Challenges of the Digital Age for Privacy and Personal Data Protection. Mathematical Biosciences and Engineering, ISSN 1551-0018, Vol. 17, No. 5, August 2020, pp.5288-5303. DOI: 10.3934/mbe.2020286

3. Soldatova N. F., Rebrikova N. V., Zakharenko I. K. Informatization of Society: The Development of Key Digital Competencies of Personnel. In: Ashmarina S. I., Mantulenko V. V. (eds) Digital Economy and the New Labor Market: Jobs, Competences and Innovative HR Technologies. IPM 2020. Lecture Notes in Networks and Systems, Vol. 161, 2021, pp 496-505, Springer, Cham. https://doi.org/10.1007/978-3-030-60926-9_63
4. Reddy, P. Sharma, B., Chaudhary, K. Digital Literacy: A Review of Literature, International Journal of Technoethics, Vol. 11, No. 2, 2020, 30 p. DOI: 10.4018/IJT.20200701.oa1
5. Romansky, R. Informatization of the Sciety in the Digital Age. Biomedical Journal of Scientific & Technical Research, ISSN 2574-1241, Vol, 33, No.3, 2021, pp.25902-25910. DOI: 10.26717/BJSTR.2021.33.005418
6. Romansky, R. Social Media and Personal Data Protection. International Journal on Information Technologies and Security, ISSN 1313-8251, Vol. 6, No 4, 2014, pp.65-80.
7. Romansky, R., I. Noninska. Architecture of Combined e-Learning Environment and Investigation of Secure Access and Privacy Protection. International Journal of Human Capital and Information Technology Professionals (IJHCITP), ISSN: 1947-3478, Vol. 7, No 3, 2016, pp. 89-106. DOI: 10.4018/IJHCITP.2016070107
8. Goncharov, V. N. Informatization of Society: Social and Economic Aspect of Development. Proceedings of the VIII International Scientific Conference on Informatization of society: socio-economic, socio-cultural and international aspects, 15-16 January 2018, ISBN 978-80-7526-263-9, pp. 8-11.
9. Vasilenko, L. A. Public Policy in Digital Society. XXIII International Conference on Culture, Personality, Society in the Conditions of Digitalization: Methodology and Experience of Empirical Research Conference, Vol. 2020, KnE Social Sciences, 2020, pp. 585–593. DOI: 10.18502/kss.v5i2.8404
10. Kravets, O.Ja., Atlasov, I.V., Aksenov, I.A., Molchan, A.S., Frantsisko, O.Yu., Rahman, P.A. Increasing efficiency of routing in transient modes of computer network operation, International Journal on Information Technologies and Security, vol. 13, No. 2, 2021, pp. 3-14.
11. Cheryshov, A.B., Choporov, O.N. Preobrazhenskiy, A.P., Kravets, O.Ja. The development of optimization model and algorithm for support of resources management in organizational system International Journal on Information Technologies and Security, Vol. 12, No. 2, 2020, pp. 25-36.
12. Barakoviæ, S., BarakoviæHusiæ, J., van Hoof, J., Krejcar, O., Maresova, P., Akhtar, Z., Melero, F.J. Quality of life framework for personalised ageing: A systematic review of ICT solutions. International Journal of Environmental Research and Public Health, Vol. 17, No. 8, 2020, art. 2940. DOI: https://doi.org/10.3390/ijerph17082940
13. Tsonkov, N. Economic security and regional policy. International Journal on Information Technologies and Security, Vol. 13, No. 1, 2021, pp. 101-109.
14. Ninov, M., Atanasov, Pl. Content analysis as a way of identifying hybrid threats in the media content. International Journal on Information Technologies and Security, Vol. 11, No. 3, 2019, pp. 101-108.
15. Dey, B.L., Yen, D., Samuel, L. Digital consumer culture and digital acculturation. International Journal of Information Management, Vol. 51, April 2020, article 102057. DOI: https://doi.org/10.1016/j.ijinfomgt.2019.102057
16. AIR 1954 SC 300
17. AIR 2014 SC 2524

❑❑❑

1. Assistant Professor & PhD Scholar, Maharishi University of Information Technology, Noida. Email : kamshadmohsin@gmail.com
2. Law Student, Maharishi University of Information Technology, Noida. Email : harshitkiran27@gmail.com

केंद्रीय हिंदी संस्थान

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, वेबसाइट : www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र : दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य—

(i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन (ii) विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन (iii) अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण (iv) संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना (v) समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य—

● **शिक्षणपरक कार्यक्रम :** (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण (ii) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (iii) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित) (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषा विज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

● **अनुसंधानपरक कार्यक्रम :** (i) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध (ii) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

● **शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास :** (i) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण (ii) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण (v) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण (vi) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 200 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका-गवेषणा, संवाद पथ, समन्वय दक्षिण, समन्वय पश्चिम, प्रवासी जगत, समन्वय पूर्वोत्तर, शैक्षिक उन्मेष, भावक, संस्थान समाचार एवे दो छात्र पत्रिका 'हिंदी विश्व भारती' तथा 'समन्वय' का प्रकाशन किया जाता है।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। एक लाख पुस्तकों का विशाल संग्रह उपलब्ध है। 75 से अधिक जर्नल, शोधपरक पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहटी (असम), आइजोल (मिजोरम), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्धता।

योजनाएँ : (i) भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो एवं कैंडी में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत (ii) अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी.ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ (iii) विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, मॉरीशस, बेल्जियम, रूस, जापान, उज़्बेकिस्तान एवं कज़ाकस्तान आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी (iv) हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना, हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

-श्री अनिल कुमार शर्मा
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल
ई-मेल : vicechairmankhs@gmail.com

-प्रो. बीना शर्मा
निदेशक
ई-मेल : directorkhs1960@gmail.com

विश्व हिंदी साहित्य परिषद

हिंदी साहित्य, संस्कृति एवं भाषा

से संबंधित पुस्तकों के प्रकाशन के लिए संपर्क करें

अध्यक्ष : डॉ. आशीष कंधवे

ईमेल : vhspindia@gmail.com
www.vhspindia.in

संपर्क : 011-47481521, 9811184393

1. हिंदी एवं भारतीय भाषा का प्रचार-प्रसार एवं समग्र विकास
2. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा के विकास और विस्तार के लिए सेमिनार, सम्मेलनों का आयोजन
3. उत्तम साहित्य का प्रकाशन
4. साहित्यकार सहायता योजना
5. हिंदी को तकनीक से जोड़ना
6. पुरस्कार / प्रतियोगिता का आयोजन
7. रोजगारोन्मुख हिंदी के लिए प्रयास एवं योजनायें
8. संग्रहालय / पुस्तकालय / संगोष्ठी कक्ष की स्थापना
9. साहित्य एवं संस्कृति के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयासरत
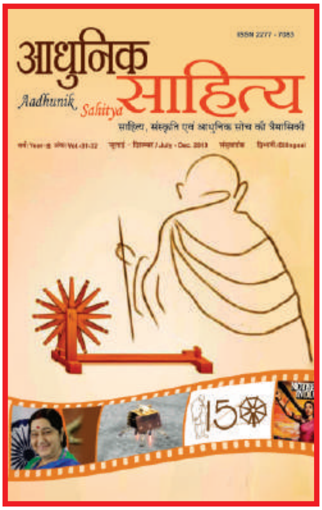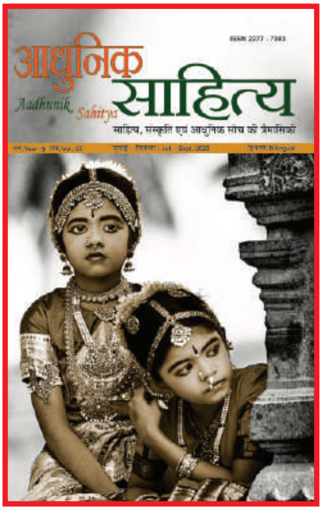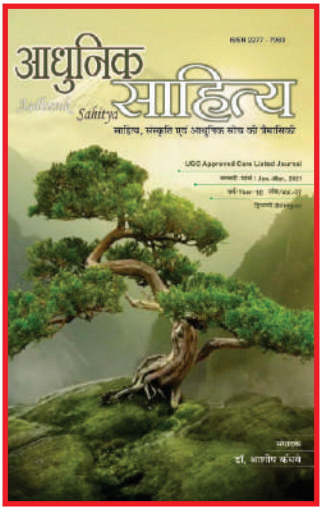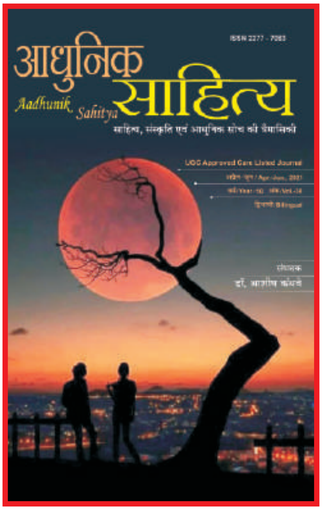
RNI No. DELBIL/2012/42547